पतन की परिभाषा

हिन्दी-समिति-ग्रन्थमाला---३७

पतन की परिभाषा

लेखक
परिपूर्णानन्द वर्म्मा

प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग
उत्तर प्रदेश

प्रकाशकीय

"पतन की परिभाषा" हिन्दी समिति ग्रन्थमाला की ३७वी पुस्तक है। इसके रचयिता श्री परिपूर्णानन्द वर्म्मा हिन्दी के सुख्यात लेखकों मे से हैं जो गत ३०-३५ वर्षों से किसी न किमी रूप मे बराबर हिन्दी की सेवा करते रहे है। आपने विविध विषयो पर ३८ पुस्तकें हिन्दी मे लिखी हैं। अपराध-विज्ञान का आपने गहरा अध्ययन किया है और तत्सबंधी प्रश्नो पर लम्बे अरसे से अनुसधान, विचार-विमर्श एवं मनन करते रहे हैं। इमका एक परिणाम यह बहुमूल्य पुस्तक ही है जो हिन्दी मे अपने ढंग की अद्वितीय रचना है।

विश्व के अन्य कितने ही देशो की तरह आज हमारे यहाँ भी किशोरों और नवयुवको मे अनुशासनहीनता, उच्छृंखलता एव अपराध की प्रवृत्ति बढ रही है। यह प्रश्न देश के समाज-सुधारको, विचारको और अभिभावको के सम्मुख है। वर्म्माजी ने इस पुस्तक मे जो विचार प्रकट किये है, जो आँकडे और अवतरण दिये हैं, उनसे इस समस्या के तथा उससे सम्बद्ध अन्य प्रश्नो के समाधान मे विशेष सहायता मिलेगी, इसमे सन्देह नही। जैसा कि वर्म्माजी ने लिखा है—"आज पुरुष अपने अधिकार के लिए लडते हैं, स्त्री अपने अधिकार के लिए। हम चाहते हैं कि लोग परिवार के अधिकार के लिए लड़ें।" समाज परिवारों से ही बनता है। अत समाज की स्थिति सुदृढ़ तथा पुष्ट बनाने के लिए परिवारों की दृढता और मर्यादा बनाये रखने का प्रयत्न करना नितान्त आवश्यक है। अपराध करनेवाले युवक-युवतियो को या अन्य लोगो को केवल जेल भेज देने या दड दे देने से स्थिति नही सुधर सकती।

अपराध क्या है, पतन क्या है और आज जिसे हम पतित कहते हैं, अपराधी समझते है, वह अपनी स्थिति या प्रवृत्तियो के लिए कहाँ तक जिम्मेदार है, इस पर सम्यक् विचार किये बिना हम किसी को दोषी नही ठहरा सकते। फिर मुख्य प्रश्न अपराधी को दंड देने या जेल भेज देने का ही नही बल्कि यह है कि वह कुमार्ग से विमुख होकर पुनः सुमार्ग पर आ जाय। जेल से वह "समाज के लिए उपयोगी तथा अधिक उपयुक्त नागरिक होकर घर लौटे।" इन्ही सब प्रश्नों का सुन्दर विवेचन इसमें किया गया है। इस दृष्टि से यह पुस्तक नितान्त उपयोगी है। हमें आशा है कि समाज में बढ़ती

हुई अपराध-प्रवृत्तियो से चिन्तित प्रत्येक पाठक इस पुस्तक को पढकर लाभान्वित हुए बिना न रहेगा। इसमे उसे अध्ययन और मनन की, विचार और हृदय-मथन की प्रचुर सामग्री मिलेगी।

भगवतीशरण सिंह
सचिव, हिन्दी समिति

एक बात

आदिकाल से ही धार्मिक तथा सामाजिक कर्त्तव्यो अथवा अनुशासनो से विमुख होनेवाले को पतनशील तथा पतित कहते हैं। किन्तु हर एक समाज का अनुशासन समान नही है, हर एक धर्म की तात्त्विक एकता अवश्य है पर अध्यादेश समान नही हैं। अतएव जो एक के लिए पतन का कारण है वह दूसरे के लिए प्रशंसा की वस्तु बन सकता है।

जबसे समाज की रचना हुई, उसके आदेशो की अवज्ञा करनेवाले भी पैदा हो गये। समाज ने ऐसी अवज्ञा करनेवालो को अपराध का दोषी, अर्थात् अपराधी कहा। जिस कार्य मे कर्त्तव्य से पतन हो, वह अपराध है, पतन का कार्य करनेवाला अपराधी है।

किन्तु, अपराध तथा अपराधी की व्याख्या आज तक पूर्णरूपेण नही हो पायी है। हर एक अपने-अपने दृष्टिकोण से उसकी व्याख्या करता है। चूकि अपराध का मौलिक आधार समाज तथा धर्म की दृष्टि मे अपने "कर्त्तव्य से पतन" है, इसी लिए मैंने भी "पतन की परिभाषा" मे अपराध तथा अपराधी की व्याख्या करने का प्रयास किया है।

मेरे विचार से पश्चिम तथा पूर्व, प्राचीन तथा अर्वाचीन विचारधाराओं का समन्वय करने का सम्भवत यह प्रथम प्रयास है, सम्भवत अपने विषय की यह अकेली पुष्पाजलि हिन्दी साहित्य मे है, यद्यपि दडशास्त्र आदि पर दो एक ग्रन्थ हमारी भाषा मे भी है।

मैंने इसे तीन खंडो मे विभाजित किया है, स्यात् अपराधशास्त्र का यह सही विभाजन है, कामवासना और अपराध, बाल-अपराध, वयस्क अपराधी और पुनर्वास। जो कुछ, जैसा भी, सात वर्ष के अध्ययन के बाद बन पड़ा, पाठकों की सेवा में अर्पित है। पुस्तक मे अनेक त्रुटियाँ होगी। उनके लिए पहले से ही क्षमा माँग लेता हूँ।

परिपूर्णानन्द वर्म्मा

विषय-सूची

प्रथम भाग

कामवासना और अपराध

द्वितीय भाग

बाल अपराध की व्याख्या

तृतीय भाग

वयस्क अपराधी और पुनर्वास

अध्याय १

धर्म और नीति

प्राचीन भारत मे जनता के लिए दो प्रकार के आदेश थे—धार्मिक तथा नैतिक। धार्मिक आदेशो की अवज्ञा, धर्म के विपरीत कार्य करना "पाप" समझा जाता था और नैतिक अर्थात् सामाजिक आदेशो की अवज्ञा "अपराध" कहा जाता था। धार्मिक तथा नैतिक-सामाजिक, दोनो ही दृष्टि से अपने कर्त्तव्य को न निभानेवाला या उनके विपरीत चलनेवाला "पतित" कहा जाता था। साधारणत यही कहा जाता था कि उस व्यक्ति का पतन हो गया है। कर्त्तव्य से च्युत होना ही पतन है।

किन्तु, कर्त्तव्य क्या है? धर्म क्या है? धर्म का आदेश किसे तथा कैसे समझे और सामाजिक तथा नैतिक नियम क्या है जिनके विरुद्ध जाना अनुचित है? जब तक यह निश्चित न हो जाय, पतन तथा पतित की मीमासा भी नही हो सकती। प्राचीन भारत मे धार्मिक पतन होने पर "प्रायश्चित्त" करना पडता था। नैतिक तथा सामाजिक पतन पर दंड मिलता था। मानव प्रायश्चित्त तथा दड की सकरी गली के बीच मे चलता हुआ जीवन-निर्वाह कर रहा था।

तब और अब के मनुष्य और उसके स्वभाव मे कोई अन्तर नही है। अनन्त काल हो गया, मानव-स्वभाव तथा उसकी वास्तविक समस्या नही बदली। जब सृष्टि की, इस विश्व की रचना नही हुई थी, उस समय क्या था, यह जानने योग्य भी नहीं है।[1] किन्तु जबसे जीव ने, प्राणयुक्त प्राणी ने जन्म लिया,[2] पशु-पक्षी से लेकर मनुष्य की

१. "सृष्टि के पहले प्रकृति जानने के अयोग्य (तुच्छ) होकर अंधकार में थी। (ऋग्वेद, अष्टि० ८, मं० १०, अ० ११, सू० १२९)

२. Dr. Cook और Prof. Geikie के कथनानुसार यह दुनिया ८०,००० वर्ष पुरानी है। पर अपने अनुसंधानों के आधार पर प्रो० औसबर्न इसे ६० लाख वर्ष पुरानी सिद्ध करते है। पर पुरानी कितनी भी हो, मन तथा बुद्धि का अनुमान अंधेरे में है।

प्रकृति, उसका स्वभाव, उसकी आन्तरिक प्रेरणा ज्यो की त्यो है। वह इतनी गूढ, इतनी गम्भीर तथा गहरी है कि वैदिक काल से लेकर आज तक उसको जानने और समझने का प्रयास किया जा रहा है। पर जितना अध्ययन हो रहा है, मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक, भौतिक तथा कोरा वैज्ञानिक, उतना ही ऐसा लगता है कि हम अभी तक मानव-प्रकृति तथा स्वभाव को पहचानने या समझ पाने के स्थान से काफी दूर है।

तर्क की बात

हिन्दू-विश्वास के अनुसार इस सृष्टि के चार युग हैं—सतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग। हर युग मे "युगधर्म" के अनुसार मानव प्रकृति बदलती रहती है। आजकल कलियुग है।[1] इसमे हर एक मनुष्य तथा जीव-जन्तु का स्वभाव तामसिक यानी काम और वासनामय हो जाना चाहिए। तात्पर्य यह हुआ कि आज जो पतित है, वह प्रायः अपने कारण नही, युग के कारण ही पतित हो रहा है। शायद इसी प्रकार के धार्मिक विश्वास का खंडन करने के लिए कार्ल मार्क्स ने लिखा था कि "धर्म ने मनुष्य को नहीं उत्पन्न किया है; मनुष्य ने धर्म को जन्म दिया है। धर्म मानव के लिए अफीम की तरह है।"[2] यह कोई दलील नही है। काफी लचर कथन है। पर यह मानना ही पड़ेगा कि धर्म मनुष्य के लिए है। अतएव जब तक वह अपने धर्म को ठीक से समझेगा नहीं, केवल धर्म-धर्म पुकारने से कदापि कल्याण न होगा।

एक युग था जब हम धर्म तथा कर्त्तव्य को ठीक से समझना अपना कर्त्तव्य समझते थे और जहाँ कही समझ मे नही आता था, मन्त्र-द्रष्टा तथा धर्म-द्रष्टा ऋषियों से पूछते थे, समझने की चेष्टा करते थे। जब कलियुग आया और ऋषि लोग पृथ्वी पर से जाने लगे तो मनुष्यों ने घबड़ाकर देवताओ से पूछा कि अब हम क्या करेंगे? उन्हें उत्तर मिला कि "तर्क" से, समझदारी से काम लेना। अतएव तर्क की प्रतिष्ठा आज से ३००० वर्ष पूर्व यास्क अपने "निरुक्त" मे कर गये हैं। उसी तर्क के सहारे हम

१. प्राचीन मत है कि १७,२८,००० वर्ष तक सतयुग था। १२,९६,००० वर्ष तक त्रेतायुग और ८,४६,००० वर्ष तक द्वापर था। कलियुग ४,३८,००० वर्ष तक रहेगा। इसका प्रारम्भ १८ फरवरी, ईसा से ३१०२ वर्ष पूर्व, शुक्रवार से हुआ। अर्थात् अपराध शास्त्र को अभी लाखों वर्ष तक पैदा होनेवाले प्राणी का अध्ययन करना है।

२. Carl Marx—"Critique of Hegal's Philosophy of Law"

यह समझना चाहते है कि पतित या अपराधी कौन है, क्यो है। उसके साथ क्या और कैसा व्यवहार करना चाहिए, इसका निर्णय तर्क[1] से ही हो सकता है। उसी तर्क के सहारे हम "पतन की परिभाषा" करना चाहते हैं।

पाप और अपराध के सम्बन्ध मे प्राचीन भारतीय विधान मे जो आदेश है, वे अशत. धार्मिक है, अशत नैतिक है और अशत. न्याय के अग हैं। इनका ऐसा सम्मिश्रण है कि बिना तीनो को मिलाये कोई व्याख्या नही हो सकती।[2] धर्म को अलग कर देने पर कोरी नैतिकता अधूरी रह जाती है। न्याय को धर्म का रूप न देने पर न्याय-धर्म ही समाप्त हो जाता है। आदि आर्य सभ्यता की सबसे महत्त्वपूर्ण बात यही है कि उन्होने मानव प्रकृति को ऊपर लिखे तीन क्षेत्रो मे बाँटकर ऐसा मिला दिया है कि आज तक पश्चिमी अपराध-विज्ञान उनके दृष्टिकोण तथा सिद्धान्त के दायरे के बाहर नही जा सका है। वेदो से प्राचीन ग्रन्थ ससार मे कोई नही है। हम उन्हे आदि-ग्रथ तथा मत्र-द्रष्टा ऋषियो की रचना मानते है। यदि पश्चिमी हिसाब ही माना जाय तो वे कम से कम ईसा से १२०० वर्ष पूर्व के है।[3] लोकमान्य तिलक ने उनको ईसा के पूर्व ४००० वर्ष का माना है।

प्राचीन भारतीय मत

ऋग्वेद के अनुसार रुद्र और वरुण दंड देते। वरुण पाप-पुण्य देखते हैं, यानी मानव के पाप-पुण्य के साक्षी वरुण देवता हैं।[4] पाप का प्रतिशोध बृहस्पति (गुरु) के जिम्मे किया गया था। गुरु ही प्रतिशोध के देवता हुए।[5] झूठ सबसे बड़ा पाप है।[6]

१. "ऋषिसु उत्क्रामत्सु मनुष्या देवान् अब्रुवन् को नः ऋषिः स्यादिति। ते तर्कं ऋषि प्रायच्छन्"—यास्क (निरुक्त)।

२. P. K. Sen—Penology—Old & New, Pub. Longman Green & Co., Calcutta, 1943, Page 81.

३. जोन्स के अनुसार वेद ई० पूर्व १२०० वर्ष के हैं। हैंग के अनुसार २४०० वर्ष ई० पूर्व के तथा महेंजोदारो-हड़प्पा की खुदाई के बाद प्राप्त प्रमाण से ५००० वर्ष पुराने प्रतीत होते हैं।

४. ऋक्० १-२३-५

५. ऋक्० २-२३-१७

६. ऋक्० ७-१०-४०

पितरो का पाप भी भोगना होगा।[१] इसी पाप या पतन के कारण कर्मानुसार जन्म होता है। कीट पतग आदि कर्मानुसार पैदा होते है।[२] जन्म मे किये गये पापो का भोग इसी प्रकार भोगा जाता है। ईश्वरीय दड की यही प्रथा है, प्रणाली है।

ऊपर लिखे वैदिक विधान से यह स्पष्ट है कि मानव के स्वभाव की दुर्बलताओ को समझकर उसकी रक्षा करने के लिए और दड को धार्मिक, नैतिक तथा न्यायसगत बनाने के लिए तीनो दृष्टि से व्यवस्था दे दी गयी और उसी व्यवस्था के अतर्गत समूचे समाज की रक्षा होती थी। झूठ बोलना, धोखा देना या दूसरे का धन अपहरण करना, ये ऐसे मोटे नैतिक नियम है जो मन तथा बुद्धि के साथ हर समाज मे व्याप्त है अतएव हर समाज तथा हर देश के लिए समान रूप से लागू है। इनकी अवज्ञा करनेवाला समाज का शत्रु है, उसे दड मिलना चाहिए। दड देना भी एक धर्म समझा गया है। समाज और उसकी रक्षा का बडे सुन्दर रूप मे वर्णन करते हुए कौटिल्य ने आज से २२०० वर्ष पूर्व लिखा था[३]—

"कृषिपशुपाल्ये वाणिज्या च वार्ता पशु(१)। धान्य हिरण्य कुप्यविष्टि प्रदानादौपकारिकी (२)। तया स्वपक्षं परपक्षं च वशीकरोति कोशदण्डाभ्याम् (३)। आन्वीक्षिकीत्रयीवार्तानां योगक्षेम साधनो दण्डः (४)। तस्य नीति दण्डनीतिः (५)। न ह्येवंविध वशोपनयनमस्ति भूतानां यथा-दण्डः इत्याचार्याः (९)।"

अर्थात् "कृषि, पशुपालन और वाणिज्य, यही वार्त्ता है। यह वार्त्ताविद्या धान्य, पशु, हिरण्य, ताँबा आदि अनेक प्रकार की धातु और नौकर चाकर आदि के देने से राजा-प्रजा का अत्यन्त उपकार करनेवाली होती है। इस विद्या से उत्पन्न हुए कोष और सेना से, अपने और पराये सबको राजा वश मे कर लेता है। आन्वीक्षिकी, त्रयी और वार्त्ता इन सबके योग और क्षेम का साधन दंड ही है। दडनीति का प्रतिपादन करनेवाला शास्त्र ही दडनीति कहलाता है। क्योकि दड के अतिरिक्त इस प्रकार का और कोई भी साधन नही है जिससे सब ही प्राणी झट अपने वश में हो सके। यह आचार्यों का मत है।"

१. ऋक्० ७-८६-५

२. कौशीतकी उपनिषद् १-२ स इ "ह कीटो वा पतंगो वा मत्स्यो वा शकुनिर्वा सिंह :"

३. कौटलीय अर्थशास्त्र, प्रकाशक संस्कृत पुस्तकालय, लाहौर, सन् १९२५—१ अधि० ४ अध्याय, पृष्ठ १२-१३।

पर, आगे चलकर कौटिल्य लिखते है—

"नेति कौटिल्यः (१०)। तीक्ष्णदण्डो हि भूतानामुद्वेजनीयः (११)। मृदुदण्ड परिभूयते (१२)। यथार्हदण्ड : पूज्यः (१३)।"

"परन्तु, कौटिल्य ऐसा नही मानते। निष्ठुरतापूर्वक दड देनेवाले राजा से सब ही प्राणी खिन्न हो जाते है, तथा जो दड देने मे कमी करता है, उसका तिरस्कार भी करते है। इसलिए उचित दड देनेवाला राजा ही पूजनीय होता है।"

कौटिल्य पतित को क्षमा नही करना चाहते पर निष्ठुरता भी नही चाहते। दड हो, पर मुलायम हो। आधुनिक [illegible] भी घूम फिरकर यही कहता है। हाँ, भारतीय नीति धर्म की भावना से भी युक्त है, इसी लिए—

"सुविज्ञातप्रणीतो हि दण्डः प्रजा धर्मार्थकामैर्योजयति (१४)"

"क्योकि विधिपूर्वक शास्त्र से जानकर प्रयक्त किया हुआ दड प्रजाओ को धर्म, अर्थ और काम से युक्त करता है।"

मनुस्मृति ने भी मानव की रक्षा के लिए दड की महत्ता प्रतिपादित की है। मनु[1] के अनुसार—

दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति।
दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः॥
समीक्ष्य स धृतः सम्यक्सर्वा रञ्जयति प्रजाः।
असमीक्ष्य प्रणीतस्तु विनाशयति सर्वतः॥[2]

"दंड सब प्रजाओ का शासन करता है। दड ही सबकी रक्षा करता है। रक्षक जब सोते है, दड जागता रहता है। पडितो ने दड को ही धर्म बतलाया है। विचार-पूर्वक दिया हुआ वह दड सब प्रजाओ को प्रसन्न करता है। किन्तु, बिना विचार किये दड का विधान राजा का सर्वनाश करता है।"

१. "संस्कृत साहित्येतिहास"—ले० विश्वनाथ शास्त्री भारद्वाज, प्रकाशक–श्री संकटा प्रकाशन मंडल, वाराणसी—के अनुसार कौटिल्य का समय ई० पूर्व ४०० वर्ष था, यानी आज से २३०० वर्ष पूर्व, मनुस्मृति का ई० पूर्व ३०० वर्ष था तथा याज्ञवल्क्य स्मृति का समय ईसा से १०० वर्ष पूर्व था।

२. मनुस्मृति–अध्याय ७ श्लोक १८ तथा १९

पतित को दंड देना धर्म है पर वह दंड निष्ठुर न हो, यही मनु का मत है। याज्ञवल्क्य ऋषि इसे अपनी स्मृति मे और भी स्पष्ट कर देते है—

तदवाप्य नृपो दण्डं दुर्वृत्तेषु निपातयेत्।
धर्मो हि दण्डरूपेण ब्रह्मणा निर्मितः पुरा॥[१]

"उस राज्य को इस प्रकार प्राप्त करके राजा वचक, शठ आदि दुराचारियो को दड दे, क्योकि पूर्व समय मे ब्रह्मा ने धर्म को ही दडरूप मे रचा है।" दड नाम यौगिक है क्योकि गौतम ने कहा है कि दमन करने को दड कहते है, इसलिए जो दमन के योग्य हो, उसका दमन करे।

किन्तु प्राचीन भारतीय सभ्यता मे धर्म, नैतिकता तथा न्याय को एक साथ मिलाकर चलने चलाने से समाज की जो रक्षा हुई थी, क्या वही करने से आज भी अपराध की समस्या हल की जा सकेगी ? इसमे कोई सदेह नही कि धार्मिक भावना बढने से, पुण्य-पाप की भावना में वृद्धि होने से मनुष्य गलत रास्ते पर चलने से काफी रोका जा सकता है। पर आज का अनुभव यह कहता है कि धार्मिक शिक्षा प्राप्त या धार्मिक वातावरण मे पले हुए अपराधियो की सख्या भी कम नही है। पश्चिम के जेलो मे बहुतो मे यह नियम है कि सप्ताह मे एक बार धर्मशिक्षा होती है। पादरियो का कहना है कि कैदी उनका उपदेश बडे ध्यानपूर्वक सुनता है पर उसके दिल में बात कम बैठती है। प्राय ऐसे अस्थिर चित्त के व्यक्ति देखे गये है जिनमे धार्मिक भावना के साथ ही साथ अपराध की प्रवृत्ति होती है।[२] श्री हीली लिखते है कि "मैं यह नही कहता कि नशेबाजी, गरीबी, कुसगति आदि के प्रलोभनो से रक्षा करने मे धार्मिक वातावरण सहायक नही होता या दुर्गुणो के चंगुल मे फॅसने से बचाव मे धर्म से सहायता नही मिलती, पर अपराध की अन्य पृष्ठ-भूमि को ध्यान मे रखने पर यह प्रकट होगा कि धर्म ने विशेष रक्षा भी नही की है।"[३]

हीली यह भी नही मानते कि अशिक्षा से अपराध बढता है या घरेलू दूषित वातावरण से ही अपराध होता है। उन्होने १००० बदियो की जाँच पडताल की तो उससे

१. याज्ञ० स्मृति–आचाराध्याय श्लोक ३५४

२. William Healy—The Individual Delinquent, Pub. Little Brown and Company, Boston, 1927, Page 114.

३. वही–अध्याय ७, पृष्ठ ११४

पता चला कि उनमे से केवल ३११ ऐसे अपराधी थे जिनके माता-पिता शराबी थे। इनमे से १२९ ऐसे पिता थे जो कभी-कभी नशे मे हो जाते थे तथा ऐसी ९ माताएँ थी। ११८ पिता प्राय नशे मे रहते थे तथा ५ माताएँ भी, और २५ पिता तथा ८ माताएँ हमेशा नशे मे चूर रहती थी, पर ३११ एक तिहाई ही हुआ।" यह सब लिखने का तात्पर्य यह है कि पहले यह समझना चाहिए कि जिसे हम पतित तथा अपराधी समझते है वह कौन व्यक्ति है। उसकी परिभाषा क्या है। वेद तथा शास्त्र ने दड को समाज की रक्षा के लिए आवश्यक धर्म माना है। धर्म का उल्लघन करनेवाला अपराधी है। पर, क्या नियमो का उल्लघन करना ही अपराध है? अपराध क्या है? धर्म-विरुद्ध क्या है? समाज-विरुद्ध क्या है?

अध्याय २

अपराध क्या है ?

धर्म के विरुद्ध किया गया कार्य पाप है। पाप भी अपराध है। पाप का इस लोक और परलोक मे दड मिलता है। समाज के विरुद्ध किया गया कार्य अपराध है। नैतिकता के विरुद्ध किया गया कार्य अपराध है। न्याय के विरुद्ध किया गया कार्य अपराध है। किन्तु, हर एक मनुष्य एक ही धर्म का माननेवाला नही होता। हर एक मनुष्य एक ही देश का नही होता। हर एक के समाज का ढाँचा भी एक समान नही होता। अतएव देश, काल, धर्म के अनुसार पाप तथा अपराध की व्याख्या भी भिन्न होती होगी। इसीलिए हर देश का अपराध-शास्त्र भिन्न होना चाहिए, हर एक का नैतिक विधान भिन्न होता ही है।

मोटे तौर पर सच बोलना, चोरी न करना, दूसरे का धन अपहरण न करना, हत्या न करना, पिता-माता का आदर करना तथा पर-स्त्री गमन न करना, पुण्य, सदाचार तथा नैतिकता समझा जाता है। पर, व्यवहार मे भी ऐसा नही है। अपराध तथा पाप की व्याख्या इतनी बडी है कि हममे से कौन कह सकता है कि उसने सदैव धर्म, समाज तथा नैतिकता और फिर न्याय के भीतर काम किया है। न्याय के विषय मे इग्लैण्ड के प्रधान विचारपति ने कहा है कि "देश मे इतने अधिक कानून बन गये है कि बिना उनका उल्लघन किये जीना कठिन है।"

धर्म इतनी व्यापक वस्तु है कि बड़े-बडे पडित तथा मुल्ला नित्य उसकी व्याख्या करते रहते है, फिर भी शका-समाधान की गुजायश बनी रहती है। न्याय उस विधान का नाम है जिसे उस समय का शासक वर्ग यानी बहुमत "उचित" समझता हैं और "अल्पमत" उचित नही भी समझ सकता। आज जो विधान है, कल उसे बदला जा सकता है।[1] किसी देश मे उपभोग की सामग्री को वाजिब मूल्य पर बेचना अनिवार्य

१. हैरल्ड लास्की--"राजनीति प्रवेशिका" (Introduction to Politics) **में लास्की के अनुसार विधान अस्थिर अतएव चंचल वस्तु है।**

है। यदि ऐसा नही किया गया तो "चोरबाजारी" का अभियोग लग सकता है। अनेक देशो मे जितना दाम चढाकर माल बेचा जाय, वैध है, न्यायसगत है। फिर, न्याय और समय की आवश्यकता मे भी अन्तर हो सकता है। सन् १९४५ से १९५० तक फ्रास मे "राशन कट्रोल" था, किन्तु सरकार चोरबाजारी को इसलिए स्वयं प्रोत्साहन देती थी कि लोगो को आवश्यक खाद्य सामग्री मिल जाती थी।[१] कानून बदलते रहते है, अतएव आज जो अपराध है, कल वही वैध बात होगी।

नैतिकता तथा धर्म

नैतिकता तथा धर्म को भी समझना बडा कठिन है। ईरान के इतिहास मे लिखा है कि जब तक जमशेद राजा ईश्वर के अनुकूल काम करता रहा, वहॉ (ईरान मे) सुख-शान्ति थी। "पवित्र कार्य करने पर ईश्वर की ओर से पारितोषिक मिलता है। अवगुण करने पर दड मिलता है।"[२] पर पवित्र कार्य क्या है ? चोरी करना अपवित्र कार्य है, किन्तु पुराने सभ्य देश स्पार्टा मे वही चोरी "चोरी" समझी जाती थी जिसमे चोरी करते समय देख लिया जाय। वरना, चुपचाप माल चुराकर घर मे रख लेना कोई अपराध नही था। ईरान के नरेश जहहाक ने एक प्रेत की आज्ञा से दो मनुष्यो को रोज मारकर उनका भेजा सॉपो को खिलाने का आदेश दे रखा था। वह कोई अपवित्र कार्य नही था। पवित्रता और अपवित्रता अपनी-अपनी व्याख्या पर निर्भर करती है।

नैतिकता तथा सदाचार की हर देश मे भिन्न व्याख्या देखकर ही कुछ लोग धर्म को कामशास्त्र का अग मान बैठे थे। ब्लेक ने तो यहॉ तक लिख दिया था कि "काम-भाव का ही विकृत रूप धर्म है।" आगे चलकर वे लिखते है— "न्याय के पत्थरो से कारागार की दीवारे बनी, धर्म के पत्थरो से वेश्यालय बने।"[३] लेखक कटनर इसके बहुत आगे बढ गये। उन्होने तो यहॉ तक लिख

१. उन दिनों फ्रेन्च पार्लमेण्ट में एक मंत्री ने कहा था—"चोर बाजार वालों को धन्यवाद है कि हमारा राष्ट्र भूखों नहीं मर रहा है।"

२. शाहनामा—फिरदौसी

३ "Religion was actually the corruption of sex Prisons were built with stones of law, brothels with stones of religion"—Poet William Blake—(१८ वीं सदी के अंत में)

दिया कि "बहुत अधिक धार्मिक भक्ति दबी हुई कामुक वासना का परिणाम हो सकती है।"[१]

बडों का अवगुण गुण होता है

पवित्रता तथा अपवित्रता बडे-छोटे पर भी निर्भर करती है। जूलियस सीज़र (रोम साम्राज्य के प्रथम सम्राट्) तथा फ्रेडरिक महान् ऐसे नरेश, सुकरात ऐसे दार्शनिक, मिकायल ऐंजेलो तथा सैफ्रो ऐसे कलाकार—ये सब पुरुष-पुरुष के साथ सम्भोग के शौकीन कहे जाते है।[२] यहूदी इतिहास मे जूदा (यहोवा) के पुत्र ओनान अपना वीर्य पृथ्वी पर गिराते थे, यानी हस्तक्रिया करते थे, पर यह कोई अपराध न था। पुराने जापानी इतिहास मे पुरुष-पुरुष-सम्भोग की चर्चा मिलती है। यूनानी कथाओं मे जीउस और गेनीमेदो पुरुषो के परस्पर सभोग का वर्णन है। यूनानियो के अनुसार चिन नामक देवता ने यूकेतान मे इस प्रकार के सम्भोग को प्रारम्भ कराया। यानी, यह काम भी देवता का था। ताहिती मे धार्मिक कार्यो मे स्त्री-स्त्री के साथ तथा पुरुष-पुरुष के साथ प्रसंग करता था। यह सब बडा पवित्र कार्य समझा जाता था।

कामदेवी की उपासना

भारतवर्ष मे देवदासी प्रथा, यानी मदिरो मे देवताओ की सेवा के लिए समर्पित कन्याओ की (अर्थात् मदिर की वेश्याओ की) प्रथा थी, जो भारत के स्वाधीन होने पर समाप्त हुई है। प्राचीन यूनान की राजधानी एथेंस मे सरकारी तौर पर वेश्याएँ रखी जाती थी, सरकार को उनसे काफी कर मिलता था। यूनान की प्रसिद्ध "कामदेवी" के मदिर मे वार्षिक पर्व पर वेश्याएँ अपनी सब आय मदिर मे चढा देती थीं। विवाहिता स्त्रियो को जीवन मे एक बार कामदेवी के मदिर मे जाकर अपना शरीर अर्पित करना पडता था और कोई भी पुरुष उनसे भोग कर सकता था। उस पुरुष से जो पैसा विवाहिता स्त्री को मिलता था, उसे वह मदिर मे चढा देती थी। जिस प्रकार भारत में "सखीभाव" से उपासना चल पडी थी, यूनान मे पुरुष लोग हिजडे बनकर सखीभाव ग्रहण कर आजन्म कामदेवी की सेवा करते थे।

१. H. Cutner—"A short History of Sex Worship"—1940, Page 198.

२. वही—(Cutner की पुस्तक)

कोरिंथ मे कामदेवी के मदिर मे १००० वेश्याएँ भक्तो की "सेवा" के लिए रहती थी। यूनानी देवता प्रियापस मदिर मे नग्न खडे रहते थे। वसत ऋतु मे उनके लिग को गुलाब की माला पहनायी जाती थी। ठीक इन्ही के समान रोमन देवता म्पूटिमस थे। दार्शनिक जैमब्लियस ऐसी उपासना की बडी प्रशसा करते थे।

आजकल ऐसी बाते बडे पतन की, निन्दनीय तथा हेय समझी जायँगी। पर कल के और आज के मानव मे कोई अन्तर नही हुआ है। उसका स्वभाव, उसका विकार, उसकी वासना ज्यो की त्यो है। मानव की वासना तब और अब समान रूपेण निन्द-नीय है। १३वी सदी के बोक्कासियो[१] की एक स्त्री नायिका यदि सात पुरुषो से भी सतुष्ट नही हो सकती तो ब्रैंटम की वीर महिलाओ[२] की वासना की भट्ठी मे कौन नही झुलस जायेगा ? नियम बदले है, नैतिकता की भावना बदली है, पर मनुष्य नही बदला है। १६वी सदी मे एक पादरी ने जो शब्द कहे थे, वे आज भी पूरी तरह से लागू हो सकते है। पादरी ने कहा था—

"इस शताब्दी के आदमियो मे शालीनता कितनी दुर्लभ है। किसी प्रकार की बदनामी से, जुआ खेलने, डाका डालने या पैसा लेकर झूठ बोलने मे उन्हे ज़रा भी सकोच नही होता। उनकी स्त्रियाँ अपना हाथ तथा छाती विवस्त्र किये हुए व्यभिचार, बलात्कार, भष्टाचार तथा अप्राकृतिक संभोग आदि को प्रोत्साहन दे रही है।"

पर-पुरुष सेवन

इसलिए धर्म के व्यापक दायरे मे अपराध किसे कहे ? रोम की कामदेवी वेनस का वर्णन हम कर आये है। बैबीलोन की कामदेवी मिलिता को प्रसन्न करने के लिए वहाँ की हर एक स्त्री को सरकारी कानून के अनुसार साल मे एक बार पर-पुरुष-सेवन करना होता था। जिस परिवार पर ऋण हो जाता था, उसकी स्त्री मदिर मे भेज दी जाती थी। मदिर मे वेश्यावृत्ति से उसे रुपया कमाकर ऋण चुकाकर तब मदिर के बाहर जाने की इजाजत मिलती थी। जो जितनी जवान होती थी वह उतनी ही जल्दी कर्जा चुकाकर बाहर आ जाती थी। अधेड़ और बुढियों को काफी समय लग जाता था। आर्मिनिया की कामदेवी "अनाइतीज" के मदिर मे लोग अपनी अविवाहिता कन्या चढा देते थे। इस कन्या का उपभोग विदेशी यात्री करते थे। जिस कन्या का

१. De Cameron by Boccacio
२. Brantome's "Gallant Ladies"

जितना अधिक उपयोग हो जाता था, वह विवाह के लिए उतनी ही "पवित्र" समझी जाती थी। स्पष्ट है कि बैबीलोन में हर एक स्त्री एक बार की वेश्या थी। आर्मिनिया में हर एक विवाहिता स्त्री दर्जनों विदेशियों के उपभोग से "पवित्र" बनती थी। यह सब "दुराचार" वैध था, जायज़ था, पुण्य था, धर्म के नाम पर था, देवी-देवता का वरदान था।

हत्या क्या है?

इस प्रसंग को हम यहीं छोड़ते हैं। यह कहा जा सकता है कि डाका, हत्या, चोरी आदि हर जगह "अपराध" होंगे; पर बात ऐसी नहीं है। रोम में हर पिता को अधिकार था कि अपनी विवाहिता कन्या को "पतित" होते देखे तो मार डाले। पति यदि ऐसा करे तो उसे प्राणदंड मिलता था। पिता यदि ऐसा करे तो वैध था। अफ्रीका में कई जातियों में शत्रु को मारकर देवता को चढ़ा देते हैं। दूसरी जाति के आदमी को पकड़कर बलिदान करना धर्म में शामिल है। अपनी जाति के आदमी को मार डालने पर प्राणदंड मिलता है। यहूदी लोग पहले अपने देवता को बालकों की बलि चढ़ाते थे। बाद में उसके स्थान पर लोग अपने शिश्न का ऊपर का चमड़ा काटकर चढ़ाने लगे। तभी से ख़तना का रिवाज़ चला। हैने का कथन है कि ख़तना केवल ऐन्द्रियिक सुख, स्त्री-सम्भोग सुख के लिए है। जो हो, बाल-बलि यहूदी सभ्यता में पुराने काल में अपराध नहीं थी।

चोरी, डाका आदि के सम्बन्ध में भी भिन्न-भिन्न धारणाएँ हैं। हम इस सम्बन्ध में जितना अधिक विचार करेंगे, उतना ही प्रकट होगा कि अपराध की व्याख्या करना कठिन है। पतन और पतित या अपराधी किसे कहा जाय, यह निर्णय आसानी से नहीं हो सकता। हम अपराध के भिन्न-भिन्न पहलुओं पर अलग-अलग विचार करें तो शायद कुछ परिणाम निकल सके।

अध्याय ३

काम-वासना का मौलिक आधार

अपराध-शास्त्र के अनेक पडितो का कथन है कि कामवासना या कामुक प्रेरणा ही समूचे अपराधो की जननी है। फ्रायड ऐसे विद्वान् मनोवैज्ञानिक या हैवलाक एलिस ऐसे [illegible] बच्चे का अपनी माता के स्तन से खेलना भी कामभावना का प्रतीक समझते है। हैवलाक एलिस तो लिखते है कि "जिस प्रकार हजरत मूसा ने होरेह पर्वत की चोटी पर वहाँ की झाड़ियो को जलाने की निरर्थक चेष्टा करती हुई अग्नि को देखा था, वैसे ही यह वासना की आग है जो कभी नही बुझती, उसे कोई नही बुझा सकता।"[१] जो कुछ अनर्थ इस ससार मे होते है, सब इस वासना के कारण। जी० सिम्पसन मार के अनुसार "हमारे स्वभाव मे जो कुछ उदार तथा उच्च बाते है उनका आधार हमारी कामवासना है।"[२] करीब करीब यही मत सन् १९२९ में "विश्व कामुक सुधार समिति" द्वारा आयोजित "कामुक सुधार काग्रेस" मे प्रकट किया गया था। इस सम्मेलन मे बर्ट्रेड रसेल, जार्ज बर्नर्ड शा, सी० ई० एम० जोड ऐसी विभूतियाँ उपस्थित थी।[३]

काम-वासना यदि मनुष्य के जीवन मे एक पूर्णत स्वाभाविक वस्तु है तो उस वासना की तृप्ति के लिए किया गया "अपराध" क्या वास्तव मे अपराध है? अभी कल तक भारतवर्ष मे वेश्याएँ खुले आम सड़को पर या मकान की खिडकियो पर खड़ी होकर ग्राहक तलाश किया करती थी। कोई उन्हे अपराधी नही कहता था। सन् १९५८ मे भारत सरकार ने वेश्यावृत्ति के विरुद्ध कानून बना दिया और अब कानून की दृष्टि

१. Havelock Ellis अपने "कामशास्त्र" में

२. G. Simpson Marr—Sex in Religion, Pub. George Allen & Unwin Ltd., 1936, Page 16.

३. Sexual Reform Congress, London—1929—Organised by World League for Sexual Reform

मे वही भारी अपराध हो गया। किन्तु आज भी हमारे ऐसे अनेक व्यक्ति मिलेंगे जिनका विश्वास है कि जिस प्रकार सार्वजनिक शौचालय तथा मूत्रागार होना जरूरी है उसी प्रकार समाज मे वेश्याएँ भी एक बडी भारी कमी पूरा करती है। हम आगे चलकर इस सम्बध मे भी विचार करेगे। यहाँ तो हम केवल यही कहना चाहते है कि न्याय के बदलते ही नैतिकता बदल गयी। अन्यथा वेश्यावृत्ति अपराध नही था।

मानव-स्वभाव

कामवासना मानव के स्वभाव के साथ लगी हुई है। पुरुष-स्त्री का एक दूसरे के प्रति आकर्षण अनन्त काल से चला आ रहा है। यह सृष्टि भी पुरुष तथा प्रकृति के सयोग से बनी है। परब्रह्म यदि सत्य है तो महामाया भी सत्य है। मायामय जगत् में माया का, स्त्री का अनोखा स्थान है। परमात्मा ने सृष्टि की रचना तो कर ली पर इस रचना मे, सृष्टि मे वह अपने ही बधन मे बँध गया। अपनी ही माया मे जकड़ गया। माया मे जकडे हुए का नाम ही मनुष्य है। जिस प्रकार मकडा अपनी ही सर्जनात्मक शक्ति से जाल बनाकर अपने को घेर लेता है,[१] वैसे ही मानव की दशा है। जीवन के दो रूप है—एक तटस्थ द्रष्टा है जो अलग बैठा सब कुछ देख रहा है तथा दूसरा जीवन का भोग करनेवाला है।[२] पहले को आत्मा मान लेना चाहिए। दूसरा मन तथा बुद्धि वाला प्राणी है। बिना भोग के जीवन कैसा—और बिना स्त्री के भोग का, संसार का सुख नही हो सकता। इसीलिए हमारे शास्त्रकारो ने काम का अर्थ "सुख" माना है। जब सुख मिलेगा तो अर्थ की, धन की प्राप्ति करने की प्रेरणा तथा प्रवृत्ति मिलेगी। काम के बाद अर्थ—और इन दोनो की प्राप्ति के बाद धर्म का साधन होगा। धर्म से ही मोक्ष प्राप्त होगा। इसी लिए जीवन की चार सीढियाँ है—

काम—अर्थ—धर्म—मोक्ष।

पुरुष तथा माया

सबसे बड़ी भोग्य वस्तु स्त्री है। बिना उसके जीवन अधूरा है। यह सभी सभ्यताओ तथा धर्मों का उपदेश है। हम जिस प्रकार परमात्मा की कल्पना करते हैं, उसी प्रकार प्राचीन चीन मे ताओ-वाद के प्रवर्तक लाओत्से ताओ को ब्रह्म मानते थे।

१. श्वेताश्वतरोपनिषद्—६, १०

२. मुण्डकोपनिषद् ३-१

प्रसिद्ध चीनी दार्शनिक कनफ्यूसियस भी ताओ की उपासना की सलाह देते थे।
कहते थे "अपना हृदय ताओ को अर्पित करो।" प्राचीन चीन का यह भी मत था f
स्वर्ग यानी भगवान् के दो प्रतिनिधि "जैन" तथा "जिन" (पुरुष तथा प्रकृति य
पुरुष तथा माया) के द्वारा मानव-सदाचार सचालित तथा नियन्त्रित होता है। इसी लि
पूर्णता को प्राप्त करने के लिए, लाओत्से का उपदेश था कि मानव को "ताओ के सा
जैन-जिन द्वारा सचालित सदाचार का विवाह कर देना चाहिए।"

पुरुष-माया के इस भाव को चीनी धर्म मे, अर्थात् प्राचीन चीन के शास्त्रका
ने बडा स्पष्ट रूप दिया है। उनके कथनानुसार इस सृष्टि मे पुरुष तथा प्रकृति
निरन्तर अतर्द्वन्द्व तथा खेल हो रहा है। पुरुषरूपी, आध्यात्मिक शक्तिवाला यांग
और प्राकृतिक शक्ति तथा स्त्री-रूपी यिन है। याग और यिन ही मानव के समू
आचार के आधार है। सदाचार तथा नैतिकता का सिद्धान्त तथा मूल आधार इन
सयोग से ही पैदा होता है। याग और यिन के सयोग का प्रतीक चीन "यी" मत्र तथ
सकेत है।[१] चीनी जिसे स्त्री जातिवाली "यिन" कहते है, उसी को बहुत से दार्शनि
"वास्तविकता को [illegible] कल्पना" कहते है। किसी न किसी रूप मे यूनान
दार्शनिक प्लेटो भी माया को मानते है। वे लिखते है कि "हम ससार को छायारू
मे देखते है। वास्तविकता हमको दिखाई नही पडती।"[२]

यूनानी प्रेम

यूनानी पुराण के अनुसार प्रारम्भ मे जो मनुष्य था वह महान् शक्तिशाली था
इसलिए कि वह अर्द्धनारीश्वर था यानी पुरुष-स्त्री साथ साथ था। उसका आध
शरीर पुरुष का तथा आधा स्त्री का था। देवो को इतने शक्तिशाली मानव को दुर्ब
करना था इसी लिए अपोलो नामक देवता ने उसे काट कर दो टुकडे कर दिये। पुरु
तथा स्त्री अलग अलग हो गये। तभी से आज तक दोनो टुकडे एक साथ मिलने
लिए, एक होने के लिए बेचैन रहते है, बेचैन है और लगातार एक-दूसरे से मिलने
लिए प्रयत्नशील है। इसी प्रयत्न तथा चेष्टा का नाम "प्रेम" है। यह प्रेम ही सृष्टि
का सबसे बडा रहस्य है। प्लेटो ने लिखा है कि एक गोष्ठी मे एरिसिमाचूस[३] ने प्रस्ता

१. The Spirit of Chinese Philosophy—By Fung-Yu-lan, Page 8

२. Plato—Republiqe

३. Erissymachus.

किया कि लोग "प्रेम" पर विचार करे। उस समय एरिस्तोफेनीज[1] ने एक "सुन्दर व्याख्यान" मे ऊपर लिखी अपोलो की कथा बतलाकर स्त्री और पुरुष के अनन्त प्रेम का वर्णन किया था। यही प्रेम जब दूषित रूप धारण कर लेता है तो मानव समाज मे बडी गडबडी पैदा करता है। इसीलिए सुकरात ने मानव की आत्मा की महत्ता पर जोर दिया था। यूनान मे, सुकरात के समय मे "प्रेम" ने वासना का ऐसा रूप धारण कर लिया था कि आज हम जिसे भ्रष्टाचार या दुराचार कहते है, स्त्री-पुरुष के जिस बधन-रहित सम्बन्ध को बुरा समझते है, वहाँ पर सब कुछ जायज था। आज जिसे अपराध समझा जाता है, पिछले दिनो वही सर्वथा उचित था। किसी चीज के उचित और अनुचित होने की परिभाषा हम देते है—"जिस समय की जो नीति होती है, जो व्यवहार होता है, उस समय का कानून उसी के अनुरूप होता है। जिस समय जो नीति होती है, वह तत्कालीन न्याय की भावना पर निर्भर करती है।"—यूनानी दार्शनिक अरिस्तू[2] के शिष्य टामस एक्विनास[3] का यह मत आज भी अकाट्य है। इसी लिए अरिस्तू ने लिखा था कि कोई व्यक्ति जो भी काम करता है, यदि उसकी भावना बुरी नही है तो उसके कार्यों को नैतिक अवगुण कहना उचित नही है। "देवता मे बुरी भावना हो ही नही सकती।"[4]

देवता मे यदि बुरी भावना नही हो सकती तो मनुष्य मे क्यो हो ? दोनो मे अन्तर ही क्या है। प्रेम के भूखे स्त्री-पुरुष यदि कामवासना के प्रसंग मे कुछ ऊँचा नीचा कर बैठते है तो वह अपराध क्यो समझा जाय ? वासना की इसी स्वाभाविकता को सिद्ध करने के लिए बेजामिन ने लिखा है कि वासना न तो पूर्णत "पुरुष" है और न "स्त्री"। यह पुरुष-स्त्री के अशो का विचित्र सम्मिश्रण है।[5]

फ्रायड का मत

स्त्री-पुरुष की स्वाभाविक कामुकता को काबू मे रखने के लिए ही विवाह-बंधन

१ Aristophenes.
२. Aristotle.
३ Thomas Aquinas.
४ Harry V. Jaffa—Thomism and Aristotalism–Page 59
५. Hanry Benjamin, M. D New York.

की रचना हुई।[१] पर आदिकाल से ऐसा विश्वास है कि इस प्रकार के सम्बन्ध जिस प्रकार का वीर्य होता है, उसी प्रकार का बच्चे का स्वभाव तथा जीवन के रुख बनता है। फ्रायड (मनोविज्ञान के प्रकाण्ड पडित) के अनुसार स्वभाव अध्ययन कामशास्त्र से सम्बध रखता है। "इसी लिए इतिहास के व्यवस्थित अध्य के लिए यह आवश्यक है कि सबसे पहले काम सम्बधी प्रवृत्तियो का तथा उनमे प वर्त्तन का अध्ययन किया जाय।"[२] फ्रायड के अनुसार मानवस्वभाव मे दोनो चं मिलती हुई है। दोनो वस्तुएँ उसके स्वभाव मे अन्तर्निहित है—प्रेम[३] तथा घृणा अ विनाश की भावना।[४] प्रेम स्त्री का प्रतीक है। घृणा और विनाश पुरुष का हमारे शास्त्रकारो ने इसी को राग-द्वेष कहा है। मन का राग और द्वेष ही सब अ राधो का कारण होता है। इसलिए असली अपराधी मनुष्य नही, मन है और व बधन तथा मोक्ष का कारण होता है।[५]

यह मन तरह-तरह से अपने को सन्तुष्ट करने के उपाय किया करता है। मध युग मे यूरोप मे एक विशिष्ट सम्प्रदाय था जिसका नाम "मनिकान" था। इस माननेवाले जानवरो के साथ प्रसग करते थे और अपनी स्त्री से स्वाभाविक प्रसग कर अप्राकृतिक सभोग करते थे। वह सब धर्म के अतर्गत था। यहूदी विधान अंतर्गत वेश्यावृत्ति अवैध थी, पर पैसा देकर परायी स्त्री को फुसलाना तथा उस साथ शय्यागत होना सर्वथा वैध और उचित था।[६]

स्त्री का कर्त्तव्य

हिन्दू धर्म मे पुरुष तथा प्रकृति, ब्रह्म तथा माया को जैसे ऊँचे रूप मे दर्शा गया है तथा उनका निरूपण किया गया है, वैसा अन्यत्र कही नही मिलता। हम अप

१. Westermarck—Origin and Development of Moral idea

२. G. Raltray Taylor—Sex in History—Pub Thomas an Henderson, London–Page 3.

३ Eros = प्रेम

४. Thanatos = घृणा की तथा विनाश की भावना

५. मन एव मनुष्याणा कारणं बन्धमोक्षयोः—मनु

६. अंग्रेजी में इसके लिए Harlot शब्द का प्रयोग किया गया है पर Oxfor Dictionary में Harlot का अर्थ Prostitute यानी वेश्या दिया है।

धर्म के विषय मे विशेष नही लिखना चाहते। स्त्री को माता का जो महान् रूप हिन्दू शास्त्रकारो ने दिया है, देवी, भगवती, माता की उपासना का जो उज्ज्वलतम रूप है, वह हमारी एक ख़ास देन है। बार-बार स्त्री को "माता" "माता" कहकर मन में यह बिठा दिया गया है कि स्त्री भोग की नही, वासना की नही, उपासना की वस्तु है। बाबा विश्वनाथ और माई अन्नपूर्णा की कल्पना से किसे रोमाच न हो आयेगा। विश्व के स्वामी का महत्त्व इसी के कारण बतलाया गया है कि उनकी शादी माई अन्नपूर्णा से हो गयी है।[1] परम कल्याणकारी "शिव" मे से यदि "इ" निकाल दिया जाय तो "शव" (मुर्दा) हो जायेगा। भागवत तथा विष्णुपुराण[2] मे स्त्री ससार के समूचे गुण तथा सौन्दर्य का आधार और पुरुष की अपूर्णता को पूर्ण करनेवाली मानी गयी है।

विष्णुपुराण मे जिस सुन्दर ढग से स्त्री की मर्यादा स्थापित की गयी है, वैसी शायद ही संसार की अन्य किसी भाषा मे मिलेगी। पराशर ऋषि ने लक्ष्मीजी का वर्णन करते हुए कहा है[3] कि जिस प्रकार विष्णु भगवान् सर्वव्यापक है, वैसे ही लक्ष्मी भी। विष्णु अर्थ है, ये वाणी है। हरि न्याय है, ये नीति है। भगवान् विष्णु बोध हैं, ये बुद्धि है। वे धर्म है, ये सत् क्रिया है। हे मैत्रेय, विष्णु जगत् के स्रष्टा है और लक्ष्मी सृष्टि है। वे भूधर, ये भूमि है। विष्णु सतोष है, ये सर्वतुष्टि है। भगवान् काम है, लक्ष्मीजी इच्छा है। वे यज्ञ है, ये दक्षिणा है। जनार्दन पुरोडाश है, ये घृत की आहुति हैं। वासुदेव हुताशन है, लक्ष्मीजी स्वाहा है। विष्णु शकर है, ये गौरी है। वे सूर्य है, ये प्रभा है। वे चन्द्रमा है, ये उसकी अक्षय कान्ति है। वे सर्वगामी वायु है, ये जगत् की गति तथा आधार है। वे आकाश है, ये स्वर्गलोक है। विष्णु समुद्र है, ये तरग है। विष्णु आश्रय है, लक्ष्मीजी शक्ति है। वे मुहूर्त्त है, ये कला है। वे दीपक है, ये ज्योति है।[4] विष्णु वृक्षरूप है, ये लता है। वे नद है, ये नदी है। वे ध्वज है, ये पताका है। रति और राग भी विष्णु और लक्ष्मी स्वरूप है।[5]

इससे और अधिक सुन्दर ढग से पुरुष-स्त्री का महत्त्व और क्या कहा जा सकता है? जिस स्त्री का सृष्टि मे इतना महत्त्वपूर्ण स्थान हो, वह केवल भोग तथा वासना

१. भवानि त्वत्पाणिग्रहणपरिपाटीफलमिदम्—देव्यपराधक्षमापन स्तोत्रम्।
२. विष्णुपुराण—श्लोक २०७
३. विष्णुपुराण, प्रथम अंश, अध्याय ८, श्लोक १७ से ३५ तक
४. ज्योत्स्ना लक्ष्मी प्रदीपो सौ—श्लोक ३०, अ० ८
५. रती रागश्च मैत्रेय—श्लोक ३३, अ० ८

की वस्तु नही हो सकती। उसका उससे ऊपर उठकर जो रूप है, वह मानव को वासना मे गिरने से काफी रोकता है। फिर भी, स्त्री भोग की तथा वासना की वस्तु है, यह अस्वीकार नही किया गया है। महाभारत मे दुर्योधन की सेना के साथ गुप्तचर, गवैये तथा गणिकाएँ भी काफी सख्या मे थी।[1] धर्मराज युधिष्ठिर ने भी युद्ध के पूर्व हस्तिनापुर के जिन लोगो के पास अपना अभिवादन भेजा था उनमे "मेरे मित्र, सुन्दर वस्त्र तथा सुन्दर आभूषणो से युक्त, सुगधित, प्रसन्न, आनन्द देनेवाली वेश्या स्त्रियो का भी कल्याण पूछ लेना।"[2]

पर माता की भावना से स्त्री जहाँ नीचे उतरी, वह घोर उपद्रव तथा कलक का कारण बन सकती है। उर्दू मे कहावत ही है कि दुनिया का सब झगड़ा "ज़र-जमीन-ज़न" (धन, पृथ्वी तथा स्त्री) का है। हमारे शास्त्रकारो ने स्त्री से सावधान रहने की सख्त हिदायते दी है। पुरुष तथा प्रकृति के सयोग से ही मानव की उत्पत्ति हुई। परमात्मा ने अपने को दो टुकडो मे विभाजित कर दिया, एक पुरुष हुआ, दूसरा स्त्री। इनके सयोग से विराट् नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। वही मनु है।[3] मनु ने पर-स्त्री से बाते करने का तरीका भी बतला दिया है। वे लिखते है—

> **परपत्नी तु या स्त्री स्यादसम्बन्धा च योनितः।**
> **तां ब्रूयाद् भवतीत्येवं सुभगे भगिनीति च॥ २-१२९**

अर्थात् जो पराई स्त्री हो, जिससे योनि-सम्बध न हो यानी बहिन आदि न हो, उससे बोलने के समय "भवति", "सुभगे" आदि से सम्बोधन करे। पर, स्त्री कितनी अविश्वसनीय है—

> **स्वभाव एष नारीणां नराणामिह दूषणम्।**
> **अतोऽर्थान्न प्रमाद्यन्ति प्रमदासु विपश्चितः॥**

(अपने श्रृंगार आदि से पुरुषो को मोहित कर उनमे दूषण उत्पन्न करना स्त्रियों का स्वभाव है। अतएव पडित लोग उनमे प्रवृत्त नही होते।)

१. महाभारत, १९५, १८, १९

२. महाभारत, ३०-३८

३. मनुस्मृति, टीकाकार पं० केशवप्रसाद द्विवेदी, प्रकाशक खेमराज श्रीकृष्णदास १९४८, "विराजमसृजत्प्रभुः", अ० १-३२

मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत्।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥

(माता, बहिन, पुत्री, इनके साथ एकान्त मे न बैठे, क्योकि इन्द्रियो का समूह बलवान् है, शास्त्र की रीति से चलनेवालो को भी वश मे कर लेता है।)

ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदारनिरतः सदा।
पर्ववर्जं व्रजेच्चैनां तत्त्वतो रति काम्यया॥ ३-४५

(रुधिर के दर्शन समय से जाने गये समय को ऋतुकाल कहते है—उस समय से अपनी स्त्री मे ही सदा सन्तुष्ट रहे।)

नाञ्जयन्तीं स्वके नेत्रे न चाभ्यक्तामनावृताम्।
न पश्येत्प्रसवन्ती च तेजस्कामो द्विजोत्तमः॥ ४-४४

(तेज की इच्छा करनेवाला पुरुष अपनी स्त्री को आँख मे अजन लगाते समय, तेल लगाते हुए, छाती खोले हुए तथा बच्चा पैदा करते समय न देखे।)

अपने श्रृगार शतक मे भर्तृहरि लिखते है —

स्मितेन भावेन च लज्जया भिया
पराङ्मुखैरर्द्धकटाक्षवीक्षणैः ।
वचोभिरीर्ष्याकलहेन लीलया
समस्तभावैः खलु बन्धनं स्त्रियः॥

(मन्द मुसकान, लज्जा करना, मुख फेर लेना, तिरछी दृष्टि से देखना, मीठी बाते करना, ईर्ष्या करना, कलह करना, और अनेक प्रकार के भाव प्रकट करना इत्यादि सब बातो से स्त्री पुरुष के लिए बधनस्वरूप ही है (यानी उसे बाँधे रहती है)।

द्रष्टव्येषु किमुत्तमं मृगदृशां प्रेम-प्रसन्नं मुखं
घ्रातव्येष्वपि कि तदास्यपवनः श्रव्येषु किं तद्वचः।
किं स्वाद्येषु तदोष्ठपल्लवरसः स्पृश्येषु किं तद्वपुः
ध्येयं किं नवयौवनं सहृदयैः सर्वत्र तद्विभ्रमः ॥७॥

(रसिको के देखने योग्य उत्तम वस्तु क्या है? मृगनयनी स्त्रियों का प्रेम से प्रसन्न मुख। सूँघने योग्य उत्तम पदार्थ क्या है? स्त्रियों के मुख की भाफ। सुनने योग्य क्या है? स्त्रियो की वाणी। स्वाद के योग्य क्या है? स्त्रियो के ओष्ठ-पल्लव का रस।

स्पर्श करने योग्य क्या है ? स्त्रियो का शरीर। ध्यान करने योग्य क्या है ? स्त्री का नवयौवन और उसका विलास।)

उरसि निपतितानां स्रस्तधम्मिल्लकानां,
मुकुलितनयनानां किंचिदुन्मीलितानाम्।
सुरतजनितस्वेद खिन्नगडस्थलीनाम्,
अधरमधु वधूनां भाग्यवन्तः पिबन्ति॥२६॥

(छाती पर लेटी हुई, केश जिनके खुल रहे है, आधे नेत्र मुँद रहे है, जो कुछ-कुछ हिल रही है, मैथुन के परिश्रम से जिनके कपोलो पर पसीना झलक रहा है, ऐसी स्त्रियो के अधरामृत को भाग्यवान् पुरुष ही पान कर सकते है।)

स्त्री की मादकता

प्राचीन भारत की रसिकता तथा कामोपासना के अनेक उदाहरण यहाँ दिये जा सकते हैं, पर यह विषय काफी बडा है। ऐसे अनेक काव्य है जो काम-शास्त्र का उत्कट उपदेश तथा जीवन का असली मत्र भी देते है। अश्वघोष ने अपने सौन्दरानन्द काव्य[1] मे नन्द द्वारा अप्सराओ का, इन्द्र के वन मे विहार करते समय का, सुन्दर वर्णन कराया है। देवताओ के यहाँ भी वेश्याएं रहती थी। वे लिखते है—

सदा युवत्यो मदनैककार्याः।

"वे सदा युवती रहती है। काम-क्रीडा ही उनका एकमात्र कार्य है।"[2]

१. सौन्दरानन्द काव्य—अश्वघोषकृत, सम्पादक और अनुवादक श्री सूर्यनारायण चौधरी, प्रकाशक संस्कृत भवन, कठौलिया, पो० काझा, जि० पूर्णिया, बिहार, सन् १९४८।

२. सर्ग १०, श्लोक ३६। सिद्धार्थ के मौसेरे तथा सौतेले भाई नन्द थे, बड़े विलासी थे। उनका चरित्र बौद्ध संन्यासी अश्वघोष ने लिखा है। स्व० डा० बरुआ के अनुसार अश्वघोष सौत्रान्तिक भिक्षु थे। डा० लाहा के अनुसार इनका समय प्रथम ईसवी सदी में है। इन्हीं का लिखा बुद्धचरित्र पाँचवीं शताब्दी में चीनी भाषा में अनूदित किया गया था।

स जाततर्षोऽप्सरसः पिपासुस्तत्प्राप्तयेऽधिष्ठितविक्लवार्तः ॥१०, ४१॥

प्यास उत्पन्न होने पर वह अप्सराओं को (भोग करने) पीने की इच्छा करने लगा।

किन्तु, ऐसा नहीं है कि स्त्रियों की ही निन्दा हो या वर्णन हो। अश्वघोष ने पुरुषों की भी निन्दा करते हुए लिखा है—

नेच्छन्ति याः शोकमवाप्तुमेवं श्रद्धातुमर्हन्ति न ता नराणाम् ॥६-१९॥

"जो स्त्रियां इस प्रकार का शोक नहीं करना चाहतीं उन्हें पुरुषों का विश्वास नहीं करना चाहिए।"

कामवासना को कौटिल्य भी पुरुष का शत्रु मानते हैं। एक प्रसिद्ध लेखक ने लिखा है कि "स्त्री तथा पुरुष में कभी मेल नहीं खा सकता।"[१] लैकी के कथनानुसार "प्राचीन काल में लोगों का विश्वास था कि स्त्री नरक का द्वार तथा सब बुराइयों की जननी है।"[२] पुराने ज़माने के लोगों का ख्याल था कि स्त्री का दर्जा पुरुष से कहीं नीचा है, क्योंकि वह कामुक वासना पैदा करती है। उसके चंगुल से बचाने के लिए ही विवाह की प्रथा चली।[३]

कामुक वासना पैदा करनेवाली स्त्री के विषय में "कुट्टनीमतम्"[४] में बड़ा भावुक वर्णन मिलता है।

महाभारत में

महाभारत के अरण्य पर्व की कथा है कि शंकर भगवान् से पाशुपतास्त्र प्राप्त करने के बाद देवों के राजा इन्द्र के यहाँ अर्जुन ठहरे हुए थे।[५] इन्द्र ने अपनी अप्सरा

१. G. K. Chesterton,

२. Lacky—The History of European Morals.

३. G. Sampson Marr—Sex in Religion—Page-42

४. कुट्टनीमतम् या शाम्भमलीमतम्, ले० दामोदर गुप्त; कश्मीरनरेश जयापीड़ के प्रधान मंत्री। रचनाकाल ईसवी सन् ७२५ से ७८६ के बीच, सम्पादक, श्री तनसुख राय मनसुखराय त्रिपाठी, बम्बई, संस्करण १९२४

५. महाभारत, सम्पादक पी० पी० शास्त्री, प्रकाशक वी० रामस्वामी शास्त्रुलर एंड संस, २९२, इस्प्लानेड, मद्रास, संस्करण १९३३

उर्वशी को अर्जुन के पास भेजने का आदेश अपने दरबार के "स्त्री ससर्ग विशारद"[1] चित्रसेन को दिया। रात्रि मे उर्वशी जब अर्जुन के पास चली तो उसके रूप-लावण्य का वर्णन महर्षि व्यास ने ऐसे कामुक ढग से किया है कि उसकी कल्पना नही होती। बहुत कम कपडा पहने हुए वह सुन्दरी ऐसे चली कि मुनियो का मन भी डोल जाय—

ऋषीणामपि दिव्यानां मनोव्याघात कारणम्।
सूक्ष्मवस्त्रधरं भाति जघनं चानवद्यया॥

जब अर्जुन उर्वशी का भोग करने पर राज़ी न हुए और उनको धर्मशका हुई तो उर्वशी ने उन्हे समझाया कि हम तो देवताओ की वारागना (वेश्याएँ) है। तपस्या से ही हमारा रमण हो सकता है। वह कहती है—

अनावृता वयं सर्वा देवदारा वराङ्गनाः।
तपसा रमयन्त्यस्मान् न चास्त्येषां व्यतिक्रमः॥[2]

वन मे द्रौपदी के रूप पर मोहित होकर जयद्रथ ने कोटिक को द्रौपदी के पास अपनी वासना का प्रस्ताव लेकर भेजा और कोटिक से कहा—

कस्य कैषानवद्यांगी यदि वापि न मानुषी।
विवाहेच्छा न मे काचिद् इमां दृष्ट्वातिसुन्दरीम्॥[3]

पराधीन स्त्री

कामवासना उत्पन्न करनेवाली स्त्री स्वयं कितनी कामुक है, इसकी कथा ऋग्वेद मे भी है।[4] शाश्वती पत्नी को बडा हर्ष हुआ कि उसकी तपस्या से उसके पति असग का शिश्न स्थूल हो गया, यानी तपस्या ऐसे कामो के लिए भी हो सकती थी। काम-वासना से भरी स्त्री को इसी लिए इतनी बड़ी विपत्ति मानकर भर्तृहरि ने अपने शृंगार

१. वही भाग, अरण्य पर्व, अध्याय ४१, श्लोक ३, पृष्ठ २३१

२. श्लोक ५९, पृष्ठ २३८

३. वही भाग २, अध्याय २१८, श्लोक १२, पृष्ठ १२८१

४. यह कथा "The Development of Hindu Iconography—By Jitendranath Bannerjee, Pub.—University Press, Calcutta—संस्करण १९४१, में पृष्ठ ७०, ७५ पर उद्धृत की गयी है।

शतक मे लिखा है कि ससार से छुटकारा पाना कठिन न होता यदि मदिरा समान नेत्रवाली स्त्रिया बीच मे बाधा न डालती"—

संसार तव निस्तारपदवी न दवीयसी।
अन्तरा दुस्तरा न स्यु र्यदि ते मदिरेक्षणा॥

ऐसी विपत्ति से बचाने के लिए ही हमारे शास्त्रकार चाहते थे कि किसी न किसी प्रकार एक स्त्री एक पुरुष से बँध जाय। इसीलिये शास्त्रीय विवाह के आठ प्रकार रखे गये। इनमे से किसी प्रकार से भी स्त्री ग्रहण करने पर वह पूर्णत विवाहिता मान ली जाती थी—

ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच।[1]

कन्या भगा ले जाकर आसुर विवाह हो जाता था। प्रेम-वश सम्बंध हो जाय तो गान्धर्व विवाह हो गया (केवल प्रेम करने से ही, पुरुष स्त्री को या स्त्री पुरुष को प्रेम करे तो विवाह मान लेना चाहिए)। किसी प्रकार शरीर-सम्बध हो जाय तो राक्षस विवाह हो गया, पर पैशाच विवाह बलात्कार को कहते है, जिसके लिए अग्रेजी में "रेप" शब्द है। ऊपर लिखे किसी भी ढग के ससर्ग को विवाह मान लेने का यह अनोखा तरीका भारतवर्ष का है, जिससे दुराचार तथा योनि सम्बन्धी अपराध पर बडी रोक रहती थी।

चूँकि काम को उत्तेजित करनेवाली स्त्री ही मानी जाती थी, इसी लिए प्राचीन यूनान मे स्त्री का दर्जा शाक-भाजी की तरह माना जाता था।[2] स्त्री को कभी स्वतत्र नही रहने देना चाहिए, यह मत मनु आदि का भी है। कौमार मे पिता रक्षा करे, जवानी मे पति तथा बुढापे मे बेटा—"न स्त्री स्वातत्र्यमर्हति।" कनफ्यूसियस का भी यही मत था—"स्त्री सदैव परतत्र रहती है।" उसको चाहिए कि अपने पति या श्वशुर के प्रति समुचित रीति से विनीत रहे।[3] स्त्री को इतना परवश मानते थे कि उसे अपने मन से विवाह करने की अनुमति नही थी। अबूहरैरा कहते है कि स्त्री यदि अपने से अपने को किसी पुरुष को सौपे तो व्यभिचारिणी कहना चाहिए। किन्तु, इब्न-अब्बासा बतलाते है कि हजरत मुहम्मद साहब से एक स्त्री ने कहा कि "मेरे पिता

१. कन्यादान, ले० डा० सम्पूर्णानन्द, प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, संस्करण १९५४, पृष्ठ २५

२. Dayers—A Short History of Women

३. ये उद्धरण डा० सम्पूर्णानन्द की "कन्यादान" नामक पुस्तक के है।

ने मेरी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ शादी की।" हज़रत ने उसे अपनी इच्छा से विवाह करने की अनुमति दी। मेन के अनुसार[1] पुराने ज़माने में पिता या पति स्त्री को प्राणदंड दे सकते थे। उत्तरी यूरोप में विवाह के समय कन्या का मूल्य उसके पिता को दे देते थे।

स्त्री की महत्ता

किन्तु प्राचीन भारत के शास्त्रकारों ने जहाँ स्त्री की बुराइयों की तथा कामुकता की मूर्ति चित्रित किया है, वहीं उसकी महत्ता या मर्यादा में किसी प्रकार की कमी नहीं आने दी है। उसके मातृत्व को, उसकी महानता को कूट कूटकर हमारे दिमाग़ में भर दिया गया है और यही कारण है कि प्राचीन काल से लेकर आज तक योनि सम्बन्धी अपराध सबसे कम भारत में होते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि भारत में अतिथि-सेवा की भावना ने इतना उग्र रूप धारण कर लिया था कि मेहमान की ख़ातिर के लिए अपनी पत्नी तक को भेज देते थे और वह मेहमान के साथ संभोग करने को बुरा नहीं मानती थी। कुछ लोग द्रौपदी का उदाहरण देते हैं कि उनके पाँच पति थे। तराई भाभर में अब भी ऐसे परिवार हैं जिनमें समूचे घर में—या सब भाइयों में एक स्त्री होती है। पर, द्रौपदी की कथा तो यह है कि जब अर्जुन द्रौपदी को बरकर लाये थे उन्होंने कुटिया के बाहर से माता को आवाज़ लगायी कि "माँ भिक्षा ले आया हूँ।" उन्होंने आदेश दिया कि पाँचों भाई बाँटकर खा लो। द्रौपदी बड़े संकट में पड़ीं तो कृष्ण ने स्त्री के पाँचों गुणों को एक एक भाई को बाँट दिया। कार्येषु दासी—भीम की सेवा करना, करणेषु मंत्री—युधिष्ठिर को परामर्श देना, भोज्येषु माता—नकुल को भोजन कराना, क्षमया धरित्री (पृथ्वी के समान क्षमाशील)—सहदेव ऐसे क्रोधी को क्षमा करना तथा शयनेषु रम्भा—अर्जुन की पर्यंकशायिनी बनना—इस प्रकार गुण बाँटे गये। "स्वयंवर" की प्रथा के द्वारा रोज़ रोज़ की "कोर्टशिप" की झंझट समाप्त कर दी गयी तथा "पैशाच" विवाह के विधान से बलात्कारी को भी "पति" स्वीकार कर समाज में योनि सम्बंधी अपराधों से बड़ी रक्षा की गयी। और फिर जिस देश में वेद को मनुष्यों में पहुँचानेवाली स्त्रियाँ हों, जहाँ मैत्रेयी (याज्ञवल्क्य की पत्नी) ऐसी प्रकाण्ड पंडिता रही हों या याज्ञवल्क्य से तर्क करनेवाली गार्गी ऐसी विदुषी पैदा हों, वहाँ स्त्री केवल वासना की वस्तु बन ही नहीं सकती। जिस देश में स्त्री का इतना बड़ा स्थान हो कि —

१. Maine—Ancient Law

सम्राज्ञी श्वशुरे भव, सम्राज्ञी श्वश्रुवां भव।
ननन्दरि सम्राज्ञी भव, सम्राज्ञी अधि देवृषु॥

(ऋग्वेद–१०, ८५, ४६)

ऋग्वेद का यह मत्र स्त्री को घर मे सम्राज्ञी का स्थान देता है। मनु ने अपनी स्मृति मे स्त्री को बडा ऊँचा स्थान दिया है। वे लिखते है—

शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्धंदे तद्धि सर्वदा॥ ५७–३

जिस घर मे स्त्रियो को कष्ट मिलता है, वह कुल ही नष्ट हो जाता है। यही विचार प्राय सभी स्मृतियो तथा पुराणो मे है। स्त्री की, देवी की, माता की पूजा का हजारों वर्ष पूर्व इसी लिए प्रचार हुआ था और हजारो वर्षो से हम मातृ-पूजन कर रहे है। महेजोदडो तथा हरप्पा की खुदाई मे, जिससे आज के ४००० वर्ष पहले की सभ्यता का अनुमान लगता है—देवी की प्रतिमा मिली है तथा एक ऐसे देवता की प्रतिमा मिली है जो तीन चेहरेवाला है। उसके सीग हैं, उसके पास शेर, हाथी व गैडा बैठा हुआ है तथा बैठा है नन्दी बैल।[१] स्पष्ट है कि यह देवता शकर थे। शकर-पार्वती की इतनी प्राचीन पूजा से, जिसमे पिता तथा माता की भावना हो, स्त्री सम्बधी अपराध कम होगे ही।

स्त्री के लिए नियम

इसके अतिरिक्त स्त्री-पुरुष दोनो के लिए भी कठोर आदेश है। स्त्री को कर्म, वचन, मन से, हर प्रकार से पति की सेवा का आदेश है। उसे पति की सेवा मे सदैव रत रहना चाहिए। मार्कण्डेय ऋषि ने युधिष्ठिर को पतिव्रता का लक्षण बतलाते हुए कहा था—[२]

न कर्मणा न मनसा नात्यश्नाति न चापिबत्।
ते सर्वभावोपगता पतिशुश्रूषणे रता॥

१. R E. M Wheeler—"Five Thousand Years of Pakistan"–Pub. Christopher Jhonson Ltd., London, Edition 1950, Page 28,

२. महाभारत, १७० वॉ अध्याय, श्लोक १४, मद्रास संस्करण, पृष्ठ १०४१

कृष्ण की पत्नी सत्यभामा ने द्रौपदी से पतिव्रता के लक्षण पूछे तथा पति को वश मे रखने का उपाय पूछा, तो द्रौपदी ने यहाँ तक कह दिया कि पति जो वस्तु न खाय और न पीये, वह सब पत्नी को वर्जित है।[1]

सब कुछ उपदेश पत्नी के लिए ही नही है। हम ऊपर सौन्दरानन्द काव्य का उद्धरण दे आये है। अश्वघोष ने नन्द के मुख से कहलाया है कि —

आस्था यथा पूर्वमभून्न काचिदन्यासु यां स्त्रीषु निशाम्य भार्याम्।
तस्यां ततः सम्प्रति काचिदास्थां न मे निशाम्यैव हि रूपमासाम्॥ १०–५१

(जिस प्रकार पूर्व मे अपनी पत्नी को देखकर दूसरी स्त्रियो की ओर मेरा झुकाव नही हुआ, उसी प्रकार इन (अप्सराओ) का रूप देखकर अब उनकी मुझे कुछ चाह नही रही।)

वेश्यावृत्ति तथा वेश्यासेवन की निन्दा करते हुए भर्तृहरि अपने शतक मे लिखते है कि "वेश्या का अधरपल्लव यदि सुन्दर है तो भी उसको कुलीन पुरुष नही चूमता, क्योकि वह तो ठग, योद्धा, चोर, दास, नट तथा चारो (दूतो) के थूकने का पात्र है।" (९१)

प्रेम की निन्दा करते हुए वे लिखते है कि "स्त्री बाते किसी और पुरुष से करती है, विलास सहित देखती किसी और को है और हृदय मे किसी और की ही चिंता करती है। फिर कहो स्त्रियो का प्यारा कौन है?" (८१)[2]

कामवासना के अनेक रूपो का विवेचन करनेवाले कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र

१. वही, संवाद पर्व, अध्याय १८९, पृष्ठ ११६७ सत्यभामा का प्रश्न —

कथं च वशगास्तुभ्यं न कुप्यन्ति च ते शुभे।
तव वश्या हि सुभृशं पाण्डवाः प्रियदर्शने॥

द्रौपदी का उत्तर—

प्रणयं प्रति संगृह्य निधायात्मानमात्मनि।
शुश्रूषुर्निरभिमाना पतीनां चित्तरक्षिणी॥ २१॥
यच्च भर्ता न पिबति यच्च भर्त्ता न खादति।
यच्च नाश्नाति मे भर्त्ता सर्वं तद् वर्जयाम्यहम्॥ ३३॥

२. जल्पन्ति सार्द्धमन्येन पश्यन्त्यन्यं सविभ्रमाः।
हृदये चिन्तयन्त्यन्यं प्रियः को नाम योषिताम्॥

मे काम आदि छ शत्रुओ के त्याग तथा इन्द्रियजय पर बडा जोर दिया है।[1] काम, क्रोध, लोभ, मन, मद तथा हर्ष सब का त्याग सिखाया है। उन्होने इन्द्रियजय के लिए शास्त्रो मे प्रतिपादित कर्त्तव्यो का अनुष्ठान करने की शिक्षा दी है।[2] इन्द्रिय-परायण राजा सम्पूर्ण पृथ्वी का अधिपति होते हुए भी शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।[3]

यथा दाण्डक्यो नाम भोजः कामाद् ब्राह्मणकन्यामभिमन्यमानः सबंधुराष्ट्रो विननाश ॥६॥ मानाद्रावणः परदारान् प्रयच्छन् ॥१०॥

जैसे कि भोज वश का दाण्डक्य नामक राजा काम के वशीभूत होकर ब्राह्मण-कन्या का अपहरण करके उसके पिता के शाप से बधु-बाधव और राष्ट्र के सहित नाश को प्राप्त हो गया। अभिमान के वशीभूत होकर रावण पर-स्त्री को छीनकर नाश को प्राप्त हुआ।[4]

हमारे शास्त्रकारो ने वासना की रोकथाम के लिए कोई चीज बाकी नही रखी। वात्स्यायन के कामसूत्र मे इन्द्रिय-निग्रह के अनेक उपाय कहे गये है, पर मनु ने तो स्त्री-प्रसग का समय तथा पुत्र की प्राप्ति का उपाय भी लिख दिया है। ऋतुकाल मे स्त्री के पास जाना मना है।

बिना धन के भी मनुष्य ऐश्वर्यशाली हो सकता है, यदि उसमे आरोग्य हो, विद्वत्ता हो, सज्जनो से मित्रता हो, अच्छे कुल मे जन्म हुआ हो तथा स्वाधीन हो।[5] महाभारत ने जिस मनुष्य के सामने इतना बडा आदर्श रखा हो, वह कैसे पतित हो सकता है ?

आचरण का मन्त्र

पर, मनुष्य तो मनुष्य ही है। इस मानव शरीर को सँभालकर ले चलना बडा कठिन है। भर्तृहरि ने सत्य ही लिखा है कि "कदर्प-दर्प-दलने विरला मनुष्या" (शृगार-

१. कौटिलीय अर्थशास्त्र का सबसे अच्छा संस्करण श्री र० शामा शास्त्री द्वारा सम्पादित तथा संशोधित है जिसे गवर्नमेन्ट प्रेस, मैसूर ने १९२६ में प्रकाशित किया था।

२. वही, छठा अध्याय, "विनयाधिकारिक"—१

३. वही, ६

४. वही अध्याय

५. आरोग्यं, विद्वत्ता, सज्जनमैत्री, महाकुले जन्म, स्वाधीनता च पुंसां महदैश्वर्यं विनाप्यर्थैः।—महाभारत, शान्ति पर्व, श्लोक ३१७

५८) कामदेव का घमड नष्ट करने की सामर्थ्य बिरले ही मनुष्यो मे होती है। मानव प्रकृति को समझकर ही प्रसिद्ध चीनी दार्शनिक कनफ्यूसियस ने लिखा था कि—"पिता को वास्तव मे पिता बनना चाहिए। पुत्र को वास्तव मे पुत्र बनना चाहिए। बडे भाई को सचमुच का बडा भाई तथा छोटे भाई को छोटा भाई होना चाहिए। पति वास्तव मे पति बनकर तथा स्त्री वास्तव मे स्त्री बनकर रहे।[१] तभी परिवार अपने वास्तविक ढग से चल सकता है। कौटिल्य ने "एव वश्येन्द्रिय परस्त्री द्रव्य हिसाश्च वर्जयेत्" की सलाह दी है।[२]

प्रत्येक प्रकार की वासना मन से उत्पन्न होती है। जैसा मन होगा, मन का जैसा सस्कार होगा, जिस वातावरण मे मन पलता है, वैसे ही सकल्प उसमे उठते है। और हर प्रकार की वासना इसी सकल्प का परिणाम है। व्रत, धर्म, तप, काम, सभी कुछ इस सकल्प के कारण होते है।[३] इसलिए सकल्प ही समूचे कार्यो का, पाप, पुण्य, पतन या उत्थान का, कारण होता है।

देश-काल की बात

किन्तु सकल्प मन के सस्कार से बनता है, यह तो सिद्ध ही है। शरीर का राजा मन है। यदि यह मत सही है कि इस शरीर मे ७२,००० नाडियाँ है जिनमे ७२ मुख्य है तथा १० प्राणवायु वहन करनेवाली है और ३०० हड्डियाँ है, तो मन को इन सबको सँभालकर ले चलने तथा दसो इन्द्रियो पर शासन करने मे काफी काम करना पडता होगा। यदि मन ही विकृत हो गया तो कुछ बनाये नही बनेगा। प्रेरणा ही सब कुछ है, यह मत प्रसिद्ध वैज्ञानिक आईन्स्टीन का भी है।[४] पर प्रेरणा तथा संकल्प के उत्पन्न होने का दोषी या अपराधी मनुष्य कैसे हुआ ? कामवासना तो ईश्वर ने मनुष्य को प्रदान की है। यह मत ईसा मसीह का भी है। उस वासना मे जो विकार की अधिकता समझ मे आती है या दिखाई पडती है वह समय, काल, समाज तथा परिपाटी

१. Texts of Confucianism—Translated by James Legge, Clarendon Press, London–Edition 1899—Page 242.

२. विनयाधिकारिक

३. संकल्पमूलः कामो वै यज्ञाः संकल्पसंभवाः।
व्रतानि यमधर्माश्च सर्वे संकल्पजाः स्मृताः॥ मनु अ० २, श्लो० ३०

४. Einstein in Preface to Planch's—"Where is Science going".

का भी परिणाम हो सकती है। हम जिसे बुरा कहते है वह हमारे लिए बुरा हो सकता है, पर बुरा न भी हो। बर्टन[1] का कथन है कि "यह नही भूलना चाहिए कि अभद्रता या अशिष्टता समय तथा स्थान पर निर्भर करती है। इग्लैड मे जो बुरा समझा जाता है वह मिस्र के लिए बुरा न होगा। आज जिसे देख, सुनकर हम बहुत बुरा मानते है, वह किसी समय एक साधारण मजाक रहा होगा।"

गणिकाध्यक्ष

इसलिए अपराध-शास्त्र के विद्यार्थी को मानव स्वभाव के इतिहास को भी समझना होगा। जिस कामवासना को अपराध का आधार माना गया है, उसका किञ्चित् रूप भी समझ लेना चाहिए, तब निर्णय करना चाहिए। हमने पहले ही लिखा है कि अपराध तो समाज के नियम बनाते है। आज हमारे देश मे वेश्यावृत्ति अपराध है, पर आज के २३०० वर्ष पूर्व, जब कि हमारा आचरण आज से कही अधिक शुद्ध था, वेश्या यानी गणिका राज्य के लिए आवश्यक समझी जाती थी। कौटिल्य ने "गणिकाध्यक्ष" कर्मचारी की नियुक्ति का आदेश दिया है।

कौटिल्य ने बडे विस्तार के साथ गणिका (वेश्या या वाराङ्गना) कैसी हो, किस प्रकार का व्यवहार करे, कितना कमाये, सब कुछ लिख दिया है। उनके अनुसार वेश्या को अपना शरीर पुरुषो के हाथ बेचते रहना चाहिए, पर राजा की सेवा मे वह सदैव उपलब्ध रहे, जब जरूरत हो। चँवर आदि डुलाने का तथा छत्र ले चलने का काम वही करे।

कौटिल्य के टीकाकार विद्याभास्कर प० उदयवीर शास्त्री के अनुसार "अपने रूप-सौन्दर्य से जीविका करनेवाली स्त्रियो को गणिका कहते है।" उनकी व्यवस्था के लिए नियुक्त राजकीय कर्मचारी को "गणिकाध्यक्ष" कहते थे। यह अधिकारी रूप, यौवन तथा गाने बजाने की कलाओ से युक्त लडकी को, चाहे वह वेश्या के वश मे उत्पन्न हुई हो या न हो, नियुक्त करे। वेश्या की तीन श्रेणियाँ होती थी, कनिष्ठ, मध्यम और उत्तम। सौन्दर्य आदि सजावटो मे जो सबसे कम हो, उसे कनिष्ठ समझा जाय तथा उसे १००० पण एक मुश्त देकर गणिका के कार्य पर नियुक्त किया जाय। सौन्दर्य आदि मे जो इससे अधिक हो उसे मध्यम समझ दो हजार पण दिये जायँ। सबसे सुन्दरी को

१ भूमिका में Sir Richard F Burton's Translation of Arabian Nights—Vol 1 Page XXV–Pub. H. S. Nichols Ltd. London

उत्तम कहते है। उसे तीन हजार पण मिले। जिसे यह धन मिले उसे आधा अपने कुटुम्ब को दे देना चाहिए तथा आधा अपने पास रखना चाहिए। राजा की परिचर्या के कार्य को ये गणिकाएँ अपने मे बाँट ले। इसके बाद जो अवकाश मिले, वे पुरुषो का सेवन करे और उनसे फ़ीस ले।

यदि कोई गणिका अपना स्थान छोडकर दूसरी जगह चली जाय या मर जाय तो उसके स्थान पर उसकी लडकी या बहिन को पहला अधिकार है, जो कि उसकी सम्पत्ति की स्वामिनी भी बन जावेगी। या फिर उस वेश्या की माता किसी दूसरे को उसके स्थान पर नियुक्त करे। यदि किसी की नियुक्ति न हो तो वेश्या की सम्पत्ति का स्वामी राजा होगा। इनकी जवानी ढल जाने पर इनको नयी नियुक्त की गयी वेश्याओ की माता तथा शिक्षक बना दिया जाय। जो गणिका अपने को राजा की सेवा से मुक्त करना चाहे, उसे २४,००० पण देकर ही छुटकारा मिल सकता है। जब उसकी उम्र भोग के योग्य न रहे तो उसे रसोई (महानस) या भडार (कोष्ठानस) मे काम करने को भेज देना चाहिए। अगर वह काम न करे और किसी एक पुरुष की स्त्री बनकर रहे तो उस पुरुष से प्रति मास सवा पण सेवा के लिए मिलेगा।

गणिका को जो आमदनी होती थी और उसका जो खर्च होता था उसका हिसाब गणिकाध्यक्ष रखता था। "अतिव्ययकर्म च वारयेत्" उसे अधिक व्यय करने से गणिकाध्यक्ष रोकता रहे। वेश्या को किसी के साथ कठोरता का व्यवहार करने का अधिकार नही था। ऐसा करने पर उसे २४ पण दड मिलता था। यदि वह किसी का कान, नाक काट ले तो पौने बावन पण दड होता था। यदि पुरुष को मार डाले तो उस पुरुष की चिता के साथ रखकर उसे जला देना चाहिए या गले मे पत्थर बाँधकर पानी मे डुबा देना चाहिए। "गणिका भोगमायति पुरुष च निवेदयेत्" गणिका अपने भोग, आमदनी तथा अपने साथ सहवास करनेवाले पुरुषो की सूची या सूचना गणिकाध्यक्ष को बराबर देती रहे। यदि कोई गणिका किसी पुरुष से अपने भोग का वेतन लेकर फिर उसके साथ द्वेष करे, अर्थात् उसके पास न जाय, तो उसके लिए दिये हुए वेतन का दुगना दड दे। पहले अपराध पर निर्दिष्ट दड, दूसरे पर उसका दुगना, इस प्रकार मात्रा बढती जायगी।

यदि कोई पुरुष कामनारहित कुमारी पर बलात्कार करे तो उसे उत्तम साहस दंड दे तथा, जो कामना करनेवाली कुमारी के साथ भी भोग करे, उसे प्रथम साहस दड दे, यानी बिना वेश्या बने किसी कुमारी कन्या का सेवन नही हो सकता था। जो पुरुष किसी कामना-रहित गणिका को बलपूर्वक रोककर अपने घर मे डाल ले या उसके

शरीर पर कोई चोट या घाव लगाकर उसका रूप नष्ट करना चाहे, उसे १००० पण दड दिया जाय।

प्राचीन भारत की यही विशेषता थी कि व्यसन तथा वासना को भी आचार-शास्त्र के बंधन में बाँध देते थे। आज तक दुनिया के किसी देश मे भी वेश्या तथा वेश्यावृत्ति के सम्बंध में ऐसे आदर्श नियम नहीं बने, जैसे कौटिल्य ने बनाये थे तथा जिनमें इस सम्बंध की सभी बुराइयों की पूरी रोकथाम थी।[1] वेश्या के लिए भी गुणवती तथा कलावती होना आवश्यक था। पुरुष को वश मे करने की भी एक विशेष कला समझी जाती थी। उसका एक विशेष विज्ञान होता था।

वेश्या-विज्ञान

कश्मीरनरेश जयापीड के प्रधान मत्री दामोदर गुप्त ने अपने "कुट्टनीमतम्" मे वेश्याविज्ञान को बहुत ऊँचे पहुँचा दिया है। आज से १३०० वर्ष पूर्व[2] एक बड़े शास्त्र की रचना उन्होने की थी। काशी मे मालती नामक एक नर्त्तकी थी जिसका रूप साधारण श्रेणी का था। पर वह सम्पन्न पुरुषो को आकर्षित कर उनका प्रेम प्राप्त कर धन कमाना चाहती थी। इसलिए इस कला को सीखने के लिए वह एक वृद्ध कुटनी के पास गयी। वह कुटनी जिसका नाम विकराला था,[3] एक ऊँचे सिहासन पर बैठी हुई थी और एक से एक सुन्दरी युवतियाँ उसकी सेवा मे लगी हुई थी, उससे गुरु-मत्र प्राप्त करने के लिए।

विकराला ने मालती को पुरन्दर तथा हारलता की कहानी सुनायी। फिर राजा सिंहभट के पुत्र समरभट की कथा बतलायी। समरभट काशी मे विश्वेश्वर

१. कौटिल्य अर्थशास्त्र—२ अधिकरण "अध्यक्ष प्रचार"—२७ वाँ अध्याय, ४४ प्रकरण, गणिकाध्यक्ष

> गणिकाध्यक्षो गणिकान्वयामगणिकान्वयां वा रूप-यौवनशिल्पसम्पन्नां सहस्रेण गणिकां कारयेत्॥

इत्यादि, युवती गणिका को सौभाग्यवती भी कहते थे—

> सौभाग्यभङ्गे मातृकां कुर्यात्।

२. कल्हण की "राजतरंगिणी" में जयापीड का शासन-काल ई० सन् ७५१ से ७८२ बतलाया है। "कुट्टनीमतम्" का रचना-काल यही रहा होगा।

३. श्लोक ३ से श्लोक ४३ तक उसका वर्णन है।

का दर्शन करने गये थे। वहाँ मदिर मे उनको नाचनेवाली लड़कियाँ मिली। समर-भट को कामपीड़ा हुई तो उन्होने मदिर मे नर्तकियो का पता लगाया। उत्तर मिला कि पेशेवाली तो कोई न कोई पुरुष लिये पडी होगी। पुजारियो ने मजरी से परिचय कराया। उसने समरभट के साथ जाना स्वीकार किया। वह उसके साथ राजधानी गयी और वहाँ उसने उसको खूब चूसा।[१] पुरुष को फुसलाकर उसका धन किस प्रकार छीना जाय, इसकी कला विकराला ने खूब समझायी थी। मालती को उसने उपदेश दिया कि चितामणि को किन हाव-भाव आदि से मोहित कर वह उसका द्रव्य खूब चूसे और जब वह कगाल हो जाय तो उसको त्याग देने मे कोई नैतिक सकोच न करे। वह दूसरे पुरुष के पास चली जाय और फिर उसका सब कुछ अपहरण करे।[२] चिन्तामणि कश्मीर नरेश का एक बडा सरदार था। इस प्रकार गुरु से उपदेश लेकर मालती घर गयी। इतना सब कुछ लिखने के बाद लेखक ने अपनी पुस्तक का उद्देश्य स्पष्ट किया है। वे लिखते है कि "कुट्टनीमतम्" को पढनेवाला बदमाशो या दुष्टा स्त्रियो का शिकार नही होगा।[३]

वासना की वास्तविकता को पहचानकर उसका किसी प्रकार मुकाबला किया जाय, प्राचीन विद्वानो ने सदैव इस पर विचार किया तथा उसका भी एक आचार-शास्त्र बना दिया। समय पाकर उसी आचार ने भ्रष्ट रूप धारण कर लिया। पद्मपुराण के अनुसार सुन्दर कन्याएँ खरीदकर मदिरो मे समर्पित कर देना स्वर्ग मे स्थान प्राप्त करने का बीमा था। भविष्यपुराण मे लिखा है कि सूर्यलोक मे स्थान पाने के लिए श्रेष्ठ उपाय है कि कुछ वेश्याएँ खरीदकर सूर्य के मंदिर को समर्पित कर दी जायँ। फिर भी वेश्यावृत्ति की एक नियमित परम्परा थी। पर समय की गति से ऐसे दलाल पैदा हो गये जो लडकियो को भगाने का, बेचने का, वेश्यालय या भठियारखाना चलाने का पेशा करने लगे।[४] इस प्रकार समाज मे एक अनर्थ उत्पन्न हो गया।

१. सन् १९२४ का तनसुखराम मनसुखराम त्रिपाठी द्वारा सम्पादित संस्करण, श्लोक ७३७ से १०५६ तक यह कथा है।

२. कुट्टनीमतम्, श्लोक ४९८-७३५ तक यह कथा तथा उपदेश है।

३. श्लोक १०५९

४. Prostitution requires Prohibition—By G. R. Bannerjee in "Indian Journal of Sociology", 19th June, 1958–Page–11-17.

आजकल तीन प्रकार की वेश्याएँ है—एक वे जिनकी वेश्यावृत्ति से दूसरे लाभ उठाते है, दूसरी वे जो स्वतत्र रूप से पेशा करती है तथा तीसरी वे जो लुका-छिपी ढग से निजी आनन्द के लिए या कुछ आमदनी करने के लिए यह पेशा करती है। यद्यपि प्राचीन भारत मे गणिका का पद पूर्णत· वैध था पर ईसा के १००-२०० वर्ष बाद से भारत मे इस सस्था का पूर्ण विकास प्रारम्भ हुआ और होते-होते आज का गदा रूप प्राप्त हो गया। वात्स्यायन ने अपने कामसूत्र मे लिखा है कि (कामसूत्र की रचना के दिनो मे) "गणिका" की उपाधि उसी को मिल सकती थी जो बडी बुद्धिमती हो, विद्या के साथ सगीत नृत्य आदि कलाओ मे गुणी हो। केवल शरीर का सौदा करनेवाली वेश्या नही। ईसवी सन् ३०० के लगभग भरत मुनि का "नाट्यशास्त्र" रचा गया था। उसमे सर्व-गुणसम्पन्ना गणिका की बडी प्रशसा है। इसी काल मे लिखे गये ग्रन्थ "ललित-विस्तर"[१] मे राजा शुद्धोदन की कथा है कि उनको अपने लडके के लिए एक ऐसी दूल्हन की तलाश थी जो "गणिका" के समान सर्वगुण-सम्पन्न हो।

तीन प्रकार की वेश्याएँ यूनान मे होती थी। एक तो दासकन्याएँ जिनको विशेष प्रकार की पोशाक पहननी पड़ती थी। दूसरी वे जो यूनानी थी तथा जिनको गाना, नाचना आदि आता था। इसे मध्यम श्रेणी समझिए। तीसरी उत्तम श्रेणी की वे महिलाएँ थी जो सडक पर मुख खोले घूम सकती थी, बहुत ऊँचे तबके मे चलती थी तथा इनको सभी नागरिक अधिकार प्राप्त थे।[२] मध्यम तथा उत्तम श्रेणी की महिलाओ को अपनी आय को अपने पास रखने का अधिकार था, पर उन्हे सरकारी कर देना पडता था।

तीन हज़ार वर्ष से भी अधिक हुए कि फोयेनिशियन लोगो ने साइप्रस टापू मे कामदेवी अस्तार्ती का मदिर बनवाया था। पहले इस मदिर मे स्त्रियो को जाने की मनाही थी। बाद में वहाँ घूमने तथा दर्शन करने की अनुमति मिल गयी और ईसवी सन् २०० तक वहाँ तट के किनारे स्त्रियाँ खुले आम घूमती थी और अपने शरीर का सौदा किया करती थी। रोम मे अडोनिस देवता का त्यौहार मनाया जाता था। इस देवता को सूअर ने मार डाला था। अतएव त्यौहार पहले मुहर्रम के ढग पर रोने पीटने

१. वही, बैनर्जी १२-१३

२. यूनान में वेश्याओं में निम्न तथा मध्यम श्रेणी को सड़क पर मुँह खोलकर चलने की अनुमति नहीं थी, प्रथम, मध्यम तथा उत्तम श्रेणी की वेश्याओं का नाम था— Dicteriades, Antatrides, और Hetaires.

से शुरू होता था। स्त्रियो को देवता के सामने अपने केशो की तथा सतीत्व की भेट चढानी होती थी। पुजारियो के विश्वास के अनुसार देवता अडोनिस मृत्यु के बाद पुन सजीव प्रकट हुए और जब उनके प्रकट होने की खुशी मनाने का अवसर आता, रोनेवाला त्यौहार अत्यधिक व्यभिचार मे बदल जाता। रोम मे वेश्या-गमन एक धार्मिक कृत्य बन गया था।

धर्मगुरु का आदेश

फ्रान्स मे भठियारखानो को अबाये[1] कहते थे। फ्रान्स के नरेश चार्ल्स छठे[2] और सातवे[3] ने, इटली की उस समय की सबसे बड़ी रियासत या राज्य नेपुल्स के नरेश जीन प्रथम ने ऐसे वेश्यालयो को विशेष अधिकार दिये थे। ईसाइयो के सबसे बडे धर्मगुरु पोप जूलियस द्वितीय ने २ जुलाई १५१० को एक विशेष आदेश जारी करके पेरिस मे एक वेश्यालय खोलने का अधिकार प्रदान किया था। उस ज़माने मे भी फ्रान्स मे नगा होकर नाचना बुरा नही समझा जाता था। यूरोप के कई देशो मे यह प्रणाली थी कि जब कोई विजेता किसी देश मे नाम कमाकर और उसे जीतकर अपने देश वापस आता था तो उसके स्वागत के जलूस मे सबसे आगे युवती अविवाहिता नगी लडकियाँ चला करती थी। यूरोप मे उन दिनो सृष्टि मे मानव के विकास के सम्बध मे जो नाटक खेले जाते थे, जिनमे आदम और हौवा का ज़िक्र होता था, ऐसे नाटको मे पुराने इतिहास के अनुसार आदम और हौवा को मच पर एकदम नंगा लाते थे।

फ्रान्स मे वेश्यावृत्ति इतनी अधिक बढ गयी थी कि वेश्याओ का उद्धार कर उनके सुधार के लिए पहला "सुधारगृह" सन् १२२६ मे पेरिस मे खुला था और उसके खर्च के लिए सम्राट् "लुई पवित्र" ने काफी रुपया दिया था।[4] पर, उसके बाद वैसे नरेश फ्रास में सैकड़ों साल तक नही पैदा हुए जो वेश्या के उद्धार की ओर भी ध्यान दे सकें।

१. Abbayes यह शब्द—Abbeys या ईसाई मठ से बहुत निकट है।

२. चार्ल्स ६—ई० सन् १३६८ से १४२२ तक

३. ई० १४०३ से १४६१ तक

४. Sexual Life in England—Past & Present–By Ivon Block—Trans. William Forstern, Pub. Francis Aldor–1938–Page–212.

धार्मिक अनुशासन

यद्यपि भारतीय शास्त्रकारो ने वासना को नियत्रण मे रखने का बहुत प्रबध किया, फिर भी वे उसे धर्म के दायरे के बाहर न कर सके। स्यात् यह उचित भी था। जब स्त्री मासिक धर्म में हो, उसके साथ सम्भोग करना भयकर अपराध समझा जाता था। इससे नरक मिलता था।[१] जिन सात कारणो से दीर्घ जीवन अथवा जीवन का सुख नष्ट होता था उनमे रजस्वला स्त्री के साथ भोग भी था। ऐसी अगम्या स्त्री के[२] पास जाने का दड था गीला वस्त्र पहनकर छ महीने तक धूल मे सोना[३]। ऐसे विधानो से वासना के अपराधो की काफी रोकथाम हो जाती थी। रजस्वला स्त्री से सम्भोग करने वाले को ब्रह्महत्या लगती थी।[४] रजस्वला के हाथ का छुआ भोजन भी निषिद्ध था।[५]

ऋतुमती स्त्री के साथ विषय करना भी धर्म के अन्तर्गत था। ऋतुकाल मे सम्भोग से स्वर्ग की प्राप्ति होती है।[६] महाभारत मे ही ऋषि धौम्य की कथा है कि वे किसी कार्यवश जब घर छोडकर गये तो अपनी गृहस्थी अपने शिष्य उत्तक के सुपुर्द कर गये। ऋषि की पत्नी ऋतुमती हुई। उसकी कामवासना को शान्त करने के लिए उत्तक बुलाये गये। उनसे कहा गया कि तुम उसका उपभोग करो, अन्यथा उसका ऋतुकाल निरर्थक होगा, "उसे निराश न करो।" उत्तक ने गुरु-पत्नी के साथ सोना अस्वीकार कर दिया। जब गुरु वापस आये और उनको यह घटना मालूम हुई तो उन्होने प्रसन्न होकर उत्तक को इनाम दिया पर उनकी पत्नी ने कुछ समय मे उत्तक से बदला ले ही लिया।

स्त्री को विवाह काल मे व्यभिचार करने पर भी दोष नही लगने पाता, क्योकि जब उसे मासिक धर्म होता है, उसका सब कुछ योनि-पाप बह जाता है।[७] मासिक धर्म से उसका कायिक, मानसिक पाप धुल जाता है।[८] बोधायन के अनुसार स्त्री का

१. महाभारत १३, ७३, ४२
२. महा० १३–१०४–१५०
३. महा० ७–७३–३८
४. वही १२. २८३–४३
५. १३–१०४–४०
६. वही १३–१४४–१३–१४
७. याज्ञवल्क्य स्मृति–१–७२
८. मनु०अ०५,श्लो० १०८. विष्णुपुराण १२–९१, पाराशर स्मृ० ७–२,१०–१२

पाप उसके मासिक धर्म के साथ बह जाता है।[१] ऋतुमती स्त्री के लिए तो यहाँ तक लिख दिया है कि "जिस प्रकार हवन के समय अग्नि आहुति की प्रतीक्षा मे रहती है, उसी प्रकार ऋतुकाल मे स्त्री ऋतु-ससर्ग की प्रतीक्षा करती है। मासिक धर्म के समय स्त्री अपने पति से कहती है "ऋतु देहि"। मासिक प्रवाह समाप्त होने पर स्त्री का रज निरर्थक जाना उचित नही है। उसे ससर्ग प्राप्त होना चाहिए। कामातुर स्त्री के बीच मे अडगा डालना भी बडा अपराध था। इस सम्बन्ध मे राजा कल्मषपाद का उपाख्यान दृष्टव्य है (महा० आदिपर्व)।

प्राचीन भारत मे कामवासना शान्त करनेवाली वेश्या को शुभ मानते थे। यदि मार्ग मे वेश्या मिल जाय तो बडा शकुन समझते थे। पर यह सब द्वापर युग की बाते है। महाभारत के अनुसार सतयुग मे बिना विषय किये ही, केवल इच्छा से सन्तान पैदा हो जाती थी। त्रेतायुग मे केवल "स्पर्श" मात्र से सतान उत्पन्न होती थी। द्वापर युग मे सभोग का तरीका निकला पर कलियुग मे इसका वास्तविक नियमित रूप बना। कभी खुले मे यह कार्य नही करना चाहिए, गुप्त रूप से करना चाहिए।[२] अपनी स्त्री के साथ ही करना चाहिए, इत्यादि।[३]

बहुप्रजा ह्रस्वदेहाः शीलाचारविवर्जिताः।
मुखेभगाः स्त्रियो राजन्, भविष्यन्ति युगक्षये ।।[४]

वग देश मे,[५] पुराने जमाने मे पुरुष को कामोत्तेजित करने के लिए मुखसभोग का वर्णन कही कही मिलता है। पशु के साथ प्रसंग,[६] पुरुष-पुरुष के साथ प्रसग,[७] स्त्री-स्त्री

१. बोधायन. (२)–२–४–४

२. महा० १३–१६२–४७ तथा १२–१९३–१७

३. महा० ७, ७३–४३

४. कलियुग के लक्षणों में यह भी है कि स्त्रियाँ मुख मैथुन करेंगी, हजारों वर्ष पूर्व जो लिखा गया था, आज वही दुर्गुण पश्चिमी देशों में बहुत पाया जाता है।

५. वंगेषु।

६. महा० १३–१४५–५५

७. Sodomy वात्स्यायन ने अपने कामसूत्र के अधिकरण २, अ० ६ में इसका वर्णन किया है—अधोरतं पायावपि दाक्षिणत्यानाम्। ४९ ।। यानी दाक्षिणात्यों में 'अप्राकृतिक संभोग' भी करते है।

के साथ प्रसग,[1] यह सब घोर पाप गिनाया गया है। पितरो के श्राद्ध के दिनो में भोग करनेवाला घोर पापी है। इस कलियुग की महिमा मे महाभारत मे ही लिखा है कि जब ससार का सर्वनाश होने का समय आयेगा, पति अपनी पत्नी से तथा पत्नी अपने पति के साथ प्रसग से सन्तुष्ट न होगी।[2]

हिन्दू आदेश

स्त्री की इतनी महिमा तथा वासना की ऐसी आग बतलानेवाले प्राचीन हिन्दू शास्त्रकारो ने उसे समाज मे छोटा स्थान भी दिया है। नारद-स्मृति (अध्याय १–१९०) के अनुसार स्त्री कभी सच नही बोल सकती, अतएव उसका साक्ष्य नही स्वीकार करना चाहिए। जहाँ स्त्री-स्त्री का झगडा हो, वहाँ स्त्री साक्षी हो सकती है।[3] इस विषय मे काफी प्रसग मिलेंगे। इसका कारण यह है कि स्त्री की मर्यादा को काफी मानते हुए भी उसे हमारे यहाॅ एक "चल सम्पत्ति" समझते थे जिस पर पुरुष का अधिकार था। प्राचीन जर्मन जाति मे भी यही नियम था। वहाँ भी पति को अपनी व्यभिचारिणी पत्नी को दड देने का अधिकार था। व्यभिचार के लिए सार्वजनिक दड, प्राणदड का भी विधान है। किन्तु यहाॅ पर हम व्यभिचार के दंडो का वर्णन नही कर रहे है। वह विषय बाद मे आयेगा।

अभी तो हमे केवल कामवासना का रूप समझना है, तभी उसको शान्त करने का उपाय हो सकेगा। हमारे देश मे स्त्री का सब गुण वर्णन करने पर भी उसे "इन्द्रियार्थ" तथा भोग्या (भोग के लिए) भी माना गया है। जीवन मे उसकी उसी प्रकार आवश्यकता है जिस प्रकार खाट की, सवारी की, मकान की तथा अन्न की।[4] मकान, खेत, स्त्री तथा सुहृदय, ये सब जीवन की "अतिरिक्त" सामग्रियाॅ है— उपाहित है। इनको कही भी प्राप्त किया जा सकता है।[5] जब राम सीता-हरण पर घोर विलाप करने लगे तो सुग्रीव ने उनको समझाया कि औरत के लिए क्या रोना। वह तो कही भी मिल सकती है। आखिर मेरी बीबी भी तो भगा ली गयी

१. वही
२. महा० १२–२२८–७३
३. इस विषय में मनुस्मृति ८–६८ तथा वशिष्ट १६–३० देखिए
४. महा० अ० १३—१४५–४
५. महा० १२–१०३९–८५८६

थी।[१] लक्ष्मण को शक्ति लगने पर राम ने स्वयं कहा था कि "हर जगह औरत मिल सकती है, रिश्तेदार भी मिल सकते हैं पर सहोदर भ्राता नहीं मिलता।"[२]

यदि पुरुष सोचता है कि स्त्री इतनी साधारण वस्तु है तो स्त्री भी यही सोच सकती है। जातक कथा[३] है कि एक स्त्री के पति, पुत्र तथा भाई को प्राणदंड मिला। उसे आदेश मिला कि इन तीनों में से जिसका चाहे प्राण बचा ले। उसने कहा—"मेरे गर्भ में बच्चा है, अतएव मुझे लड़का नहीं चाहिए। मेरे पीछे राह चलते दौड़ने वाले मर्द बहुत मिलेंगे, पर सहोदर भाई मुझे कभी नहीं मिल सकता।" और उसने अपने भाई को छुड़ा लिया। इसी प्रकार का एक जर्मन गाना है कि एक स्त्री के सामने समस्या थी कि अपने भाई या अपने प्रेमी को मृत्यु से बचा ले। उसने तय किया कि प्रेमी तो राह चलते मिलेंगे, भाई नहीं मिलेगा। स्विनबर्न लिखित "कैलिडांग में अतलोता" नामक प्रसिद्ध रचना में अतलान्ता अपने भाई के हत्यारे अपने लड़के को इसलिए मार डालती है कि "दुनिया में बच्चे तो बहुत पैदा हो सकते हैं पर भाई बहन नहीं मिल सकते।"[४]

कुमारी कन्या

स्त्री की बड़ी शक्ति है। यह वासना में भी मानव का कल्याण ही करती है। यह इतनी पवित्र है कि इसे भ्रष्ट कहना ही कठिन है। कुमारी का कौमार्य नष्ट हो जाने पर भी नष्ट नहीं होता। कुमारी कुन्ती पर सूर्य रीझ गये। उससे उनका सम्पर्क हुआ। उन्होंने कुन्ती को वर दिया कि "मेरे समान तेजस्वी पुत्र (कर्ण) पैदा होगा और तुम अक्षत कुमारी ही कहलाओगी।"

डाकुओं से भी समाज में यही आशा की जाती थी कि वे डाका डालने के समय भी पर-स्त्री हरण नहीं करेंगे। पर शिशुपाल के सौ पापों में एक कुमारी कन्या का हरण भी था। अग्नि देवता राजा नील की सुन्दरी कुमारी कन्या महिष्मती के साथ

१. वाल्मीकि रामायण ४–७–५

२. वाल्मीकि ६–१०१–१४

३. जातक कथा—सं० ६७

४. "For all things else man may renew,
Yea, son for son the Gods may give or take.
But never a brother or sister any more
—"Swineburne's "Atlanta in Calydon"

एक ब्राह्मण के रूप मे सभोग करते पकडे गये। महिष्मती निर्दोष मानी गयी। ऐसी दशा मे यदि तोब्रियाद जाति मे कुमारी कन्या को खुलकर भोग-विलास करने का अधिकार है तो क्या आश्चर्य है। उत्तरी अराकान 'मे कौमार जीवन मे विलास की खुली इजाजत है। बाकम्बा जाति मे बिना गर्भवती हुए लडकी विवाह योग्य नही समझी जाती। जिस कुमारी के कई बच्चे पैदा हो चुके हो, वह विवाह के उतना ही उपयुक्त समझी जाती है। कुछ जर्मन-भाषी जिलो मे वही कुमारी पत्नी बनने के योग्य समझी जायगी जो अपने प्रेमी द्वारा गर्भवती बन चुकी हो। अल्जियर्स मे कई ऐसी जातियाँ है जिनमे लडकी बडी होते ही उसका पिता उसे वेश्यावृत्ति द्वारा कमाने के लिए भेज देता है। जो जितनी ही रकम अधिक कमाकर लायेगी, उसका विवाह जल्दी होगा। कमायी हुई रकम दहेज का काम देती है। पिछडी जातियो की बात जाने दीजिए। हमारी स्मृतियो मे ऐसे लोगो का भी जिक्र है जो अपनी पत्नी से वेश्या का काम लेते है।[१]

वेश्या का प्रारम्भ

वेश्या, दासी, निष्कासिनी आदि से विषय मे तभी दोष है, जब इनमे से किसी को किसी ने रखेल बना लिया हो।[२] मेहमानो की खातिरदारी के लिए औरतो का प्रबंध रखना पडता था। धर्मराज युधिष्ठिर ने ऐसी कई हजार दासियाँ रख छोडी थी जो ६४ कलाओ मे निपुण थी। दुर्योधन के साथ जूआ खेलने मे उन्होने इन दासियो को भी बाजी पर लगा दिया और हार गये।[३] बहुत देशो मे मेहमानो की इस प्रकार खातिर करने का रिवाज था।[४] किन्तु, स्त्री वेश्या कैसे बनी इसकी बडी रोचक कथा हमारे प्राचीन ग्रन्थो मे मिलती है।

प्राचीन काल मे दीर्घतमस नामक एक अधे साधु थे। जब वे अपनी माता के पेट मे थे, उनको इसलिए बडा कष्ट मिला कि उनकी माता के साथ गर्भकाल मे उनका चाचा, (माता का देवर) प्रसग करता रहा। ऐसे बालक पेट से ही वासना सीखकर आते है। गर्भवती स्त्री के साथ प्रसग करना अपनी सन्तान से, पुत्र हो या

१. देखिए बोधायन (२) २४–३; मनु अ० ८–३६२; याज्ञवल्क्य २–४८।
२. नारद स्मृति–१२–७८
३. महा० २–६१–८
४. Molennian—Primitive Marriage—Page 96

पुत्री, प्रसग करना है।[१] दीर्घतमस का विवाह एक परम सुन्दरी स्त्री प्रद्वेषी से हो गया। वेद-वेदाग मे पारगत इन साधु ने कामधेनु[२] के पुत्र सौरभेय से पशुओ के समान खुले आम प्रसग करना सीखा और वे निर्लज्ज होकर प्रद्वेषी के साथ ऐसा करने लगे। उनका यह व्यवहार अन्य मुनियो को बुरा लगा। उन्होने कहा कि इस साधु ने "नैतिक नियम" का उल्लघन किया है। अतएव इसे आश्रम से निकाल देना चाहिए। इधर मुनियो ने यह निश्चय किया और उधर प्रद्वेषी ने अपने पति से कहा कि "मुझे तुमसे कई बच्चे हो चुके। पर पति का जो धर्म है कि स्त्री को घर और भोजन देना, वह दोनो तुम नही कर सकते। मै तुम्हारे जैसे जन्म के अधे का पालन नही कर सकती। मै तुमको अब अपने पास नही रखूँगी।" यह सुनकर साधु दीर्घतमस ने कहा—

"आज से मै ससार के लिए नियम बनाता हूँ कि जो पत्नी आमरण केवल एक पति की बनकर रहती है, चाहे पति मर ही क्यो न जाय, वह कभी पराये पुरुष का मुँह नही देखेगी। किन्तु विवाहिता हो या कुमारी, जो भी दूसरे पुरुष के पास गयी, वह अपराधिनी होगी, जाति से च्युत होगी। पर यदि ऐसी स्त्री किसी पुरुष के पास जाय तो उसे (पुरुष को) चाहिए कि विषय के लिए मूल्य चुकाये।"[३]

यह सुनकर प्रद्वेषिका ने क्रुद्ध होकर अपने लडको को आदेश दिया कि अपने पिता को एक खम्भे मे बाँधकर गगा मे फेक दे, लडको ने वही किया। उसी दिन से धन लेकर प्रसग कराने की प्रथा चल निकली।[४]

प्राचीन भारत में ऐसे भी लोग थे, जिनमे काम-वासना ने भयंकर रूप धारण कर लिया था। उत्तर-पश्चिमी भारत मे मद्रा नामक जाति मे तथा सिन्धु नदी के किनारे के "सिन्धु सौवीरक" लोगो मे और पजाब मे ऐसे लोग रहते थे जो मास खाते थे, गोमास तक खाते थे और सभोग की इच्छा होने पर मा, बहन, बेटी, पिता, चाचा, भतीजा किसी का बिना विचार किये, जिससे चाहते उससे सम्बध करते, और मदिरा पीकर नगे होकर नाचते थे। ये गोरे लोग गन्दे थे, तथा वासना से

१. Marie Stopes—Married Love.

२. मनोवांछित भोजन देनेवाली इन्द्र की गौ।

३. Johann J. Meyer—Sexual life in Ancient India—Pub. Standard Literature Co, Calcutta—1952, Page-127.

४. वही, Sexual Life in Ancient India Page-126.

भरे रहते थे।[1] ये स्त्री, पुरुष खड़े होकर पेशाब करते थे, जैसे ऊँट, गधा आदि करते है।[2]

स्त्री की शक्ति

किन्तु जिस स्त्री की इतनी भर्त्सना है—और जिसका पाँच हजार वर्ष पूर्व वह मनोवैज्ञानिक वर्णन किया गया है जिससे अधिक आज भी नही कहा जा सकता—उसकी बडी प्रशसा भी है। पुराणो मे लिखा है कि स्त्री की सबसे बडी शक्ति उसके आँसू है। वह आँसू गिराकर सबको पिघला देती है।[3] भृगु की पत्नी सुन्दरी पुलोमा से जब राक्षस पुलोमन ने जबर्दस्ती प्रसग किया तो वह इतना रोयी कि उसके नेत्रो से निकले पानी से वधूसारा नामक नदी बन गयी। महाभारत के अनुसार स्त्रियो के अश्रु से ही[4] गगाजी मे कमल का फूल बनता-खिलता गया।

अश्रु के अतिरिक्त स्त्री की दूसरी महान् शक्ति है "आज्ञाकारिता, धैर्य तथा सहिष्णुता।" द्रौपदी ने सत्यभामा से कहा था कि मै पति की सेवा मे क्रोध, कामना तथा अहभाव को छोडकर जुटी रहती हूँ।"[5] "राजा की शक्ति उसके राज्य मे, शास्त्री की शक्ति पाडित्य मे तथा स्त्री की शक्ति उसके सौन्दर्य, जवानी तथा लावण्य मे अ-परिमेय है।"[6] सुन्द उपसुन्द दैत्यो की कथा मे स्त्री के रूप की शक्ति का बडा रोचक वर्णन है। ऐसी अनेक कथाएँ दी गयी है कि अनजाना, पवित्र युवक प्रेम की लीला से अनभिज्ञ होते हुए भी एक सुन्दरी युवती को देखकर मानो "सब कुछ जान जाता है।"

किन्तु वासना का यह सब रूप देने के बाद हमारे शास्त्रकार वह मत्र देते है जिससे वासना अपराध का रूप न धारण कर सके। जिस महाभारत मे स्त्री का बुरा से बुरा रूप सामने रख दिया गया है उसी मे हर जगह यही ध्वनि निकलती है कि स्त्री के प्रति उदार भाव होना चाहिए। उसकी भूलो के प्रति क्षमाशील होना चाहिए।

१. वही, पृष्ठ १२७
२. वही, महाभारत में कर्ण द्वारा वर्णित जाति।
३. वाल्मीकि रामायण ४–३३–२८
४. महा० १–१९७–९
५. क्षेमेन्द्र ने "दशावतारचरित" में भी यही गुण बतलाये है।
६. महाभारत–१२–३२०–७३

उसके प्रति उपेक्षा की भावना नही होनी चाहिए।[१] पवित्रता तथा चरित्र की इतनी मर्यादा है कि सुभद्रा ने अभिमन्यु की मृत्यु पर विलाप करते समय कहा —"जाओ बेटा, उस लोक मे जाओ जहाँ तप, व्रत, नियम आदि का पालन करनेवाले तथा एक स्त्री से सन्तुष्ट रहनेवाले लोग जाते है।"[२] स्वर्ग लोक मे वही लोग जाते है जो केवल अपनी धर्मपत्नी से सतुष्ट रहते है, परायी स्त्री को मा, बहन या बेटी समझते है, उसे किसी प्रकार का कष्ट नही पहुँचाते।"[३] "काम से अधा होकर जो अपनी स्त्री को छोडकर परायी स्त्री मे रमण करने का नियमविरुद्ध कार्य करता है ऐसा परायी स्त्री से भोग करनेवाला व्यक्ति भेडिया, कुत्ता, स्यार, गिद्ध, सर्प, बक आदि होकर पैदा होता है। जो अपने मित्र,[५] गुरु या राजा की पत्नी को ग्रहण करता है वह सूअर बनकर पैदा होता है, वह पॉच वर्ष तक सूअर, दस वर्ष तक साही (कॉटेदार जानवर), पॉच वर्ष तक बिल्ली, दस वर्ष तक मुर्गा, तीन महीने तक चीटी, एक महीने कीट-पतग और इन सस्कारो से गुजरकर १४ महीने कृमि योनि मे तथा इतना प्रायश्चित्त करने के बाद फिर मनुष्य योनि मे प्राप्त होगा।"[६] पॉच कुकर्म करनेवाले की निष्कृति नही होती। वह सदा के लिए जाति-च्युत तथा असम्भाष्य रहता है, नरक मे वह मछली की तरह से भूना जाता है। वे पॉच कुकर्म है—ब्रह्म-हत्या, गो-हत्या, अधार्मिकता (धर्म मे अविश्वास), पर-पत्नी-सेवन तथा बीबी की कमाई खाना।[७] बाल्मीकि का उपदेश है कि "पर-पत्नी को छूने से बढकर दूसरा कोई पाप नही है।"[८] जो दूसरे की पत्नी को फुसलाता है या दूसरे के लिए प्राप्त करता है, वह नरक मे जाता है।[९]

१. Johann J. Meyer—Sexual life in Ancient India—Pub. Standard Literature Co , Calcutta—1952, पृष्ठ ५२३

२. महा० ७–७८–२४

३. महा० १३–१४४–१०–१५

४. वाल्मीकि रामायण–२–७५–५२–५५

५. महा० १३–१०१–१६

६. महा० १३–१११–७५

७. वही–१३–१३०–३७–४०

८. वाल्मीकि ३–३८–३०

९. महा० १३–२३–६१

महाभारत मे कथा है कि पाडवो के पिता पाडु ने अपनी पत्नी कुन्ती को स्त्री-धर्म समझाते हुए बतलाया[1] कि पहले कुमारी तथा विवाहिता जैसा चाहे वासना को शान्त किया करती थी। उस समय कोई नैतिक विधान नही था। एक बार ऋषि उद्दालक के पुत्र श्वेतकेतु के सामने उसकी माता को एक ब्राह्मण हाथ पकडकर ले जाने लगा। श्वेतकेतु को बडा क्रोध आया। ऋषि उद्दालक ने उन्हे समझाते हुए कहा—"यह तो होता ही रहता है।" इस पर श्वेतकेतु ने कहा कि आज से नैतिक विधान मै बदल रहा हूँ। आज से यह नियम होगा कि "यदि कोई पत्नी अपने पति से विश्वासघात करती है तो उसको जातिच्युत समझना चाहिए और वह भ्रूण-हत्या जैसे अपराध के समान दोषी होगी। यदि पुरुष अपनी अक्षतयोनि पत्नी के प्रति अविश्वसनीय साबित हुआ तो उसे भी यही दोष लगेगा।" श्वेतकेतु ने तब से नैतिकता का जो नियम बनाया है वही आज तक लागू है। तब से मनुष्य को आदेश है कि वह एक स्त्री से ही सतुष्ट रहे। एक स्त्री से सन्तुष्ट रहनेवाले को सहस्र अश्वमेध यज्ञ का फल मिलेगा।[2]

वासना तथा कामना का नगा रूप, उसका बीभत्स रूप, बतलाकर उस वासना से बचने का जैसा सुन्दर आदेश हिन्दू शास्त्रो मे मिलता है, वैसा अन्य किसी भी देश के शास्त्र मे नही। यही कारण है कि कामुक-अपराधो की दृष्टि से भारत सबसे पिछडा हुआ है यानी यहाँ के लोगो का चरित्र अन्य देशो की तुलना मे कही अच्छा है। धर्म के साथ नैतिकता का मेल ही अपराध की सबसे बडी रोकथाम है। हम इसे आगे चलकर सिद्ध करेगे। भारतीय समाजशास्त्र तथा धर्मशास्त्र की इसी महिमा को मायर ने अपनी पुस्तक मे सिद्ध किया है। वे लिखते है कि प्राचीन भारतीय ग्रन्थो मे जो गहरी कर्त्तव्य-शील भावना तथा सम्पूर्ण प्रौढता मिलती है वह अन्य साहित्यो के गदेपन, अश्लीलता तथा थोथी वासनाशीलता की तुलना मे हमको एक रोचक सस्कृति का परिचय देती है।[3]

वात्स्यायन का कामसूत्र

कामशास्त्र तथा कामवासना[4] पर भारतीय प्राचीन ग्रन्थो मे सबसे महत्त्वपूर्ण

१. महा० १–१२२
२. महा० १३–१०७–१०
३. Sexual Life in Ancient India Page–5.
४. अंग्रेजी में जिसे Sex (सेक्स) तथा जिस शास्त्र को Sexuology

तथा विश्व मे अपने विषय का सबसे प्रामाणिक ग्रथ वात्स्यायन का कामसूत्र है। इसके प्रणेता महर्षि वात्स्यायन ने "उत्कृष्ट कोटि के ब्रह्मचर्य के साथ ग्रन्थ का प्रणयन करने के लिए निर्विकल्प समाधि से साक्षात् देखकर सूत्रो की रचना की है।"[१] एक विद्वान् व्याख्याकार ने इसकी टीका की भूमिका मे लिखा है कि "कामशास्त्र अर्थ और धर्मशास्त्र से कम नही है। अन्य पुरुषार्थों की तरह काम भी एक पुरुषार्थ है।" व्याकरण महाभाष्यकार ने कहा है "खेदात् स्त्रीषु प्रवृत्तिर्भवति", काम से स्त्रियो मे प्रवृत्ति होती है। गम्या और अगम्या दोनो के भोग से एक प्रकार की शान्ति मिलती है पर कामशास्त्र यह बतला देता है कि किसके साथ गमन करे और किसके साथ न करे। कामशास्त्र यह निश्चय करता है और धर्मशास्त्र उसमे पाप-पुण्य का नियमन कर देता है।

साहित्य भी कामशास्त्र का अग है। महात्मा निश्चलदास ने स्पष्ट लिखा है कि "शृगार रस के साहित्य कामशास्त्र के अग है।" कोई चाहे कुछ कहे, इस विषय को जानना सभी चाहते है। वात्स्यायन ने "विद्या-समुद्देश्य" प्रकरण मे लिखा है कि "जिन्होंने विवाह के बाद अनुभव कर लिया है, ऐसी साथ पली हुई धाय की लडकी, बराबर की मौसी, बूढी नौकरानी, भोग-विलास कर चुकी भिखारिन, या अपने सामने रगरेली तक करनेवाली बडी बहन—ये कन्याओ को काम-कला सिखानेवाले आचार्य है।" कामकला का शास्त्र भी बडा गूढ है। अखड ब्रह्मचारी वात्स्यायन ने पशु-पक्षी के साथ भी प्रसग करने का तरीका बतलाया है। काम से उन्मत्त पुरुष बकरी या गधी के साथ तथा स्त्री घोडा-कुत्ता के साथ भी प्रसग करती है। आज भी समाज के सामने इस प्रकार के प्रसग की जटिल समस्या है। जरा-सी होशियारी से स्त्री को कैसे वश मे कर लिया जाय या फिर प्रसग के समय चुम्बन कैसे हो, स्त्री किस तरह शयन करे, इत्यादि यह सब उन्होने साफ-साफ लिख दिया

(सेक्सुओलॉजी) कहते है उसका एकदम समानार्थक शब्द मिलना कठिन है। Sex का अर्थ व्याकरणाचार्यों के अनुसार लिंग, स्त्री-पुरुषात्मक लिंग, द्वन्द्व, मैथुन तथा काम हुआ। Sexuology का अर्थ लिंगविज्ञान, कामविज्ञान या कामशास्त्र हुआ। पर यह रूढ अर्थ में है।

१. वात्स्यायन के कामसूत्र के यहाँ दिये गये उद्धरण उसके "नितान्त गोपनीय संस्करण," श्री यशोधर विरचित, जयमंगला व्याख्या सहित, लक्ष्मीवेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई से संवत् १९९१ में प्रकाशित ग्रन्थ से है।

है। नायिका या वेश्या का भी बडा रोचक वर्णन है। वेश्या कैसे फँसाती है, कैसे चूसती है, इसका दिग्दर्शन है। वेश्या को यहाँ तक आदेश है कि उसे अपनी असली मा या व्यवहार मे वैसा ही काम करनेवाली बूढी मा का कहना जरूर मानना चाहिए।[1] यदि लडकी एक मिलनेवाले के साथ मिल रही हो, अधिक समय लग गया हो, दूसरा मिलनेवाला आ गया हो, यदि वह अधिक लाभवाला हो तो पहले को धता बतलाकर माता उस लड़की को दूसरे स्थान में ले जाकर छोड आये।[2] वात्स्यायन ने जिन स्त्रियो के साथ प्रसग नही करना चाहिए, उनको इस प्रकार गिनाया है—

भिक्षुकी-श्रमणा-क्षपणा-कुलटा-कुहकेक्षणिकामूलकारिकाभिर्न संसृजेत् ॥
(अधि० ४–अ० १–सूत्र, ९)

भिखारिन, बौद्ध व जैन सन्यासिन, तमाशा करनेवाली (नटी), शकुन परखनेवाली, व्यभिचारिणी और जादू-टोना करनेवाली स्त्रियो के साथ ससर्ग न करे। अधिकरण१, अध्याय २ मे पशु-पक्षी आदि के प्रसग तथा मनुष्य के प्रसग में भेद समझाया गया है।

वात्स्यायन के अनुसार शकर महादेव के परम भक्त नन्दिकेश्वर (नन्दी बैल) ने एक हज़ार अध्याय मे कामशास्त्र की रचना की। महर्षि उद्दालक के पुत्र श्वेतकेतु ने उसका सक्षेप ५०० अध्यायो मे किया।[3] बभ्रु के पुत्र पाचाल ने उसे १५० अध्याय तथा सात अधिकरणो मे संक्षिप्त किया। बाभ्रव्य के सक्षिप्त सस्करण में से पटना की वेश्याओ ने छठे वैशिक (वेश्याओ के) अधिकरण को दत्तकाचार्य से पृथक् कराया।[4] इस प्रकार बहुत से आचार्यों ने इसे टुकडे टुकडे किया जिससे यह शास्त्र नष्टप्राय हो गया। अत सब भावो का संक्षिप्त रूप करके वात्स्यायन ने अपना कामसूत्र बनाया।[5] पर क्यो बनाया—इसलिए कि धर्म अर्थ काम—तीनो जीवन के प्रधान सहचर है। ऋषि ने इन तीनो को प्रणाम करके अपना ग्रन्थ शुरू किया है। वे कहते

१. कामशास्त्र, न त्वेव शासनातिवृत्तिः।—कान्तानुवृत्तम्-अधि० ६, अ० २– सूत्र ८
२. प्रसह्य च दुहितरमानयेत्—वही, सूत्र ६
३. अधिकरण १, अध्याय १–सूत्र ९
४. वही ११
५. वही १३–१४

है—"धमार्थकामेभ्यो नम।" यह तीनो एक साथ मिले जुले है। इनको बनानेवाले आचार्यो को नमस्कार है, "तत्समवावबोधकेभ्यश्चाचार्येभ्य"। इस काम के दस भेद है, उसके दस स्थान है—दश तु कामस्य स्थानानि।[1] वे है "आँखो मे प्रेम की झलक, चित्त की आसक्ति, सकल्प का पैदा होना, नीद का न आना, दुर्बल होना, अन्य विषयो से चित्त का हट जाना, लाज का मिट जाना, दीवानगी, बेहोशी और मौत।"

यह सब भी लिखा और सुख-भोग के बडे-बड़े नुस्खे भी दिये। इतना सब लिखने का तात्पर्य क्या है? कामशास्त्र जानने से होगा क्या? क्या विषय-सुख के लिए कामशास्त्र है? ऐसी बात नही है। स्थान-स्थान पर वात्स्यायन ने वासना से बचने का उपाय बतलाया है और मनुष्य को सबसे बडी शिक्षा दी है कि तुम अपनी इन्द्रियो पर विजय प्राप्त करो। वे लिखते है —

रक्षन्धर्मार्थकामानां स्थितिं स्वां लोकवर्तिनीम्।
अस्य शास्त्रस्य तत्त्वज्ञो भवत्येव जितेन्द्रियः ॥
(अधि० ७. अ० २, श्लोक, ५६)

धर्म, अर्थ, काम की स्थिति व अपनी दुनियादारी की स्थिति की रक्षा करता हुआ इस शास्त्र के तत्त्व का जाननेवाला व्यक्ति जितेन्द्रिय ही होता है।

इसमे कुशल होकर विद्वान् धर्म और अर्थ की ओर पूरी दृष्टि रख उचित काम मे इसका प्रयोग करता है उसे अवश्य सिद्धि मिलती है—

तदेतत्कुशलो विद्वान्धर्मार्थाविव लोकयन्।

किन्तु जितेन्द्रियता तथा ब्रह्मचर्य का ऐसा उपदेशक मानव-स्वभाव की दुर्बलताओ से पूरी तरह परिचित था। पश्चिम के देशो मे अपराध-शास्त्रियों के सामने सम-योनि वालो के व्यभिचार की बडी समस्या है। पशु-संसर्ग की बड़ी समस्या है। "कमर में बनावटी ....बॉधकर"[2] विषय के अपराध बढते जा रहे है। वात्स्यायन ने इसका भी जिक्र किया है। अभिप्राय की शान्ति के लिए भेड़, बकरी और घोड़ी आदि के प्रयोग का भी जिक्र है।[3] पश्चिम मे इस बात पर बहस चल रही

१. वही—अधिकरण ५ अ० १—सूत्र ४
२. कामसूत्र—अधि० ५ अध्याय ६—अन्तःपुरिकावृत्तम्—सूत्र—४
३. तथा ५

है कि किस श्रेणी का चुम्बन अपराध न माना जाय। वात्स्यायन ने चुम्बन पर अधिकरण २, अध्याय ३ मे चुम्बनविकल्पा" पूरा विश्लेषण ही लिख डाला है। उसे मानने से अपराध का दृष्टिकोण ही बदल जाता है। प्रेम को जिस प्रकार धीरे-धीरे बढाना चाहिए इसका वर्णन करके मादकता को सयत किया गया है। जिससे प्रेम करे उसे पहले पान खिलाये, यदि ताम्बूल न खाय, तो कसम दिलाकर खिलाये,—यह वात्स्यायन का मत है। शरीर की रक्षा का, अग-अग के स्वास्थ्य का उपदेश है। यहाँ तक कि दाँतो का भी गुण दे दिया है। "दाँत बराबर हो, सुन्दर चमकने वाले हो, जिनके ऊपर पान का रग चढ जाता हो, जितने लम्बे चौडे होने चाहिए वैसे ही हो, उनके बीच मे जगह या दरार न हो, नुकीले हो—ये दाँतो के गुण है।" (अधि० २, अ० ५—दशनच्छेदविधि—सूत्र २)[1]

जायज उम्र

अपराध शास्त्र के सामने एक बडी भारी समस्या है कि किस उम्र के पुरुष-स्त्री-ससर्ग को वैध तथा किसे अवैध या नाजायज माने। वैध उम्र के पूर्व का ससर्ग "बलात्कार"[2] समझा जाय या नही। चिकित्साविशेषज्ञ अपराधशास्त्री अब धीरे धीरे इस निर्णय पर पहुँचते जा रहे है कि बलात्कार नामक कोई चीज ही नही है। उसे दडविधान से हटा दिया जाय। हम इस विषय पर आगे चलकर समुचित विचार करेंगे। "बलात्कार" उसे कहते है जिसमे कन्या के साथ, बिना उसकी इच्छा के, ससर्ग किया जाय। वात्स्यायन ने बलात्कार की ऐसी प्रणाली बतला दी है कि बलात्कार रह नही जाता। "बलात्कारेण नियुक्ता" मे ऐसी जबर्दस्ती की ही भावना है।[3] पश्चिमी विद्वान् भी इसी नतीजे पर पहुँचते जा रहे है कि कन्या की सभोग के योग्य उम्र का अन्दाजा लगाना कठिन है। यह अपने-अपने गठन तथा रहन-सहन पर निर्भर करता है। हमारे देश मे भी इस विषय मे भिन्न-भिन्न मत है। स्मृतिकारो के अनुसार तीस वर्ष का वर, १२ वर्ष की कन्या तथा २४ वर्ष का वर और ८ वर्ष की कन्या, यानी कम से कम, पति-पत्नी मे १६-१८ वर्ष का अतर बतलाया

१. वदसि यदि किंचिदपि दन्तरुचि कौमुदी, हरति दरतिमिरमति घोरम्। गीतगोविन्द–१०.१. (जब आप कुछ कहती है तो आपके दाँतों की स्वच्छ, चमकरूपी चांदनी मेरे भयरूपी अंधकार को एकदम दूर कर देती है।)

२. Rape

है।[1] आयुर्वेद के आचार्य सुश्रुत ने २५ वर्ष के वर तथा १२ वर्ष की लडकी क विधान किया है।[2] वाग्भट ने तो २० वर्ष के वर तथा १६ वर्ष की लडकी वे सभोग को सही माना है। यदि १६ वर्ष की लडकी का गर्भाशय शुद्ध हो, वीर्य रज, और मन शुद्ध हो तो बलवान् सुन्दर पुत्र पैदा होता है।[3] पराशर ऋषि ने रजस्वला होने के बाद ही (चाहे वह ८ की हो या १२ की) सहवास करने क आदेश दिया है।[4] वैद्यक शास्त्र मे तो यहाँ तक कह दिया है कि "नित्य बाला सेव्य माना नित्य वर्धयते बलम्।" माधवाचार्य के अनुसार रोये भी न निकले हो—विलोम योनि का सेवन करना चाहिए।[5] इस प्रकार इतने मत–मतान्तरो ने वही कहा है जो आज पश्चिम के अपराधशास्त्री सोच रहे है —बलात्कार कब माना जाय? कौन सी उम्र "कच्ची" कही जाय? वात्स्यायन ने तो स्त्री की स्वीकृति पर इतना ज़ोर दिया है कि सुहागरात मे भी जबर्दस्ती मना की है।

उपक्रममाणश्च न प्रसह्य किंचिदाचरेत्।

अधि० ३, अ० २, ५

लडकियाँ बडी बुद्धिमान् होती है। वे पुरुषो के कहे वचनो को अच्छी तरह सह (समझ) लेती है।

सर्वा एव हि कन्याः पुरुषेण प्रयुज्यमानं वचनं विषहन्ते। (३, २, २७)।

इसलिए बलात्कार स्वय एक निरर्थक, भद्दी तथा गन्दी बात है। पर किस उम्र मे "बलात्कार" माने यह शका की बात हो गयी। इस विषय मे हमको आगे चलकर फिर विचार करना पडेगा। यहाँ पर केवल आर्य दृष्टि से उस पर विचार जान लेना चाहिए।

१. बलात्कारेण नियुक्ता मुखे मुखमाधत्ते न तु विचेष्ठत इति निमितकम्। अधि० २ अ० ३–सूत्र ८।

२. अस्मै पंचविशतिवर्षाय द्वादशवर्षां पत्नीमावहेत् पित्र्य–धर्मार्थकामप्रजाः प्राप्स्यतीति। (सुश्रुत सहिता, शरीर स्थान) अध्याय १०

३. शुद्धे गर्भाशये मार्गे रक्ते शुक्रेऽनले हृदि॥ वा० शा० अध्याय ९

४. ऋतुस्नातां तु यो भार्य्यां सन्निधौ नोपगच्छति।

५. अलोमकाः सतिलका नित्य सेव्यास्तु योनयः।

अध्याय ४

अन्य पुरानी सभ्यताओं की स्थिति

वेश्या का स्थान

अपराध-शास्त्र के विद्यार्थी के लिए यह विषय इतना व्यापक है कि सक्षेप में भी वर्णन करते-करते काफी बाते सामने आ जाती है। उदाहरण के लिए वेश्यावृत्ति प्राय सभी देशो मे वैध चीज थी और रखेल या व्यभिचार या कभी-कभी के दुराचार से उसका दर्जा सदैव ऊँचा रहा है। जब से सभ्यता का इतिहास है, तभी से वेश्या-वृत्ति भी है, पश्चिमीय पडितो के अनुसार इन आठ कारणो से स्त्री वेश्या बनती है—

(१) जीविका के लिए, (२) कम मजदूरी और अत्यधिक परिश्रम के कार्य से बचने के लिए, (३) घर पर होनेवाले बुरे व्यवहार के कारण, (४) गरीबो की बस्ती मे खुले ढग से रहने और अशिष्ट रहन-सहन के कारण, (५) बडे समुदायो तथा कल-कारखानो मे रहने से जिसमे भले-बुरे का खुलकर साथ होता है, (६) धनी वर्ग की आरामतलवी, भोगविलास तथा आनन्द देखकर उसके लालच से, (७) भ्रष्ट साहित्य या भ्रष्ट मनोरजनो से तथा (८) पुरुषो के प्रलोभन एवं दलालो के कारण।

पर हमारे देश मे ही नही, प्राचीन रोम, यूनान ऐसे देशो मे भी मानव की आवश्यकता की पूर्ति के लिए इसे धार्मिक रूप भी दे दिया गया था। जिस प्रकार मंदिर मे कन्यादान दे देना, देवदासी बना देना भारतवर्ष मे पुण्य माना जाता था, उसी प्रकार अनेक प्राचीन देशो मे भी यह कार्य करना पुण्य समझा जाता था। अत ऊपर लिखे हुए आठ कारणो मे से सब जगह एक भी लागू नही होता था।

भारतवर्ष की तथा अन्य प्राचीन देशो की सभ्यता मे सबसे बडा अन्तर यह है कि हमारे यहाँ उपासना के लिए स्त्री को देवी के रूप मे केवल मा माना गया है। कामवासना के लिए आराध्य देव कामदेव है। रति तो उनकी पत्नी है। उनकी पूजा नही होती। पर मिस्र, फ्रोयेनीशिया, असीरिया, चाल्डिया, कनान, ईरान, रोम,

यूनान[१], सभी देशो मे वे वासना की देवी बना दी गयी है—देवी आइसिस, देवी मोलोश, देवी बाल, देवी आस्तार्ती, देवी मिलिता (मालती) इत्यादि—और वासना का गदे से गन्दा अभिनय "इनकी सेवा मे अर्पित" था। इसी लिए जहाँ भारत ऐसे देशो मे चरित्र की मर्यादा बहुत कुछ बनी रही, वहाॅ पश्चिम के देशो मे वह बहुत कुछ समाप्त सी हो गयी है। केवल यहूदियो को छोडकर—यद्यपि वहाॅ भी किसी रूप मे यह प्रथा वैध थी—अन्य सभी प्राचीन देशो मे वेश्या का समाज मे अच्छा स्थान था। मिस्र तथा कनान मे घोर वेश्याचार था। यहूदी भी वेश्याएँ रखने लगे। पर वे विदेशी होती थी। बैबीलोन मे वेश्या बनना अनिवार्य सा था—हर स्त्री को पराये पुरुष के साथ एक बार सोना पडता था। वहाॅ की देवी मिलिता के सामने सबसे बडी भेट थी अपना सतीत्व खो देना, चढा देना। यहूदियो ने वेश्यावृत्ति को जायज नही माना, पर पर-पुरुष सेवन और उससे पैसा कमाने के लिए उनके यहाॅ कोई सजा भी नही थी। किन्तु यदि पुरोहित की कन्या व्यभिचारिणी हो तो उसे जिन्दा जला देते थे। कुमारी के व्यभिचार को कुछ छूट थी पर विवाहिता के व्यभिचार पर उसे पत्थर मारकर मार डालते थे। यरूशलेम नगर तथा यहूदी मदिरो मे स्त्रियो का जाना मना था। पर धीरे-धीरे फिलिस्तीन मे वेश्याएँ फैल गयी। हजरत मूसा को सार्वजनिक स्वास्थ्य की रक्षा के लिए तथा ऐन्द्रियिक बीमारियाॅ रोकने के लिए जो नियम प्रचारित करने पडे वे इस बात के परिचायक है कि वहाँ दुराचार कितना बढ गया था। चीन मे व्यभिचार इतना अधिक फैला था कि लाओत्से तथा कनफ्यूसियन ऐसे दार्श-निको को बडी हिदायते देनी पडी थी। यूनान मे तीन हजार वर्ष पूर्व वह कार्य हुआ जो बीसवी सदी मे हमने किया—यानी वेश्याओ के लिए अलग मुहल्ले बसाये गये। सरकारी वेश्यालय भी खुले तथा वेश्याओ की आमदनी सरकार को धनी बनाती रही। वेश्याओ की श्रेणियाॅ बनायी गयी। उनकी पोशाक भिन्न रखी गयी। बडे-

१. अति प्राचीन सभ्यताओं में देवी की उपासना बहुत प्रचलित थी। सभी देवियाॅ वासना की मूर्ति नहीं थीं। कुछ प्रमुख देवियों तथा उसकी उपासक जातियों के नाम निम्नलिखित है—

१. फोयेनिशियन—अस्तार्ती। २. फेजियन—सिवेली। ३. थ्रेसियन—बन्दीस (बन्दी देवी)। ४. क्रेटन—रीं (ही) ५. एफेसियन—आर्टेमिस ६. कैपोडिसियन—मा (माता) ये सभी यूनानी राज्यों के लोग तथा देवियां है—

L. R. Farnell—Cults of the Greek States, Clarendon Press 1896

बड़े यूनानी शासकों, राजनीतिक नेताओं, विद्वानों के पास वेश्या होती थी जिसका बड़ा प्रभाव होता था। कोरिथम् नामक यूनानी नगर तथा प्रदेश में कामदेवी अफ्रोडाइट की उपासना में गन्दा-से-गन्दा व्यभिचार होता था। मंदिर की तरफ़ से वेश्याएँ नियुक्त थीं। मंदिर की सेविकाएँ वेश्या होती थीं। अथेंस, यूनान की राजधानी, में धीरे-धीरे यह नियम हो गया कि जो भी चाहे, सरकारी कर देकर अपने यहां वेश्यालय खोल सकता था। रोम में परिस्थिति भिन्न थी। वहाँ पर शरीफ आदमी का वेश्या के साथ चलना, घूमना, इत्यादि वर्जित था। प्रसिद्ध वक्ता सिसरो ने अपने राजनीतिक विरोधियों को "वेश्यागामी" कहकर उनकी भर्त्सना की थी। रोम का राज्य संसार का पहला राज्य है जिसने वह कार्य किया जिसे बीसवीं सदी में हमने—सभ्य जगत् ने—किया। वहाँ पुलिस द्वारा वेश्या की रजिस्ट्री होती थी।[१] नागरिकों को वेश्या की पुत्री या पुत्र से विवाह करने की मनाही थी, वेश्याओं पर प्रतिबंध लगाने के लिए वहाँ बहुत से कानून बनाये गये, पर रोम प्रजातन्त्र के पिछले दिनों में भ्रष्टाचार तथा वेश्यागमन बहुत बढ़ गया था।[२]

रोम में वेश्याओं पर जो कर लगता था, उसे सम्राट् थियोडोसियस ने चौथी शताब्दी में बहुत कुछ माफ कर दिया था। सम्राट् कालीगुला ने उसे समाप्त कर दिया। वास्तव में इस कर को एकदम समाप्त करने का श्रेय सम्राट् अनस्तासियस प्रथम को है। सम्राट् जस्टीनियम ने छठीं शताब्दी में वेश्याओं को कुछ और अधिकार दिये।[३] ईसाई धर्मविरोधी लोग ईसाई कुमारी कन्याओं का अपहरण कर उनके साथ व्यभिचार कराना धर्म समझते थे। ईसाइयों ने अनेक कारणों से भ्रष्ट तथा पतिता स्त्री के साथ नर्मी के बर्ताव की सलाह शुरू से दी है। यदि गिरजा में जाकर मन से पछतावा किया जाय, तो सब पाप धुल जाते हैं—यह नसीहत थी। वेश्या के उद्धार के लिए बहुत कार्य हुए। पोप इनोसेंट तृतीय (११९८–१२१६) ने आदेश दिया कि वेश्या के साथ विवाह कर लेना बड़ी प्रशंसनीय बात है।[४] पोप ग्रेगरी ९वें ने जर्मनी में भठियारखाना बन्द कराने का आदेश दिया था। पादरियों को आदेश दिया गया कि

१. W. F. Amos—State Regulatiou of Vice

२. Gibbon—Decline and fall of Roman Empire

३. Flexner—Prostitution in Europe

४. W. W. Sanger—"The History of Prostitution"—The Medical Publishing Co., 1910.

"कुमारो से, अविवाहितो से कहो कि पतिता कन्याओ से विवाह कर ले या ऐसी लड-कियो को ईसाई महिला-आश्रमो मे भेज दे।" पर वेश्यावृत्ति रुकी नही, बढती गयी। गर्भपात, ऐन्द्रियिक बीमारी आदि के कारण १३वी सदी मे ही इनकी चिकित्सा के लिए अस्पताल खुल गये थे। गर्मी (आतशक) की भयकर बीमारी चारो ओर फैल गयी। एक स्त्री का अनेक पुरुषो के साथ सबध होने पर यही होगा। यूरोप मे एक-न-एक महायुद्ध लगा ही रहता था। सेना अपनी वासना की तृप्ति के लिए कही भी लडकियो पर टूट पडती थी। इससे सेना मे बीमारी भी खूब फैलती थी। सेना के द्वारा ही सन् १४९६ मे गर्मी की बीमारी इग्लैड पहुँची। उसे (बीमारी को) वहाँ पर फ्रेच या स्पेनी शीतला कहते थे।

वेश्या कभी समाप्त न हुई। जब उसे समाप्त करना असभव हो गया तो उस पर कानूनी प्रतिबध लगाये जाने लगे। पुराने रोमन कानूनो से इसमे बडी सहायता मिली। वेश्याओ की रजिस्ट्री (पुलिस के रजिस्टर मे उनका नामाकन आदि) रोम के बाद सबसे पहले सन् १७७८ मे फ्रान्स मे शुरू हुआ। इग्लैण्ड मे आज तक यह रजिस्ट्री का कानून नही है। वहाँ सन् १८८५, १९१२ तथा १९२२ के कानून के अनुसार लडकी भगाना, उसे व्यभिचार के काम मे लगाना या किसी को भी व्यभिचार के लिए फुसलाना गुनाह है। १३ से १६ वर्ष की कन्या के साथ भोग करना अपराध है, पर यह सब एकतरफा है—वेश्या अपने काम मे लगी हुई है। बर्लिन (जर्मनी की राजधानी) के अतर्राष्ट्रीय सम्मेलन ने सन् १७९२ मे "वेश्या के प्रति उदार भाव" बरतने की सलाह दी, क्योकि "यह बुरी चीज होते हुए भी आवश्यक है।" "मानव की कामवासना की स्वाभाविक इच्छा की पूर्ति करने के लिए इसका होना जरूरी है। अन्यथा समाज मे और गडबड पैदा हो सकती है।"

बर्लिन सम्मेलन ने लगभग डेढ़ सौ वर्ष पूर्व जो कहा था, आज भी वह सत्य है। आज के मानव मे कोई भी परिवर्तन नही हुआ है। उसकी वासना तथा समस्या मे कोई भी अन्तर नही है। वासना तथा उससे उत्पन्न समस्याएँ इतनी स्वाभाविक तथा निरन्तर की हैं कि मनुष्य लाख प्रयत्न करने पर भी उनके दायरे से बाहर नही निकल सकता। इसी लिए अपराधशास्त्र कहता है कि पहले मानव की समस्या को समझ लो, फिर उसे अपराधी कहो या दड दो।

वासना के अनेक रूप

हजारो वर्ष पहले की बात है कि मिस्र की एक रानी ने अपने पति नरेश ओसिरिस की हत्या हो जाने पर उसके शरीर का पता लगवाया। उसके ४० टुकड़े करके एक

वर्त्तन मे रखकर नदी मे बहा दिये गये थे। जब लाश मिली तो रानी ने प्रत्येक अग को अलग-अलग दफना कर उस पर स्मारक बनवा दिया पर नरेश का लिग नही मिला। रानी ने अजीर के पेड की लकडी का विशाल लिंग बनवाकर खडा कर दिया और आदेश दिया कि हर एक नर-नारी उस लिग का पूजन करे—और लिग के उस पूजन ने मिस्रवालो मे जो कामुकता भर दी उसका क्या वर्णन किया जाय ?

मिस्र मे आइसिस के मदिर मे पुजारी को ब्रह्मचर्य की शपथ लेनी पडती थी। रोम मे अग्निपूजा मे अग्नि को सदैव प्रज्वलित रखने के लिए कुमारी कन्याएँ नियुक्त की जाती थी। यदि इनमे से कोई भी पथ-भ्रष्ट हो जाती तो अग्नि को अशुद्ध करने के दोष मे उसको प्राणदड मिलता था।[१] किन्तु, मिस्र और रोम बडे विलासी देश थे।

विलासी कौन नही था, यह कहना बडा कठिन है। जिन यहूदियो ने वेश्यावृत्ति को निन्दनीय समझा था उनके देश मे विलासिता बहुत अधिक बढ गयी थी और वे हर प्रकार का कामुक उत्पात करते थे।[२] उन दिनो के यहूदी कानूनो मे अधिकाश कामवासना तथा उससे उत्पन्न होने वाली बीमारियो के सम्बध मे है। उनकी देवी "बाल पीयूर" का अर्थ ही था "अक्षत योनि की स्वामिनी"।[३] यहोवा ने इसकी उपासना की मनाही कर दी थी और इस आज्ञा को न मानने पर २४,००० नर-नारियो का कत्ल किया गया था। हिब्रू लोगो की देवी "आशिरा" तथा फोयेनीशिया की देवी आगलोरी केवल स्त्री की योनि के रूप मे पूजी जाती थी। पुरुष के लिग का इतना महत्त्व था कि यहूदी ईसाई धर्म मे प्रसिद्ध व्यक्ति अब्राहम ने अपने नौकर से शपथ दिलाते हुए कहा—"मै तुझसे अनुरोध करूँगा कि मेरे जंघे के नीचे हाथ रखकर (शपथ ले)।"[४] खतना कराने की प्रथा यहूदियो ने शुरू की। वे इसलिए ऐसा करते थे कि विवाह का सुख मिले।[५]

मिस्र मे राजकुल मे भी विलासिता भर गयी थी। जिस प्रकार लम्बे बालो को छंटवाकर छोटे रखने की प्रथा महमूद गजनवी के समय से शुरू हुई, उसी प्रकार

१. Marr पृष्ठ ९५

२ H. Cutner—A Short History of Sex-Worship-1940 का संस्करण. पृष्ठ २०

३. Inman—"Ancient Faith embodied in Ancient names".

४. Old Testment "Put, I pray thee, thy hands under my thigh"

५ Cutner—Page 23-Eeliot Smith का मत

बालो मे मोती पिरोने की प्रथा प्राचीन मिस्र ने प्रारम्भ की। शराब मे मोती घोल-कर पीने की रीति मिस्र की सुन्दरी रानी क्लिओपाट्रा ने शुरू की। उसकी बहिन जरीना का शृगार उसकी भारतीय बॉदी करती थी। शुतुरमुर्ग के पर से, सिगराफ की स्याही से ऑखो के भीतर सफेद हिस्सो पर नित्य बेलबूटे बनाती थी। नेत्रों के भीतर इतना बारीक शृगार एक भारतीय महिला करती थी।[१]

रोमन लोगो के कामदेवता का नाम प्रियापस था और कामदेवी का नाम बेनस। फोयेनीशिया मे कामदेवी को अस्तार्ती कहते थे। यह देवी उभयलिगी यानी पुरुष तथा स्त्री दोनो ही थी। इसके उपासक पुरुष स्त्री वेष धारण कर लेते थे।[२] रोमन लोग कामदेवी की पूजा का उत्सव मार्च के महीने मे मनाते थे। मिस्र की तरह यहॉ भी रथ पर एक विशाल लिग रखकर नगर की परिक्रमा कराते थे। पुरुष-स्त्री समान रूप से उसकी पूजा करते थे। स्त्रियॉ अपने हाथो मे लकडी या धातु का बना लिग लेकर चलती थी। पर अक्टूबर के महीने मे जब बक्कानालियन त्यौहार मनाया जाता था, उस समय स्त्री-पुरुष गन्दे-से-गदा तथा भद्दे-से-भद्दा काम खुले आम करते थे। इस उत्सव के समय की गन्दगी की इतनी बदनामी बढी कि सरकार को इसे कानूनन बन्द करना पडा।[३] रोम मे मदिरो की दीवारो पर और सार्वजनिक स्नानागार आदि मे "भोग प्रसग" के चित्र बने रहते थे। सार्वजनिक स्नानागारो मे हर प्रकार के प्रसग खुले आम होते थे। नगे स्त्री-पुरुष एक साथ स्नान करते थे। नगे युवक सड़को पर भागते हुए दिखाई पडते थे। वे लड़कियो को खुले आम डडो से पीट दिया करते थे। नाटको, अभिनयो मे पात्र नगे होकर अभिनय किया करते थे। पुरुष-ससर्ग का भी बडा रिवाज चल गया था। बडे लोग स्त्री रखेली ही नही, पुरुष रखेल भी रखते थे। फिलस्तीन से मिस्र तक की यात्रा करनेवाले नरेश हैड्रियन का एक सुन्दर यूनानी लड़के से बडा प्रेम था। यह लडका नील नदी मे गिरकर मर गया। इसका नाम था ऐतो-

१. Eafradeote के Narration उपन्यास में वर्णित कन्या जरीना या क्लिओ-पाट्रा ३००० वर्ष पूर्व की स्त्रियां हैं।

२. Cutner ने सन् १९१० में कैथोलिक सम्प्रदाय के ईसाइयों में सखी भाव (प्रभु ईसा की दुलहनें) के लोग पेरिस में देखे थे, पृष्ठ ६१।

३. बक्कस देवता के पुजारियों का एक गुप्त सम्प्रदाय दक्षिण इटली में था। लगभग आधी जनता इस पर श्रद्धा रखती थी। इस सम्प्रदाय में युवक तथा युवतियों की ही ज्यादातर दीक्षा होती थी। एक रखेल ने इसका रहस्योद्घाटन किया था।

नियो। इसके मरने का नरेश को इतना शोक हुआ कि उसके मृत्युस्थान पर उसी के नाम का नगर बसा दिया। उसकी प्रतिमाएँ साम्राज्य के हर नगर में बिठा दी गयीं। यह झूठ भी गढ़ दिया कि मरकर अन्तोनियो आकाश में एक नवीन तारा बन गया है।[१] यों तो रोम की सबसे प्रिय देवी कामदेवी वेनसके यूनान और रोम में मिलाकर ही १८५ मन्दिर थे।[२] रोम का सबसे प्रसिद्ध मंदिर देवी "आइसिस" का था। यह भ्रष्टाचार या व्यभिचार का केन्द्र था। "यह मंदिर वेश्याओं से भरा हुआ था।"[३] रोमन सम्राट् नीरो अपनी बर्बरता तथा क्रूरता के लिए बहुत प्रसिद्ध है। पर इसमें उसका क्या दोष है ?

नीरो की कथा

रोम के सम्राटों में नीरो का नाम लेने से ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं, पर अपराध-शास्त्र के विद्यार्थी के लिए वह एक आदर्श अध्ययन है।[४] नीरो के बाबा बड़े निर्दय तथा हृदयहीन व्यक्ति थे। राह चलते जानवरों के प्राण लेना उनका खिलवाड़ था। उनके समय के तलवार के खेल इतने निर्दय थे कि सम्राट् आगस्टस ने उन्हें (खेलों को) बंद करवा दिया। नीरो के पिता भी बड़े निर्दय व्यक्ति थे। अपने साथ पूरी तरह से शराब न पीने पर क्रुद्ध होकर उन्होंने अपने साथी को मार डाला था। एक लड़के को कुचल दिया था। वे बड़े विलासी व्यक्ति थे। कई औरतें रखेल थीं। इनकी पत्नी अग्रिप्पिना बड़ी महत्त्वाकांक्षी, विलासी, बदचलन स्त्री थी। जब इस स्त्री को बच्चा पैदा होने की सूचना नीरो के पिता को मिली तो उन्होंने कहा—"उसकी सन्तान पिशाच होगी तथा संसार के लिए अभिशाप।"

अग्रिप्पिना नीरो को अपनी मुट्ठी में रखना चाहती थी। उसने नीरो की सौतेली बहिन ओक्टाविया से उसकी शादी करा दी। नीरो की वासना सन्तुष्ट न हुई। फ्रायड नामक महान् मनोवैज्ञानिक ने लिखा है कि जिस लड़के की माता "मर्दानी" होती है, वह लड़का अप्राकृतिक संभोग का शौक़ीन तथा पुरुष-पुरुष विलासी होता है। नीरो

१. ईसवी सन् १४०–१५० की घटना, देखिए—Otto Kiefer—"Sexual Life in Ancient Rome"—1951–Page, 336-337

२. Cutner पृष्ठ ४९.

३. Otto Kiefer पृष्ठ १२९.

४. वही, पृष्ठ ३१८ से ३२१ तक

बचपन से ही ऐसा था। फिर वह अनेको स्त्रियो का भी शौकीन हो गया और कहते तो यहाँ तक है कि उसका अपनी ही माता से, जिसके पेट से पैदा हुआ था—उसी अग्रिप्पिना से प्रसग हो गया था। ऐसा व्यक्ति संसार का सबसे क्रूर तथा कठोर नरेश न होगा तो और क्या होगा ?

वासना, स्वभाव तथा परिवार के सम्मिलित प्रभाव का यह बडा महत्त्वपूर्ण अध्ययन है।

यूनानी सभ्यता मे

यूनान तथा रोम की सभ्यता मे बडा भारी अन्तर यह था कि रोम विश्वविजयी साम्राज्य था अतएव वहाँ के लोगो मे भौतिक, दुनियाबी चीज़ो के प्रति अधिक रुचि थी। पर चाहे कला हो या साहित्य, राजनीति हो या कामवासना, हर एक के साथ यूनानी सभ्यता ने एक विचित्र दार्शनिकता तथा आध्यात्मिकता का, धर्म तथा नैतिकता का मिश्रण किया है। किन्तु जिस कामुक कल्पना से उन्होने रचना का रूप समझा, उसी की लपेट मे, काम तथा भोग मे वे कामुकता की सीमा को भी पहुँच गये थे। यूनानी लोग आकाश को यूरानस[१] कहते थे—वह पुरुषलिगी था, उसमे पैदा करने की शक्ति थी। जब पृथ्वी मे भोग की इच्छा होती थी तो वह पृथ्वी का रमण वर्षा के जल द्वारा करता था। पृथ्वी के गर्भ मे भी गर्मी और नर्मी का प्रवेश कराकर अन्न आदि का उत्पादन करता था, आकाश पिता था, पृथ्वी माता थी। जब पृथ्वी माता ही भोग तथा वासना की शिकार हो सकती थी, तो उसकी सतान मनुष्य का क्या कहना है। यूनान मे "प्रेम तथा सौन्दर्य"[२] की देवी अफ्रोदोइत थी। इसकी, रोम मे वेनस की पूजा तथा मिस्र मे आइसिस देवी की पूजा मे कुछ ऐसी विधियाँ बरती जाती थी जिनसे पता चलता था कि प्राचीन काल मे तत्रशास्त्र तथा वाममार्ग का काफी प्रचार था। पर इस देवी द्वारा, जो कि "सुन्दर नितम्बोवाली"[३] थी, एक शिक्षा यह मिलती थी कि स्त्री ही प्रेम का आधार है। पृथ्वी को भोग की इच्छा हुई तो सृष्टि मे सब कुछ पैदा हुआ। इसी प्रकार पहले वासना का स्रोत स्त्री से प्रारम्भ होता है। देवी की

१. Otto Kiefer —पृष्ठ ३१८ से ३२१ तक

२ Hans Licht—Sexual life in Ancient Greece—1952 Edition—Page 181

३. वही, पृष्ठ २०१

पूजा मे तरह तरह के नियम थे। विभिन्न यूनानी नगरो का भिन्न-भिन्न चलन था। साइप्रस ऐसे सुन्दर टापू मे अफ्रोदाइत की मूर्ति का जलूस निकालकर सुन्दरी कन्याएँ स्नान कराती थी और फिर वे स्वय स्नान कर "खुले भोग-विलास" के लिए तैयार हो जाती थी। किसी नगर मे देवी की पूजा के लिए स्त्रियो तथा कुमारियो को पूजा के नौ दिन पहले से पुरुष-प्रसग करने की मनाही थी। नौ दिनो तक बिना सभोग के रहना बडा कठिन था।[१] इसलिए ये औरते पत्तो पर सोती थी तथा ठण्डी जडे अपने पास रखती थी ताकि कामवासना दबी रहे। फोतियस[२] का कहना है कि इन दिनो पुरुषो को अपने पास आने से बचाने के लिए औरते खूब प्याज खा लेती थी ताकि मुँह की बदबू से मर्द भाग जाय।[३] पर यह व्रत उनसे इसलिए कराया जाता था कि नौ दिन की छुटी-छुटाई वे समारोह तथा उत्सव के समय काफी कामोत्तेजित रहे। इसलिए उनके द्वारा पुरुषो को अधिक आनन्द मिलेगा। दायोनीसियस देवी की पूजा मे स्त्रियाँ तथा पुरुष एक विशाल लिग लेकर चारो तरफ नाचते-घूमते थे और फिर दूसरे दिन एकदम नगे लडके एक पैर पर सडक पर नाचते थे। फिर तो खुला विलास होता था।

देवताओ मे भी बडा भोग-विलास था। यूनान के प्रसिद्ध देवता प्रियापस एक दिन लजीली, शर्मीली लोटिस नामक कुमारी पर लट्टू हो गये। जब वह सुन्दरी दायोनिसियस देवी के त्यौहार मे दिन भर खेलने, कूदने से थककर, शराब के नशे मे चूर, अपनी सहेलियो के साथ मैदान मे घास पर सो रही थी, देवता प्रियापस पैर दबाये चुपके से आये और लोटिस की जघो पर का कपडा उठाने लगे। उसी समय सालेनस देव का गधा रेकने लगा। उसकी रेकने की आवाज से लोटिस जाग उठी। उसकी सहेलिने जाग उठी। प्रियापस की मनोकामना पूरी न हो सकी। क्रोधवश उन्होने उस बेगुनाह गधे को मार डाला। तब से यूनान मे देवता प्रियापस की सतुष्टि के लिए गधे का बलिदान होता है।[४] यूनानी देवताओ मे यह देवता कामवासना की मूर्त्ति है।

पर, पुरुष—पुरुष का सम्बध करनेवाले भी देवता थे। यूनानी हियासिथस नामक फूल की सुन्दरता विश्वविख्यात है। संसार के कोने-कोने मे यह फूल मिलता है। इसकी भी एक कथा है।[५] बलशाली देवता अपोलो को सुन्दर बालक हियासिथस से बड़ा प्रेम था। एक दिन वे इस सुन्दर लडके के साथ एक खेल खेल रहे थे। लोहे का

१. वही, पृष्ठ १११
२. Photius (ii, 228–Editor–Naber)
३. पृष्ठ १११ (हांस लिखित)
४. Sexual life in Greece—पृष्ठ २२१
५. वही, पृष्ठ ११४

गोल पहिया फेकने का खेल था।[1] वायु देवता जेफ़ाइस भी इस लडके से प्रेम करते थे और उसका अपोलो के प्रति प्रेम उन्हे बहुत बुरा लगा। उन्होने वायु के बेग से लोहे का भारी पहिया हियासिथस के सिर पर गिरा दिया। वह मर गया। जहाँ पर उसके सिर से रक्त गिरा था, पृथ्वी माता ने उसी के समान सुन्दर फूल उत्पन्न किये। इसी फूल का नाम हियासिथस है। इस हत्या का त्यौहार तीन दिन तक स्पार्टा मे मनाया जाता था। स्पार्टा मे नगे लडको का नाच बहुत प्रचलित था। ईसा से ६७० वर्ष पूर्व इस प्रकार का नृत्य बहुत प्रचलित था।[2]

यूनानियो ने भोग-विलास को पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया था। उनके यहाँ विवाह के बाद सुहागरात के बडे रोचक तरीके थे।[3] नववधू को किस प्रकार सकोच का प्रदर्शन करना चाहिए, यह भी सिखाया गया है। विवाह के विचित्र तरीकों से यूनानी इतिहास भरा पडा है। आबादी बढाने के लिए स्त्रियो को राजनीतिक अधिकार से हीन तथा दासता से मुक्त गैर-यूनानियो से भी विवाह करने का अधिकार था। पर ऐसे पति के पास जाने के समय, पहली रात को, बराबरी का दावा कायम रखने के लिए पत्नी नकली दाढी लगाकर पति के पास जाती थी।

यूनान मे स्त्री को पुरुष के ढग से तथा पुरुष को स्त्री के ढग से प्रयोग मे लाने की शुरूआत भी धार्मिक रूप से शुरू हुई।[4] हर्माफ्रोदाइतोस बडा ही सुन्दर युवक था। जब उसकी उम्र १५ वर्ष की हुई, कारिया झरने मे रहनेवाली जलदेवी सल्मासिस उस पर लट्टू हो गयी, उस बालक को बहकाकर पानी मे ले गयी। वही जबर्दस्ती उससे रमण करने लगी। उसका ऐसा प्रेम देखकर देवताओ ने दोनो के शरीर को जोड दिया। नर-नारी एक मे हो गये। उस तालाब को यह वरदान मिल गया कि जो भी उसमे स्नान करेगा, आधा पुरुष, आधा स्त्री हो जायगा। हर्माफ्रोदाइतोस के साथ पान तथा सैटिर्स नामक देवो के प्रसग के चित्र या मूर्त्तियाँ ससार मे सबसे भद्दी कामुक मूर्त्तिया है और यूनान मे ऐसी मूर्त्तियाँ या चित्र चारो ओर बिखरे पडे है। नेपुल्स के अजायबघर मे पान देव एक बकरी के साथ प्रसग कर रहे है—इसकी मूर्त्ति रखी है। देखने मे वह मूर्त्ति, जिसमे बकरी स्त्री की तरह लेट रही है, बडी भद्दी मालूम होती है। नर-नारी रूप का इतना रिवाज बढा कि यूनानी नगर कोस मे हरोक्लीज देवता को बलि चढाते समय पुरोहित तथा पुजारी स्त्री का वेष बनाते थे। स्पार्टा मे दूल्हन सुहागरात

१. वही, पृष्ठ ११४
२. वही, पृष्ठ ११५
३. वही, पृष्ठ ५३
४. वही, पृष्ठ १२५

के दिन मर्दाने कपडे पहनकर बैठती और उसका पति जनाने कपडे पहन कर आता। यूनान मे वेश्यावृत्ति भी काफी बढ गयी थी।

यूनानी वेश्या

धन के लिए सडक-सडक पर, राह चलते सौदा करनेवाली वेश्याएँ उस समय भी थी, आज भी है। ठीक वही प्रथा है—अन्तर तीन हजार वर्ष का है। ऐसी वेश्याओ के साथ एक कुटनी या दलाल भी होता था। ऐसी दलाली ज्यादातर औरते ही करती थी। एक प्राचीन ग्रन्थ मे एक वार्त्तालाप दिया हुआ है।[१] उससे उस समय की तथा आज की सभ्यता की समानता का अनुमान लग जायगा। एक सुन्दरी एक स्त्री के साथ सडक पर जा रही थी। एक आदमी ने सुन्दरी की कुटनी को रोककर पूछा —

पुरुष—नमस्ते, प्रिये।

स्त्री—नमस्ते।

पुरुष—तुम्हारे आगे आगे कौन जा रही है ?

स्त्री—तुमसे मतलब ?

पुरुष—पूछने का कारण है।

स्त्री—मेरी मालकिन है।

पुरुष—मै कुछ आशा करूँ ?

स्त्री—क्या चाहते हो ?

पुरुष—एक रात।

स्त्री—कितना दोगे ?

पुरुष—सुवर्ण।

स्त्री—तब दिल मत छोटा करो।

पुरुष—(मुद्रा दिखाकर)—इतना दूँगा।

स्त्री—इतने से न होगा।

प्रसिद्ध दार्शनिक केटो की कथा है कि वे एक भठियारखाने के पास खडे थे कि एक नवयुवक ने, जो वहाँ गया था, उनसे आँखे बचाकर भागना चाहा। केटो ने उसे देख लिया और बोले—"घबडाओ नही, यह कोई बुरा काम नही है।" कुछ दिनो बाद केटो ने देखा कि वह युवक बराबर वहाँ जाता था। तब उन्होने उससे

१. वही, पृष्ठ ३३७

कहा—"देखो कभी-कभी यहाँ आना बुरा नही है। पर यही घर बना लेना बुरा है।" भटियारखानो मे लडकियाँ अर्द्धनग्न अवस्था मे सडक पर खडी रहती थी ताकि लोग उनके शरीर का ऊपर से मुआयना कर पसन्द कर ले। असलेपियादीज का कथन है कि उन्होने एक ऐसी लडकी के साथ रमण किया था जिसका नाम हर्मियोन था। वह फूलो की कर्धनी पहने हुए थी। उस पर यह वाक्य भी लिखा हुआ था—

"मुझसे सदा प्रेम करना पर यदि दूसरो द्वारा भी मेरा सेवन हो तो डाह मत करना।"

यूनान मे दुराचार बहुत बढ गया था। आजकल की सब समस्याएँ वर्त्तमान थी। हस्तक्रिया बहुत प्रचलित थी।[१] लडकियो के लिए हस्तक्रिया के निमित्त लिंग बनते थे और बाजार मे बिकते थे। कामुक अध-विश्वास बहुत बढ गये थे। जो लडकी पहली बार रजस्वला हुई हो, उसके रक्त को लेकर यदि खेत मे गाड दिया जाय तो पाला नही पडेगा। रजस्वला के रक्त मे कपडा भिगाकर यदि किसी भी नारियल या सुपाडी के पेड के नीचे गाड दे तो पेड सूख जायगा। यदि उसी रक्त को दरवाजे के सामने छिडक दिया जाय तो कभी घर मे भूत-प्रेत की बाधा न होगी। रजस्वला लडकी यदि पेशाब करे तो उस पेशाब से घोडो की बीमारी अच्छी हो सकती थी। पुरुष के पेशाब का भी बडा महत्त्व था। साँप काटने पर या तो अपनी या नाबालिग लडके की पेशाब पी लेने से जहर उतर जाता था। पेशाब से बहुत कुछ जादू-टौना हो सकता था पर "उसकी ताकत बढाने के लिए स्त्री-पुरुष को चाहिए कि लघुशका करते समय उस पर थूक दिया करे।"

यह थी परम सभ्य तथा दार्शनिक यूनानियो की कामुकता तथा विलासिता! प्लेटो ऐसे दार्शनिक ने भी लिखा है[२] कि "युवक तथा युवतियो को अबाधित रूप से एक-दूसरे से मिलना चाहिए, ताकि वे एक-दूसरे को अधिक निकट से जान ले।" स्त्री-पुरुष की समानता यहाँ तक बढ गयी थी कि स्पार्टा मे सार्वजनिक दगलो मे स्त्री-पुरुष की कुश्ती होती थी।[३] अतएव आज की रहन-सहन तथा सभ्यता मे और तीन हजार वर्ष पूर्व की यूनानी सभ्यता और उसकी कल्पना मे क्या अतर था? रोम तथा यूनान मे पुरुष तथा स्त्री की योनि के रूप की मिठाइयाँ बाजार मे बिकती थी। इटली के बाजारो मे १८वी सदी तक मोम के बने लिंग तथा योनि खुले आम बिका करते थे।[४]

१. वही पृष्ठ ३१४, १५ २. प्लेटो–Laws

३. अरिस्तू ने इसे पसन्द नही किया है।

४ Cutner—A short History of Sex Worship.

अध्याय ५

मध्ययुग तथा ईसाई धर्म के आगमन के बाद

यूरोप को नया प्रकाश मिला

बीसवीं सदी की सभ्यता में इतिहास, राजनीति तथा नैतिक शास्त्र के अध्ययन का प्रारम्भ पश्चिमीय देशों से माना जाता है और निस्सन्देह अपनी पराधीनता तथा दारिद्र्य के कारण इन सब विषयों में पूर्वी देशों का नेतृत्व समाप्त हो गया था। इसका एक परिणाम यह भी हुआ कि हम अपने ही प्राचीन शास्त्र तथा ग्रन्थों को भूल गये और शिक्षा तथा आदर्श, अध्ययन एवं निर्देश के लिए पश्चिम का मुँह देखने लगे। रोम, यूनान आदि की सभ्यता के पतन के बाद अर्द्ध असभ्य, जंगली तथा अपढ़ यूरोप को ईसाई धर्म और ईसाई प्रचारकों से एक नयी सभ्यता, नयी संस्कृति तथा नया प्रकाश मिला।

ईसाई धर्म भी एशिया में ही पैदा हुआ। एशिया के हज़ारों वर्षों की सभ्यता के गुणों को लेकर तथा समय (काल) द्वारा अवगुणों का परिष्कार कर एक नवीन ज्योति उसने प्रदान की। जिस प्रकार मुसलिम धर्म के प्रवर्त्तक हज़रत पैग़म्बर साहब ने एक नया प्रकाश, एक नया नेतृत्व संसार को ईसा के लगभग ६०० वर्ष बाद दिया, वही कार्य उनसे काफ़ी पहले हज़रत ईसा ने किया था। किसी धर्म या मज़हब या उसके नेता का तुलनात्मक अध्ययन करने से कोई लाभ नहीं होता। देश, काल तथा पात्र के अनुसार सभ्यताएँ पनपती और बनती हैं। जो चीज़ एक देश में अच्छी समझी जाती है, वही दूसरे देशों में बुरी समझी जाती है। पूर्वी गाइना (अफ्रीका महाद्वीप) के तट पर तोब्रियांद जाति रहती थी। इस जाति में दो प्रेमियों ने हाथ में हाथ मिलाकर बैठना शुरू किया तो उसे ईसाई धर्म का बुरा प्रभाव कहकर वहां के बुज़ुर्ग बुरा मानते थे[१], जबकि उस जाति में विवाह के पहले कुमारी कन्या

१. Dr. Bronislaw Malinowski—The Sexual life of Savages —तृतीय संस्करण १९३१, चतुर्थ संस्करण १९५२—पृष्ठ ४०३

का अधिक से अधिक ससर्ग बहुत श्लाघनीय समझा जाता है। यह उदाहरण देने से हमारा तात्पर्य यह है कि नैतिक आचार की सीमा या मर्यादा निर्धारित करना असम्भव है।

अस्तु, ईसाई राज्यो के द्वारा आधुनिक सभ्यता का विकास हुआ अतएव वे ईसाई धर्म के प्रचार के बाद के समय को बडा महत्त्व देते है। किन्तु हमको यह देखना है कि क्या उनका यह दावा सही है। या इतिहास के मध्य युग मे—ईसवी सन् १६०० या १७०० तक—क्या ईसाई देशो मे भी धर्म के नाम पर दुराचार बहुत नही बढ गया था? हर एक देश का अलग-अलग उदाहरण देने से कोई लाभ नही है। काम चलाने के लिए कुछ थोडी सी बाते बतला देना पर्याप्त होगा। भारतवर्ष को दो सौ वर्ष तक पराधीन रखनेवाले अग्रेज लोग सभ्यता का तथा नैतिकता का सबसे अधिक दावा करते है। कुछ हमारे मन पर भी यही प्रभाव है कि उनके यहॉ नैतिकता तथा सदाचार काफी उन्नति पर रहा होगा, यद्यपि आजकल "पश्चिमी सभ्यता की चमक मे उनका चरित्र गिर गया है।" पर दोनो ही धारणाएँ गलत हैं। न तो वे बहुत ऊँचे थे और न बहुत गिरे ही है। यह सब हमारे दृष्टिकोण की बात है।

मध्य युग के भ्रष्टाचार

ईसाई धर्म के दो प्रमुख सम्प्रदाय है—रोमन कैथोलिक तथा प्रोटेस्टेट। कैथोलिको को मोटे तौर पर सनातनी या मूर्त्तिपूजक तथा प्रोटेस्टेटो को सुधारवादी तथा कुछ-कुछ आर्यसमाजी जैसा समझिए। रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय वालो का दावा है कि उनके प्रभाव से ही विवाह-बधन सदा के लिए दृढ हो गया और विवाह-विच्छेद असभव कर दिया गया।[1] स्वय रोमन कैथोलिक देशो मे यह दावा गलत साबित हुआ। मध्य काल मे फ्रान्स मे यह नियम था कि यदि पति या पत्नी विवाह के बाद यह साबित कर दे कि उनका सम्बंध नही हुआ है तो विवाह टूट जाता था। इस बात का निर्णय करने के लिए कि उनका सम्बध हुआ है या नही, रोमन कैथोलिक पादरी पुरुष तथा स्त्री को अपने तथा डाक्टरो के सामने एकदम नगा करके खड़ा कराते और तब तरह-तरह से जॉच करते कि सम्बध हुआ है या नही। सन् १६७७ मे फ्रेच महासभा ने इस नियम को ही समाप्त कर दिया वरना इससे बडा भ्रष्टाचार फैल गया था।

१. भारत, रोम, यूनान किसी भी सभ्यता का जानकार इस दावे को झूठा कहेगा।

पर-पुरुष तथा पर-स्त्री प्रसग करनेवाले नर-नारी को एकदम नगा करके गधे पर घुमाते थे। सजा के साथ साथ इससे समाज को कामुक आनन्द मिलता था। सम्राट् लूई तेरहवे के भाई ड्यूक आव और्लीन की रखेल को भी इसी प्रकार सडक पर नगा करके घुमाया गया था[१]। ईसाइयो मे ही एक "आदम-वादी"[२] सम्प्रदाय था। आदम सर्वप्रथम पुरुष थे। इस सम्प्रदाय के लोग (स्त्री, पुरुष) नगे रहा करते थे। एक सम्प्रदाय अनाबप्तिस्तो[३] का था। ये लोग अर्द्धनग्न रहते थे तथा जितनी स्त्रियाँ चाहे रख सकते थे। इन "सभ्य पर अर्द्धनग्न बहु-स्त्री वाले" ईसाई सम्प्रदाय वालो मे तथा मैक्सिको के "असभ्य" कहे जानेवाले लोगो मे क्या अन्तर था? जब स्पेन ने पहली बार मैक्सिको पर हमला किया,[४] तत्कालीन मैक्सिको नरेश माटेजुमा की ३००० पत्नियाँ थी। मार्कोपोलो नामक प्रसिद्ध यात्री ने अपनी यात्रा के वर्णन मे तार्तारी देश का वर्णन किया है जहाँ पर मेहमान के आने पर लोग उसकी खातिर मे अपनी पत्नी भेट कर देते थे या स्वय घर छोडकर चले जाते थे और मेहमान के जिम्मे अपना घर और अपनी बीबी कर जाते थे।

स्त्री से घृणा

इन प्राचीन रीति-रिवाजो पर नाक-भौ सिकोडने से काम न चलेगा। जिस समाज मे ये प्रचलित थे, उनका अपना महत्त्व था। यहूदियो मे "दुराचार" की बाते हम ऊपर लिख आये है, पर उनके समाज मे स्त्रियो का बडा नीचा स्थान था। सडक पर किसी स्त्री से बाते करना, चाहे वह अपनी पत्नी ही क्यो न हो, असभ्यता समझी जाती थी। यहूदी पुरुष अपनी प्रार्थना मे भगवान् को धन्यवाद देते थे कि उसने उनको औरत नही बनाया।[५] इसका परिणाम यही न हुआ कि स्त्री केवल भोग की

१. Cutner—A Short History of Sex Worship, पृ० १२०

२. Cult of Adamites

३. Anabaptists

४. मेक्सिको के स्वतंत्र साम्राज्य का वास्तविक पतन १५१९ से १५२१ के बीच में हुआ, हरनान्दो कोर्टीज की सेना ने मेक्सिको के "आजतेक साम्राज्य" को नष्ट कर दिया और अंतिम आजतेक नरेश काहुतेयाक को कत्ल कर दिया गया.।

५ Marr—Sex in Religion (1936 edition) पृष्ठ ७२

वस्तु ही बन गयी। फारिसी[1] जाति मे एक सम्प्रदाय था जो सडक पर इसलिए आँखें बन्द करके चलता था कि कही कोई औरत न दिखाई पड जाय। मोची लोग जूता बनाते समय निगाहे नीचे किये रहते थे और यदि वेश्या भी सामने आ जाती थी तो इसलिए नेत्र नही उठाते थे कि कही किसी अन्य स्त्री पर आँख न पड जाय। "मृत सागर" (डेडसी) के निकट इसेनी[2] नामक सम्प्रदाय के लोग, स्त्री तथा पुरुष एकदम ब्रह्मचारी रहते थे। पुरुष अपने पास स्त्री को फटकने तक नही देता था। निस्सन्देह ईसा मसीह ने स्त्रियो के पद को काफी ऊँचा उठाया। यूरोप मे तथा एशिया के कतिपय भागो मे वे भोग तथा आनन्द की वस्तु से ऊँचे उठकर पुरुष के समान अधिकार वाली बनी। पर, ईसा के ही अनुयायी साधु पाल स्त्रियो के प्रति अच्छा भाव नही रखते थे। उनका कहना था कि "कभी भी विवाह न करना अच्छा है। पर अगर कामवासना सताती हो तो उस आग मे झुलसने से बेहतर है कि शादी कर लो।"

तीसरी सदी मे स्त्रियो के प्रति विरक्ति का एक बेग ईसाइयो मे आया।[3] साधु सायमन ३० वर्ष तक एक खम्भे के ऊपर रहते थे, वही बैठे तपस्या करते थे। रोम छोडकर जेरोमी बेथेलहम मे रहते थे। वे कहते थे—"वासना निहायत गन्दी चीज है।" ईसाई-सन्यासिनी स्त्रियो को, जिनको लोग "प्यारी बहने" कहते थे, जेरोमी ने रखेलियाँ तथा दुराचारिणी तक कह डाला। पादरियो को अनिवार्य रूप से सच्चरित्र रहने का आदेश तथा तत्सबधी कानून दूसरी या तीसरी शताब्दी से शुरू हुआ।[4]

इसलिए किसी सभ्यता या नियम को अपने ही दृष्टिकोण से बुरा भला नही कहा जा सकता। शेपर्ड ने सही लिखा है कि "कुछ ऐसी सामाजिक बुराइयाँ है जिनके बारे मे बाते करने मे बहुत बुरा लगता है पर वे इतनी बुरी नही है कि उनको भुला दिया जाय।"[5]

यूनानियो मे सगी बहिन से व्याह करने का रिवाज चल पडा था। उन्ही की कथा है कि जिऊस ने हेरा से शादी की। हाइपरियन ने थेरिया से शादी की। दोनो उनकी बहिने थी। यदि प्राचीन प्रसिद्ध सभ्य राज्य कार्थेज के देवता "मोलोश" का पुजारी

१. Pharisees
२. Essenes sect near Dead Sea
३. Marr—Sex in Religion पृष्ठ ८०
४. वही—मार की पुस्तक, पृष्ठ ९५
५. H. R. L. Sheppard—Some of my Religion

और पुरोहित केवल हिजडा ही हो सकता था तो इसमे कोई न कोई तथ्य था। जन्म से पैदा हिजडा होने की ज़रूरत नही थी। जो अपना लिग काटकर फेक दे, वही पुजारी बन सकता था। पर, ब्रह्मचर्य की इतनी विकट भावना के भूखे मोलोश देवता की तृप्ति बाल-बलि से होती थी। छोटी उम्र के लडके-लडकियो का बलिदान चढाया जाता था।

मानव-स्वभाव बडा विचित्र है। उसकी मर्यादा बडी विचित्र है। लाखो वर्षों मे ज़मीन बदल गयी, हवा-पानी बदल गया, तब इसान क्यों न बदले। ईसा से २५०० से १५०० वर्ष पूर्व अरब सागर के निकट के नगर सुतकजिन-दोर से अरब सागर के ३०० मील लम्बे वर्त्तमान पानी पर उस समय सूखी भूमि थी। उस से पैदल चलकर १००० मील दूर शिमला की पहाडियो की तराई मे बसे हुए ऊपर गॉव तक अगर चले आते तो चारो ओर आदमी, उसकी बस्तियॉ और चहल पहल दिखाई देती।[1] कल जहॉ पानी था, आज वहॉ बस्ती है, जमीन है और कल जहॉ बस्ती थी, आज वहाँ वीरान है। पर मानव-स्वभाव की अन्तरतम बाते ज्यो की त्यो हैं। उसकी इच्छाओ और वासनाओ का रूप या प्रकार या ढग बदल गया है पर चीज वही है।

आज के २ से ४ लाख पहले के जो औजार मिले है उनमे एक कुल्हाड़ी[2] भी है, जिससे लकडी और सिर, दोनो ही आज कटते है। औजार बदल गया है। स्त्रियो के साथ जवरन प्रसग यानी बलात्कार तब भी होता था, आज भी होता है। वर्त्तमान पाकिस्तान मे मर्दान से १७ मील पूर्व (उत्तर-पूर्व) व नौशेरा से २४ मील उत्तर-पूर्व, हजारो वर्ष पूर्व, बहुत सी स्त्रियॉ खेतो पर काम कर रही थी। पुरुषो ने उनके साथ बलात्कार किया। स्त्रियो ने भगवान् से प्रार्थना की कि पुरुषो को श्राप दे। भगवान् ने भ्रष्ट तथा भ्रष्टा दोनो को पत्थर कर दिया और इस मैदान मे १० फुट ऊची ये मूर्त्तिया दो या चार फुट के फासले पर आज तक खडी है।[3] ३२ मूर्त्तिया हैं—इनकी यही कथा बतलायी जाती है। बलात्कार आज भी होता है पर पत्थर न बनकर उन्हे पत्थर की दीवालो के भीतर, जेल मे रहना पडता है।

१. R. E M. Wheeler—Five Thousand Years of Pakistan

२. Chopper कुल्हाडी, देखिए व्हीलर की पुस्तक, पृष्ठ १५

३. Colonel D. H. Gordon के अनुसार व्हीलर की पुस्तक में उद्धृत, पृष्ठ ३५

इंगलैण्ड की वासना

सभ्यता का डका पीटनेवाला इगलेंड मध्ययुग मे दुराचार की सीमा भी लाघ गया था। आइवन ब्लाक कहते है कि "अग्रेज पैदायशी पशु है . अक्षतयोनि कुमारी कन्याओ के पीछे दीवाना रहता है।"[१] अग्रेज इतना विलासी था कि बडी जल्दी अपनी स्त्री से इसकी तबियत भर जाती थी और तब वह उसे भरे बाजार मे जाकर नीलाम कर देता था। १९वी सदी तक वहा ऐसा होता रहा।[२] सन् १८२३ मे लन्दन मे एक पैसे मे एक औरत बिकी थी। एक लेखक के अनुसार संसार मे सबसे सुन्दर पशु अग्रेज है।[३] और दूसरे लेखक के अनुसार बर्बरता तथा पशुता इस सुन्दर पशु के स्वभाव मे है। यह पशुता उसके भिन्न आचरणो से प्रकट हो जाती है।[४] दुराचारी अग्रेज आगा-पीछा नही सोचते। लदन के निकट एक ग्राम में जेम्स टाटर नामक एक मूर्ख रहता था। यह इतना कामुक था कि किसी भी लडकी को पकड लेता था और बलात्कार कर बैठता था। जब यह किसी प्रकार नही सुधरा तो सन् १७९० मे उसका शिश्न ही काट दिया गया।

ईसाई सम्प्रदाय मे, रोमन कैथोलिकों मे—"प्रभु ईसा की दुल्हने"[५] आजन्म ब्रह्मचर्य का व्रत लेकर गिरजाघर को आत्मसमर्पण कर देनेवाली महिला संन्यासियों की प्रथा है। इनको "नन" कहते है। ये स्त्रिया गिरजाघरो का तथा समाजसेवा का काम करती थी और दिन रात पूजा-पाठ मे बिताती थी। ऐसे ही पुरुष साधु[६] भी होते थे। इनके अलग आश्रम[७] होते है। गिल्वर्ट ने सन् ११४८ मे ऐसे १३ आश्रम इंग्लैंड मे खोले जिनमे पुरुष तथा स्त्री साधु तथा साध्विया एक ही मकान मे रहती थी। दोनों

१. "Inborn brute—best for vırgıns"–Page 12–Ivan Bolck अनुवादक Wılliam H Forstern—"Sexual lıfe ın England"–Pub. Francis Aldor–London–1938

२. वही, पृष्ठ १२

३. H. R Fınch—"Romantic love and personal beauty"–Pub. Breslan, 1890–Vol. II–Page 538

४. Ivan Block ५ Brıde of Jesus

६. Monks

७. Cloisters

धन, अस्त्र, यन्त्र, अन्न और जल से पूर्ण तो रहते है, तथा शिल्पी, यन्त्रादिको के निर्माता कारीगर और सशस्त्र योद्धाओ से परिपूर्ण तो है? मेधावी, पराक्रमशाली बुद्धि पर भी काबू रखने वाला, विचक्षण एक मन्त्री ही राजा के विपुलतम राज्य की प्राप्ति का कारण होता है। इसलिए तुम ऐसे मन्त्री को अपनाने मे यत्नशील तो रहते हो?

भारतीय दण्डनीतिशास्त्र मे राष्ट्र के १८ पदाधिकार तीर्थ शब्द से पुकारे गये है। १—प्रधान मन्त्री, २—पुरोहित, ३—युवराज, ४—सेनापति, ५—दौवारिक (द्वारपाल), ६—रनिवास की रक्षा मे नियुक्त (अन्त पुराधिकृत), ७—कारागाराध्यक्ष (जेलर), ८—धनाध्यक्ष (खजाने का प्रधानाधिकारी), ९—कार्य नियोजक (राजकर्मचारियो को उनके उन उन कार्यो मे नियुक्त करने वाला), १०—प्राडविवाक (जज आदि न्यायालय के विचारक), ११—सेना को वेतन देने वाला, १२—नगराध्यक्ष (कलक्टर), १३—कर्मान्तिक (किसी कार्य के अन्त मे वेतन लेने वाला), १४—राज्य सीमा पाल, १५—दुर्गपाल (किले की रक्षा करने वाला), १६—राष्ट्रपाल, १७—दण्डपाल, १८—धर्माध्यक्ष। इन अठारह पदो के अधिकारियो को १८ तीर्थ कहा है। दूसरे राज्य के ये १८ पदाधिकारी तथा अपने राष्ट्र के प्रधान मन्त्री, पुरोहित और युवराज इन तीन तीर्थो को छोड कर शेष १५ अधिकारियो का सवाद तुम यथार्थ रूप से जानते तो रहते हो? राजा के द्वारा उन उन कार्यों के लिये विनियुक्त गुप्तचरवर्ग आपस मे एक दूसरे को न जानता हुआ तथा औरो से भी अविदित अपने तथा दूसरे राष्ट्रो के १८ पदाधिकारियो की पूरी कारवाइयो को जानकर तुम्हारे सामने पूरा समाचार तो बतला देता है? एक एक तीर्थ का कार्य जानने के लिए नियुक्त तीन गुप्तचर एक साही सच्चा समाचार बतलावे तो राजा उसका यथोचित प्रतिविधान करे। चारगणो के द्वारा प्राप्त समाचार यदि परस्पर विरोधी हो तो राजा उसका यथार्थ निर्णय करके उसकी यथोचित व्यवस्था करे।

देवर्षि नारद युधिष्ठिर से फिर कहते है कि हे महाराज! तुम परराष्ट्र के १८ तीर्थों का तथा अपने १५ तीर्थों का यथार्थ समाचार चारगणों के द्वारा जान तो पाते हो? शत्रुराजाओ का गुप्त रूप से सारा समाचार तुम पूरी सावधानी से सर्वदा जानते तो रहते हो? विनय सम्पन्न, अच्छे वश मे पैदा हुए, अनेक विद्याओ के पारगामी, असूयारहित एव शास्त्र-चर्चा मे कुशल पुरुष को तो तुमने पुरोहित कार्य मे नियुक्त किया है? शास्त्रज्ञ, बुद्धिमान्, कुटिलता रहित पुरुष को तो तुमने अपने अग्निकार्य में नियुक्त किया है? सामुद्रिकशास्त्र मे पूर्ण दक्ष एव ज्योतिषशास्त्र मे कुशल धूमकेतु (पुच्छल तारा) भूकम्प आदि दिव्य उत्पातों तथा भौतिक उत्पातो को जान सकने में पूर्ण दक्ष ज्योतिषी को तुमने नियुक्त तो किया है? तुमने अपने राज्य मे उत्तम, मध्यम और अधम व्यक्तियों को उनके अनुरूप ही

उत्तम, मध्यम और अधम कार्यों मे तो नियुक्त किया है ? धर्मोपधा, अर्थोपधा, कामोपधा और भयोपधा इन चार प्रकार की उपधा (छल से किसी व्यक्ति की परीक्षा करने को उपधा कहते है) द्वारा परीक्षित होने पर सर्वथा विशुद्ध प्रमाणित मन्त्रिवर्ग को उनके योग्यतानुसार कार्य मे तुमने उनको नियुक्त तो किया है ? जिसमे शत्रुराजाओ को पता न चलने पाये इस रूप मे तुम शत्रुराजाओ के राज्य की पूरी खबरे सावधानी से सर्वदा जानते तो रहते हो ?

तुम उग्र दण्ड द्वारा प्रजावर्ग को उद्विग्न तो नही करते ? मन्त्रिवर्ग तीक्ष्णदण्ड द्वारा तुम्हारे राज्य का शासन तो नही करते ? तुम्हारा मन्त्रिवर्ग तुम्हारी अवज्ञा तो नही करता ? तुमने उत्साहयुक्त, शूर, बुद्धिमान, धैर्यशाली, निर्मलबुद्धि, अच्छे कुल मे पैदा हुए, तथा तुम्हारे प्रति पूर्ण अनुराग रखने वाले एव कर्मदक्ष व्यक्ति को तो सेनापति पद पर नियुक्त किया है ? सब प्रकार की युद्धविद्याओ मे पूर्ण निष्णात, एव अत्यन्त पराक्रमशाली बलप्रधान व्यक्तियो का पूर्ण सत्कार पूर्वक सम्मान तो करते रहते हो ? तुम्हारे सैनिको को यथोचित वेतन और भत्ता आदि तो ठीक समय पर मिलता रहता है ? उसमे विलम्ब तो नही होता ? जो लोग वेतन और भत्ता लेकर कार्य करते है उनको उचित समय पर वेतन आदि न मिलने से वे दुखी होने के कारण स्वामी के प्रति विरक्त हो सकते है, जो स्वामी के लिए विशेष अनर्थकारी प्रमाणित होता है। तुम्हारा प्रधान अमात्यवर्ग तुममे पूर्ण अनुरक्त तो रहता है ? युद्ध आदि विपत्ति के समय तुम्हारे लिए अपने प्राण तक देने को तैयार तो रहता है ? तुम्हारा सेनापतिवर्ग तुम्हारी आज्ञा के बिना ही अपने इच्छानुसार तो सैन्य सचालन नही करता ? तुम्हारे भृत्यो मे से किस व्यक्ति ने अपने विशेष योग्यतानुसार कौन सा विशेष कार्य किया है इसको जानकर तुम उसका अधिक सम्मान तो करते हो ? एव उसका वेतन तथा भत्ता तो बढा देते हो ? तुम ज्ञानवान् एव विद्याविनीत व्यक्तियो को उनके गुणानुरूप दान मान द्वारा सम्मानित तो करते रहते हो ? तुम्हारे कार्य सम्पादन के लिए जिन्होने प्राण दे दिये है, अथवा तुम्हारे नौकरो मे से जो तुम्हारे कार्य करने के लिए आपत्ति मे पड गये है, उनके पोष्यवर्ग (जिनके पालन-पोषण की उन पर जिम्मेदारी थी) का तुम भरण-पोषण तो करते हो ? जो व्यक्ति किसी से डर कर अपनी रक्षा के लिए तुम्हारी शरण में आया हो, अथवा जो तुम्हारा दुर्बल शत्रु तुम्हारा शरणापन्न हो गया हो, या जो युद्ध में पराजित तुम्हारी शरण मे आ गया हो, उन सब की तुम रक्षा तो करते हो ? तुम अपनी प्रजा के लिए माता-पिता की तरह अशकनीय तो रहते हो ? तुम दुर्भिक्ष अथवा महामारी आदि सक्रामक रोगों से शत्रुराज्य के आक्रान्त होने पर शत्रुराष्ट्र पर आक्रमण करने मे विलम्ब तो नहीं करते ? आक्रमण के समय तुम अपना मन्त्र, कोष और भृत्यवर्ग पर पूरी सतर्क दृष्टि तो रखते हो ? अर्थात् मन्त्र, कोष और सैनिकवर्ग पर पूर्ण दृष्टि रखते हुए आक्रमण

तो करते हो? आक्रमण के समय तुम अपनी प्रभुशक्ति, मन्त्रशक्ति और उत्साहशक्ति का पूरा ध्यान तो रखते हो? तुम पूर्वोक्त बारह प्रकार के राजमण्डल का पूरा अभिप्राय ठीक ठीक जानकर एव शत्रुवर्ग के पराजय का कारणभत उनके क्रोधज या कामज व्यसनो को जान कर तथा अपने पक्ष मे उक्त व्यसनो का अभाव देख कर ही तो शत्रुराज्य पर आक्रमण करते हो? युद्ध यात्रा के पूर्व तुम अपने सैनिको को अग्रिम वेतन या भत्ता तो दे देते हो? तुम्हारे शत्रुराज्यो मे जो सेनापति वर्ग है, उन्हे गुप्त रूप से उनकी योग्यतानुसार धन रत्नादि प्रदान तो करते रहते हो?

तुम सबसे पूर्व स्वय जितेन्द्रिय हो अपने को जीत कर बाद मे अजितेन्द्रिय अपने शत्रु को जीतने की चेष्टा तो करते हो? तुम जिस समय शत्रु पर आक्रमण करने के लिए यात्रा करते हो उससे पूर्व अर्थात् सेना के शत्रुराज्य मे पहुँचने के पहले साम, दान, भेद और दण्ड आदि उपायो का प्रयोग तो कर लेते हो? तुम शत्रु पर चढाई करने के पूर्व अपने राष्ट्र की रक्षा का पूर्ण प्रबन्ध तो कर देते हो? अपने राज्य की पूर्ण रक्षा का प्रबन्ध कर शत्रुराज्य पर आक्रमण और शत्रु को जीत कर शत्रुराज्य की रक्षा का प्रबन्ध तो तुम करते हो? तुम्हारी सेना मे १—रथ, २—हाथी ३—अश्व, ४—पदाति, ५—विष्टि (फौज के लिए रास्ते आदि बनाने वाला कर्मकारवर्ग—सफरमैना), ६—नौसेना, ७—गुप्तचर, ८—दैशिक (फौज को रास्ता बताने वाला वर्ग दैशिक कहलाता है, जलयुद्ध में जल के रास्तो को जानने वाला दैशिक, और स्थल युद्ध मे स्थल का रास्ता जानने वाला दैशिक) यह अष्टाङ्ग से सुसम्पन्न तो है? तुम्हारी इस अष्टाङ्ग से युक्त सेना श्रेष्ठ सेनापतिवर्ग से सरक्षित एव सचालित हो शत्रु विनाश मे समर्थ तो होती है?

जिस समय शत्रुराज्य मे खेती पक कर तैयार हो चुकी हो अथवा जिस समय शत्रुराज्य मे अकाल पडा हो, उस समय तुम विलम्ब न करके शत्रुराज्य पर आक्रमण कर उसको नष्ट करने का प्रयत्न तो करते हो? तुम्हारे राज्य में जैसे तुम्हारे राज्य की रक्षा के लिये अधिकारी वर्ग नियुक्त है इसी तरह शत्रुराज्य मे भी तुम्हारा अधिकारी वर्ग गुप्त रूप से नियुक्त रहता हुआ तुम्हारे राज्य के अधिकारी वर्ग को सब तरह की अनुकूलता तो प्रकाशित करता रहता है, तथा शत्रुराज्य में रहने वाले तुम्हारे प्रच्छन्न अधिकारी वर्ग की तुम्हारा राज्य स्थित अधिकारी वर्ग सहायता तो करता रहता है? तुम्हारे खाद्यपदार्थ एव वस्त्र, चन्दन, अगरु गात्रानुलेपन आदि अपेक्षित आवश्यक वस्तुएँ तुम्हारे विश्वसनीय नौकरो द्वारा तुम्हारे लिए सुरक्षित तो रहती है? तुम्हारा खजाना, अन्न सग्रह, स्थान, सवारी, अस्त्र, नगर, दुर्ग आदि एवं तुम्हारा आय विभाग—धर्मबुद्धि वाले तुम्हारे अनुरक्त नौकरो के द्वारा सुरक्षित तो है? आभ्यन्तर रसोइया आदि तथा बाह्य सेनापति वर्ग के द्वारा तुम्हारी व्यक्तिगत रक्षा की पूर्ण सुव्यवस्था तो रहती है? इन आभ्य-

किसी कार्य में सहायता माँगने गयी। उन्होंने उससे कहाँ कि जाड़े में कहां बाहर खड़ी रहोगी। आओ लेट रहें—और वह उनके साथ लेट रही।[1] राज्य के वीर पुरुष, यानी सरदार (नाइट) इतने विलासी हो गये थे कि अपना गुप्तांग खोलकर चलते थे। सम्राट् एडवर्ड चतुर्थ ने फरमान निकाल कर आदेश दिया कि ऐसा कपड़ा पहना करें कि गुप्तांग ढँका रहे।

पुरुष-पुरुष का व्यभिचार भी वहां बहुत फैल गया। यह दुराचार संसार में हर जगह था और है भी। यहूदी लोग अप्राकृतिक संभोग के कट्टर विरोधी थे पर ग़ैर-यहूदी देवताओं की उपासना में इसके धार्मिक प्रयोग को वे भी स्वीकार करते थे। ब्रिटिश इतिहास के अनुसार सन् १६९८ में इंगलैंड में अप्राकृतिक संभोग (सोडोमी) का बड़ा प्रचार था। ईसाई साध्वियां भी दुराचार का अड्डा बन गयी थीं। सन् ११८६ का वर्णन करते हुए एक लेखक कहता है कि "ये आदमियों की तलाश में घूमा करती थीं।"[2]

वेश्या या देवी

किन्तु ये सब दुराचार या तत्कालीन आचार उस समय की तथा पूर्व काल की धार्मिक भावना से ही पैदा हुए थे। अक्षत-योनि, अछूती कुमारी की परिभाषा भी भिन्न थी। कुमारियाँ बलवान् सन्तान प्राप्त करने के लिए देवताओं से गर्भ धारण को बुरा नहीं समझती थीं। पुराने ज़माने में कुमारियाँ नदी में खड़ी होकर नदी के देवता से प्रार्थना करती थीं कि उनके साथ प्रसंग कर वे उनको गर्भवती बनायें। कर्ण के जन्म की कथा हमें मालूम है।[3] पर उसमें एक सौष्ठव है। हज़रत ईसा भी देव-पुत्र थे, पर चंगेज़ खाँ ऐसे पराक्रमी नरेश भी अपने को देवपुत्र मानते थे।[4] अंग्रेज़ी में अक्षतयोनि कन्या को "वर्जिन" कहते हैं। रोम में "अविवाहिता तथा पुरुष से" सम्पर्क न करने वाली को "वर्गो" कहते थे। यूनान में "पुरुष से अपने को अछूता रखनेवाली"

१. टेलर–पृष्ठ ५.

२. Andrew the Chaplain—1186–at the court of Queen Alienor —in the "Treatise on love"–"Nuns were prying for men". ईसा की इन दूल्हनों के लिए लिखा है—"Nor ever chase, except thou ravish wee"

३. महाभारत, कुण्डलहरण पर्व–अ० २६१–श्लोक १०, ११

४. M. E. Harding—"Women,s Mysteries,, Pub. Longman Green and Co., Edition 1935.

५—साक्षी। गाँव के शासक का नाम प्रशास्ता है। गाँव के लोगो से राजकीय कर इकट्ठा करके संगृहीत धन राजकोष मे पहुँचाने वाले को 'समाहर्ता' कहते हैं। समाहर्ता और प्रशास्ता दोनो भिन्न व्यक्ति होते है। जो शासन करेगा वह प्रजाजनो से कर सग्रह नही कर सकता और जो प्रजाजनों से राजकर इकट्ठा करेगा वह शासन नही कर सकता। प्रजा और समाहर्ता की ठीक कार्यवाही को प्रमाणित करने वाले को 'सविधाता' कहते है अर्थात् प्रजा ने जिसको राजकर दे दिया और जिसने उचित राजकर ले लिया इन दोनो का अनुसन्धान करके जो एक मत स्थापित कर सके वह 'सविधाता' कहलाता है। इन दोनो की कार्यवाही को लिखने वाला 'लेखक' होता है। लेखक का कार्य ठीक है या नही इसको सत्य प्रमाणित करने वाला व्यक्ति साक्षी कहलाता है। ये पाँचो व्यक्ति ग्राम मे रह कर एकमत हो सचाई से अपना अपना कार्य सम्पादन कर सके तो ग्राम की कल्याण वृद्धि होती है। हे युधिष्ठिर! उक्त प्रबन्ध के द्वारा तुम्हारे ग्रामो को नगर सदृश तो बनाया जाता है? अनेक वीर पुरुष एव धनादि सम्पन्न व्यक्तियो से युक्त ग्राम को नगर सदृश ग्राम कहा जाता है। ऐसे नगर सदृश ग्रामो की ही मुख्य नगरो की रक्षा के लिए आवश्यकता होती है। तुम्हारे राज्य के सीमान्त भाग—जहाँ जगली लोग रहते है उन उन प्रान्त भागो को तुमने ग्राम सदृश तो बना दिया है? ग्राम मे जिस तरह शासन और राजकीय कर सग्रह होता रहता है उसी तरह तुम्हारे सीमान्त प्रदेशों में भी सुप्रबन्ध तो रहता है? सीमान्त प्रदेश ग्राम और नगरो से इकट्ठा किया राजकीय कर तुम्हारे पास ठीक ठीक रूप मे तो पहुँच जाता है? सीमापाल ग्रामाध्यक्ष को ग्रामाध्यक्ष नगराध्यक्ष को, नगराध्यक्ष देशाध्यक्ष को और देशाध्यक्ष साक्षात् राजा को अर्थात राजकोष मे राजग्राह्य वस्तुओ को अर्पित तो कर देता है? पुराध्यक्ष (कोतवाल) अनेक रक्षको (सिपाहियो) से युक्त हो राज्य मे उपद्रव करने वाले चोर-डाकुओ को पकडने के लिए उनका पीछा तो करता है?

तुम्हारे राज्य मे स्त्री समाज सुरक्षित तो रहता है? स्त्री वृन्द उद्विग्न होकर तो तुम्हारे राज्य मे कालयापन नही करता? राष्ट्र की कोई गुप्त मन्त्रणा स्त्रियों के सामने तो कोई प्रकाशित नही कर देता? कोई अत्यन्त विचारणीय एवं आवश्यक कार्य उपस्थित होने पर उसको सुनकर भी मन बहलाने के लिए अन्त पुर मे तो नही चले जाते? तुम रात्रि के द्वितीय और तृतीय पहर मे सुख से सोकर चौथे पहर मे जागकर धर्म और अर्थ का विचार तो करते हो? कवच पहन कर खड्ग हाथ मे लिये हुए रक्षकगण तुम्हारी रक्षा के लिए सर्वदा तुम्हारे पास प्रस्तुत तो रहते है? तुम पूरी परीक्षा करके दण्ड देने योग्य व्यक्ति को समुचित दण्ड तो देते हो? तुम अपने प्रिय और अप्रिय व्यक्तियो के साथ समान रूप से राजकीय दण्ड व्यवस्था करने मे पूर्ण सफल तो होते हो? तुम औषध और पथ्यादि नियमों के द्वारा शरीर को एवं ज्ञानवृद्ध व्यक्तियो की सेवा द्वारा मन को स्वस्थ रखने का

अध्याय ६

जंगली जातियों की कामवासना

पाठकों के सामने हमने सभ्य जगत की वासना का संक्षिप्त चित्र उपस्थित कर दिया। केवल भारतीय शास्त्रकारों के निर्देश के अतिरिक्त उन्हें और किसी देश के चरित्र-वर्णन से यह स्पष्ट भाव नहीं मिलेगा कि किस वासना को अपराध कहें। प्रायः सभी प्रकार की निन्द्य वासनाएँ किसी न किसी रूप में दुनिया में चारों ओर फैली हैं और फैली थीं अभी तक हम उनके ऊपर उठे नहीं हैं। सभ्य तथा असभ्य का बहुत डंका पीटनेवाले लोग पिछली तथा वर्तमान जंगली जातियों को कई दृष्टियों से वासना के विचार से सभ्यों से ऊँचा तथा महान् पायेंगे। नीचे हम जंगली जातियों का कुछ वर्णन करेंगे—जहाँ तक उनकी कामवासना का सम्बंध है।

किन्तु बहुत कुछ जानने और समझने पर भी चीज़ अधूरी रह जायगी। इसका कारण यह है कि हर एक देश तथा समाज की ही नहीं, हर एक व्यक्ति की भिन्न-भिन्न समस्याएँ हैं। प्रो० रेमंड तथा कान ने अपनी पुस्तक में यह साबित कर दिया है कि जितने व्यक्ति हैं, उतनी ही विभिन्नताएँ भी हैं।[१] फिर, यदि केवल एक ही श्रेणी पर विचार करना हो, यदि केवल स्त्री या पुरुष पर विचार करना हो, तो भी कुछ काम सरल हो। जब दोनों पर मिला-जुला विचार करना है तो और भी कठिन है। स्त्री-पुरुष के स्वभाव में, प्रकृति में ज़मीन-आसमान का अन्तर है। दोनों "बे-मेल" हैं।[२] बे-मेल से मेल का सिद्धान्त कैसे निकले—ऐसा नियम क्या हो, जो सब पर लागू हो।

१. Prof. Raymond Dodge and Eugene Kahn "The Craving for superiority" —Chapt. II Pub. 1937—"The number of variations is equal to the number of invidivuals"

२. "For man and women, as such are incompatables"—G. K. Chesterton in "What is wrong with the world"–Page 54

है, विद्या की सफलता शील तथा सच्चरित्र से होती है। इसके अनन्तर नारदजी राजा युधिष्ठिर से फिर पूछते है। हे महाराज युधिष्ठिर! व्यापारी वर्ग दूर देशो से तुम्हारे राष्ट्र के लिए उपयुक्त वस्तुये लाकर अपना व्यवसाय तो ठीक चलाते है? व्यापारियो की लाई हुई वस्तुओ पर यथोचित शुल्क तुम्हारे शुल्काध्यक्ष वसूल तो कर लेते है? व्यापारी वर्ग दूर देशो से लाई हुई वस्तुओं मे अन्य वस्तुये मिलाकर अथवा अनुचित मूल्य द्वारा प्रजा जनो की प्रवचना तो नही करते? तुम्हारे यहाँ कृषि विभाग से तथा पशुपालन विभाग से उत्पन्न धान्यादि विक्रेय वस्तुये और घी, दूध चर्म आदि वस्तुये अधिक मात्रा मे सचित तो रहती है? उन सचित वस्तुओ मे से धर्मार्थ ब्राह्मणगणो को मधु घृतादि वस्तुएँ प्रदान तो की जाती है? तुम्हारे राज्य मे शिल्पि वर्ग को शिल्प-कर्म के योग्य वस्तुओं और शिल्पोपकरणो की कमी तो नही रहती है? कम से कम वर्षा के चार मासों के लिए शिल्पिवर्ग की अपेक्षित चीजे उनके पास पर्याप्त मात्रा मे सचित तो रहती है? तुम्हारे राज्य मे जो व्यक्ति उत्तमोत्तम कार्यों का अनुष्ठान करते है, उनकी तुम खबर तो रखते हो? उत्तम कार्य करने वालो की तुम प्रशसा तो करते हो? ऐसे सत्कार्य कर्ताओ को सज्जनो मे परिगणित कर उनका यथोचित सत्कार तो करते हो? तुम हस्ति विद्या, रथ विद्या आदि विद्याओ के विशेषज्ञो से इन विद्याओं का ज्ञान तो प्राप्त कर लेते हो? तुम्हारे राज्य मे धनुर्वेद विद्या एव यन्त्र विद्या अच्छी तरह आलोचित तो होती रहती है? यहाँ महाभारत के टीकाकार नीलकण्ठ ने बन्दूक बनाने की प्रक्रिया को यन्त्रसूत्र कहा है। सब तरह अस्त्रो का प्रयोग एव आभिचारिक ब्रह्मदण्ड (तान्त्रिक प्रकार से शत्रु का मारण कर देना) तथा शत्रु नाशक विष प्रयोग आदि तो तुमको ज्ञात है? अग्नि भय, सर्प भय, रोग भय आदि से तुम राज्य की रक्षा तो करते हो? अन्धे, गूंगे, लँगडे और किसी प्रकार से जिनके अंग विकृत हो गये है, ऐसे बन्धुहीन जनो की तथा सन्यासिवर्ग की तुम पिता की तरह रक्षा तो करते हो? अधिक निद्रा, आलस्य, भय, क्रोध, अत्यन्त मृदुता, और दीर्घसूत्रता ये ६ दोष तो तुमने परित्याग कर दिये है?

यहाँ तक हमने बाल्मीकि रामायण के अयोध्याकाण्ड का एक अध्याय तथा तदनुरूप ही महाभारत के सभापर्वस्थ एक अध्याय की आलोचना की। इन दोनो अध्यायो की समालोचना करने पर ज्ञात हो सकेगा कि इनमे राजनीति के कितने ही विजय दोनो ग्रन्थो मे समान है। केवल विषय ही एक सा है यही नही अपितु भाषा भी एक सी है। इससे जाना जा सकता है कि प्राचीन भारतीय आर्यगणो का जो परिपूर्णाग राजनीतिशास्त्र था उसमे से ही रामायण और महाभारत मे राजनीति सगृहीत हुई है। और इसीलिये दोनो ग्रथो के विषयो की समानता देख पडती है। इन दोनो ही ग्रथो मे राजनीति प्रकरण मे जो सारे

विषय आलोचित हुए है उनमे से ही अनेक विषय प्रचलित मनुसहिता में है। प्रचलित मनुसहिता के सातवे अध्याय मे राजधर्म के सम्बन्ध मे जो आलोचना है, वह रामायण और महाभारत मे भी दीख पडती है। रामायण, महाभारत और मनुसहिता मे जो राजधर्म के विषय आलोचित हुए हैं—कौटिल्य अर्थशास्त्र मे वे ही समस्त विषय कही सक्षिप्त रूप मे और कही विस्तृत रूप मे आलोचित हुए है। भगवान् कौटिल्य के शिष्य कामन्दक ने कौटिल्य अर्थशास्त्र की व्याख्यारूप मे जिस नीतिशास्त्र की रचना की थी, वह वर्तमान समय मे उपलब्ध नही है। कामन्दक नीतिशास्त्र का सार सकलन करके उसके कुछ अश का सग्रह मात्र 'कामन्दकीय-नीतिसार' नाम से प्रचलित है। यह ग्रथ केवल १९ अध्यायो मे विभक्त है। चिरकाल तक राजनीति की आलोचना न हो सकने के कारण इस ग्रथ का पाठ भी बहुत प्रमाद पूर्ण है एव इस ग्रथ की जो टीकाये मिलती है वे भी बहुत अस्पष्ट हैं।

रामायण के पूर्वप्रदर्शित अध्याय मे भगवान् श्री राम चन्द्र राजनीति शास्त्र के वक्ता एव महाभारत के पूर्व प्रदर्शित अध्याय मे देवर्षि नारद राजनीति शास्त्र के प्रवक्ता कहे गये है। बनवासी श्रीरामचन्द्र ने सम्राट् भरत को एव देवर्षि नारद ने सम्राट् युधिष्ठिर को राजनीति शास्त्र का उपदेश दिया है। वर्तमान समय मे हम इस राजनीति की आलोचना सर्वथा अकर्तव्य कार्यों मे समझने लगे है विशेष कर धार्मिक सत्पुरुषो के लिए तो अधिक गर्हित कार्यो मे गिनते है। आज हम प्रथम तो रामायण और महाभारत की कथा अधिक सुनते ही नही, कदाचित् सुनने को मिल भी जाय तो उसमे राजनीतिशास्त्र की गन्ध भी नही रहती है। परवर्ती काल मे इस तरह रामायण महाभारत की आख्यायिकाये रची गई जिनमे राजनीति का स्थान ही नही हो सका। राम चरित्र या युधिष्ठिर के चरित्र मे कट राजनीतिशास्त्र का स्थान होना हम भारतीय सभ्यता का कलङ्क समझने लगते है। इसका ही फल है कि आज हमारी शोचनीय राष्ट्रिय दुर्दशा उपस्थित हुई है। आज भारत के एक दो बुद्धिमान् व्यक्ति इसका अनुभव करने लगे है। कामन्दकीय नीतिसार की "उपाध्याय निरपेक्षानुसारिणी" टीका मे टीकाकार ने इस राजनीतिशास्त्र के प्रणेता आचार्यगणो की एक परम्परा प्रदर्शित की है। टीकाकार ने कहाँ से यह आचार्य परम्परा उद्धृत की है, यह नही लिखा है। इस टीका के रचयिता के विषय मे भी हमे कुछ ज्ञात नही हो सका है। केवल यह सोचकर हम टीकाकार की उक्त बाते उद्धृत कर रहे है कि प्राचीन भारत मे राजनीतिशास्त्र के प्रणेतागण जगन्मान्य थे। यदि इस समय भी कोई प्राचीन भारत की दण्डनीतिशास्त्र की आलोचना करे तो इससे उसके सम्मान की कुछ भी हानि न होगी। टीकाकार ने कहा है कि अति प्राचीन काल मे भगवान् ब्रह्माजी ने अपने बुद्धि वैभव से एक लाख अध्यायो का एक विशाल राजधर्मशास्त्र

की रचना की थी। इसके बाद प्रजागण की आयुष्य की कमी को ध्यान मे रख कर नारद, इन्द्र, वृहस्पति, शुक्र, भरद्वाज, विशालाक्ष, भीष्म, पराशर एव मनु प्रभृति महर्षिवर्ग ने उसी ब्रह्मा जी के बनाये एक लाख अध्यायो वाले ग्रथ का सक्षेप किया है, एव अन्यान्य महर्षिगणो ने भी उसी तन्त्र का सार सकलन किया है। अन्त मे विष्णुगुप्त-कौटिल्य ने इस शास्त्र का ही सार सकलन किया। ब्रह्मा से लेकर विष्णुगुप्त पर्यन्त आचार्यवर्ग ने एक ही दण्डनीतिशास्त्र का वृहत्, मध्यम, सक्षिप्त रूप मे सग्रह किया है। हमारे एकान्त दुर्भाग्य से इस राजनीतिशास्त्र का आदर आज लुप्त प्राय हो गया है और इसी से यह सपूर्ण विपुल ग्रथराशि अधिकाश विस्मृति सागर मे निमग्न हो गई। जो अब शेष है उसकी भी यदि विशेष समझदारी के साथ समालोचना की जाये तो पूर्णांग दण्डनीतिशास्त्र का उद्धार आज भी असंभव नही। यदि हमारे विद्वत्समाज की दृष्टि इस तरफ आकृष्ट की जा सके तो पूर्ण दृढता से कहा जा सकता है कि वही प्राचीन भारतीय पूर्णाङ्ग अर्थशास्त्र निकट भविष्य मे हम लोगो मे प्रचलित हो सकेगा। हमारे देश मे शिक्षा विभाग के कर्णधार विद्या प्रसार की अभिवृद्धि के लिए आयोजन तो करते है, किन्तु विशेष खेद की बात यह है कि जिस शास्त्र की आलोचना से देश की सब प्रकार की समृद्धि बढ सके एवं जिसके अभाव मे देश की समृद्धि नष्ट हो जाय उस शास्त्र (नीतिशास्त्र) की आलोचना के लिए कोई एक बात भी कभी नही कहता।

चतुर्थ अध्याय

अर्थशास्त्र के अनादर का कारण

बहुत दिनो से भारतवर्ष मे भारतीय विद्वत्समाज दण्डनीतिशास्त्र की आलोचना से क्रमश अधिकतर शिथिल-समादर होता चला आ रहा है। यद्यपि रामायण महाभारत आदि प्राचीन आर्य ग्रथ दण्डनीति की आलोचना से सर्वथा परिपूर्ण देखे जाते हैं, किंतु इसके अनन्तरवर्ती ग्रथो मे क्रमश इस शास्त्र की आलोचना उत्तरोत्तर क्षीण ही होती चली गई। हमने आदिकाव्य रामायण के एक ही अध्याय की समालोचना पूर्वपरिच्छेद मे दिखाई है, इसी प्रकार युद्धकाण्ड का १६ वाँ १८ वाँ २७ वाँ २६ वाँ ३५ वाँ एव ६३ वाँ अध्याय है। जिन पर विचार करने पर दिखाई पडेगा कि आदिकाव्य रामायण राजनीतिशास्त्र की आलोचना से सर्वथा परिपूर्ण है। इस शास्त्र की आलोचना से ही यह आदिकाव्य रामायण भारत का समुज्ज्वल रत्न रहा है। भारत का यह सुविशाल आदिकाव्य दण्डनीतिशास्त्र की आलोचना से परिपूर्ण होने के कारण काव्य की असाधारण गौरव वृद्धि का और प्राचीन आर्य जाति की सुमार्जित अभिरुचि का परिचय देता है। इसके बाद के रघुवश, किरातार्जुनीय, माघ आदि काव्यो मे भी इस राजनीति शास्त्र की आलोचना सर्वथा उपेक्षित नही हुई है, किन्तु बारहवी शताब्दी मे बने हुए नैषधचरित आदि काव्यो से लेकर आज तक के बने हुए सभी काव्यो मे राजनीतिशास्त्र की आलोचनाये काव्य के शोभावर्धक नही समझी गई। काव्य शोभा वर्धक नही समझा गयः इतना ही नही, प्रत्युत इसके विपरीत इस प्रकार की आलोचना काव्य की उत्कर्ष हीनता का कारण समझी जाने लगी।

भारतीय आर्यगणो के शौर्य, वीर्य, पराक्रम एव दूरदर्शिता आदि सद्गुण-राशि ज्यो ज्यो क्रमश म्लान होती चली गई त्यो त्यो सिन्धुनद का पश्चिम तट आर्यों के हाथ से निकलता गया। म्लेच्छगणो ने सिन्धुनद के पश्चिम तट की सारी भूमि सर्वतोभावेन अपने अधिकार मे करली, जिस भूमि मे किसी समय श्री भरत जी के पुत्र पुष्कर ने पुष्कलावत नाम की राजधानी स्थापित की थी जो सिन्धुनद के पश्चिम तट पर थी। इसी तरह श्री भरत जी के द्वितीय पुत्र तक्ष ने सिन्धुनद के पूर्वतटवर्ती प्रदेश मे तक्षशिला नाम की नगरी बसाई, जिस तक्षशिला में भारत सम्राट् जनमेजय ने सर्पयज्ञ करके भगवान् वैशम्पायन से सब से प्रथम महाभारत सुना था। यह सपूर्ण पवित्र भूमि आर्यों के तेज एव पराक्रम के क्षीण हो जाने से आर्यों के हाथ से निकल गई। इस प्रकार का भारतीय

पण्डित समाज राजनीतिशास्त्र की चर्चा करने में इतना हतादर हो गया था कि प्रसङ्ग प्राप्त होने पर भी राजनीतिक विषयो से सर्वथा दूर रहने लगा। इतना ही नही बल्कि इस शास्त्र की आलोचनाओ को निन्द्य कार्यों मे परिगणित करने लगा। इस समय मे जो काव्य ग्रथ रचे गये उनमे केवल नायक नायिकाओ का प्रेम कीर्तन कराना ही काव्य का चरम उद्देश्य समझा गया एव सिद्धान्त सा होता चला गया।

इस समय रामायण महाभारत आदि ग्रथो का गौरव समझ लेने का सामर्थ्य भी नष्ट प्राय हो गया था। शृगार रस की आलोचना मे जिसने जितनी एक दूसरे से अधिक मृषा कल्पनाये की वह उतना ही उस समय के विद्वत्समाज में प्रसिद्धि प्राप्त कर सका। शृगार रस की आलोचना का इतना अधिक प्रसार होने पर भी परकीया प्रेम की सृष्टि नही हो पाई थी, स्वकीया के प्रेम पाश मे आबद्ध होने तक ही शृगार रस सीमित रहा। किन्तु इसके परवर्ती काल में यह स्वकीया की मर्यादा भी नष्ट हो गई। संस्कृत साहित्य मे भी परकीया का साहित्य रचा जाने लगा। जिस साहित्य का प्रचार निर्वाध रूप से आज वर्तमान समय मे दिखाई पड रहा है। इस प्रचलित परकीया प्रेमालाप के साहित्य से भारतीय जनता के शौर्य वीर्य आदि मानवोचितगुणो की अभिवृद्धि कहाँ तक सभव है इसको पाठक स्वयं विचार ले। इस साहित्य की आलोचना ज्यो ज्यो बढने लगी त्यो त्यो आर्य जाति का तेज वीर्य क्रमश नष्ट होकर आर्य जाति को नितान्त क्लीव बनाता गया। अति तुच्छ ग्राम्यधर्म (स्त्री पुरुष संयोग) की आलोचना मे जो जाति निरतर निरत रहेगी उस जाति का अध पतन अवश्यम्भावी है। बारहवी शताब्दी से लेकर आज तक इस भारतवर्ष मे संस्कृत साहित्य, प्राकृत साहित्य, देशीय भाषा का साहित्य, सभी का एकमात्र आलोच्य विषय हुआ नायक-नायिका का प्रेमालाप। किन्तु स्वाधीन भारत के प्रधान काव्य रामायण तथा महाभारत पर दृष्टिपात करने से हमको ज्ञात हो सकेगा कि मानव समाज और मानवता के लिए प्रेमालाप के अतिरिक्त और भी अनेक आलोच्य विषय अपेक्षित है। हमने रामायण के सम्बन्ध मे पूर्व कुछ आलोचना की है किन्तु महाभारत की आलोचना करने पर इस राजनीतिशास्त्र की सुविशाल परिव्यापकता और भी सुस्पष्ट रूप से अवगत हो सकेगी। जो राजनीतिशास्त्र भारतीय सभी विद्याओ में श्रेष्ठतम था, वह विद्या क्रमश. कैसे उच्छिन्न हो गई—इसकी कुछ आलोचना हम यहाँ करेगे। भारतीय विद्वत्समाज की रुचि परिवर्तित होने से किस प्रकार यह शास्त्र अनालोच्य समझा जाने लगा इसका भी कुछ आभास हम यहाँ देगे।

न्यायसूत्र के भाष्यकार भगवान् वात्स्यायन न्यायसूत्र के भाष्य मे कहते है— 'तदिद तत्वज्ञान नि श्रेयसाधिगमश्च यथाविद्य वेदितव्यम्' (न्यायभाष्य ६५ पृष्ठ कलकत्ता सस्करण)। इसका अभिप्राय यही है कि भगवान् अक्षपाद प्रमाणादि

विशिष्टता समान रूप से पायी जाती हो।[1] पर राष्ट्र मनुष्यों के उस समुदाय को कहते हैं जिसमें सामाजिक विशिष्टताएँ समान रूप से पायी जाती हों। आज हमारे सामने जाति का नहीं, राष्ट्र का प्रश्न है। पर सोचना यह है कि मानव की सामाजिक विशिष्टता क्या है? वह क्या चाहता है और उसकी कौन सी इच्छा सही है?

दोषी कौन है?

मानव भी एक पशु है। पर, पशुओं के विपरीत, उसे यह निश्चय करने का अवसर है कि एक निश्चित परिस्थिति में वह भिन्न प्रकार के आचरणों में से किस आचरण को अपनाये। यदि किसी शत्रु को रास्ते से हटा देना हो तो पशु के सामने उसे मार डालने के सिवा और कोई चारा नहीं। मनुष्य पचास तरीक़े निकालकर अपने शत्रु को समाप्त भी कर देगा और प्राण भी नहीं लेगा, वह जो भी उपाय अपनायेगा, उसका सामाजिक कारण होगा, तथा वह अपने उपाय और परिणाम का मूल्यांकन करके तब निर्णय करेगा कि क्या करें।[2] बस, इस निश्चय या कार्यविधि का चुनाव अथवा फ़ैसला ही मानव-जीवन की, समाज की, सभ्यता की सबसे बड़ी समस्या है। कार्यविधि के चुनाव में शत्रु को रास्ते से हटाने के लिए उसके प्राण भी लिये जा सकते हैं या प्रेमभरी वाणी की चोट से भी उसे घायल किया जा सकता है। आज इन दो उपायों के बीच में चुनाव करने की कमज़ोरी के कारण ही मनुष्य अपराधी बनता जा रहा है। वह "ईमानदारी से कमाना" या "चोरी करके खाना" इन दो के निर्णय में भूल कर बैठता है। इसलिए अपराधशास्त्री मनुष्य को दोषी न ठहराकर समाज को दोषी ठहराता है, जिसने उसे उचित निर्णय करने में सहायता नहीं दी या, हम व्यक्ति को नहीं उसके निर्णय को दोषी ठहरा सकते हैं। दण्ड उस निर्णय को मिले, को निर्णायक को नहीं। क्या यह विचार सही है?

वासना का व्यापक प्रभाव

काम-भाव तथा वासना पर, चाहे संक्षेप में ही सही, हमने प्रकाश डालने का प्रयास किया है। कुछ लोगों को भ्रम भी हो गया होगा कि यह पुस्तक अपराध शास्त्र पर है कि कामशास्त्र पर। पर, ऐसे भ्रम का निवारण आगे चलकर होगा। कामशास्त्र

१. वही, पृष्ठ २०
२. रेमंड फर्थ, पृष्ठ १२९, अध्याय ५

कहा गया है कि मनु के शिष्य वर्गों ने त्रयी, वार्ता और दण्डनीति ये तीन ही विद्याये मानी है, आन्वीक्षिकी को त्रयी के अन्तर्गत माना है। वृहस्पति के अनुयायियो ने वार्ता और दण्डनीति दो ही को विद्या कहा है, त्रयी को लोक सवरण कहा है। त्रयी अलग कोई विद्या नही है ऐसा कहने पर त्रयी के अतर्गत आन्वीक्षिकी भी कोई अलग विद्या नही रह जाती। शुक्राचार्य की शिष्य परम्परा मे दण्डनीति ही एकमात्र विद्या कही गई है। अन्य त्रयी, वार्ता आदि विद्याये दण्डनीति मे ही प्रतिष्ठित है। दण्डनीति अन्य तीनो विद्याओ का योगक्षेम साधन मात्र है, अर्थात् रक्षक है ऐसा कहा है। किन्तु कौटिल्य ने चार विद्याये मानी है।

भगवान् मनु ने अपनी सहिता के सप्तमाध्याय मे इन चारो ही विद्याओ की बात कही है। मनु कहते है "त्रैविद्येभ्यस्त्रयी विद्या दण्डनीतिं च शाश्वतीम्। आन्वीक्षिकी चात्मविद्या वार्तारम्भाश्च लोकत"॥ (७।४३ श्लोक)। इसका अर्थ है, तीनो वेदो के जानने वाले द्विजाति से ऋक्, यजु, और साम ये तीन वेद अध्ययन करे। अर्थशास्त्र के विशेषज्ञो से अर्थशास्त्र का अभ्यास करे। तर्कशास्त्र और ब्रह्मविद्या ही आन्वीक्षिकी कहलाती है, उसको उस शास्त्र के रहस्यज्ञ ब्राह्मणो से नियमानुरूप पढे। कृषि, वाणिज्य, पशुपालनादि जो धनोपार्जन के उपाय है उनके प्रतिपादक शास्त्र को वार्ताशास्त्र कहते है। इस शास्त्र को इसके अभिज्ञ कृषक, वैश्य आदिको से सीखे। याज्ञवल्क्यस्मृति के राजधर्म प्रकरण मे कहा है कि राजा को आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति इन चारो ही विद्याओ मे पूर्ण निष्णात होना चाहिये (याज्ञ० आचार-अध्याय ३११ श्लोक)। महाभारत के राजधर्मानुशासन के सूत्राध्याय, (५९ अध्याय) मे कहा गया है कि "त्रयीचान्वीक्षिकी चैव वार्ताच भरतर्षभ। दण्डनीतिश्च विपुला विद्यास्तत्र निर्दशिता॥" (३३ श्लोक) महाभारत आदि प्रामाणिक ग्रथो मे जो चार विद्याओ की बात कही गई है आगे चलकर इस सम्बन्ध मे विशेष मतभेद हो गये। याज्ञवल्क्यस्मृति के आचाराध्याय के तृतीय श्लोक में पुराण, न्याय, मीमासा, धर्मशास्त्र तथा शिक्षा, कल्प, व्याकरण आदि ६ वेदाग और ४ वेद इन चौदहो को विद्या एव धर्म का स्थान कह कर निर्देश किया गया है। १४ विद्याओ का निर्देश रहने पर भी वास्तव में आन्वीक्षिकी और त्रयी इन दो ही विद्याओ को चौदह भागो मे विभक्त किया गया है। दण्डनीति और वार्ता, ये चौदह विद्याओ के अन्तर्गत नही मानी गई। इस लिए ये दोनो (दण्डनीति और वार्ता) धर्म और विद्या का स्थान नही हो सकते—अर्थात् दण्डनीति और वार्ता ये दोनो विद्यास्थान से पृथक् है।

यद्यपि न्यायभाष्य और उसके वार्तिक मे चार विद्याये ही मानी गई है, तथापि नौवी शताब्दी मे विद्यमान काश्मीर के नैयायिक जयन्तभट्ट ने अपनी न्यायमञ्जरी के प्रारभ मे कहा है कि न्यायभाष्यकार तथा वार्तिककार दोनों ही ने चार विद्याये क्यो मानी जब कि धर्मशास्त्रकार याज्ञवल्क्य ने चौदह विद्याये कही है और

चौदह कहकर भी फिर वास्तविक रूप मे त्रयी और आन्वीक्षिकी ये दो ही विद्याये मानी। सुतरा धर्मशास्त्रकार के साथ न्यायभाष्यकार का विरोध आता है। इस तरह शका करके जयन्तभट्ट इसका समन्वय करते हुए कहते है कि चौदह ही विद्याये होनी उचित है, चार नही, क्योकि वार्ता और दण्डनीति ये तो दोनो दृष्ट प्रयोजन है, इन दोनो का अदृष्ट प्रयोजन हो ही नही सकता। प्रत्यक्षत इनका उपयोग होने पर लौकिक सुखोपलब्धि होती है। त्रयी और आन्वीक्षिकी मे सपूर्ण पुरुषार्थो का उपदेश है। सुतरा सपूर्ण पुरुषार्थोपदेशक शास्त्र ही विद्यावर्ग मे परिगणित होने के कारण वार्ता और दण्डनीति की गणना विद्यावर्ग मे नहीं हो सकती। अत त्रयी और आन्वीक्षिकी इन दोनो विद्याओ को चौदह भागो मे विभक्त करके जो कुछ कहा गया है वही ठीक है।

यहाँ विशेष लक्ष्य करने की बात यही है कि न्यायभाष्यकार और उनके वार्तिककार ने जिनको विद्या माना, उसको उन्ही के मतानुयायी किंतु परवर्ती जयन्तभट्ट ने अनायास ही उनकी समर्थित विद्याओ का निराकरण करके दण्डनीति और वार्ताशास्त्र को विद्याविभाग से बहिष्कृत कर दिया है। ऐसा क्यो किया इसका कारण सुस्पष्ट है। उत्कट परलोक साधना ने उनको इतना विमुग्ध कर दिया कि जिन विद्याओ से साक्षात् रूप मे ऐहिक तथा परम्परा भाव से पारलौकिक साधना रक्षित हो सके, ऐसी दण्डनीति और वार्ताशास्त्र उपेक्षित विषय हो गया था। क्योकि दण्डनीति तथा वार्ताशास्त्र दोनो ही साक्षात् परलोक साधक नही कहे जा सकते। यद्यपि जयन्तभट्ट काश्मीर के राजा शकरवर्मा के सुशासित राज्य मे रहते थे एव उस सुशासन के कारण ही काश्मीर प्रदेश अनेक विद्वज्जनो से परिपूर्ण था, एव इसी से जयन्तभट्ट वहाँ रहकर असाधारण पाण्डित्य प्राप्त कर सके थे। केवल पारलौकिक फल प्राप्ति की उत्कट तृष्णा के कारण ही दण्डनीतिशास्त्र की सर्वथा उपेक्षा कर देने मे उन्होने [illegible] नही की।

मनुसहिता के सप्तम अध्याय के ४३ वें श्लोक मे भगवान् मनु ने त्रयी, दण्डनीति, आन्वीक्षिकी और वार्ता इन चार विद्याओ का उल्लेख किया है। मनु ने चौदह विद्याओ का उल्लेख नही किया है। मनुसहिता के राजधर्म प्रकरण मे राजा के शिक्षणीय रूप मे इन्ही चारो विद्याओ का निर्देश मिलता है। मनुसहिता के भाष्यकार मेधातिथि ने इस श्लोक की व्याख्या करते हुए कहा है कि चाणक्य आदि के शास्त्रो के विशेषज्ञो से राजा दण्डनीतिशास्त्र का ज्ञान प्राप्त करे। इस प्रसङ्ग मे वे आगे कहते हैं कि चाणक्य आदि के शास्त्र परिशीलन के बिना भी दण्डनीतिशास्त्र का प्रतिपाद्य विषय सभी जान सकते है, क्योकि दण्डनीतिशास्त्र का प्रतिपाद्य विषय अलौकिक नही है वह लौकिक है। मात्र लौकिक विषयों को जानने के लिए शास्त्र की अपेक्षा नही है। अन्वय-व्यतिरेक से ही वे जानी जा सकती हैं। जैसे सोना, बैठना, खाना आदि लौकिक व्यवहार जानने के

लिए किसी को भी शस्त्र की आवश्यकता नही होती अन्वय व्यतिरेक से ही सब ज्ञात हो जाता है। ऐसे ही दण्ड शास्त्र के प्रतिपाद्य विषयो को भी शास्त्रोपदेश के बिना सब जान सकेगे। मेधातिथि की इन सब उक्तियों से जाना जा सकता है कि केवल पारलौकिक विषयो को जानने के लिए ही शास्त्र की अपेक्षा होती है, ऐहिक विषयो को जानने के लिए शास्त्र की अपेक्षा नही है। मेधातिथी की यह उक्ति जयन्तभट्ट की उक्ति के अनुसार ही है। ऐसा भी भारत का समय आया, जिस समय सपूर्ण पुरुषार्थों के रक्षक और आश्रयभूत दण्डनीतिशास्त्र के प्रति भारतीय पण्डितगणो की उपेक्षा देखी जाने लगी।

हम महाभारत और रामायण की उक्तियो से अच्छी तरह दिखा चुके है कि दण्डनीतिशास्त्र ही सपूर्ण विद्याओं का अवलम्बन है इसके विनाश से ही सर्वनाश संभव है। इसी से मेधातिथि अपने भाष्य मे इस तरह कह गये है कि दण्डनीतिशास्त्र का अध्ययन करने पर अज्ञजनो को बोध और विज्ञजनो को सवाद हो सकेगा। सुतरां अज्ञों के बोधन के लिए तथा बुधजनो की सहमति या सवाद के लिए दण्डनीति-शास्त्र का अध्ययन आवश्यक है। यह दण्डनीतिशास्त्र अनायास या सहज बोध्य नहीं है, यह बात हम आज विशेष रूप से समझ सकते है ? कितने पुराने समय में कौटिलीय अर्थशास्त्र संकलित हुआ है किन्तु उसपर कोई भी समीचीन व्याख्या ग्रंथ नही लिखा जा सका। आज कोई प्राचीन व्याख्या न होने के कारण यह ग्रंथ सर्वथा दुरवबोध हो गया है। इस शास्त्र के रहस्य का निर्णय आज कठिन से कठिनतर होता चला जा रहा है। इस शास्त्र के प्रतिपाद्य विषयो का निरूपण यदि इतना सहज होता तो इसके अनेक व्याख्या ग्रथ आज उपलब्ध होते एवं व्याख्या ग्रथो के बिना भी आज हम इसके रहस्यों का निश्चय कर पाते। इस दण्डनीतिशास्त्र का ज्ञान आज जनता को प्राय नही सा है। इसलिये इस शास्त्र से सर्वथा अनभिज्ञ व्यक्ति भी इस शास्त्र के प्रतिपाद्य विषयो को लेकर अनेक झूठी समालोचनाये करे, इससे अधिक भारत के दुर्दिनो की शोचनीयता क्या होगी।

यहाँ हमको विशेष खेद के साथ कहना पड रहा है कि सातवी शताब्दी में जब एक श्रेष्ठ राजा हर्षवर्धन भारत मे एकाधिपत्य राज्य करते थे, उनकी सभा में महाकवि बाणभट्ट अपनी असाधारण कवित्व शक्ति के प्रभाव से अधिक समादृत हुए थे। इन महाकवि ने कादम्बरी नाम का एक गद्य महाकाव्य निर्माण किया। कादम्बरी के पूर्वार्द्ध में मन्त्री शुकनास का उपदेश अधिक प्रसिद्ध है। मन्त्रिप्रवर शुकनास ने युवराज चन्द्रापीड को अनेक बहुमूल्य उपदेश दिये है। ये बहुमूल्य उपदेश काव्यत्व की छटा से और भी अधिक समुज्वल हो गये है, किन्तु इन बहुमूल्य समुज्वल उपदेशों मे भी अनेक बाते ऐसी आ गई है कि जिनसे ज्ञात होता है कि महाकवि बाणभट्ट के समय मे ही दण्डनीतिशास्त्र के प्रति लोगो की अश्रद्धा पैदा हो गई थी। मन्त्री शुकनास कहते हैं जिनको कौटिल्य

अर्थशास्त्र ही प्रमाण है—जिस कौटिल्य अर्थशास्त्र मे अतिनृशंसप्राय अनेक उपदेश दिये गये है, अत इस शास्त्र के अनुसार चलने वाले व्यक्तियो के लिए दुष्कार्य क्या हो सकता है ? इस शास्त्र के अनुसार मारण क्रिया मे अति निपुण क्रूर प्रकृति पुरोहित वर्ग ही राजा का गुरु हो सकेगा। दूसरो के निग्रह मे सर्वदा निरत रहने वाला मन्त्रिगण ही इस राजा का उपदेष्टा हो सकेगा। वे पिछले अनेक राजाओ से भोग कर छोडी हुई राजलक्ष्मी मे ही राजा की आसक्ति पैदा करेगे। शत्रुओ के विनाश के लिए ही राजा शस्त्राभ्यास करेगा एव स्वाभाविक प्रीति सम्पन्न भ्रातृगण ही राजा के लिए उच्छेद्य होगा।

इन सम्पूर्ण उपदेशो के द्वारा अर्थशास्त्र के प्रति अवज्ञा ही दिखाई गई है। केवल अवज्ञा ही नही दिखाई गई अपितु भारतीय राजगणो की स्वाधीनता का मूल शिथिल किया गया है। वैराग्य सम्पन्न राजा कभी भी राज्य की रक्षा नही कर सकता। महाराज हर्षवर्द्धन का जो ऐश्वर्य बाणभट्ट ने दिखाया है वह ऐश्वर्य निश्चय ही हर्षवर्द्धन को उनके वैराग्य द्वारा प्राप्त नही हुआ था। भारतीय राज-गणो के चित्त को दण्डनीतिशास्त्र से विरक्त करने मे इन्ही उपदेशो ने सहायता की है। सातवी शताब्दी से पहले किसी भी मन्त्री ने राजा अथवा युवराज को दण्डनीतिशास्त्र से विरक्त होने का कभी कोई उपदेश नही दिया। भारतवासी जब स्वाधीनता का उपयोग सुख जानते थे उस समय उनका चित्त कभी भी दण्ड-नीतिशास्त्र से विमुख नही होता था। भारतवर्ष मे जब बौद्ध मत की बाढ सी आ गई उसके फलस्वरूप भारतीय जनता मे अस्वाभाविक रूप से एक अद्भुत असामयिक वैराग्य उत्पन्न हो गया, जिसके प्रभाव से बुद्धिमान् लोग भी इस तरह के वैराग्य का समर्थन करना ही अपना विशेष कर्त्तव्य पालन समझने लगे थे। ऐतिहासिक लोगो का कहना है कि राजा हर्षवर्द्धन के बाद उसके समान प्रतापशाली राजा भारत मे पैदा नही हुआ। सातवी शताब्दी के बाद भारत के छोटे छोटे प्रदेशो में छोटे छोटे राजा लोग आपस में रात दिन लडाई झगडो मे निरत रहने लगे, जिससे भारत के अध पतन का मार्ग प्रशस्त हो गया।

किन्तु छठी शताब्दी मे महाकवि दण्डी ने जिन्होने दशकुमार चरित नामक गद्य-काव्य रचा उसके अष्टम उच्छ्‌वास मे नीतिशास्त्र की आवश्यकता का विशद रूप में वर्णन किया है। राजा को दण्डनीतिशास्त्र की विशेषज्ञता क्यों आवश्यक है, और दण्डनीतिशास्त्र का परिज्ञान न होने से तथा उसके प्रतिपादित उपायों का उपयोग न कर सकने पर राष्ट्र किस तरह से नष्ट हो जाता है, यह बात महा-कवि दण्डी ने एक सुन्दर आख्यायिका द्वारा वर्णित की है। एव अन्य विद्याओं के अभ्यास में लगे रहने वाले लोग दण्डनीतिशास्त्र की उपेक्षा करके किस प्रकार राष्ट्र का अध पतन कर देते हैं, इसका भी एक सुन्दर चित्र इसी अष्टम उच्छ्‌वास में दिखाया गया है। महाकवि दण्डी ने कहा है कि विदर्भ देश में पुण्यवर्मा नामक

एक राजगुणभूषित श्रेष्ठ राजा था। उसके बाद उसका पुत्र अनन्तवर्मा राजा हुआ। यह राजा अनेक गुण सम्पन्न होते हुए भी दण्डनीतिशास्त्र से सर्वथा परङ्मुख था। राजा को दण्डनीनिशास्त्र से उपरत देखकर उसके वृद्ध मन्त्री वसुरक्षित ने उसको दण्डनीतिशास्त्र का उपदेश दिया। अनन्तवर्मा के पिता पुण्यवर्मा वृद्ध मन्त्री वसुरक्षित का बहुत सम्मान करते थे। वृद्ध मन्त्री वसुरक्षित राजा अनन्तवर्मा से कहते हैं "तुम अनेक गुण सम्पन्न हो एव तुम्हारी बुद्धि भी अति प्रखर है। नृत्य, गीत, चित्रकला, काव्य रचना आदि—ललित कलाओ मे तुम्हारी असाधारणता है। तथापि तुमने जो दण्डनीतिशास्त्र मे परिश्रम नही किया है, इसलिये तुम्हारी बुद्धि विशुद्ध नही हो सकी है। जो राजा दण्डनीति-शास्त्र द्वारा बुद्धि को सुमार्जित नही कर पाता वह राजा बुद्धिहीन कहलाता है। दण्डनीतिशास्त्र मे बुद्धिहीन राजा अति समृद्ध होने पर भी शत्रुराजाओ के द्वारा किस प्रकार अवनमित होता है यह उसकी समझ मे नही आता। वह नही समझ सकता कि किस कर्म से राष्ट्र का कल्याण होगा और किससे अकल्याण। राष्ट्र का शुभाशुभ न समझ सकने वाला दण्डनीतिशास्त्रानभिज्ञ राजा जो जो कार्य करेगा उन उन कार्यों में उसको अपने पक्ष वालो से तथा विपक्षी गणो से अनेक बाधाएँ प्राप्त हो सकती है। स्वपक्षीय तथा विपक्षियो से अवज्ञात राजा का आदेश प्रजा-गण के लिए कल्याण साधक नहीं हो सकता। नीतिज्ञान हीन राजा का आदेश न मान कर प्रजा यथेच्छ व्यवहार कर सकती है और इससे राष्ट्र की स्थिति अति भयानक हो सकती है। राष्ट्रवासी प्रजा जब मर्यादा शून्य व्यवहार करने पर तत्पर हो जाती है तो वह अपने तथा राजा के विनाश का कारण हो जाती है। दण्डनीति लोक स्थिति को सुव्यवस्थित रखने के लिए परमावश्यक है। दण्डनीति के अनुसार यथोचित उपायो के अनुष्ठान करने पर लोकयात्रा सुचारु रूप से सम्पन्न होती है। राष्ट्र के भूत, वर्तमान एव भविष्य तथा दूरवर्ती राष्ट्रो की यथार्थ स्थिति को जानने के लिए दण्डनीतिशास्त्र ही अप्रतिहत चक्षु है। इस नीति चक्षु से विवर्जित राजा विशाल चर्मचक्षुओ के होते हुए भी राष्ट्रिय विषयो का निश्चित अवधारण न कर सकने के कारण अन्धा ही कहा जा सकता है। इसलिए हे राजकुमार! तुम नृत्य गीत आदि ललित कलाओ की विशेष अभिरुचि को छोड कर अपनी कुल विद्या दण्डनीति का अभ्यास करो। इस विद्या का पूर्ण अभ्यास करके इसके अनुसार कार्य करने पर राजशक्ति की अभिवृद्धि होगी, कही भी तुम्हारा पराजय न हो सकेगा, एवं तुम चिरकाल तक इस पृथ्वी के शासक रह सकोगे।"

वृद्ध मन्त्री वसुरक्षित ने नये राजा अनन्तवर्मा को जैसा उपदेश किया है ऐसा ही उपदेश प्रसिद्ध काव्य कादम्बरी में युवराज चन्द्रापीड को वृद्ध मन्त्री शुकनास ने किया है। शुकनास के उपदेश का कुछ अंश हम इसके पूर्व दिखा चुके हैं।

इन दोनो उपदेशो मे इतना ही वैलक्षण्य है कि छठी शताब्दी मे महाकवि दण्डी द्वारा निर्दिष्ट मन्त्री के उपदेश मे दण्डनीति के प्रति प्रगाढ श्रद्धा प्रतिपादित हुई है एव सातवी शताब्दी मे महाकवि वाणभट्ट के द्वारा वर्णित मन्त्री शुकनास के उपदेश में नीतिशास्त्र के प्रति नितान्त अवज्ञा प्रदर्शित की गई है। इसी दण्डनीतिशास्त्र की अवज्ञा का फल है कि आज तक भारत मे दण्डनीति के प्रति अवज्ञा ही चल रही है एव भारतीय जनता के हृदय से राष्ट्रिय चेतना क्रमश लुप्त होती जा रही है। हम यहाँ एक बात विशेष दु ख के साथ कहने के लिए बाध्य है कि मैसूर रियासत के सस्कृत पुस्तकालय के पुस्तकालयाध्यक्ष शामशास्त्री बी ए. महोदय ने सर्वप्रथम कौटिल्य अर्थशास्त्र का सम्पादन किया है। शास्त्री महोदय ने इस ग्रन्थ की भूमिका मे कहा है कि महाकवि दण्डी ने अपने ग्रथ मे अर्थशास्त्र की अत्यन्त उपेक्षा दिखाई है। (शामशास्त्री विरचित कौटिल्य अर्थशास्त्र की भूमिका पृ० ६-७)। दण्डी विरचित दशकुमार चरित के अष्टम उच्छ्वास के वाक्यो को उद्धृत करके शास्त्री महाशय ने इसकी सत्यता प्रमाणित करने की चेष्टा की है। हमारे विचार से शास्त्री महोदय को यहाँ अवश्य भ्रान्ति हो गई है। महाकवि दण्डी ने अर्थशास्त्र की अवज्ञा प्रदर्शित नही की, प्रत्युत वृद्ध मत्री वसुरक्षित द्वारा नवाभिषिक्त राजा अनन्तवर्मा को दिये गये उपदेशो से अर्थशास्त्र के प्रति प्रगाढ श्रद्धा प्रदर्शित की है। राजा के मुँहलगे अत्यन्त चाटुकार विहारभद्र नामक व्यक्ति ने राजा को विलासिता के व्यसन मे फँसा कर राजा के सर्वनाश की चेष्टा की है। इसके लिए जो असत् बाते विहारभद्र ने कही है, उनमे ही दण्डनीति की निन्दा की गई है। शास्त्री महोदय ने उक्त ग्रथ के उक्त स्थल को पढते समय वक्ता एव बोद्धव्य का ध्यान न करके ऐसी असत् कल्पना कर डाली है। वक्ता एव बोद्धव्य का निरूपण बिना किये केवल ग्रंथ मे होने मात्र से ही यदि ग्रथकार के तात्पर्य का निर्णय किया जावे तब तो ऐसे अनेक वक्तव्य रामायण आदि ग्रथो मे देखे जाते है जिनके द्वारा वाल्मीकि आदि महर्षियो का दुष्कार्य मे प्रवृत्त कराने का समर्थन मिलेगा। जैसे रामायण मे ही युद्धकाण्ड के तेरहवे अध्याय के चतुर्थ श्लोक मे मन्त्री महापार्श्व राक्षसराज रावण से कहता है कि हे राक्षसराज! तुम ही सबके स्वामी हो तुम्हारा स्वामी और कोई नही इसलिए हे शत्रुघातिन्! तुम सीता के साथ यथेच्छ क्रीडा करो यदि सीता तुम्हारे साथ रमण करना स्वीकार न करे तो तुम बलपूर्वक कुक्कुटवृत्ति अवलम्बन कर, बार बार सीता पर आक्रमण कर सीता का उपभोग करो। इससे क्या यह समझा जा सकता है कि वाल्मीकि ने परस्त्री धर्षण का परामर्श दिया है? इस वाक्य का वक्ता महादुष्ट राक्षस महापार्श्व है और श्रोता क्रूरबुद्धि राक्षसराज रावण है, यहाँ भी यदि सदवृत्ति आलोचित हो तो सज्जन और दुर्जन का कोई भेद ही न रह जायेगा।

शास्त्री जी को जिस स्थल में भ्रान्ति हुई है वह स्थल ही हमने यहाँ उद्धृत

किया है, जिससे स्वयं पाठकों को इसका निर्णय हो जावेगा। जैसे महापार्श्व ने रावण को उपदेश दिया है इसी तरह विहारभद्र ने भी राजा अनन्तवर्मा को उपदेश दिया है। विहारभद्र के उपदेश मे ही दण्डनीति की निन्दा प्रदर्शित हुई हैं। यदि अनन्तवर्मा अपने पिता की तरह सर्व राजगुणो से सम्पन्न होता तो विहार भद्र सरीखे व्यक्तियो का अड्डा वहाँ कैसे जमता? बडे लोगो को इस तरह दुर्व्यसनो में बिना फँसाये ऐसे दुष्ट सदस्यो के धनोपार्जन का क्या रास्ता था? चिरकाल से एक ही नीति चली आती है कि प्रबलनीति ज्ञान सम्पन्न व्यक्ति ऐसे चाटुकार व्यक्तियों के द्वारा उद्भावित मार्गों से कभी नही चलते किन्तु साधारण ज्ञान सम्पन्न व्यक्ति ऐसे चाटुकारो की बातो में सदा से फँसते चले आये हैं, आज भी फँसते है, और भविष्य मे भी फँसेगे।

दशकुमार चरित की आलोचना का विषय इस प्रकार है। वृद्ध मन्त्री वसुरक्षित का उपदेश सुनकर नूतन राजा अनन्तवर्मा मन्त्री से कहने लगा कि आप मेरे गुरु स्थानीय हैं, आपने उपयुक्त उपदेश दिया है, आपके उपदेशानुसार मैं कार्य करूँगा। इस तरह कह कर नया राजा अनन्तवर्मा अन्त पुर मे चला गया और वहाँ बातचीत के प्रसङ्ग में अन्त पुर की रानियो के सामने इसने वृद्ध मन्त्री वसुरक्षित के उपदेशो की पूरी बातें कह दीं। राजा अनन्तवर्मा जिस समय मन्त्री वसुरक्षित के उपदेशो की बात अपनी रानियो से कह रहे थे उसी समय राजा के अन्त पुर में रहने वाला अत्यन्त चाटुकार एव राजा की तबीयत खुश करके अपनी जीविका चलाने वाला, और राजा के अन्तरङ्गो में प्रसिद्ध होने के कारण राज मन्त्रियों से भी उत्कोच ले लेने वाला, तथा राजा को सब प्रकार की दुर्नीति सिखाने वाला एवं राजा के काम विलास का प्रदर्शक, विहारभद्र नामक राजा के अन्त पुर का सेवक मन्द मुस्कान करके राजा से कहने लगा, "महाराज यदि कोई दैवानुग्रह से विपुल ऐश्वर्य प्राप्त कर ले तो उसको धूर्त व्यक्ति मिल कर अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए अनेक प्रकार के प्रलोभन वाक्यो से विडम्बित कर देते है। इनमे से कुछ लोग तो वे है जो वैदिक कर्मों के अभिज्ञ कहला कर प्रसिद्ध हैं। ये लोग धनियो में परलोक में परम कल्याण की दुराकाक्षा पैदा करके उनका सिर मूडवा कर, कुश की रस्सियों की लँगोटी बँधवा कर काले मृग के चर्म से शरीर आच्छादित कर तथा सारे शरीर पर नवनीत का मर्दन करा कर और उसको अनशन करा के उसका सर्वस्व हरण कर लेते है।" ऐतरेय ब्राह्मण मे जो ज्योतिष्टोमादिक यज्ञ मे दीक्षा संस्कार कहा गया है, सक्षेप मे वही यहाँ अभिप्रेत है। इस तरह विहारभद्र ने ऋत्विजो को प्रवचक प्रतिपादित किया है।

विहारभद्र आगे कहता है कि यह समस्त धूर्त ऋत्विक्गण बहुत प्रवचक होता है जो धनवान् व्यक्तियो को उनके स्त्री पुत्रादि से वियुक्त करके शरीर रक्षा के लिए भी उनको अनुत्साहित कर देते है। यदि कोई अपने सौभाग्य से

इनके चक्कर में न फँसा तो और कुछ प्रवंचक धूर्तलोग उस धनी व्यक्ति को इस तरह प्रवचना करते है कि महाशय! हम एक पैसे के लाख पैसे कर सकते है। बिना शस्त्र प्रयोग के ही शत्रु का नाश कर सकते है। हम एक असहाय व्यक्ति को भी चक्रवर्ती राजा बना सकते है। यदि आप हमारे उपदेशों के अनुसार कार्य कर सकोगे तो हम अनायास ही आपको इस पृथ्वी का सम्राट् बना सकेगे। यदि उसने जानना चाहा कि आपका उपदिष्ट उपाय क्या है? तो वे कहने लगते है कि महाशय! चार विद्याएँ है—त्रयी, वार्ता, आन्वीक्षिकी और दण्डनीति। इनमें से पहली तीन विद्याएँ तो मन्द-फल है, इसलिए इन तीन विद्याओ की जरूरत नही। आप दण्डनीति विद्या अध्ययन करे। यह विद्या आचार्य विष्णु-गुप्त ने मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त के लिए ६ हजार श्लोको मे सक्षिप्त रूप से सकलित की है। इस शास्त्र का अध्ययन करके उसका उचित उपयोग करने वाला व्यक्ति चक्रवर्ती सम्राट् हो सकता है। यदि कोई धनी व्यक्ति इस तरह के प्रवचको के वाक्यो मे विश्वास करके दण्डनीतिशास्त्र के अध्ययन मे प्रवृत्त हो जावे और दण्ड-नीति शास्त्र के वेत्ता आचार्य के उपदेश सुनने लगे तो वह प्रवचित व्यक्ति दण्ड-नीति के अध्ययन एव श्रवण मे ही जीवन बिता देगा। इस शास्त्र का अध्ययन कभी भी नही समाप्त होगा। इसलिए सारा जीवन इस शास्त्र के श्रवण मे ही समाप्त हो जायगा। दण्डनीतिशास्त्र अन्य शास्त्रों से सम्बद्ध है, अत उन सब शास्त्रो को बिना जाने इस दण्डनीतिशास्त्र का यथार्थ ज्ञान नही हो सकेगा। यदि सारा जीवन शास्त्राध्ययन मे ही बीत जायेगा तो चक्रवर्ती सम्राट् कब हो सकेगा। यदि मान भी लिया जावे कि थोडे समय मे ही इसका अध्ययन पूरा हो जायगा फिर भी उस शास्त्र का यथार्थ ज्ञान होने से उस व्यक्ति की क्या दशा होगी उसकी भी एक बार विवेचना कर देखिए। दण्डनीतिशास्त्र का यथार्थ अर्थ जानने पर पहले तो उसको अपने स्त्री-पुत्रो मे ही अविश्वास पैदा हो जायगा। यह व्यक्ति दूसरो के लिए ही नही बल्कि अपने लिए भी इस तरह की विवेचना करके ही कार्य करेगा कि इतने चावलो से इतना खाद्य तैयार हो सकेगा अर्थात् एक आदमी के आहार के लिये कितने चावलो की जरूरत होगी, तथा कितना भात बनाने मे कितना ईंधन लगेगा इसका सूक्ष्म से सूक्ष्म परिमाण जान कर उसके अनुकूल ही अपने तथा औरो के लिए व्यवस्था करेगा। दण्डनीतिशास्त्र का वेत्ता राजा रात्रि शेष रहते हुए ही जाग कर किसी तरह मुँह हाथ धोकर कुछ थोडा-सा खाद्य सेवन कर अधिकारी वर्ग से मिल कर सारे दिन का आय-व्यय का हिसाब जान लेगा।

ये ही सारी बाते कौटिल्य अर्थशास्त्र के प्रथमाधिकरण के १९वे अध्याय मे कही गई हैं। कौटिल्य ने जो बाते कही है उन सबको विहारभद्र ने विकृत रूप में ग्रहण करके ही इस जगह कहा है। बिहारभद्र ने अवश्य ही राजा का सर्वनाश करने के

उद्देश्य से ही इस तरह विकृत रूप मे ये बाते कही है। इसके बाद विहारभद्र फिर कहता है कि जो लोग कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार कार्य करते है उनकी और भी अनेक दुर्दशाएँ होती है। दिन के प्रथम भाग मे जब राजा इस आय-व्यय का हिसाब सुनेगा उस समय आय-व्यय का हिसाब रखने वाले धूर्त जन यथार्थ हिसाब न देगे। इस पर राजा उस हिसाब की पूरी जाँच करके जो परिमित धन बचा सकेगा, उससे द्विगुण धन अपहरण करने का रास्ता वे धूर्त लोग निकालेगे। चाणक्य ने अर्थाहरण के ४० उपाय बताये है किन्तु राजा के धूर्त अध्यक्ष जन अपनी बुद्धि से उसको हजार तरह से अपहरण करने के सुयोग ढूँढ निकालेगे।

दिन के द्वितीय भाग में राजा आपस मे विवदमान प्रजाजन के व्यवहार (मुकदमो को) को देखेगा और सुनेगा (इसी को दीवानी और फौजदारी विचार कहते हैं)। मुकदमो मे विवदमान प्रजाजनो की उक्ति प्रत्युक्तियो से दग्धकर्ण हो राजा कष्ट से ही जीवन बिता सकेगा। इतने से ही खैर नही, आगे भी प्रजागण के इन विवादो मे प्राड्विवाक् आदि विचारक वर्ग अपनी इच्छानुसार मुकदमो का फैसला कर राजा को पाप एव अकीर्ति द्वारा निन्द्य प्रमाणित कर स्वय प्रचुरतम धन सग्रह कर सकता है।

दिन के तृतीय भाग मे राजा स्नान और भोजन का अवकाश पा सकेगा। राजा का भोजन भी ऐसा चमत्कारी होगा कि खाया अन्न जब तक पूरा पच न जायेगा तब तक उसमे विष भक्षण की शका होती ही रहेगी। विष मिश्रित अन्न खिला कर राजा को मारने के लिए अनेक व्यक्ति तत्पर रहते है।

दिन के चौथे भाग में भोजन के बाद विश्राम करके राजा प्रजावर्ग से कर आदि की व्यवस्था कर धन सग्रह करने की बात सोचेगा। दिन के पाँचवें भाग में मन्त्रियो के साथ अनेक सलाहो की चिन्ता करता हुआ राजा बडे क्लेश का अनुभव करता है।

राजा का इतने से ही छुटकारा नही। मन्त्रिगण राजा के स्वार्थ में उदासीन रहते हुए आपस मे मिलकर अपनी इच्छानुसार राजा के गुण दोषों को समझावेगे अर्थात् दोष को गुण एव गुण को दोष समझावेगे। इस तरह राजा के साध्य कार्य को असाध्य रूप मे और असाध्यो को साध्य रूप में प्रतिपन्न कर सकेगे। जिस देश और जिस काल मे जो कार्य कर्त्तव्य है, उनको अकर्त्तव्य के रूप में और अकर्त्तव्य कार्यों को कर्त्तव्य के रूप मे परिवर्तित कर मन्त्रिवर्ग राजा के अपने व्यक्तियो तथा मित्र मण्डल एव शत्रु मण्डल से पर्याप्त रूप मे अर्थ-संग्रह (रिश्वत के रूप में) कर सकता है। यह मन्त्रि-मण्डल इस तरह दुष्कार्य करके ही राजा को नही छोड देता बल्कि आगे चल कर यही मन्त्रिमण्डल राजा के अपने ही राज्य के प्रजा-मण्डल में गुप्त भाव से राजविद्वेष पैदा कर एवं शत्रु और मित्र राजगणों में भी उसी गुप्त रूप से राजा के प्रति विद्वेष भाव पैदा कर सकता है, और

लिए पुरुषों की तुलना में दंड कहीं कोमल है। प्रायश्चित्त, व्रतोपवास से भी उसका पाप धुल जाता है। गुरुपत्नी के साथ संभोग करनेवाले को स्त्री की लौह-प्रतिमा बनाकर उसे खूब गर्म कर, उसी से चिपटा देना चाहिए[1] या वह अपना शिश्न तथा अण्ड-कोष काटकर अपने हाथों में लेकर दक्षिण-पूर्व की दिशा में चलता रहे और तब तक चलता रहे जब तक मरकर गिर न पड़े। हाँ, यदि किसी ब्राह्मण[2] की रक्षा के लिए उसने प्राण दे दिये तो उसका पाप धुल जाता है। ऐसे अपराधों के लिए गो-सेवा, अश्वमेध या अग्निष्टोम आदि प्रायश्चित्त भी हैं। पर अपने से उच्च वर्णवाली स्त्री के साथ भोग पर, अपनी संरक्षकता में रहनेवाली कन्या से, कुमारी (अक्षतयोनि) से, मित्र-पत्नी से, बहन की सखी से, सगोत्रा से, परिव्राजिका से—प्रसंग करने पर कठोर दंड दिये जाते थे।[3] उच्च वर्ण की स्त्री यदि नीच वर्ण के साथ प्रसंग करे तो उसे कुत्तों से नुचवा देना चाहिए (अर्दयेत्)। विप्रदुष्टा स्त्रियों के लिए—जो किसी की रोकथाम की नहीं हैं, बड़ा कठोर दंड था। दस्युकन्या से प्रसंग करनेवाला ब्राह्मण नरक जाता था।[4] शूद्रा से प्रसंग करने वाला देश निकाला पाता था।[5] अन्त्यज कन्या से संभोग करनेवाले को प्राणदंड मिलना चाहिए।[6] जाति तथा कुल की मर्यादा क़ायम रखने के लिए ऊँच-नीच के प्रसंग का बड़ा निषेध था। शूद्र यदि वैश्य या क्षत्रिय कन्या से प्रसंग करे तो उसका शिश्न काट लेते थे या ज़िन्दा जला देते थे। ब्राह्मण कन्या को भ्रष्ट करनेवाले क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र को नारद, मनु, गौतम, याज्ञवल्क्य आदि स्मृति-कारों के अनुसार मार डालना चाहिए या जला देना चाहिए। यदि ब्राह्मण स्त्री स्वेच्छा से क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र के साथ रमण करे तो सर घुटाकर उस पर दही मलकर तीनों जातियों के अनुसार क्रमशः सफेद, पीले या काले गधे पर नंगी बिठाकर शहर में घुमा

१. मनु, आपस्तम्ब, गौतम, याज्ञवल्क्य में गुरुपत्नी-सम्भोग पर ऊपर लिखे कठिन दंड हैं।

२. ब्राह्मण के लिए ब्राह्मण स्मृतिकारों ने पक्षपात किया है पर ब्राह्मणों में भी पतित होते थे। आपस्तम्ब (अधि० २–६, १४–१३) के अनुसार "बकरा और वेदपाठी ब्राह्मण बड़े विलासी होते हैं।"

३ विष्णुपुराण, ३६–४, याज्ञवल्क्य, ३–२३१

४. गरुड़पुराण, ४–३७

५. आप० २–१०–२७

६. विष्णु, ५–४३

कहता है कि राजा के बहुत ही अशुभ सूचक दु.शकुन दिखाई पड रहे हैं। इन सब अशुभ लक्षणो की शान्ति होनी परमावश्यक है, इस शान्ति कार्य मे जो हवन करना होगा उसमे सोने की बनी हुई ही सब चीजें होनी चाहिए। सोने की बनी चीजो द्वारा शान्ति कर्म करने पर विशेष फलप्रद होगा। इस शान्ति कार्य के लिए ब्रह्मा के सदृश गुणशील ब्राह्मण मिल गये है। अत इन ब्राह्मणो के द्वारा शान्ति कार्य सम्पादित होने पर यह कार्य विशेष शुभ फलप्रद प्रमाणित होगा इसमें कोई सन्देह नही। ये सभी ब्राह्मण अति दरिद्र एव बहु सतति युक्त है तथा सामर्थ्यवान् याज्ञिक हैं—इन्होने आज तक कही भी प्रतिग्रह नही लिया है। इनको जो समस्त धन दिया जायगा उससे राजा को परकाल मे स्वर्ग प्राप्ति एव इस समय राजा की आयुष्य वृद्धि एव अशुभ का निवारण होगा। इस तरह राजा को प्रवचित कर यह धूर्त पुरोहितगण ब्राह्मणो को अनेकविध द्रव्य दिला कर गुप्त-रूप से यह धन धर्त पुरोहितगण उनसे ले लेता है। इस तरह दिन और रात्रि के सम्पूर्ण भागो मे राजा के कार्य की व्यवस्था निर्दिष्ट होने से राजा को लेशमात्र भी सुख की सभावना नही की जा सकती। राजा सर्वदा ही कष्टो का अनुभव करता रहेगा एव विडम्बित होता रहेगा। दण्डनीतिशास्त्र मे प्रवीण राजा के लिए इसी तरह विडम्बना से जीवन बिताने पर भी चक्रवर्तिता का लाभ करना तो दूर रहा, वह अपने प्रादेशिक राज्य का भी सरक्षण न कर सकेगा। नीतिशास्त्र का पडित राजा जिनको दान देता है या जिनको विशेष सम्मानित करता है अथवा जिनसे प्रिय बातें करता है—ये सभी राजा की स्वार्थ सिद्धि के लिए होती हैं, इसको दुनिया जानती है इसलिए कोई भी राजा का विश्वास नही करता। जो व्यक्ति सबका ही अविश्वास्य होता है उसमे सर्वदा अलक्ष्मी वास करती है। सुतरा दण्डनीतिशास्त्र के अध्ययन की कोई आवश्यकता नही। जो थोडी सी नीति के बिना लेकयात्रा नही चल सकती वह तो लोक व्यवहार से ही जानी जा सकती है। जो बात लोक व्यवहार से ही जानी जा सकती है उसके लिए शास्त्राध्ययन की कोई आवश्यकता नही। दूध पीने वाला बच्चा भी रोदनादि अनेक उपायो से माता का स्तन पान कर सकता है। इन उपायो के उद्भावन के लिए बच्चे को किसी शास्त्र के पढने की जरूरत नही होती। सुतरा हे महाराज! आप अति दु खप्रद दण्डनीतिशास्त्र के परिज्ञान और उसके प्रयोगो की बात छोड कर यथेच्छ इन्द्रिय सुखोपभोग करे।

ये सभी नीतिशास्त्र वेत्ता लोग यही उपदेश करते रहते है कि इस तरह इन्द्रिय जय करना होगा—इस तरह काम, क्रोध आदि अरिषड्वर्ग को जीतना होगा, साम दान आदि नीति शास्त्रोपदिष्ट उपायो का अपने मण्डल तथा विपक्षी मण्डल मे यथोचित प्रयोग करना होगा, सधि विग्रह आदि की चिन्ता द्वारा ही समय बिताना पड़ेगा, अपने सुख के लिए जरा भी समय खर्च करना उचित नही—ऐसी ही सब

बातो का उपदेश देने वाले यह कह कर यह समस्त वकधूर्त मन्त्रिगण राजाओ से धन सग्रह कर वेश्याओ के घरो मे उसका उपभोग करते है। इसलिये इन समस्त वकधूर्त मन्त्रिगण का उपदेश सुनना ही नही चाहिए। राजा को उपदेश करने की क्या योग्यता इनमे है ? जो इस दण्डनीतिशास्त्र के पारदर्शी एव उसके प्रणेता कहे जाते है—उन शुक्र, वृहस्पति, विशालाक्ष, (उमापति शकर), बाहुदनीपुत्र (इन्द्र) और पराशर प्रभति ने क्या काम, क्रोधादि अरिषड्वर्ग पर विजय प्राप्त कर ली थी ? क्या इन्होने भी दण्डनीति शास्त्रोक्त विषयो का अनुष्ठान किया था ? इनके द्वारा भी प्रारम्भ किये गये कार्यों मे कही कभी सफलता कभी कही असफलता देखी जाती है। इसी तरह और भी बहुत जगह देखा जाता है कि जिन्होंने नीतिशास्त्र का अध्ययन करके पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया है उनकी भी पराजय जिन्होने नीतिशास्त्र सुना भी नही, उनके द्वारा बहुत जगहो मे हुई है। सुतरा राज्य की रक्षा के लिए दण्डनीति की कुछ भी आवश्यकता नही मानी जा सकती।

हमारे ध्यान मे तो आपके लिए यही युक्ति युक्त है, क्योकि आपने श्रेष्ठ वशमे तो जन्म पाया है। आपका नया ही राज्य है, सुन्दर शरीर मिला है, असीम ऐश्वर्य के आप अधिकारी है, ये सारी चीजे केवल राष्ट्र रक्षा की और शत्रु की चिन्ता से व्यर्थ कर देना उचित नही। इस स्वराष्ट्र चिन्ता तथा शत्रु चिन्ता से आप अपने को सबका अविश्वासी बना लेगे एव स्वय भी किसी पर विश्वास न कर सकेंगे। इस तरह आपको कभी सुख नही मिल सकेगा एव रात दिन राष्ट्र की चिन्ता करते रहने से अनेक सन्देहो के कारण हर समय व्याकुल रहना पडेगा। राष्ट्र चिन्ता का स्रोत अनेक तरह का तथा अधिक विस्तृत है इसमें कही भी किसी कार्य के विषय मे नि सन्देह नही हो जा सकता। आपके दस हजार हाथी है, तीन लाख घोडे, एव अनन्त पदाति (पैदल फौज) है। सोना रत्न आदि से आप का खजाना परिपूर्ण है, सारा ससार यदि हजारो युगो तक उपभोग करे तो भी आपका कोष्टागार खाली नही हो सकता। (धान्यादि संचय स्थान को कोष्ठागार कहते है)। आपको अपना यह अति विशाल राज्य क्या थोडा ज्ञात होता है जिससे आप दूसरे राज्यो को अपनाने के लिए प्रयत्न करेगे ? प्रथम तो मनुष्य का जीवन ही अत्यल्पस्थायी है उसमे भी इस समय भोगो के भोगने का समय और भी अल्पतम है। मूर्ख लोग केवल धनोपार्जन करते करते ही मर जाते है। अपने कमाय इस धन का जरा भी उपभोग नहीं कर पाते। इस विषय मे आपको और अधिक क्या कहा जावे, आप अपने इस विशाल राज्य का सम्पूर्ण भार अपने अन्तरग और अपने प्रति पूर्ण भक्ति रखने वाले तथा राज्य भार को वहन कर सकने वाले मन्त्रिवर्ग पर छोड कर अप्सरागणो के सदृश अन्त पुर सुन्दरियो से रमण करे। आप गाना बजाना एवं पान गोष्ठी (शराब पीने का जमघट) में सतत निरत रह कर इस शरीर लाभ को सफल करे। इस प्रकार

उपदेश करता हुआ कुमार सेवक धूर्त बिहारभद्र मस्तकाजलि पूर्वक राजा को साष्टाग प्रणाम करता हुआ अपने अनुकूल उपदेशो को राजा के सुन लेने पर प्रीति प्रफुल्ल लोचन हो अन्त पुर की रानियो की ओर देखता हुआ हँसने लगा। उस समय राजा अनन्तवर्मा हँस कर बिहारभद्र से कहने लगा, उठिये उठिये आप इस तरह हित उपदेश करने के कारण हमारे गुरु है। आप गुरुजनो के प्रतिकूल यह उलटा हमको हाथ जोड भूमिष्ठ हो प्रणाम क्यो करते है? इस तरह राजा बिहारभद्र को उठाकर क्रीडा रस मे निमग्न हो गया। बिहारभद्र की इन सब बातो से उसका अभिप्राय सुस्पष्ट है। इससे दण्डनीतिशास्त्र की अवज्ञा नही प्रमाणित की जा सकती।

याज्ञवल्क्यस्मति के व्यवहाराध्याय के (२१ वे श्लोक मे) कहा गया है कि अर्थशास्त्र से धर्मशास्त्र प्रबल होता है (अर्थशास्त्रात्तु बलवद्धर्मशास्त्रमिति स्थिति)। इसकी टीका मे मिताक्षराकार अर्थशास्त्र और धर्मशास्त्र के विरोध का उदाहरण दिखाते हुए कहते है कि हिरण्य और भूमि लाभ से मित्र लाभ श्रेष्ठ होता है। यह अर्थशास्त्र की बात है। यह बात याज्ञवल्क्यस्मृति के आचाराध्याय के ३५२ वे श्लोक द्वारा कही गई है और धर्म शास्त्र कहता है कि राजा लोभ एवं क्रोध को छोडकर धर्मशास्त्र के अनुकूल प्रजाजनो के व्यवहारो का विचार करे। यह व्यवहाराध्याय का प्रथम श्लोक है। इसके आगे कहा है कि राजा वादी तथा प्रतिवादी के व्यवहार का निर्णय करने के लिए विचार करते समय यदि समझे कि एक व्यक्ति कि जय का फैसला देने पर उससे हमको मित्र लाभ होता है, किन्तु धर्मशास्त्र के आदेश का पालन नही होता, एव दूसरे के अनुकूल फैसला दे देने से धर्मशास्त्र के आदेश का पालन तो होता है परन्तु मित्र लाभ न हो सकेगा। इस जगह अर्थ शास्त्रानुसार जिसका जय निर्णय करने पर मित्र लाभ हो वही कर्तव्य है किन्तु जिस तरह विचार करने पर धर्म शास्त्र रक्षित हो सके धर्मशास्त्रानुसार वही कर्त्तव्य है।

यहाँ मिताक्षराकार ने जो व्याख्या की है वह किसी भी मत से सगत नही कही जा सकती। पहले तो यही विचारणीय है कि आचाराध्याय के राजधर्म प्रकरण मे उल्लिखित हिरण्यभमिलाभादि वाक्य "हिरण्यभमिलाभेभ्यो मित्रलब्धिर्वरा यत" को मिताक्षराकार ने अर्थशास्त्र कैसे समझा? और फिर राजधर्म प्रकरण के ३५७ वे श्लोक मे कहा है कि जो राजा शास्त्रोल्लघन पूर्वक लोभादि के वशीभूत हो विपरीत दण्ड व्यवस्था करता है, उस राजा को स्वर्ग प्राप्ति नही होती तथा इस लोक मे उसकी कीर्ति नष्ट हो जाती है। उचित दण्ड विधान ही राजा के स्वर्ग, कीर्ति एव लोक का रक्षक है। मिताक्षराकार के मत मे यदि राजधर्म प्रकरण अर्थशास्त्र ही माना जाय, तो भी उस अर्थशास्त्र मे मित्र लाभ के लिए राजा अपनी इच्छा से एक की जय और दूसरे की पराजय की व्यवस्था नही

कर सकता। अर्थशास्त्रानुसार व्यवहार का अर्थ क्या राजा का इच्छानुसार व्यवहार है? राजा अपनी सुविधा देखकर जो इच्छा हो वही कर सके यही क्या अर्थशास्त्र है। मिताक्षरा सम्मत अर्थशास्त्र मे क्या यही कहा गया है? मिताक्षराकार ने "हिण्यभूमिलाभेम्य" यह जो वचन उद्धृत किया है इसका शेष भाग उन्होने उद्धृत नही किया है। उसमे कहा गया है "रक्षेत्सत्य समाहित" इस अंश की व्याख्या मं भी मिताक्षराकार ने कहा है कि राजा सावधान होकर सत्य की रक्षा करे राजा के मित्रलाभ का मूल ही सत्य परिपालन है। सुतरा जो राजा असत्य व्यवहार द्वारा मित्रलाभ का प्रयास करेगा उसका वह प्रयास व्यर्थ हो जावेगा, मित्रलाभ नही हो सकेगा। अधर्मानुसार व्यवहार करने पर मित्रलाभ हो ही नही सकता। मित्र लाभ ही नही हो सकता, केवल इतना ही नही, अधर्म से व्यवहार करने पर स्वर्ग, कीर्ति और लोक—तीनो ही नष्ट हो सकते है। और मिताक्षराकार व्यवहाराध्याय का जो वचन धर्मशास्त्र कह कर निर्देश करते हैं उसका ही क्या अभिप्राय है?

मनुसहिता के सप्तम अध्याय में जो राजधर्म कहा गया है उस जगह भी भाष्यकार मेधातिथि कहते हैं कि मनुसहिता मे जो समस्त राजधर्म कहे गये है वे सभी धर्मशास्त्र के अविरुद्ध है, अर्थात् धर्मशास्त्र से उनका विरोध नही है। यदि मेधातिथि की बात मान ली जाती है तो याज्ञवल्क्यस्मृति मे भी जो राजधर्म की बात कही गई है वह भी धर्मशास्त्र से अविरुद्ध ही माननी होगी। किन्तु मिताक्षराकार ने इस पर ध्यान नही दिया।

इतने पर भी अर्थशास्त्र और धर्मशास्त्र का विरोध दिखाने के लिए मिताक्षराकार ने जो उदाहरण दिखाया है वह भी सगत नही होता। मिताक्षराकार ने याज्ञवल्क्यस्मृति का कोई अश अर्थशास्त्र और किसी अश को धर्मशास्त्र माना है। परन्तु ऐसा मानने का कोई कारण नही दिया है। याजवन्क्यस्मृनि अर्थशास्त्र कैसे हुई? क्या राजधर्म रहने से ही वह अर्थशास्त्र हो जाती है? धर्मशास्त्र मे क्या राजा का स्थान नही हो सकता? राजा का कर्तव्य निर्देश करने वाले अश को ही क्या अर्थशास्त्र कहेगे? राजवृत्त निरपेक्ष धर्म क्या रह सकता है? अनुविधेयक को छोड कर क्या व्यवहार हो सकता है? भाष्यकार मेधातिथि ने भी राजधर्म निरूपक मनुसंहिता के सप्तमाध्याय को अर्थशास्त्र कहने का साहस नही किया है। हमारे ध्यान में तो मिताक्षराकार ने अर्थशास्त्र की विवेचना ही नही की। इसमें विशेष बात यह है कि—

"हिरण्य भूमि लाभेभ्यो मित्रलब्धिर्वरा यत।
अतो यतेत तत्प्राप्त्यै रक्षेत्सत्यं समाहित।" (३५२ श्लोक आचाराध्याय)

इस श्लोक में क्या चतुष्पाद व्यवहार प्रकरण की बात कही गई है? यह तो जब राजा अपने राष्ट की वद्धि के लिए दसरे राज्य पर आक्रमण

करेगा एव उस राष्ट्र पर आक्रमण करने से राजा को हिरण्यलाभ, भूमिलाभ और मित्रलाभ तीनो ही सभावित होते है। आक्रान्त राजा अपनी रक्षा के लिए आक्रमणकारी राजा को हिरण्य और भूमि (अर्थात् अपने राज्य का कुछ हिस्सा) आदि दे सकता है और कभी कोई आक्रान्त राजा अपने शुभ व्यवहार से मित्रता भी कर लेता है। ऐसे ही स्थलो के लिए याज्ञवल्क्य कहते है कि आक्रान्त पर-राष्ट्र से हिरण्य और भूमि पा जाने से राजा की उतनी वृद्धि नही हो पाती जितनी परराष्ट्र के राजा को मित्र बना लेने पर हो सकती है। इसलिए राजा मित्र वृद्धि के लिए सर्वदा सचेष्ट रहे। सामयिक हिरण्यादि लाभ ही राजा का बडा लाभ नही हो सकता। यही उक्त श्लोक का तात्पर्य है। मिताक्षरा में भी यही कहा है किंतु मिताक्षराकार ने यहाँ जो अर्थशास्त्र के साथ धर्मशास्त्र का विरोध दिखाया है, यही उनकी अपनी व्याख्या के प्रतिकूल बात है।

इसके बाद नौवी शताब्दी के भाष्यकार मेधातिथि ने राजधर्म प्रतिपादक मनु-सहिता के सप्तमाध्याय मे राजधर्म को धर्मशास्त्र के अविरुद्ध और राजधर्म का प्रतिपादक बतलाया है। उनका भी यह कहना संगत नही जँचता। कारण—सप्तमा-ध्याय के ३२ वे श्लोक मे मनु कहते है कि, राजा अपने अधिकृत देशो मे तो न्यायानुसारी ही होगा और शत्रु के प्रति तीक्ष्ण दण्डविधान करेगा। शत्रुराष्ट्र के प्रति तीक्ष्ण दण्डविधान क्या धर्मशास्त्रानुमोदित है? यदि उक्त विधान धर्म-शास्त्रानुमोदित हो सकता है तो अर्थशास्त्र ही इसकी अपेक्षा अधिक क्या कहेगा? सप्तमाध्याय के १७१ वे श्लोक मे मनु ने कहा है कि राजा जब समझे कि अपने मन्त्री और सैन्यवर्ग आदि अत्यन्त हर्ष युक्त तथा पर्याप्त है एवं शत्रु के ये सब विपरीत हैं अर्थात् शत्रु के अमात्यादि तथा सैन्य वर्ग दुखी एवं अपर्याप्त है, उस समय उस राज्य के राजा पर अवश्य आक्रमण कर दे। विपद्ग्रस्त शत्रु पर आक्रमण करना यदि धर्मशास्त्रानुमोदित है तो अर्थशास्त्र भी इसकी अपेक्षा अधिक और क्या कहेगा? १९५वे श्लोक मे मनु ने पुन कहा है कि जिस समय शत्रु राजा किले मे अन्दर ही हो अथवा और कही अवस्थित हो उस समय विजिगीषु राजा उस शत्रु राजा को सैन्यादि द्वारा घेर कर रखे और शत्रु राजा के देश का नाश कर दे और शत्रु के अन्न, जल, घास आदि को विषादि से दूषित कर दे। ये सब कार्य क्या धर्मशास्त्र के अविरुद्ध है? इस तरह के नृशस कार्य यदि धर्मशास्त्र के अविरुद्ध है तो अर्थशास्त्र मे ही इमसे अधिक और क्या कहा गया है?

हमने रामायण और महाभारत मे जो राजधर्म प्रकरण मे विंशतिवर्ग का उल्लेख किया है, उनमे राज्य रक्षण के अयोग्य और विपन्न (आपत्ति मे फँसा हुआ) राजा कभी भी सधि के योग्य नही हो सकता। लडाई करके इसका उच्छेद करना ही विजिगीषु राजा का कर्तव्य है, यह बतलाया है। मनुसहिता में भी विंशति-वर्ग मे परिपठित राजाओ को विग्रह द्वारा ही उच्छेद करने की बात कही है।

सुतरा मेधातिथि ने जो कहा कि धर्मशास्त्र से अविरुद्ध राजधर्म ही मनुसंहिता में प्रतिपादित हुआ है, यह बात हमारे ध्यान मे सगत नही मालूम होती। मनुसंहिता के सप्तमाध्याय के प्रथम श्लोक के भाष्य मे मेधातिथि ने कात्यायन का एक वाक्य उद्धृत करके कहा है कि राजा अर्थशास्त्रोपदिष्ट व्यवस्था को छोड कर धर्मशास्त्रोक्त व्यवस्था अवलम्बन करे—इसका क्या अभिप्राय है? राजा भी यदि अर्थशास्त्रानुसार कार्य न करेगा तो अर्थशास्त्र किसके लिए उपदिष्ट हुआ है? हमने याज्ञवल्क्यस्मृति से भी कात्यायन के वचनानुरूप एक वचन दिखा दिया है एव याज्ञवल्क्य की मिताक्षरा टीका मे जो कहा गया है वह भी दिखा दिया है।

अब प्रकृत बात यह है कि—आन्वीक्षकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति इन चारों ही विद्याओ के विषय भिन्न भिन्न है। न्याय सूत्र के भाष्यकार वात्स्यायन ने "इमाश्चतस्रो विद्या पृथक् प्रस्थाना प्राणभृताम् अनुग्रहायोपदिश्यन्ते" इस तरह कहा है (न्यायभाष्य १।१।१)। भाष्यकार की इस उक्ति के द्वारा धर्मशास्त्र के साथ अर्थशास्त्र का विरोध ही नही सभव होता, क्योकि चारो ही विद्याओ का व्यापार अलग अलग है। विषयो की समानता न होने से विरोध हो ही नही सकता। जो विषय जिस शास्त्र का मुख्य तात्पर्य मे परिगणित है उस विषय में वही शास्त्र प्रमाण होता है। जो विषय जिस शास्त्र का मुख्य तात्पर्य विषयीभूत नही है, वह विषय उस शास्त्र मे प्रसगवश उपपादित होने पर भी उसको उस शास्त्र का विषय कह देना सगत नही जँचता। इसलिये धर्मशास्त्र मे भी कण्टकशोधन आदि जो कुछ कहा गया है वह धर्मशास्त्र का मुख्य प्रतिपाद्य विषय नहीं है। वस्तुत वह अर्थशास्त्र का ही मुख्य विषय है। धर्मशास्त्र मे क्षत्रिय वर्ण के कर्मों का उपपादन करते हुए क्षत्रिय राजाओ का कर्म भी प्रसगवश कहा गया है। क्षत्रिय से भिन्न और भी कोई वर्ण यदि पृथ्वी का शासन करता है तो उसके लिए भी "कण्टक शोधनादि" कार्य कर्त्तव्य ही होगे। राज्य परिपालन केवल क्षत्रिय का ही कर्म होगा यह नही कहा जा सकता। इसी तरह अर्थशास्त्र में भी जो वर्णधर्म या आश्रमधर्म कहे गये है वे भी अर्थशास्त्र के मल विषय नही है। बल्कि प्रसगवश वहाँ कह दिये गये है। इसी तरह सब शास्त्रो का सम्बन्ध समझना होगा।

कौटिल्य अर्थशास्त्र के धर्मस्थीय अधिकरण मे "विवाद पद निबन्ध" नामक प्रथम अध्याय मे कहा गया है कि "शास्त्र विप्रतिपद्येत धर्मन्यायेन केनचित्। न्याय स्तत्र प्रमाणं स्यात् तत्र पाठो हि नश्यति।" इसका अभिप्राय यही है कि धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र का कोई विरोध नही। दण्डनीतिशास्त्र ही अन्य समस्त विद्याओ का रक्षक और परिपालक है। परिपालक शास्त्र का परिपाल्य शास्त्र के साथ विरोध हो ही नही सकता। जो लोग समझते है कि दण्डनीतिशास्त्र के बिना भी इतर सम्पूर्ण आन्वीक्षिकी आदि विद्याये स्वच्छन्द रूप मे अपने

के दोष में वे बड़ी बेइज़्ज़ती के साथ घर से निकाल दी जाती थीं और पति की उपस्थिति में परिवार की सभा बुलाकर उन्हें प्राणदंड भी दिया जा सकता था। रोमन लोगों में पति से अधिक पिता को अपनी विवाहिता कन्या को प्राणदंड देने का हक़ था। पर-पत्नी से व्यभिचार करनेवाले पुरुष को कोड़े मारते थे, या उसका शिश्न काट लेते थे या नौकरों के सुपुर्द कर देते थे जो उस पुरुष के साथ संभोग कर उसकी बेइज़्ज़ती करते तथा ख़ूब पीटते भी थे। वेश्या तथा दासी-कन्या के साथ व्यभिचार उतना बुरा नहीं समझते थे। सिपियो अफ्रिकानस (अफ्रीका के विजेता) की पत्नी ने जब देखा कि उसकी नौकरानी से पति का सम्बंध हो गया है तो उसने इस अवगुण के प्रति नेत्र मूँद लिये।

एक बात ध्यान में रखने की है कि रोमन क़ानूनों में व्यभिचार के लिए थोड़े बहुत दंडों की व्यवस्था बहुत बाद में हुई। इसका कारण यही है कि पति को अपनी दुराचारिणी पत्नी को हर प्रकार का दंड देने का स्वयं अधिकार था।[१] केटो ने लिखा है कि "यदि पत्नी व्यभिचारिणी हो तो पति उसे जान से मार सकता है पर यदि पति दुराचारी हो तो पत्नी को उँगली उठाने का भी अधिकार नहीं है। व्यभिचार के लिए क़ानूनन दंड की व्यवस्था सम्राट् आगस्टस ने की––देशनिकाला, सम्पत्ति-हरण या नीच वर्गों के लिए शारीरिक दंड इत्यादि। सम्राट् कांस्तैलियस ने व्यभिचारिणी को ज़िंदा जला देने का नियम बनाया, या उनके नियमानुसार बोरे में भरकर उसे पानी में डुबा देना चाहिए। पिता की हत्या करनेवाले को एक बोरे में साँप, कुत्ता तथा बिल्ली के साथ बन्द करके पानी में डुबा देते थे। सम्राट् जास्तिनियन की आज्ञा थी कि दुराचारिणी को धार्मिक महिला-आश्रमों में बन्द कर दो।[२]

रोम साम्राज्य में बहुत छोटे कारणों पर भी तलाक़ हो जाता था। उदाहरण के लिए, वैलेरियस मैक्सिमस के अनुसार एक तलाक़ इसलिए हो गया कि पत्नी बिना पति से पूछे कोई सार्वजनिक खेल देखने चली गयी थी। रोमन गणतंत्र के अंतिम काल में स्त्रियाँ भी अपना अधिकार ग्रहण कर चुकी थीं। वे भी तलाक़ लेने लगी थीं। सिसरो ने अपने एक पत्र में लिखा है कि स्त्री का पति नगर के बाहर गया। उसने जल्दी से तलाक़ ले लिया, क्योंकि वह किसी दूसरे से प्रेम करती थी। सेनेका ने लिखा है कि "कोई स्त्री अपने तलाक़ पर लज्जित न होगी। अब तो वे अपनी उम्र अपने

१. कीफ़र, पृष्ठ ३१

२. मामसेन ने इसी को "पवित्र क्रूरता" या Pious Savagery कहा है।

धर्मशास्त्र का ही विधान है। इसके उत्तर मे हमारा प्रश्न है कि यदि यह बात मान ली जाये तो अर्थशास्त्र का विधान और क्या होगा ? अर्थशास्त्र यदि किसी जगह लौकिक राजकार्य के निर्वाह के लिए धर्मशास्त्र को बाधित करके प्रवृत्त होवे, तो भी अर्थशास्त्र ही धर्मशास्त्र द्वारा बाधित होगा—यही तो टीकाकार का मत है। राजकार्यानुरोध से सद्य शौच की कल्पना का क्या कुछ दृष्ट प्रयोजन (प्रत्यक्ष मतलब) है या अदृष्ट प्रयोजन (परलोक मे सुख प्राप्ति) है ? राजकार्य सुचारु रूप से सम्पन्न होने पर प्रजा को सुविधा होगी। यह सोच कर ही तो राजा को राजकार्य मे अशौच नही होता ऐसा विधान है। याज्ञवल्क्यस्मृति के उक्त श्लोक की मिताक्षरा टीका मे भगवान् प्रचेता का वाक्य उद्धृत करके कहा है कि कारू, शिल्पी, चिकित्सक, दास, दासी राजा और राजभृत्य इनको अपने अपने विशेष कार्यों में अशौच न होगा। सूपकार को कारू कहा जाता है और चित्रकार आदि के लिए शिल्पी शब्द का प्रयोग होता है।

यहाँ मिताक्षरा मे विष्णुस्मृति का वाक्य उद्धृत करके कहा गया है कि राजकार्य मे राजा को एवं कारूकार्य मे कारूकार को अशौच नही होता। शातातपस्मृति का वाक्य उद्धृत करके कहा गया है कि वेतन लेकर कार्य करने वाले शूद्र, दासी, दास आदि को अपने स्वामी के स्नान कराने और शरीर के सस्कार आदि करने, तथा मालिक के अन्यान्य गृह कार्य करने मे अशौच नही होता। मिताक्षराकार ने भी कहा है कि इनका स्पर्श स्वामी के लिए अपरिहार्य होने से इनको अस्पृश्याशौच नही होगा। आगे मिताक्षरा मे कहा है कि चिकित्सक रोगी का जो उपकार कर सकता है वह दूसरे व्यक्ति के द्वारा सभव नही है। अत' चिकित्सक द्वारा स्पर्श होने पर भी वह सदा ही शुद्ध समझा जायगा। ये जो सारी सद्य: शौच की बातें कही गई है ये क्या सारी पारलौकिक फलावाप्ति के लिए कही गई है ? जो बाते इस लोक के फल के लिए है वे भी तो अन्य प्रमाणो से ही जानी जाती है। चिकित्सक को अपवित्र मान लेने पर रोगी की जो दुर्दशा होगी वह क्या लौकिक बुद्धि के द्वारा नही जानी जा सकती ? अर्थशास्त्र का अन्वय व्यतिरेक द्वारा जाना जा सकने वाला विधान इससे भिन्न नया और क्या हो सकता है ? उक्त सभी स्थलों मे अर्थशास्त्र द्वारा धर्मशास्त्र का ही बाध समझना चाहिए। ये सब बाते केवल याज्ञवल्क्यस्मृति मे ही है ऐसा नही है, बल्कि मनुसहिता के पंचमाध्याय के ९४।९५ श्लोक मे भी राजा और राजा के कर्मचारीगणो को भी अपने अपने खास खास कामो मे सद्य शौच की बात कही गई है। मनुस्मृति के पंचमाध्याय के ९४ वे श्लोक मे तो विशेष रूप से कहा है कि प्रजावर्ग के सरक्षण के लिए राजा और राजकर्मचारीगणो को सद्य. शौच होगा। मनु का पंचमाध्याय अर्थशास्त्र नही है और अपने अपने वर्णाश्रमानुकूल अशौच न होकर राजकार्यानुरोध से सद्य. शौच होगा यह क्या धर्मशास्त्र

पति से अधिक थी। पिता अपनी संतान को कमरे में बंद कर सकता था, कोड़े मार सकता था, खेत पर काम ले सकता था और जान से भी मार सकता था। पिता का इतना अधिकार था कि यदि उसका विद्वान् पुत्र, व्याख्यान में प्रवीण पुत्र, जनता की ओर से राज्य के शासकों के विरुद्ध कहीं व्याख्यान दे रहा हो, तो पिता उसे मंच पर से खींचकर मारता-पीटता घर ले जाता था और घर पर और मरम्मत भी कर सकता था। पिता परिवार का प्रधान होता था। उसे परिवार भर में सबको दंड देने का अधिकार था।

दासों को काँटेदार चाबुकों से मारते थे। बच्चों को चमड़े या झाड़ूनुमा बेंत से मारते थे। स्कूल में बच्चों को खूब पीटते थे। मारते-मारते अधमरा कर देते थे। स्कूल में बच्चों को पीटने के विरोध में आज सभी सभ्य समाज है। अपराधी को बेंत की सज़ा देने के विरोध में आज सभी अपराध-शास्त्री हैं। पर यह जानकर हमें संतोष होगा कि आज से १९०० वर्ष पूर्व भी स्कूल में शारीरिक दंड तथा किसी भी अपराध के लिए शारीरिक दंड के विरोध में आवाज उठानेवाले पैदा हो चुके थे। हमारे विचार से सभ्य संसार में ऐसे दंडों का सर्वप्रथम विरोधी क्विंटिलियन नामक महान् वक्ता था जिसका समय ईसवीय सन् ३५ से ९५ है। क्विंटिलियन का मत था कि नवयुवकों को आध्यात्मिक शिक्षा देनी चाहिए। वे कहते हैं—"मैं शारीरिक दंड का विरोधी हूँ, शिक्षा के लिए शारीरिक दंड देना बहुत ही बुरा है....यदि अध्यापक में छात्र को सहायता देने की भावना हो तथा धीरज हो तो ऐसे दंड की आवश्यकता ही नहीं है.....उन युवकों का क्या कीजिएगा जो मार से भयभीत नहीं होते, जिनके मन में भय नहीं है...पिट जाने से जो लज्जा उत्पन्न होती है, उसकी भावना से व्यक्ति की आत्मा दब जाती है और वह दिन के प्रकाश तथा जीवन के प्रकाश से दूर भागने लगता है।"

क्विंटिलियन के ये शब्द आज के शिक्षा तथा समाजविज्ञान के सबसे आगे बढ़े हुए विचारकों के समान हैं और अपराधशास्त्र के विद्यार्थी को एक महत्त्वपूर्ण निर्णय में सहायक होंगे। हम आगे चलकर इस विषय पर इस पुस्तक के तीसरे भाग में विचार करेंगे।

जोनसार भावर में

हमने रोमन स्त्री के अधिकार-हीन जीवन का कुछ वर्णन किया है। पर इसी सिलसिले में हमें अपने देश की एक पिछड़ी जाति में स्त्री के अधिकार-हीन जीवन की तुलना करनी चाहिए। पति के यहाँ पत्नी को अधिकार-हीन बनाकर, पिता

उसमे धर्म व्यतिक्रम होने पर भी इस धर्मव्यतिक्रम के समाधान के लिए स्वस्थ होने पर पूर्ण धर्माचरण करे। दारुण या मृदु जिस किसी धर्म द्वारा दु खी शरीर का उद्धार करके पीछे स्वस्थ होने पर पूर्ण धर्माचरण करे। पुन कहा गया है— आपत्काल उपस्थित होने पर शौचाचार का विचार न करे। प्रथम स्वय स्वस्थ होकर तभी धर्माचरण करे। सम्बर्तस्मृति के ५१ वे श्लोक मे कहा है कि दीन, अन्धे और दरिद्र व्यक्तियो को दान देने से अधिक पुण्य होता है। दक्षस्मृति के पाँचवे अध्याय मे दीन, अनाथ आदि को दान देने की बात कही गई है। दक्ष-स्मृति के पाँचवे अध्याय मे कहा गया है कि आपत् काल मे तथा अच्छी दशा मे अशौच भिन्न भिन्न रूप मे होता है। दक्ष स्मृति के छठे अध्याय मे कहा है कि यज्ञ काल मे, विवाह मे राष्ट्र विप्लव मे जननाशौच एव मरणाशौच नही होगा। आगे कहा है कि यह जो अशौच-व्यवस्था की गयी है वह स्वस्थ दशा मे समझनी चाहिये। इन सब विषयों की आलोचना करने पर स्पष्ट ज्ञात हो सकेगा कि अर्थशास्त्र धर्मशास्त्र का विरोधी नही होता।

जो समझते है कि दण्डनीतिशास्त्र मे जिन सब कर्त्तव्य कर्मों का उल्लेख किया गया है, उन सब बातो को बुद्धिमान् व्यक्ति अन्वय व्यतिरेक द्वारा स्वय ही अवधारण कर सकते है। इसके लिए किसी विशेष शास्त्र की अपेक्षा नहीं है। इसका समाधान हमने बहुत पहले ही कर दिया है। हमने इस प्रबन्ध मे दशकुमार चरित के अष्टम उच्छ्वास की आलोचना मे दिखा ही दिया है कि बिहारभद्र नामक अतिनीच राजा के अनुचर ने राज्य का विनाश करके राजा के विनाश साधन के लिए ये सब बाते बडी अतिरजकता से कही है। महाभाष्य, न्याय, मीमासा, आदि शास्त्र भी तो पण्डित जनो ने अपनी बुद्धि द्वारा ही उद्भावित किये है। इन शास्त्रो मे जो कुछ आलोचित हुआ है वह भी तो पण्डित लोगों की ऊहापोह द्वारा ही निरूपित हो सका है। इसलिए क्या महाभाष्यादिशास्त्र अध्ययन के अयोग्य कहे जा सकते है? दुरूह तर्कशास्त्र, खगोल, भूगोल, गणित शास्त्र, रेखागणित, आदि सभी बाते सभी देशो मे अवश्य अध्ययन के योग्य समझी जाती है और इन सबका अध्ययन भी सब ही देशो मे किया जाता है। ये सभी शास्त्र मनुष्यो की बुद्धि द्वारा उत्प्रेक्षित हुए है। ऊहापोह मे कुशल बुद्धिमान् असाधारण व्यक्तियो ने ही अनेक युक्तियो के द्वारा इन सब शास्त्रो को प्रपचित किया है। यदि कोई व्यक्ति अपने को ही समझे कि मै भी सबसे असाधारण बुद्धिमान् हूँ, क्या मै इन शास्त्रों को नही बना सकता? ऐसा समझ कर यदि वह इन सब शास्त्रो के अध्ययन से विरत हो जाय तब उसको पशुओ मे भी सबसे अधिक बुद्धिहीन (गर्दभ) के अतिरिक्त क्या कहा जा सकता है? अर्थशास्त्र को हेय प्रतिपादित करने के लिए तथा इस शास्त्र मे लोगो की प्रवृत्ति ही न होने पाय इसके लिए दण्डनीतिशास्त्र को मनुष्य बुद्धि द्वारा ही उत्प्रेक्षित हुआ कह कर

उसको हेय प्रतिपादन करने की चेष्टा की गई और इसमे उनको सफलता भी मिली। इसका ही परिणाम हुआ कि भारतीय जनता दण्डनीतिशास्त्र से सर्वथा अनभिज्ञ रहने के कारण पिछले एक हजार वर्षों मे पराधीन रह कर जो दुःख भोग चुकी है वह तो सबको विदित ही है। दूसरे राष्ट्रो की कुछ भी खोजखबर न रख सकने वाले भारतीय कूपमण्डूक बने रहे और आज वर्तमान समय मे स्वाधीनता प्राप्त करके भी शासन को सुव्यवस्थित रख सकने मे व्याकुल हो उठे है। यह सब चिरकाल से उपेक्षित राजनीति का ही परिणाम है। धुआँ देखकर अग्नि का अनुमान कर लेना सामान्य बुद्धि का काम है। किन्तु इसके लिए विरचित अनेक शास्त्र (न्याय आदि) का अध्ययन अध्यापन मे आज भी अनेक लोग कर्तव्य समझ कर प्रवृत्त दीखते है और आर्य ऋषिगणो के द्वारा रचित हुआ भी अर्थशास्त्र पढने योग्य नही माना जा रहा है। क्योकि वह तो अन्वय व्यतिरेक द्वारा समझा ही जा सकता है। इस तरह की विवेचना पराधीन जाति के लिए उचित ही है। भरत जी को श्री रामचन्द्र जी ने और युधिष्ठिर को नारद जी ने जो दण्डनीति विषयक उपदेश दिये है उनकी कुछ भी आवश्यकता न होती यदि भरत जी और युधिष्ठिर भी इनकी तरह ही कह देते कि ये तो साधारण लोक बुद्धि से ही जाने जा सकते है। इनके उपदेश करने की जरूरत ही क्या है? महाभारत मे सुविस्तृत राजधर्म और आपद्धर्म वर्णन करके अकारण महाभारत के कलेवर वृद्धि की आवश्यकता ही न होती, यदि भीष्म और युधिष्ठिर इन दण्डनीतिशास्त्र की अवहेलना करने वालों का सत्परामर्श सुन लेते। पैतामह, वैशालाक्ष आदि तन्त्रो के प्रणयन की भी जरूरत न होती। कौटिल्य को भी विपुल अर्थशास्त्र के प्रणयन का प्रयास न करना पडता। जब देश का पतन होता है या उसके पतनोन्मुख होने की सूचना मिल जाती है तब वहाँ की जनता की इसी तरह की विपरीत बुद्धि हो जाया करती है, जिससे उसका पतन अवश्यम्भावी होता है।

याज्ञवल्क्यस्मृति के व्यवहाराध्याय मे याज्ञवल्क्य ने अर्थशास्त्र से धर्मशास्त्र को प्रबल माना है। इसकी व्याख्या मे मिताक्षराकार ने धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र का विरोध होने पर अर्थशास्त्र ही बाधित होगा ऐसा कहा है। इसका उदाहरण दिखाते हुए कहा है कि मनुसहिता के अष्टमाध्याय के ३५०।३५१ वे श्लोक मे कहा गया है कि अपने को मारने के लिए आये हुए आततायी को बिना कुछ सोचे विचारे मार देना चाहिए। वह आततायी चाहे बहुश्रुत ब्राह्मण ही क्यों न हो, उसे मार ही डालना चाहिए। आततायी को मारने मे मारने वाले को कोई दोष नही लगता है। मनुसहिता की इन बातो को मिताक्षराकार ने अर्थशास्त्र कह कर निर्देश किया है। आगे मिताक्षरा मे मनुसहिता के ११ वे अध्याय के ६० वाँ श्लोक उद्धृत करके कहा है कि ब्रह्म हत्याओं के सम्बन्ध मे जो सब प्रायश्चित्त कहे गये है वे सब अज्ञान कृत ब्रह्म हत्याओ के सम्बन्ध मे ही समझने

होगे। ज्ञान कृत ब्रह्म हत्या का कोई प्रायश्चित्त ही नही है। अन्य स्मृतिनिबन्धकारो ने अज्ञान कृत ब्रह्म हत्या के प्रायश्चित्त से ज्ञान कृत ब्रह्म हत्या मे द्विगुण प्रायश्चित्त होगा, यह कहा है। फलत. मिताक्षराकार के मत से गुरु, वृद्ध, ब्राह्मण आदि को आततायी होने पर भी उनका वध करने से कठोर प्रायश्चित्त करना होगा। इन आततायियो को न मार कर स्वय आततायियो के द्वारा मारे जाने, आततायियो का प्रतिरोध न कर गुरु, ब्राह्मण आदि आततायी को आत्म समर्पण कर देना अथवा आततायी जिनको मारना चाहे, उनको उनके (आततायियो के) हाथो मं सौपने पर, कैसा पुण्य होगा यह मिताक्षराकार ने नही कहा।

हम महाभारत के शान्तिपर्व मे देखते है, कि शरशय्या पर पडे हुए भीष्म के पास उपदेश लेने के लिए जिस समय महाराज युधिष्ठिर जाते है उस समय वे परम पूज्य एव मान्य गुरुजनो को युद्ध मे गिरा कर विशेषत परम पूज्य पितामह भीष्म को शरशय्याशायी करके लज्जावश और अभिशप्त होने के भय से भीष्म के सामने आने का साहस नही करते है, यह बात भगवान् श्री कृष्ण के कहने पर, भीष्म पितामह उसके उत्तर मे कहते है—जैसे दान, अध्ययन एवं तपस्या ब्राह्मणो का धर्म है, वैसे ही युद्ध मे शरीर पातन क्षत्रिय का धर्म है। पितृगण, पितामहगण, भ्रातृवर्ग एवं सम्बन्धि वान्धवगण मे से जो कोई भी अन्याय प्रवृत्त हो उसी को राजा युद्ध मे मार डाले, इससे राजा को धर्म ही होगा। मर्यादा को तोडने वाले अतिलोभी गुरुजनो को भी युद्ध मे मार डालने वाला क्षत्रिय धर्मवीर कहलाता है। युद्ध के लिए ललकारा गया क्षत्रिय अवश्य युद्ध करेगा। यह युद्ध धर्म, स्वर्ग, और लोकप्रद होता है। यही भगवान् मनु ने कहा है—(शान्तिपर्व ६५ अध्याय० ११ से १६ तक श्लो०)।

भीष्म ने अन्याय प्रवृत्त दुर्योधन का पक्ष लिया था। अधर्म पक्ष का अवलम्बन कर भीष्म ने अपने को भी मिथ्या प्रवृत्त कह कर निर्देश किया है। इससे मिथ्या प्रवृत्त भीष्म को शरशय्या पर लिटा कर युधिष्ठिर को कुछ पाप नहीं हुआ, बल्कि उल्टा धर्म ही हुआ। यही बात भीष्म ने कही। महाभारत की इन सब बातो की आलोचना करने पर मिथ्या प्रवृत्त आततायी को अवश्य मार डालना चाहिए यही समझा जा सकता है। किन्तु आततायी को आत्म समर्पण कर देने का और उसके द्वारा मारे जाने का उपदेश महाभारतादि प्राचीन शास्त्रो मे कही नही मिलता। यद्यपि कुरुक्षेत्र युद्ध के बाद महाराज युधिष्ठिर ने अश्वमेध यज्ञ किया है। वह भी उन्होने जो युद्ध में यदा कदाचित् अन्याय मार्ग का अवलम्बन करके पाप कर डाला है, उस पाप के क्षालनार्थ ही है। ऐसा कोई भी कार्य सम्भव नही जिसमे कभी कोई त्रुटि न हो सके एवं हिंसादि दोष न हो जाय। जिनके ध्यान मे कुमार्ग गामियों को भी दण्ड देना अकर्तव्य समझा जाता है उनकी दृष्टि हम महाभारत के इस श्लोक पर आकृष्ट करते है।

गिराने का मूल्य स्त्री के रक्त गिराने की तुलना में दुगुना होता है।[1] गलास जाति में आदमी को मारने पर १००० गाय-बैल दंड देना पड़ता है पर औरत मारने पर केवल ५० गाय से ही काम चल जाता है। कहीं-कहीं स्त्री की हत्या पर अधिक दंड देना होता है। सुमात्रा की रेजांग जाति में पुरुष की हत्या पर ८० डालर (वहाँ का सिक्का) तथा स्त्री की हत्या पर १५० डालर देना पड़ता है। स्त्री की हत्या पर दिनका जाति में ४० गौएँ देनी पड़ती थीं तथा पुरुष की हत्या पर ३० गौएँ।

प्रश्न यह है कि कितनी जातियों, मनुष्यों या पशु-पक्षियों की बातें बतलाकर कामशास्त्र तथा अपराधशास्त्र का सम्बन्ध स्थापित किया जाय। विशेषज्ञों का कहना है कि इस पृथ्वी पर १०,००,००० प्रकार के जानवर हैं, ८,००,००० प्रकार के कीड़े-मकोड़े हैं तथा ३०,००० प्रकार की मछलियाँ हैं, ९,००० प्रकार की चिड़ियाँ हैं और २,५०,००० प्रकार के पेड़-पौधे हैं। मनुष्यों का प्रकार अभी तक गिना नहीं जा सका। ८५ देशों में लगभग २५,००० प्रकार के (भिन्न सभ्यता के) नर-नारी रहते हैं। इनका पूरा अध्ययन कैसे हो सकता है?

नर-बलि

मनुष्य क्या नहीं करता? उसकी वासना उससे क्या नहीं कराती। वह बच्चे ही नहीं मारता, नर-बलि भी बराबर करता चला आ रहा है। आर्य जाति में, सब देशों में नर-वलि का रिवाज़ था।[2] ईसवी सन् २ तक अर्काडिया में ज्यूस हाइकारस देवता के सामने नर-बलि होती थी। प्रसिद्ध यूनानी युद्ध, सलामिस की लड़ाई के पहले थेमोस्टीकिलीज ने युद्ध में बन्दी बनाये तीन फ़ारसियों का बलिदान किया था। पिल्नी के अनुसार ईसा से ९७ वर्ष पहले रोमन सिनेट ने एक क़ानून पास कर मानव (नर) बलि की मनाही की थी। जूपिटर लैतियारिस के सम्मान में मनाये जानेवाले त्यौहार में रोम में एक आदमी का गला काटकर चढ़ाते थे। उत्तरी अफ्रीका में, टाइ-बेरियस के ज़माने में, शनि देवता की सेवा में बच्चों की भेंट चढ़ाते थे। इंग्लैंड के ट्यूटन, केल्ट तथा स्लाव लोग नर-बलि करते थे।[3] जापान तथा मेक्सिको में भी यही

१. Lam—Arabian Society in the Middle ages—Page 18.

२. Hehn—"Wanderings of plants and animals from the first Home"–Page 144

३. वेस्टरमार्क, पृष्ठ ४३५

का खण्डन करने के लिए सफल प्रयास किया तथापि अनैसर्गिक उत्कट वैराग्य उनको भी अपने प्रभाव से प्रभावित किये बिना न रहा।

ग्यारहवी शताब्दी से लेकर सोलहवी शताब्दी पर्यन्त भारतवर्ष मे बहुत से दार्शनिक मतो की सृष्टि हुई। इन सभी दार्शनिको की दृष्टि सकुचित होने के कारण छोटे छोटे अनेक सम्प्रदाय बन गये और राष्ट्रिय भावनाओ से शून्य होने के कारण वे सभी आपस मे एक दूसरे से विद्वेष रखने लगे। जिससे भारतीय जनता पारस्परिक कलह मे सम्प्रवृत्त हो अपनी सामूहिक शक्ति खो बैठी। उदार दृष्टि न होने के कारण भारतीय जनता उन छोटे छोटे सम्प्रदायो मे से किसी एक सम्प्रदाय मे अपने को मान कर दूसरे सम्प्रदाय वालो से द्वेष करने लगी। इस समय भारत मे साम्प्रदायिकता के साथ ही प्रान्तीयता का इतना जोर बढा कि धर्मशास्त्रो के द्वारा भी उन उन विशेष देशो या प्रान्तो के अनुसार धर्म निर्णय के लिए स्मृतिनिबन्ध लिखे जाने लगे। जिसमे प्रान्तीयता की भावनाये सुदृढ होती चली गई। राष्ट्र के अध पतन के समय विद्वानो की बुद्धि मे भी प्रान्तीय धारणाये स्थान बना लेती है। राष्ट्रिय कल्याण साधन मे उदासीन होकर व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए ही सामूहिक दृष्टि सकुचित होती चली गई। इसका परिणाम हुआ कि राष्ट्र अनेक भागो मे विभक्त होकर आपस मे एक दूसरे से विच्छिन्न हो गया। यहाँ तक कि प्रत्येक प्रान्त ने अपने अपने धार्मिक विचार भी अपने ही प्रदेश के लिये सीमित बना लिए एव देश की रीति रिवाजो की प्रधानता से अपने को दूसरे प्रान्तो से सर्वथा विच्छिन्न कर लिया। देश की जनता यदि अपनी अपनी चिन्ता मे ही मग्न रहने लगे तब देश की एकता एव देश की कल्याण-चिन्ता का अवकाश नही रह जाता। इस दशा मे देश को अपनी रक्षा एव सुव्यवस्था के लिए दूसरे के पैरो पर झुकने के सिवाय दूसरा उपाय ही नही रह जाता। जिस समय तक सबके कल्याण की चिन्ता एव तदनुरूप कार्य नही किया जाता, केवल व्यक्तिगत स्वार्थ सम्पादन के ही कार्य सोचे एव किये जाते है, तब तक देश की एकता सकट मे रहती है। इसमे कुछ सन्देह नही।

आश्चर्य की बात यह है कि जिस चिन्ता धारा वा कार्यधारा ने भारत की संहति को विच्छिन्न कर दिया, आज वर्तमान मे भी लोग उसकी ही प्रशसा करते देखे जाते है। आपस मे अलग अलग होकर छोटे छोटे सम्प्रदाय बन जाने से देश का पतन अवश्यम्भावी है, यह बात हमारे ध्यान मे ही नही आती। भारत की विचारधारा और कार्यधाराओ मे जो बहुत बडा अतर अधिक समय से चला आ रहा है, आज तक उसकी समाप्ति का कोई उपाय नही दीख पडता। केवल समय के भेद से उसके आकार प्रकार मे भेद भले ही हो गया हो किन्तु भेद वही चल रहा है।

जिन्होने भारत की विचारधारा एवं कार्य धाराओ के भेद की नीव डाली

और अन्यान्य विद्वेष की रचना की, उनको भारत का कल्याणकारी किसी तरह भी नही कहा जा सकता। जो भारत की इस चिन्ता और कार्य मे भेद रखने का समर्थन करते है वे ही पूछते है कि भारत का अध पतन कैसे हुआ ? इस प्रश्न के उत्तर मे उनसे क्या कहा जाय। दुख की बात यह है कि अपनी इस स्थिति को समझने की शक्ति भी हम खो बैठे है। एक ओर राष्ट्रिय भावनाओ का विलोप और दूसरी ओर चिन्ता जगत मे विप्लव, दोनो भारतवर्ष को पगु बनाने पर तुले है।

पंचम अध्याय

पैताम.तन्त्र

भारत का सबसे प्रथम दण्डनीति का ग्रन्थ—केवल भारत का ही क्यो सपूर्ण मानव समाज की आदि दण्डनीति का शास्त्र जो कि पैतामहतन्त्र के नाम से प्रसिद्ध था, आज हम उमी ग्रन्थ के प्रतिपाद्य विषय की समालोचना करेगे।

भगवान् ब्रह्मा ने एक लाख अध्यायो मे जो सुविशाल ग्रन्थ बनाया उस ग्रन्थ के प्रतिपाद्य विषय महाभारत के राजधर्मपर्व के ५९ वे अध्याय मे आलोचित हुए है। हमने इस अध्याय के विषय मे पहले भी कहा है। यह अध्याय सूत्राध्याय नाम से प्रसिद्ध है।

इस शास्त्र मे—त्रयी, आन्वीक्षिकी, वार्ता और विस्तृत रूप मे दण्डनीति प्रदर्शित हुई है। मन्त्री, पुरोहित तथा अमात्यगणो के लक्षण और उनकी रक्षा के उपाय बतलाये गये है। अमात्य आदि की रक्षा के लिए प्रणिधियो (गुप्तचर) के विभाग की बात कही गई है। कौटिल्य अर्थशास्त्र के प्रथमाधिकरण के सप्तम और अष्टम प्रकरणो मे गुप्तचर विभाग का विशद वर्णन है। इसके बाद पैतामहतन्त्र मे राजपुत्र की रक्षा की व्यवस्था बतलायी गई है। कौटिल्य अर्थ-शास्त्र के प्रथमाधिकरण के तेरहवे प्रकरण मे राजपुत्र की रक्षा की व्यवस्था विशेष रूप मे प्रदर्शित हुई है। पैतामहतन्त्र मे अनेक प्रकार के गुप्तचरो और उनके कार्यों का निर्देश किया गया है। साम, दान, भेद दण्ड और उपेक्षा इन पाँच प्रकार के उपायो का पूर्ण रूप से उल्लेख है। राजसभा मे मन्त्रणा की रीति, मन्त्रणा का कार्य से पूर्व प्रकट हो जाना, मन्त्रणा मे भ्रम होना, एव उसकी सफलता और असफलता का फल कहा गया है। हीनसधि, मध्यमसधि और उत्तम-सधि इन तीन प्रकार की सधियो का विवरण प्रतिपादित हुआ है। डर से की गई सधि हीनसंधि होती है। सत्कार मात्र से प्रसन्न हो की गई सधि, मध्यमसधि कहलाती है। पराजित राज्य पर कर लगा कर धन ग्रहण पूर्वक सधि, उत्तमसंधि होती है। भय, सत्कार और धन ये ही तीन सधि के कारण होते है। इन तीनो तरह की सधियों का विस्तृत विवरण पैतामहतन्त्र मे मिलता है। इसी तरह युद्ध के भी चार कारण निर्दिष्ट हुए है। अपने मित्रो की वृद्धि और कोष वृद्धि के लिए, तथा शत्रु के मित्रो का नाश और शत्रु के कोष विनाश के लिए

युद्ध सघटित हो सकता है। इसलिये युद्ध के ४ कारण माने गये है। धर्म विजय, अर्थ विजय, आसुर विजय ये तीन प्रकार की विजय वर्णित हुई है।

अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, कोष और बल (सेना) यह पच वर्ग, उत्तम मध्यम और अधम भेद से दिखाया गया है। प्रकाश्य दण्ड आठ तरह का और गुप्त दण्ड अनेक तरह का वर्णित हुआ है। रथ, हाथी, घोडा, पैदल, विष्टि, नौसेना, चर और दैशिक, इस अष्टाङ्ग सेना का विशेष विवरण दिया गया है। पैतामहतन्त्र मे जो अष्टाङ्ग सेना कही गई है उसमे विष्टि पचम अङ्ग होती है। इस पचम अङ्ग विष्टि का कार्य कौटिल्य अर्थशास्त्र के दशम अधिकरण के चतुर्थ प्रकरण मे विशदरूप से विवृत हुआ है। उसमे कहा गया है—डेरे आदि लगाना, फौज के चलने के रास्ते का सशोधन करना, फौज के रास्ते मे आई हुई नदी आदि का पुल बाँधना, फौज के लिए कुएँ बनाना, पहले बने हुए तालाब आदि का सशोधन करना, तोप आदि यन्त्रो, तलवार आदि आयुधो एव शरीर रक्षार्थ कवच आदि को ले चलना, युद्ध काल मे अस्त्र और कवच आदि सैनिको को देना, एव घायल सैनिको को युद्ध भूमि से हटाकर निरापद स्थान मे ले जाना ये सब कार्य पचम अङ्ग भृत विष्टि सेना के होते है।

परराष्ट्र मे गुप्त रूप मे रह कर जो शत्रु राज्य का सवाद सग्रह कर अपने राष्ट्र को सतत समाचार देता रहे उसको चर कहते है। शत्रु राज्य पर आक्रमण करने के लिए सेना का अभियान होने पर सेना को उचित मार्ग का निर्देश करके जो सहायता करता है उसको दैशिक कहते है। सेना के ये आठ अङ्ग प्रकाश्य अङ्ग कहलाते है। इसके अतिरिक्त सेना के अप्रकाश्य अङ्ग भी होते है। पैतामहतन्त्र मे सर्पादि जगम विष एव अनेक तरह के उद्भिज्ज और रासायनिक स्थावर विष, जो ओढने पहनने के वस्त्रो मे लगा देने से स्पर्श करने पर प्राणि को मूर्च्छित कर सकते है तथा जो खाने-पीने की चीजों मे निक्षिप्त होने से तत्काल ही मारक सिद्ध होते है; इस तरह के अनेक विष और चूर्ण-योग जो गुप्त रूप से शत्रु को मारने के लिए काम मे लाये जा सकते है, वे सब बतलाये गये है।

शत्रु, मित्र और उदासीन, इन तीन तरह के राजाओ के साथ किस तरह का व्यवहार करना चाहिए यह सब इस शास्त्र मे वर्णित हुआ है। जय और पराजय की सूचना देने वाले ग्रह और नक्षत्र आदि की अनुकूल गति का भी इस तन्त्र मे यथार्थ वर्णन मिलता है। जगल तथा निम्न प्रदेश एव मरुस्थल आदि अनेक प्रकार की भूमि के गुण इसमे बतलाये गये है। अपनी सेना की रक्षा तथा उसे प्रोत्साहन देना, किसी आपत्ति के आने पर उसको आश्वासन देना, तथा रथ, यन्त्र, शस्त्र आदि की पूरी परीक्षा का विवरण इस शास्त्र मे दिया गया है। शत्रु के द्वारा अपनी फौज के नाश करने के प्रयोगो का वर्णन किया गया है। चक्र,

क्रौच, आदि अनेक तरह के व्यूहो की रचना इस शास्त्र मे बतलाई गई है। विचित्र युद्ध कौशल का विषय भी वर्णित है। अनेक प्रकार के ग्रहयुद्ध, धुमकेतु आदि राष्ट्र के अकल्याणसूचक उत्पात एव उल्कापात भूकम्प आदि दु शकुनो का वर्णन मिलता है। इस शास्त्र मे शत्रुओ के विनाश के लिए जैसे सुयुद्ध वर्णित है इसी तरह अन्य स्थलो मे समयानुरूप अपनी रक्षा के लिए युद्ध से भाग जाना भी बतलाया गया है।

युद्ध मे काम आनेवाले शस्त्रो का सग्रह तथा युद्ध मे उनके उपयोग का परिज्ञान भी इस शास्त्र मे बतलाया गया है। अपनी ही सेना मे आपस मे विरोध तथा राजा के प्रति सेना की प्रतिकूलता एव सेना में किसी सक्रामक रोग के फैल जाने आदि को सैन्य-व्यसन कहते है। इस व्यसन की उत्पत्ति एव उसका उपशम इस शास्त्र मे अच्छी तरह वर्णित है। सेना का उत्साह बढाने के लिए अनेक तरह के खेलो का वर्णन किया गया है। सेना के कष्ट (रोगादि) को जानना, उसकी आपत्ति को समझाना और उसकी स्वाभाविक दशा का परिज्ञान इस शास्त्र मे अच्छी तरह समझाया गया है।

युद्ध के लिए यात्रा करने के समय, सेना को अनेक तरह के इशारो को जानने के लिए शख, दुन्दुभि, आदि के शब्द से सेना को उसका कर्त्तव्य बताना, इधर उधर घूमती हुई फौज को सहसा इकट्ठा कर देना, एव फौज को चलने का निर्देश करने आदि का यथोचित वर्णन किया गया है। अनेक तरह के चोर और डाकुओ द्वारा एव जगली मनुष्यो के द्वारा शत्रुराज्य का पीडन करना बतलाया गया है। आग लगाने वाले, जहर देने वाले, और भी अनेक तरह के भय देने वाले व्यक्तियो के द्वारा शत्रुराष्ट्र का पीडन इसमे कहा गया है। दूसरे राष्ट्र के सामन्त राजाओ मे आपस में भेद पैदा कर देना, अन्न की खेती का विनाश, हाथी, घोडे आदि को दूषित कर देना, अर्थात् काम करने लायक न रहने देना, शत्रु की फौज मे अनेक तरह का भय पैदा कर देना, दूसरे राष्ट्र मे रहने वाले विजिगीषु के अनुकूल व्यक्तियो को आश्वासन देना और उनके लिए अनेक प्रकार की सुख-सुविधा कर देना और उनको पूर्ण विश्वास दिला कर शत्रुराष्ट्र को उनके द्वारा तकलीफ पहुँचाना इस पैतामहतन्त्र मे वर्णित है।

१ स्वामी, २ अमात्य, ३ सुहृद्, ४ कोष, ५ राष्ट्र, ६ दुर्ग, ७ सेना ये ही सात अङ्ग राज्य की वृद्धि और ह्रास के कारण इस शास्त्र मे निर्दिष्ट हुए है। राजदूत का कर्त्तव्य बतलाया गया है। दूत का कहाँ तक क्या अधिकार है-वह बतलाया गया है। राष्ट्र की वृद्धि के सभी उपाय इसमें विशद रूप से वर्णित हुए है। विजिगीषु राजा का शत्रु, मध्यस्थ, उदासीन और मित्र राजाओं के साथ कैसा व्यवहार होना चाहिये, यह विस्तृत रूप से बतलाया गया है। जो राजा विजिगीषु राजा के शत्रु और मित्र होने के साथ समान

सम्बन्ध रखता है उसको मध्यस्थ या मध्यम राजा कहा जाता है एवं जो राजा विजिगीषु राजा के शत्रु और मित्र दोनो के साथ कुछ सम्बन्ध नही रखता वह विजिगीषु राजा के लिए उदासीन राजा होता है। अपने से प्रबल राजा के राज कार्यों में अनेक विघ्न डालना एव प्रबल राजा के राज्य मे उच्छृङ्खलता बढाना पैतामहतन्त्र मे वर्णित है।

दीवानी और फौजदारी न्यायालयो के विभागो के सभी कार्यो का सम्यकतया निरूपण किया गया है। अपने राष्ट्र के उत्पातकारी चोर डाकू और द्यूत क्रीडा-कारी आदि कण्टक वर्ग का निराकरण, अनेक प्रकार के कुश्ती के खेल (मल्लक्रीडा), बहुत तरह के शस्त्रो का परिज्ञान, राष्ट्र के कल्याण के लिए धन का व्यय, राष्ट्रोपयोगी वस्तुओ का सग्रह, इस तन्त्र मे वर्णित हुआ है। राष्ट्र के अरक्षित जनों की रक्षा एव रक्षित जनो को अनेक तरह के कामो मे लगाना, दुर्भिक्ष के समय दुखी जनो को धनादि देना, राष्ट्र मे परस्त्री (वेश्यादि) एव शराब आदि दुर्व्यसनो को रोकना, इस शास्त्र मे कहा गया है। उत्साहशक्ति, प्रभुशक्ति, और मन्त्रशक्ति आदि राजगुणो का एवं सेनापति के गुणो का निरूपण किया गया है। उत्साहशक्ति, प्रभु-शक्ति और मन्त्रशक्ति इस त्रिवर्ग के गुण दोषो का युक्ति पुर सर विवेचन भी इस तन्त्र मे मिलता है। वाग्मिता, प्रगल्भता आदि राजगुण भी इसमे बतलाये गये हैं। कामन्दक नीति शास्त्र के चौथे अध्याय मे पद्रह से उन्नीसवे श्लोक तक जो राजा के गुणों का वर्णन मिलता है, वह इसी से उद्धृत हुआ ज्ञात होता है। सेनापति के गुणो का वर्णन इसमे यथेष्ट मिलता है। उत्साहशक्ति आदि त्रिवर्ग का कारण इसमे उपपादित हुआ है, तथा उनके गुण दोषो की भी समीक्षा की गई है।

इस ग्रन्थ मे राजा के अनुजीवियो के व्यहार एव उनके दुष्कार्यों की विशेष समालोचना की गई है। राजा के द्वारा अलब्ध वस्तु का लाभ एव लब्ध वस्तु की सुरक्षा और विवर्धन, एव वर्धित वस्तु का यथोपयुक्त कार्यों मे लगाना आदि अच्छी तरह बतलाया गया है। इसमे धर्म, अर्थ, काम के लिए तथा दुर्व्यसनों एवं आपत्तियो को दूर करने के लिए धन के व्यय करने की व्यवस्था बतलायी गई है। १—शिकार करना, २—जुआ खेलना, ३—दिन मे अनावश्यक सोना, ४—दूसरे के दोषों का सतत कीर्तन, ५—अधिक मात्रा मे स्त्री सभोग, ६—ज्यादा मद्य सेवन, ७—नृत्य, ८—गीत, ९—वाद्य, १०—व्यर्थ घूमना, इन दश कामज दुर्व्यसनो एव १—चुगुलखोरी, २—दुष्कर्मो मे साहस, ३—दूसरो को सताना, ४—दूसरो की उन्नति देखकर डाह करना, ५—दूसरों की निन्दा करना, ६—दूसरो का धन अपहरण करना तथा दूसरे को दिये जाने वाले धन को न देना, ७—गाली गलौज करना, ८—क्रोध परवश दूसरों को व्यर्थ मारना, इन आठ क्रोधज दुर्व्यसनो का इस तन्त्र मे विस्तार से निरूपण किया गया है। इन कामज व्यसनों में से मृगया (शिकार खेलना), जुआ खेलना अधिक मात्रा मे स्त्री सभोग और

बहुत ज्यादा शराब पीना, ये चार दुर्व्यसन बहुत निकृष्ट बताये गये हैं। इसी प्रकार क्रोधज ८ व्यसनों मे गाली गलौज करना क्रोध परवश हो दूसरे को व्यर्थ मारना, और दूसरे के धन का अपहरण या दूसरे को दिया जाने वाला पैसा न देना ये तीन व्यसन अति निकृष्ट बतलाये गये हैं।

अनेक तरह के यन्त्र और उनका व्यवहार इस तन्त्र मे वर्णित है। यन्त्र दो प्रकार के कहे गये हैं, स्थित-यन्त्र और चल-यन्त्र। स्थित-यन्त्र भी बहुत तरह के कहे गये है। जैसे सर्वतोभद्र, यामदग्न्य बहुमुख, विश्वासघाती, सघाटि, यानक, पर्जन्यक, ऊर्ध्वबाहु, अर्द्धबाहु आदि। इसी तरह चल-यन्त्र भी अनेक तरह के प्रतिपादित हुए हैं। जैसे पंचालिक, देवदण्ड, सूकरिका, मुसल, यष्टि, हस्तिवारक, तालवृन्त मुद्गर, द्रुघण, गदा, शृंखला, कुद्दलिक, आस्फोटिम, उद्घातिम, उत्पाटिम, शतघ्नी, त्रिशूल, चक्र आदि। इन समस्त यन्त्रों का विशेष विवरण कौटिल्य अर्थशास्त्र के अध्यक्ष प्रचार नामक द्वितीय अधिरण मे आयुधागाराध्यक्ष प्रकरण मे विशेष रूप से व्याख्यात हुए हैं (कौ० अ० २५ प० गणपति स०)। अनेक उपायो से शत्रुराज्य का उत्पीडन शत्रुराष्ट्र के सीमा वृक्ष आदि को नष्ट कर देना, अपने राष्ट्र मे खेती के उपयोगी सब कामो की सुव्यवस्था, अनेक तरह की आवश्यक अपेक्षित वस्त्र आदि और कवच आदि सामग्री के निर्माण की व्यवस्था—हीरे, पन्ने, पद्मराग आदि मणियाँ, हाथी घोडे आदि पशु, अनेक तरह के वस्त्र, दास दासी आदि सेवक वर्ग, एव सोना चाँदी आदि धातुये, इन सभी चीजों के उचित मात्रा मे सग्रह करने की व्यवस्था, इस तन्त्र म दिखाई गई हैं।

पणव, आनक, शख, भेरी, आदि युद्धोपयोगी वाद्य यन्त्रों के बनाने की व्यवस्था बतलाई गई हैं। नवीन प्राप्त किये राज्य के आश्वासन की व्यवस्था—उस राज्य के सज्जनो के सत्कार की सुव्यवस्था, विद्वानों से मिलने की व्यवस्था—दान होम आदि धर्म कार्यों की व्यवस्था, मागलिक कर्मों का अनुष्ठान, राजपरिच्छद का निर्णय, राजा के भोजनादि की व्यवस्था, राजा के व्यक्तिगत कार्यों की व्यवस्था, राजा की सत्यनिष्ठता और राजा के मधुरभाषी होने का प्रयोजन, राज्य मे अनेक तरह के उत्सवो के करने की व्यवस्था, सभी तरह के जन समाजो मे राजा के प्रत्यक्ष और परोक्ष कार्यों की व्यवस्था—राजकर्मचारियो के सभी कार्यों के देखने की व्यवस्था, नागरिक एव जनपदवासी जनता के रक्षण तथा संवर्द्धन की व्यवस्था, द्वादशराजमण्डल मे राजा के कार्यों की व्यवस्था कही गई है। यह बारह राजमण्डल की बात मनुसंहिता के सप्तम अध्याय मे १५६ वे श्लोक मे बतलाई गई है। इसका परिचय मनु के मेधातिथिभाष्य मे इस तरह बतलाया गया है—विजिगीषु, शत्रु, मध्यम और उदासीन ये चार राजा की मूलप्रकृति होती है। कामन्दक नीतिशास्त्र के अष्टम अध्याय के १८।१९।२० श्लोको में भी इन्ही चारों को राजा की मूलप्रकृति कही गयी है।

अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, कोष और दण्ड इन पाँचो को विजिगीषु राजा की द्रव्य-प्रकृति कहा है। इन पाच प्रकृति सम्पद् से सम्पन्न राजा आत्मसम्पद् युक्त होकर जिस समय दूसरे राष्ट्रो को जीतने के लिए तैयार होता है उस समय उसको विजिगीषु कहा जाता है। इस विजिगीषु राजा के राज्य से मिले हुए दूसरे राष्ट्र के अधिपति को अरिप्रकृति या शत्रुप्रकृति कहते है। विजिगीषु राजा के राज्य के चारो ओर जो राष्ट्र अव्यवस्थित रूप मे स्थित होते है उन सभी राष्ट्रो के अधिपति अरिप्रकृति अर्थात् स्वभावशत्रु होते है। इन शत्रुराज्यो के परवर्ती राष्ट्र के अधिपति को मित्रप्रकृति अर्थात् स्वभावमित्र कहते है। सुतरा शत्रु-राज्य का अनन्तर्वर्ती राज्य मित्रराज्य होता है। उसके बाद का राष्ट्र मित्र के मित्र का राष्ट्र और उस राष्ट्र का परवर्ती राष्ट्र शत्रु के मित्र का मित्रराज्य। सुतरा विजिगीषु राजा के सम्मुख भाग मे यथाक्रम ये पॉच राष्ट्र रहते है यह समझ लेना चाहिये, १—शत्रु, २—मित्र, ३—शत्रु का मित्र, ४—मित्र का मित्र, ५—शत्रु के मित्र का मित्र। इसी तरह विजिगीषु राजा के पश्चात् भाग मे जो राज्य रहता है उसके राजा को पार्ष्णिग्राह कहा जाता है। यह पार्ष्णिग्राह राजा के शत्रु का मित्र होता है। विजिगीषु राजा जब अपने पुरोवर्ती राजा पर आक्रमण करता है तब यह पार्ष्णिग्राह राजा उसके हित के लिए विजिगीषु पर पीछे से आक्रमण कर उसको पीछे से रोक रखता है। इसी कारण से इसको पार्ष्णिग्राह कहा जाता है। इसलिए पार्ष्णिग्राह शत्रु का मित्र होता है। इस पार्ष्णिग्राह के अनन्तरवर्ती पिछले राज्य के राजा को आक्रन्द कहते है। यह आक्रन्द विजि-गीषु राजा का मित्र होता है। क्योकि यह विजिगीषु राजा के पीछे से आक्रमणकारी पार्ष्णिग्राह राजा को विजिगीषु पर आक्रमण करने से रोकने के लिए विजिगीषु राजा के द्वारा अपनी सहायता के लिए पुकारा जाता है, इसी से इसको आक्रन्द कहते हैं। आक्रन्द राजा के भी पीछे बसने वाले राष्ट्र के राजा को पार्ष्णिग्राहा-सार कहते है। यह विजिगीषु राजा के शत्रु के मित्र का मित्र होता है। पार्ष्णिग्राह शत्रु का मित्र होता है और आसार उसका मित्र होता है। क्योकि यह राजा पार्ष्णिग्राह की सहायता करता है इसी लिये इसको पार्ष्णिग्राहासार कहा जाता है। इसी तरह इससे भी पिछले राज्य के राजा को आक्रन्दासार कहते हैं। यह राजा विजिगीषु राजा के मित्र का मित्र होता है। क्योकि विजिगीषु राजा का मित्र आक्रन्द और उसका मित्र आक्रन्दासार कहा जाता है। इसी तरह विजिगीषु राजा के आगे रहने वाले पॉच राज्य एवं पीछे रहने वाले चार राज्य इस तरह नौ राष्ट्र होते है और विजिगीषु जोकि इनके बीच मे रहता है सब मिलकर दशराजमण्डल बनते है। इस दश राजमण्डल के साथ मध्यम और उदासीन दो राजाओं की गणना की जाने पर द्वादशराजमण्डल पूरा होता है।

हमने जो पहले मनुसहिता से प्रकृतिभूत चार राजाओ का उल्लेख किया है—उनमे विजिगीषु, अरि, मध्यम और उदासीन ये चार राजा होते है। दश राजाओ के समुदाय मे विजिगीषु और शत्रु ये दो राजा, एवं मध्यम और उदासीन ये दो राजा, इस तरह ये चार राजा राजमण्डल के मूलप्रकृति कहलाते है। इसके बाद जो मित्र, अरिमित्र, मित्रमित्र और अरिमित्रमित्र ये चार, तथा पार्ष्णिग्राह, आक्रन्द, पार्ष्णिग्राहासार, और आक्रन्दासार ये चार, सबको मिला कर आठ राजा प्रकृतिभूत राजमण्डल के अङ्ग होते है। सुतरा अङ्ग और अङ्गी सब मिलाकर १२ राजा हुए। इसी को द्वादशराजमण्डल कहा जाता है। इस द्वादशराजमण्डल मे वरगोष्ठीन्याय से कभी कोई प्रकृतिभूत विजिगीषु आदि चार राजाओ मे से अङ्गी होता है कभी वही कही अङ्ग भी हो सकता है। शत्रुराज्य और विजिगीषु राज्य के ठीक दक्षिण या बाम भाग मे अवस्थित राजा युद्ध मे प्रवृत्त अथवा कृतसधिशत्रु और विजिगीषु दोनो ही राजाओ के अनुग्रह मे समर्थ तथा विजिगीषु और शत्रु दोनो मे युद्ध छिड जाने पर दोनो मे से एक का पक्ष लेकर दूसरे को दबा सकने मे समर्थ, ऐसा राजा मध्यम राजा कहलाता है। सुतरा यह मध्यम राजा विजिगीषु और शत्रु राजा के दक्षिण या बाम पार्श्व मे रहने वाला होता है। शत्रु और विजिगीषु के सम्मुखवर्ती और पृष्ठवर्ती राजाओ का परिचय कह दिया गया। अरि, विजिगीषु मध्यम, और उदासीन, ये जो मूलप्रकृतिभूत चार राजा होते है, उनमे से विजिगीषु, शत्रु, मध्यम इन तीन राजाओ का परिचय बतलाया जा चुका। अब चौथे उदासीन राजा का परिचय दिया जाता है। विजिगीषु आदि तीनो राजाओ के राष्ट्रो से बाहर प्रदेश मे रहने वाला एव मध्यम राजा से भी बलवान् अर्थात् अधिकतम कोष, दण्ड आदि से युक्त तीनो ही राजाओ के आपस मे युद्ध प्रवृत्त होने पर एक किसी को साहाय्य देकर विजयी बना सके या युद्ध छिडने पर किसी एक को दबा सके, ऐसे राजा को उदासीन राजा कहते है। मूलप्रकृतिभूत अरि, विजिगीषु और मध्यम इन तीनो ही राजाओ से असम्बद्ध भूभाग का स्वामी उदासीन कहलाता है। यह उदासीन राज्य अरि, विजिगीषु और मध्यम राजा के साथ सम्बद्ध नही होता।

विजिगीषु, अरि, मध्यम और उदासीन इन चार राजाओ को मूलप्रकृति बतलाया है। इन चारो मे ही प्रत्येक राजा का १८ अवयव युक्त एक एक मण्डल होता है, जैसे—१—विजिगीषु, २—विजिगीषु का मित्र, ३—उसके मित्र का मित्र, ये इन तीनो राजाओ का एक प्रकृतिमण्डल होता है। मूलप्रकृति विजिगीषु एव उसका मित्र और उसके मित्र का मित्र मूलप्रकृति का अङ्ग होने से उसको प्रकृति कहा जाता है। इन तीनो ही राजाओ मे प्रत्येक राजा के अमात्य, देश, दुर्ग, कोष और सैन्य (दड) ये पाँच अङ्ग होते है। इसलिये विजिगीषु राजा और उसके अमात्य आदि पाँच अङ्गो को मिलाकर छै की सख्या हुई। इसी तरह विजि-

गीषु का मित्र भी अमात्य आदि पाँच अङ्गो सहित छै सख्या पूर्ण होता है। ऐसे ही उसके मित्र का मित्र अमात्यादि पचावयव युक्त होकर मिलित रूप मे छै सख्या वाला होता है। इस प्रकार विजिगीषु के साथ सम्बद्ध हो १८ अवयव युक्त एक राजमण्डल बनता है। इसी तरह अरि, उसका मित्र और उसके मित्र का मित्र, इन तीनो को प्रकृति राजा की मूलप्रकृति कहा जाता है। इन तीनो मे भी प्रत्येक अमात्य आदि पाँच अङ्गो से युक्त होने पर १८ हो जाते है। यह शत्रु-राजा का एक मण्डल होता है। इसी क्रम से मध्यम और उदासीन राजा का भी अमात्य आदि पाँच अङ्गो से युक्त होने पर १८।१८ सख्यायुक्त एक एक राज मण्डल कहलाता है।

इस तरह चारो मण्डलो मे सब मिलितरूप मे १२ राजा होगे। इस को ही द्वादशराजमण्डल कहा जाता है। और इन बारह राजाओ मे प्रत्येक के अमात्य आदि पाँच अङ्ग होते है। इस तरह बारह राजाओ के पाँच पाँच अङ्गो की गणना ६० होती है, जिनको द्रव्यप्रकृति कहा जाता है। बारह राजाओ की ६० द्रव्य-प्रकृति मिलित रूप मे राजाओ सहित ७२ सख्यक होती है। इन ७२ मे प्रत्येक का उत्कर्ष और अपकर्ष, सम्पद् और विपद् की, इस पैतामहतन्त्र मे विशदरूप से आलोचना की गई है।

यही बात मनुसहिता के सप्तम अध्याय मे १५५।१५६।१५७ श्लोको मे कही गई है। पैतामहतन्त्र मे जो कहा गया है वही बात मनुसहिता के भी उक्त अध्याय मे कही गई है तथा यही बात सबसे अन्तिम भारत के दण्डनीतिशास्त्र कौटिल्य अर्थशास्त्र मे भी इसी तरह कही गई है। यह वस्तु के स्वभाव और प्रकृति पर आधारित है। इसलिये यह द्वादशराजमण्डल आज वर्तमान समय में भी उसी रूप मे है और आगे भविष्य मे भी ऐसा ही रहेगा। वस्तुस्वभाव काल भेद से बदला नही जा सकता।

इस तरह बतलाये गये द्वादशराजमण्डल की आपस मे सधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव, और सश्रय, इन छहो गुणो की विवेचना को द्वादशराजमण्डल की चिन्तना कहा जाता है। ये इस पैतामहतन्त्र मे विस्तार से वर्णित हुए है तथा प्रधान पुरुष की शरीर रक्षा के लिए सवाहन, अभ्यग, उत्सादन, स्नान, अनुलेपन आदि कर्म वर्णित हुए है। इस तन्त्र मे देशधर्म, जातिधर्म एव अनेक प्रकार के कुलधर्म कहे गये है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष यह चतुर्विध पुरुषार्थ इस शास्त्र मे वर्णित हुए है। अर्थ प्राप्ति के बहुत से उपाय भी इसमे बतलाये गये है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों मे विभक्त मनुष्य समाज की रक्षा के लिए अत्यन्त अधार्मिक शत्रु राजा के द्वारा या अतिक्रूरकर्मा मनुष्यो के द्वारा होने वाली जनसंहारक आपत्ति उपस्थित होने पर और किसी तरह उसका प्रतिकार न हो सकने पर, मूलकर्म करने का आदेश इस शास्त्र मे पाया जाता

है। इस मूलकर्म से अत्यन्त अधार्मिक एव नृशस शत्रुओ का विनाश किया जा सकता है। वह मूलकर्म इस तरह उपदिष्ट हुआ है कि अतितीक्ष्ण अनेक प्रकार के उद्भिज विषो के द्वारा शत्रुराज्य का जल दूषित कर दिया जाय और ये ही विषाक्त द्रव्य अग्नि मे डालने पर उस अग्नि से निकले हुए धुएँ से शत्रु-राज्य का वायुमण्डल दूषित कर दिया जाय तथा उन्ही विषाक्त द्रव्यो के सस्पर्श से शत्रुराज्य मे काम आने वाले अन्न और वस्त्र विषाक्त कर दिये जाय तथा पशुओ के काम मे आनेवाले घास आदि द्रव्यो को जहरीला बना दिया जाय। इस तरह उत्कट विषाक्त उद्भिजो की सहायता से जलादि को दूषित करके अति-नृशस अधार्मिक शत्रु के विनाश की व्यवस्था इस तन्त्र मे उपदिष्ट हुई है। अति नृशस अधार्मिक शत्रु के विनाश के लिए अनेक तरह से विषाक्त उद्भिजो के प्रयोग को ही मूलकर्म कहते है। इस मूलकर्म का प्रयोग कहाँ करना चाहिये यह भी बतला दिया है यदि साधारण जनो के लिए इसका प्रयोग किया जाय तो वह महापाप समझा जायगा।

मनुसहिता के ९ वे अध्याय के २९० श्लोक मे मूलकर्म करने वाले को अत्यन्त कठोर राजदण्ड की व्यवस्था बतलाई गई है। इसी तरह वशीकरण आदि तान्त्रिक विधानो के प्रयोग करने वालो को भी राजदण्ड की व्यवस्था उपदिष्ट हुई है। किंतु पैतामहतन्त्र मे जो मूलकर्म जिस दशा मे जिसके लिए प्रयुक्त करने का आदेश है, वह अधर्म नही कहा जा सकता। निरपराध बहुत से लोगो की रक्षा के लिए अतिशय दुर्दान्त अधार्मिक शत्रु का विनाश राज्य की रक्षा के लिए उपयोगी है। अत वह विहित है और इससे धर्म ही होता है। जैसे अनेक मनुष्यो के वध करने वाले चोर डाकुओ का वध धर्म ही होता है। वैसे ही बहुत से निरपराध व्यक्तियो की रक्षा के लिए सापराध व्यक्ति का विनाश परम धर्म है। जो लोग हिसामात्र को ही अधर्म समझते है, वे हिसा के भय से दुराचारी जनो की हिसा से सर्वथा विरत होकर दुराचारियो के द्वारा सज्जनो की हिंसा का प्रकारान्तर से समर्थन ही करते है। गौओ के एक झुण्ड मे प्रविष्ट सिंह आदि की हिंसा न करना वास्तविक गौ समुदाय की हिसा करना है। इसलिये महाभारत के राजधर्म प्रकरण के पद्रहवे अध्याय के ४९ श्लोक मे बतलाया है कि "अहिंसा साधु हिंसेति श्रेयान् धर्म परिग्रह" इसका अर्थ यह है कि जो लोग सर्वत्र एकान्त अहिसा के ही पक्षपाती है, वे सज्जनो की हिसा के ही समर्थक कहे जा सकते है।

सज्जनों की रक्षा के लिए दुराचारियो की हिसा धर्म ही हो सकती है। मनु के पचमाध्याय के ४५ वे श्लोक मे कहा है कि जो व्यक्ति अपने सुख के लिए अहिसक अनेक जन्तुओ का वध करते है वे जीवित दशा मे और मरने पर परलोक मे कही भी सुख नही पाते। इसी श्लोक के भाष्य मे मेधातिथि कहते है कि मनु के उक्त श्लोक में अहिसक जन्तुओं का वध निषिद्ध होने पर भी सर्प, व्याघ्र,

आदि हिंसक जन्तुओं का वध निषिद्ध नही है। सुतरा अहिंस्र प्राणियो के प्रति ही अहिंसा प्रयुक्त हो सकती है हिंसक जन्तुओ के प्रति नही। इसी मूलकर्म के विषय मे विशेष आलोचना कौटिल्य अर्थशास्त्र के चौदहवे अधिकरण मे की गई है। पैतामहतन्त्र मे शत्रु राजाओ को वश मे करने के लिए अनेक मायामय प्रयोग बतलाये गये है एव शत्रुराज्य की नदियो के जल दूषित करने के लिए भी अनेक क्रियाये वर्णित हुई है। जिन सब व्यवस्थाओ को काम मे लेने पर राष्ट्र की सारी प्रजा आर्यजनोचित मार्ग से विचलित न हो सन्मार्ग पर दृढ रह सके, वे सभी उपाय इस पैतामहतन्त्र मे बतलाये गये है।

वैशालाक्षतन्त्र

पैतामहतन्त्र का सार सकलन करके भगवान् उमापति शकर ने जो शास्त्र बनाया उसका नाम वैशालाक्षतन्त्र हुआ। नीतिशास्त्र मे भगवान् शकर ही विशालाक्ष नाम से पुकारे गये है। इसलिये विशालाक्ष शकर द्वारा प्रणीत ग्रन्थ वैशालाक्षतन्त्र का हम यहाँ कुछ आभास देगे। भगवान् आदि शकराचार्य के साक्षात् शिष्य विश्वरूपाचार्य ने जो सुरेश्वराचार्य के नाम से प्रसिद्ध है, याज्ञवल्क्य-स्मृति की बालक्रीडा नाम की एक टीका लिखी है। इस टीका के बनने के बहुत दिनो बाद भगवत्पाद विज्ञानेश्वर भट्टारक ने याज्ञवल्क्य स्मृति की मिताक्षरा नामक टीका लिखी जिसमे उन्होने आचाराध्याय के ८१ वे श्लोक की व्याख्या मे विश्वपूरूपाचार्य के सिद्धान्तो का उल्लेख किया है एव टीका के प्रारभ मे ही विश्वरूपाचार्य की बनाई हुई टीका का भी उल्लेख कर दिया है। विश्वरूपाचार्य ने अपनी बनाई बालक्रीडा नामक टीका मे वैशालाक्षतन्त्र से एक सूत्र उद्धृत किया है। इससे जाना जा सकता है कि विश्वरूपाचार्य के समय मे वैशालाक्षतन्त्र मौजूद था। किन्तु वर्तमान समय मे वैशालाक्षतन्त्र कही उपलब्ध है भी कि नही यह कहना असम्भव है।

विजिगीषु राजा रात के चौथे पहर मे अनेक तरह की वाद्य ध्वनियों से जागृत हो आलस्य दूर कर अपनी तीक्ष्ण प्रतिभा से अपने कर्तव्यो का विचार करे। विशेष दक्षता से राष्ट्र वृद्धि कारक नीति का विचार कर अपने तथा अन्य राष्ट्र मण्डलो में गुप्तचरो को भेजने का प्रबन्ध करे। राजा अपने नीति-चातुर्य से शत्रुराज्य के जिन सचिव आदि प्रधान कर्मचारीवर्ग को शत्रुराज्य के प्रति विरक्त एवं अपने राज्य के प्रति अनुरक्त कर लेता है और शत्रुराज्य के मन्त्री आदि प्रधान कर्मचारियो में आपस में भेद डालने मे समर्थ होता है। उनके पास भी उनका विशेष सम्मान प्रदर्शित करते हुए गुप्तचरो को भेजे एवं जंगली राजाओं के पास तथा अपने अन्तर्गत राजमण्डल के पास गुप्तचरो को भेजे। ये ही सब बातें भगवान् विशालाक्ष ने अपने वैशालाक्षतन्त्र मे कही है। आगे पीछे की

सभी बातो पर दूरदर्शिता से अच्छी तरह विचार कर जगली राजाओ के पास जगल में घूमने वाले गुप्तचरो को भेजे तथा अपने मण्डल के अन्तर्गत राजाओ के और शत्रुराजमण्डल के पास उन उन मण्डलो में घमने वाले गुप्तचरो को भेजे, एव जिनके पास गुप्तचरो को भेजे, उनके प्रति वे विशेष सम्मान प्रदर्शित कर सके ऐसा विधान उनको बतलादे। "वन्यान्वनगतैर्नित्य मण्डलस्थास्तथाविधैः। चारैरालोच्य सत्कुर्याज्जिगीषुर्दीर्घदूरदृक्"॥ विशालाक्ष सूत्र, याज्ञवल्क्य बालक्रीडा आचाराध्याय—३२६ श्लोक।*

वार्हस्पत्यतन्त्र

याज्ञवल्क्य आचाराध्याय ३०७ वे श्लोक की व्याख्या में बालक्रीडा टीका मे विश्वरूपाचार्य ने वार्हस्पत्यतन्त्र से कई सूत्र उद्धत किये है एव ३२३ वे श्लोक की टीका मे भी वार्हस्पत्यतन्त्र से एक सूत्र उद्धत किया गया है। ३०७ वें श्लोक की टीका में विश्वरूपाचार्य ने वार्हस्पत्यतन्त्र से सेनापति का लक्षण, दूत का लक्षण, मन्त्री का लक्षण और उपरिक का लक्षण बतलाया है।

१—सेनापति—अपने धर्म का जानने वाला, राजा तथा राष्ट्र का हितचिन्तक, उपधाशुद्ध (अनेक तरह के छल छद्मो से जिसकी परीक्षा करके सब तरह शुद्ध पाया गया हो) अनुद्धत, अदाम्भिक, उत्साही, देश की परिस्थिति का पूर्ण ज्ञाता, दण्डनीतिशास्त्र का पूर्ण अभिज्ञ, वेद और इतिहास मे कुशल, कामज दश दोषो से तथा क्रोधज आठ दोषो से रहित, शान्त स्वभाव, अर्थशास्त्रोक्त नीति प्रयोगो में निपुण, हाथी, घोडे आदि की चाल को जानने वाला अर्थात् कितने समय मे कौन कितना रास्ता तय कर सकता है इसको निश्चित रूप से समझने वाला, अपनी चतुरङ्गिणी सेना का अधिनायक सेनापति होगा।

२—प्रतिहार—अच्छे खानदान मे पैदा हुआ, उत्साही, शान्त स्वभाव, गभीर प्रकृति, युद्ध के लिए सदा तैयार रहने वाला, वीर राजा मे अनुराग रखने वाला, शत्रु राजा जिसको अपनी तरफ आकृष्ट न कर सके, सेनाओ को यथोचित रूप से अवस्थित कर सकने वाला, एवं दूसरो की चेष्टाओ से उनके हृद्गत भावो को समझने वाला प्रतिहार होगा।

३—गजाध्यक्ष—हाथियो के बन, तथा उनका जाति-विशेष और हाथियो के अनुकूल प्रतिकूल समय को समझने वाला, हाथियो के खाद्य आदि को जानने वाला, हाथी के गुण, अवस्था, स्वभाव आदि का निश्चय कर सकने वाला, जंगलो से हाथियो को पकडने मे होशियार, हाथियो को चलाने में सुदक्ष, निर्भीक, राजा की विजय की विशेष अभिलाषा रखने वाला व्यक्ति गजाध्यक्ष होगा।

४—अश्वाध्यक्ष—घोडो की उत्पत्ति के विषय मे पूर्ण ज्ञान रखने वाला अर्थात् किन किन देशों में अच्छे घोडे होते है, इसको जानने वाला घोडो की जाति जानने

१ जनवरी १९५७ से लागू कर दिया गया है। ग्रेट ब्रिटेन ऐसे उन्नत राज्य का यह नवीनतम नियम अपराधशास्त्र में अपना विशेष स्थान रखता है।

इस नियम की बहुत-सी विशेषताएँ हैं। सज़ा की मियाद हटा दी गयी है। अधिक से अधिक सज़ा दी जा सकती है। "भोग की इच्छा से किया गया अपराध" के स्थान पर अब "संभोग" मात्र ही अपराध है। प्राकृतिक तथा अप्राकृतिक संभोग साबित करने के लिए यह ज़रूरी नहीं है कि प्रसंग में वीर्यपात भी हुआ हो। शिश्न का प्रवेश करना ही प्रसंग है। बलात्कार को साबित करने के लिए शिश्न-प्रवेश पर्य्याप्त है।[१] बालिग या नाबालिग दोनों ही दंडनीय हैं।[२] स्त्री के साथ बलात्कार अथवा "पति" बनकर, "पति का स्वांग कर" प्रसंग करना बलात्कार है। सहवास की वास्तविक रजामन्दी के बिना किया गया प्रसंग बलात्कार है।[३] यदि भय दिखाकर या अज्ञानवश किसी के साथ प्रसंग प्राप्त कर लिया गया तो बलात्कार है। उदाहरण के लिए एक दवा बेचनेवाले ने १९ वर्ष की एक लड़की को, जिसे बेहोशी का दौरा होता था, "कुदरत की डोरी तोड़कर"[४] बीमारी अच्छा करने के बहाने से उसके साथ संभोग किया। यह बलात्कार माना गया। एक संगीत अध्यापक ने १६ वर्ष की अपनी एक लड़की छात्रा को उसके गले की आवाज़ मधुर बनाने के लिए "नीचे के मार्ग से हवा का रास्ता खोलने के लिए"[५] उसके साथ प्रसंग किया। यह भी बलात्कार हुआ। इसी प्रकार स्त्री के सामने पति का स्वांग बनाकर उसे धोखा देकर प्रसंग करना भी बलात्कार है।[६] पर बलात्कार के मामले में यह साबित करना ज़रूरी है कि दूसरे पक्ष की रज़ामंदी नहीं थी। यदि लड़की १६ वर्ष की है तो प्रायः देखा गया है कि लड़की भी सब कुछ जानती है, उसकी कम उम्र होना उसकी "स्वीकृति" का न होना नहीं साबित कर सकता।[७] असली रजामंदी थी या सिर्फ़ "उसकी बात मान ली"—इसमें अन्तर करना बड़ा कठिन है।[८] एक स्त्री ने ८ आदमियों पर मुकदमा चलाया कि उन्होंने

१. धारा ४४ २. धारा ४६
३. वही, धारा ४४
४. सरकार बनाम फ्लैटरी, १८७७ का केस
५. सरकार बनाम विलियम्स, १९२३ का केस
६. सन् १८८५ का कानून
७. न्यायाधीश हम्फ्रेज का फैसला, सरकार बनाम हार्लिंग, सन् १९३७
८. सरकार बनाम डे—सन् १९३४

मालूम होता है कि उनके समय में ये सब ग्रन्थ लुप्त हो गये थे। महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री महोदय ने त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सिरीज से प्रकाशित बालक्रीडा नामक टीका का सम्पादन किया है। म० म० शास्त्री महाशय ने इस ग्रन्थ की भूमिका मे कहा है कि बालक्रीडा टीका मे वैशालाक्षतन्त्र से तथा बार्हस्पत्यतन्त्र से बहुत से अश उद्धृत किये गये है। किंतु कौटिल्य अर्थशास्त्र से कोई भी अश कही उद्धृत नही हुआ है। कौटिल्य, याज्ञवल्क्य का परवर्ती है, अत याज्ञवल्क्य की उक्ति का तात्पर्य वर्णन करने के लिए कौटिल्य अर्थशास्त्र की उक्ति का उल्लेख करना बालक्रीडा के टीकाकार ने सगत नही समझा।

म० म० गणपति शास्त्री महाशय की यह उक्ति हमको सगत नही जचती। कारण याज्ञवल्क्य स्मृति के आचाराध्याय के १८२ पृष्ठ में बालक्रीडाकार ने कौटिल्य अर्थशास्त्र के वाक्य उद्धृत किये हैं। याज्ञवल्क्य स्मृति के आचाराध्याय मे ३०४ श्लोक से लेकर ३०६ श्लोक तक तीन श्लोको में याज्ञवल्क्य ने विजिगीषु राजाओ के गुणो का वर्णन किया है। वे ही सम्पूर्ण गुण विजिगीषु राजा की तरह शत्रुराजा मे भी यदि हैं तो वह शत्रुराजा अतिकष्टोच्छेद्य हो सकता है, अर्थात् उसको उच्छिन्न नही किया जा सकता। किन्तु विजिगीषु राजा के गुणो के विपरीत विजिगीषु राजा का शत्रुराजा विपरीत गुण सम्पन्न हो तो वह सुखोच्छेद्य होता है। जिन गुणों के रहने पर शत्रुराजा सुखोच्छेद्य हो सकता है, नीतिशास्त्र मे उन सब गुणो को शत्रुसम्पद् कहा जाता है। इस शत्रुसम्पद् को दिखाने के लिए बालक्रीडाकार ने कौटिल्य अर्थशास्त्र के वाक्य उद्धृत किये है। इन वाक्यो का अर्थ है—शत्रुराजा यदि राजवश मे पैदा हुआ न हो तथा लोभ परवश हो एव उसकी मन्त्रिपरिषद् के लोग यदि तुच्छबुद्धि या दुष्टबुद्धि हो, उसके मन्त्री आदि प्रधान कर्मचारी उससे विरक्त हो या शत्रुराजा अन्यायकारी हो अर्थात् नीतिशास्त्रानुसार कार्य न करता हो तथा उत्थानशील न हो एव कामज तथा क्रोधज १८ दोषो से युक्त हो, यदि उत्साहशून्य एव विवेचित कार्य को भी न कर सकने वाला हो एव विपत्ति के समय जिसका कोई विशेष आश्रय न हो अर्थात् उसका कोई विशेष दुर्गादिक सुरक्षित स्थान न हो अथवा कोई विशिष्ट राजा उसका मित्र न हो और वह प्रजा को सताने वाला हो—इस प्रकार की शत्रुसम्पद् से सम्पन्न राजा को विजिगीषु अनायास ही उच्छिन्न कर सकता है। ये वाक्य कौटिल्य अर्थशास्त्र के षष्ठ अधिकरण के सातवे अध्याय मे है। और बालक्रीडाकार ने उन्ही को उद्धृत किया है। कौटिल्य के वाक्यो मे से एक दो ही बालक्रीडा की टीका में छूट गये हैं। हमारे ध्यान से लेखक के प्रमाद से ही ऐसा हो गया है।

इसी आचाराध्याय के ३४३ वे श्लोक की व्याख्या मे बालक्रीडाकार ने कौटिल्य का एक वाक्य उद्धृत किया है। यह वाक्य कौटिल्य अर्थशास्त्र के सप्तम अधिकरण के पाँचवें अध्याय के प्रारभ मे ही कहा गया है। इसका मतलब

यही है कि मन्त्रशक्ति, प्रभुशक्ति और उत्साहशक्ति युक्त एक विजिगीषु राजा यातव्य (जिस पर आक्रमण करना है) और चिरशत्रु इन दोनों ही राजाओ को यदि समान आपत्ति मे फँसा हुआ समझे तो पहले यातव्य राजा पर चढाई न करके चिरशत्रु के विनाश मे लग जाना चाहिए। इस तरह चिरशत्रु का विनाश कर बाद मे यातव्य राजा का विनाश करना चाहिये। यहाँ कौटिल्य अर्थशास्त्र का वाक्य बालक्रीडा टीका मे कुछ विकृत हो गया है। उसका कारण है कौटिल्य अर्थशास्त्र का अपरिज्ञान। लेखक और पाठक दोनो ही के द्वारा कौटिल्य अर्थशास्त्र का अनुशीलन न होने के कारण बालक्रीडा टीका मे ऐसा हो गया है। सुतरा देखा जाता है कि कौटिल्य याज्ञवल्क्य के बाद हुआ है, अत कौटिल्य का वाक्य बालक्रीडा-कार ने उद्धृत नही किया है, यह बात जो शास्त्री महोदय ने कही है वह सगत नही कही जा सकती। अमरकोषादि के वाक्यों से जाना जाता है कि टीकाकार-गण अति प्राचीन ग्रथो की व्याख्या कर गये है। सुतरा यह कहना कभी भी सगत नही कहा जा सकता कि परवर्ती ग्रथो के द्वारा पूर्ववर्ती ग्रथो की व्याख्या सगत नही होती।

कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र मे वार्हस्पत्यतन्त्र से अनेक वाक्य उद्धृत किये है। याज्ञवल्क्यस्मृति की बालक्रीडा नामक टीका में भी वार्हस्पत्यनीतिशास्त्र के बहुत से वाक्य उद्धृत हुए है। हमारे सामने आज सम्पूर्ण वार्हस्पत्यनीतिशास्त्र न होने पर भी हम कह सकते है कि यह शास्त्र भारत मे बहुत दिनो तक प्रचलित था, इसमे कोई सन्देह नहीं। महाभारत के शान्तिपर्व के कई स्थानो मे वार्हस्पत्य-नीतिशास्त्र के बहुत से वाक्य उद्धृत किये गये है। यहाँ हम उन वाक्यो को उद्धृत करके वार्हस्पत्यनीतिशास्त्र का परिचय देगे। यहाँ एक विशेष बात ध्यान मे रखनी होगी कि दण्डनीतिशास्त्र के एक प्रधान आचार्य भरद्वाज, वृहस्पति के ही ज्येष्ठ पुत्र है। यह बात महाभारत अनुशासनपर्व मे ३०वे अध्याय के २४वे श्लोक मे बताई गई है—'तमुवाच भरद्वाजो ज्येष्ठ पुत्रो वृहस्पते'। सुतरा इससे प्रमाणित हो जाता है कि वृहस्पति तथा उनके ज्येष्ठ पुत्र भरद्वाज दोनो ही व्यक्ति दण्डनीतिशास्त्र के प्रणेता हुए है। कौटिल्य अर्थशास्त्र में भी भरद्वाज प्रणीत दण्ड-नीतिशास्त्र से अनेक वाक्य उद्धृत किये गये है।

शान्तिपर्व के २३ वे अध्याय के १४।१५ श्लोक मे वार्हस्पत्यनीतिशास्त्र के वाक्य उद्धृत करके बतलाया गया है कि दूसरे राजाओ के साथ विरोध न चाहनेवाले राजा एव परदेश जाने की इच्छा न रखने वाले ब्राह्मण को पृथ्वी ग्रास कर लेती है, जैसे सर्प बिल मे रहने वाले मूषकादि जतुओ को खा डालता है। शान्तिपर्व के ५६ वे अध्याय के ३८ वे श्लोक मे वार्हस्पत्यनीतिशास्त्र से वाक्य उद्धृत करके कहा गया है कि यदि राजा केवल क्षमाशील ही हो, दण्ड प्रयोग करने का सामर्थ्य न रखता हो, तो छोटे से छोटा आदमी भी उसके सिर पर चढ सकता है। जैसे

फीलवान बडे से बडे हाथी के सिर पर चढ जाता है। इसलिये राजा को अत्यन्त मृदु या अत्यन्त उग्र-दण्ड नही होना चाहिये, किन्तु बसन्त कालीन सूर्य की तरह मध्यमवृत्ति होना चाहिए। बसन्त कालीन सूर्य शिशिर ऋतु के सूर्य के समान अति मृदु भी नही होता और ग्रीष्म कालीन सूर्य की तरह अत्यन्त तीक्ष्ण भी नहीं होता।

शान्तिपर्व के ५६ वे अध्याय के १२ वे श्लोक से लेकर १८ वे श्लोक तक वार्हस्पत्य नीतिशास्त्र के वाक्य उद्धृत किये गये है। अपने नीतिशास्त्र मे वृहस्पति कहते है कि राजा को सर्वदा उत्थान परायण होना चाहिए अर्थात् सपूर्ण कार्यों मे सतत उपयोग-सम्पन्न रहना चाहिए, आलसी नही होना चाहिए। उद्योग-शीलता ही राजधर्म का मूल है। इसके दृष्टान्त मे वृहस्पति कहते है कि देवताओ ने उद्योगशील होने के कारण ही अमृत पा लिया एव उद्योगशील होने से ही वे असुरो पर विजय प्राप्त कर सके तथा उद्योगशील होने के कारण ही वे सबसे श्रेष्ठ समझे गये। जो केवल बात ही बना सकते है, अपने कहने के अनुकूल कार्य नही करते, वे पुरुष निकृष्ट होते है और जो जितना कहते है उतना ही करते भी है, वे उत्तम पुरुष कहलाते है। बात ही बनाने वाले व्यक्ति कार्य करने वाले व्यक्तियो की प्रशसा करके उनका मनोविनोद किया करते है। विष रहित सर्प जैसे अनायास ही मार डाला जाता है इसी तरह राजा बुद्धिमान् होते हुए भी उद्योगशील न होने से शत्रुओ से सदा धर्षित हुआ करता है।

अत्यन्त बलशाली विजिगीषु राजा को भी छोटे से छोटे शत्रु की उपेक्षा नही करनी चाहिये। दुर्वल शत्रु भी कभी अधिक अनिष्ट कर सकता है। थोडी सी भी अग्नि ग्राम, नगर, जगल को जला सकती है। थोडा सा भी विष प्राणी को मार सकता है। दुर्वल शत्रु भी कभी किसी तरह बल पा जाता है या अपने सुरक्षित किले आदि का सुदृढ आश्रय पा लेता है तो राजा एव राज्य सभी को नष्ट कर सकता है। शान्तिपर्व के ६८ वे अध्याय मे वार्हस्पत्यतन्त्र का सार सकलन करके बहुत सी बाते कही गई है। कोशलराज वसुमना को जो राष्ट्रनीति का उपदेश वृहस्पति ने किया है, वे सभी उपदेश उक्त अध्याय में वर्णित हुए है।

वृहस्पति ने कहा है कि राष्ट्रवासी समस्त प्रजा के कल्याण का मूल राजा ही होता है। राष्ट्रवासी प्रजा केवल राजदण्ड के भय से ही आपस में एक दूसरे को नहीं सता पाती। राजा ही सब लोगों को विद्या और धन आदि के द्वारा समृद्ध बना सकता है। राजा अपनी प्रजा को समृद्ध बना कर स्वयं भी समृद्धशाली हो सकता है। राजशासन न होने पर सारी प्रजा ही आपस में लडाई झगडा कर नष्ट हो सकती है। आकाश में चन्द्रमा और सूर्य का प्रकाश न रहने पर सभी प्राणी एक दूसरे को नही देख सकते और घोर अधकार में पड सकते है। जैसे अल्प

जल वाले कीचड युक्त तालाब आदि मे स्थित मछलियाँ अपने इच्छानुसार कीचड मे फँसी दूसरी मछलियो को नष्ट कर सकती है, इसी तरह राजा के न रहने पर प्रजापुञ्ज आपस मे एक दूसरे पर आक्रमण एव धर्षण कर बहुत शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। जैसे रक्षक विहीन पशुगण नष्ट हो जाता है इसी तरह अराजक राज्य की प्रजा भी नष्ट हो सकती है। यदि दुर्बल किसी को सताता है तो उससे प्रबल उसको सताने लगता है, उससे भी प्रबल व्यक्ति उसको सताने लगता है। राजा के न होने से किसी का भी किसी वस्तु पर अधिकार नही हो सकता। यह धन, यह खेत, यह मकान हमारा है यह कोई नही कह सकता। स्त्री, पुत्र, धन आदि किसी पर भी मनुष्य का अधिकार नही हो सकता। राष्ट्र परिचालक राजा के न होने पर सारी मर्यादाये नष्ट हो जायगी। प्रजा जनो की अनेक तरह की सवारियाँ, वस्त्र, अलकार, एव अनेक तरह के रत्न आदि दुराचारी लोग (चोर डाकू) जबर्दस्ती अपहरण कर लेगे। राष्ट्र के धार्मिक व्यक्तियो पर अनेक प्रकार के अत्याचार एव अधर्म की वृद्धि हो सकती है। यदि राजा रक्षक न हो तो माता, पिता, आचार्य, वृद्ध, अतिथि गुरु आदि अनेक तरह के क्लेश पा सकते है। यदि राष्ट्र का कोई शासक न हो तो धनी लोगो का धन के कारण बन्धन यहाँ तक कि वध भी किया जा सकता है। यदि राजा रक्षा न करे तो राज्य के सभी लोग चोर डाकुओ से हर समय त्रस्त रहेगे, प्रजा को हर समय ही मृत्यु की विभीषिका सताती रहेगी, यहाँ तक कि संपूर्ण राष्ट्र ही इन भयानक दुरव्यवस्थाओ के कारण नरक बन जायगा। यदि राजा रक्षक न हो तो दुराचारी लोग बेखटके स्त्रियो को धर्षित करने लगे, खेती, वाणिज्य, व्यापार आदि उच्छिन्न हो जाय एव धर्म का उच्छेद और वेदो का विनाश हो जाय। यदि राजा पालक न हो तो यज्ञ आदि सब तरह के धर्म कार्यों का उच्छेद हो जाय एव विवाह, समाज आदि लुप्त हो जाय। यदि राजा रक्षक न हो तो सभी पशुपालन कर्म नष्ट-भ्रष्ट हो जाय, बैलो से खेती नही की जा सके। दूध, दही, घृत आदि भी सभव नहीं हो सकेगे। राजा के द्वारा राष्ट्र का सुशासन न होने पर सारा राष्ट्र त्रस्त एव उद्विग्न हो उठे और प्रजा मे हाहाकार मच जाय एव थोडे ही समय मे सब कुछ नष्ट हो जाय। चिरकाल मे समाप्त होने वाले बहुदक्षिणा युक्त सब धर्म कार्य नष्ट हो जाय। तपस्वी और ब्राह्मण लोग फिर वेदाध्ययन नही करेगे। फिर विद्या स्नातक और व्रत स्नातक कही भी न मिल सकेंगे। धर्म का नामो-निशान मिट जायगा। अकारण सब लोग असमय मे ही काल कवलित हो जायगें यदि राजा प्रजा का नियन्ता न होगा। चोर जबरदस्ती दूसरो का धन छीन लेंगे और चोरो मे भी आपस मे सब एक दूसरे का धन दबा लेगा। सभी मर्यादायें नष्ट होने पर सब लोग भय त्रस्त होकर इधर उधर अपनी रक्षा के लिए भागने लगेंगे। सारी दुर्नीतियाँ बेरोकटोक प्रवृत्त होने लगेगी। वर्णसकर

प्रजा पैदा होने लगेगी। सर्वत्र ही घोर दुर्भिक्ष का साम्राज्य हो जायगा। राष्ट्र परिचालक राजा के न होने पर ये अनर्थ होंगे।

राजा के द्वारा रक्षित होने पर सारा राष्ट्र निर्भय रह सकता है। राष्ट्र-वासी प्रजा घर के द्वार खोल कर निर्भयता से सुख पूर्वक सो सकती है। राजा से रक्षित होने पर राज्यवासी सभी लोग आपस मे एक दूसरे के अन्याय को सहन न कर सकेंगे और न कोई किसी का धन ही अपहरण कर सकेगा। सब अलकारो से सुसज्जित हो रमणियाँ अपने अपने रक्षक पुरुषो के बिना ही सर्वत्र यथेच्छ आ जा सकेगी। राजा से रक्षित राष्ट्र मे धर्म की वृद्धि एवं सब हिंसाओं की निवृत्ति तथा आपस मे एक दूसरे पर सद्भावनाओं की वृद्धि हो सकेगी। राजा से रक्षित राज्य मे अनेक बडे बडे यज्ञों का सम्पादन तथा सब प्रकार की विद्याओं का निर्वाध अध्ययन सम्पन्न हो सकेगा। सुरक्षित राज्य मे खेती बारी, वाणिज्य व्यवसाय, पशुपालन आदि धनोत्पादक वार्ताशास्त्र का समस्त कार्य कलाप निर्विघ्नता से सम्पादित हो सकेगा जिसके द्वारा सारा राष्ट्र समृद्धिशाली हो सकेगा। राज्य की रक्षा के लिए राजा जब समदृष्टि होकर उसका सरक्षण पूर्ण उत्तर-दायित्व से करता है तो उसकी सारी प्रजा अत्यन्त प्रसन्न मन से उस राज्य में निवास कर सकती है। जिसके अभाव मे सब का अभाव हो सकता है और जिसके रहने पर सभी लोग प्रसन्नता से रह पाते है एव सभी बाते ठीक ठीक चल सकती है, ऐसे राजा के प्रति किसकी श्रद्धा न उत्पन्न हो सकेगी। राजा राष्ट्र का जो गुरुतर भार वहन करता है उसके लिए उस राजा का जो प्रिय और हितकार्य करता है वह इस लोक मे तथा परलोक में सदा सुखी होता है। राजा से सुरक्षित राष्ट्र के जो लोग उस राजा का अनिष्ट सोचते या करते है वे इस लोक तथा परलोक में दुखी रहते है। राजा को सामान्य मनुष्य समझ कर उसकी अवज्ञा नही करनी चाहिए। राजा में ईश्वर की कोई विशेष शक्ति अपने हित के लिए अवतीर्ण हुई है, ऐसा जानना एवं मानना चाहिये।

यही बात मनुसहिता के सप्तमाध्याय के ८ वे श्लोक में कही गई है। राष्ट्र का रक्षक राजा प्रयोजनानुसार पाँच प्रकार का रूप धारण करता है—कभी अग्नि, कभी सूर्य, कभी मृत्यु, कभी कुबेर, कभी यमराज। जिस समय राजा उग्रतेज युक्त होकर पापियो को दण्ड देता है तब वह अग्नि मूर्ति होता है। जिस समय राजा गुप्तचरों के द्वारा सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप से सारे राष्ट्र का अवलोकन कर उसकी रक्षा आदि के लिए अनेक कार्य करता है तब राजा सूर्यमूर्ति कहलाता है। जब राजा उग्रमूर्ति धारण कर पापियो के विनाश में प्रवृत्त होता है, उस समय राजा को मृत्यु स्वरूप माना जाता है। जिस समय राजा सम दृष्टि होकर स्थिर चित्त से दुराचारियो को तीक्ष्ण दण्ड से दण्डित करता है एव सज्जनों की कृपा-परिभूत हो रक्षा करता है उस समय राजा को यममूर्ति कहा जाता है। जिस

समय राजा धन द्वारा प्रजा को समृद्ध बनाने का प्रयत्न करता है तब राजा को कुबेरमूर्ति कहा जाता है। यही राजा जब प्रसन्न होकर सत्कर्मकारियो को श्री–समृद्ध करता है तथा दुष्कर्मकारियो की सब तरह की सम्पत्ति को नष्ट करता है, उस समय इसको कुबेर की र्मूति समझा जाता है। ये सब बाते मनु के सातवें अध्याय के सातवे श्लोक मे कही गई है। वेद मे भी ये सब बातें अति विस्तृत रूप से कही गई है। याज्ञवल्क्यस्मृति के आचाराध्याय के ३५० वें श्लोक की व्याख्या बालक्रीडा मे वे सब श्रुतियाँ दिखाई गई है। ऐसे राजा का विरोध करना राष्ट्रवासियो के लिए कभी मगत नही कहा जा सकता।

राजा का विरोधी व्यक्ति कभी भी सुखी नही हो सकता वह चाहे राजा का पुत्र, भाई, मित्र, कोई भी सम्बन्धी क्यो न हो। जो कोई भी राजा का अनिष्ट करेगा वह सुख से नही रह सकता। राजविरोधी व्यक्ति का परिणाम बडा भयावह होता है। किसी दशा मे भी राजा का धन अपहरण नही करना चाहिए। हरिण जैसे अपने पकडने के पाश को छूते ही पकडा जाता है, वैसे ही राजा का धन अपहरण करने वाला व्यक्ति सद्य नष्ट हो जाता है। राष्ट्रवासी प्रत्येक व्यक्ति जैसे अपने धन की रक्षा करता है, वैसे ही सब को राजधन की रक्षा करनी चाहिये। राजधन का अपहरण करने वाला व्यक्ति नरक मे जाता है। प्रजा को रजित करने से ही राजा कहलाता है। प्रजा को सब तरह के सुख का अधिकारी बनाता है, इसीलिए राजा को भोज भी कहा जाता है। अनेक तरह के मृदु, तीक्ष्ण आदि रूप धारण करने के कारण उसको विराट् कहा जाता है। अत्यन्त श्रीमान् होने से उसको सम्राट् कहा जाता है। विपत्तियो से प्रजा को बचाता है इससे उसको क्षत्रिय कहा जाना है, एव पृथ्वी का सब तरह कल्याण करता है इसलिये उसको पृथ्वीपति कहा जाता है। दण्डनीतिशास्त्र की ये सब बाते वृहस्पति ने कोशल राज बसुमना को कही है। महाभारत के शान्तिपर्व ६८वे अध्याय में वृहस्पतिनीति समुपवर्णित है।

शान्तिपर्व के १०३ रे अध्याय मे इन्द्र-वृहस्पति मवाद वर्णित हुआ है। उसमे इन्द्र ने वृहस्पति से पूछा है कि शत्रुओ के साथ हम किस तरह का व्यवहार करे। शत्रुओ का सर्वथा विनाश किये बिना हम कैसे उनको मयत कर के रख सकते है? युद्ध के द्वारा शत्रु का विनाश किया जा सकता है। किन्तु सेना की सहायता से जो युद्ध किया जायगा उससे हमारी एकान्त जय की आशा नही की जा सकनी। सुतरा किस उपाय से हमारा प्रताप सर्वत्र फैल सके वह बतलाइये।

इन्द्र के इस प्रश्न के उत्तर मे राजधर्मवेत्ता वृहस्पति जी कहते है.

हे देवराज! केवल युद्ध से शत्रु को पराजित करने का प्रयास करना उचित नही। असहिष्णुता से अत्यन्त क्रोधित हो सहसा शत्रु से युद्ध करना नितान्त बालकोचित कार्य है।

जिस शत्रु को मारना भी हो उससे भी प्रत्यक्ष रूप मे शत्रुता का व्यवहार नही करना चाहिए। शत्रु के ऊपर क्रोध दिखाना और शत्रु के प्रताप से डर जाना तथा शत्रु को नष्ट करके हर्ष प्रकट करना—इन तीनो बातो मे सयत रह कर बाहर प्रकट न होने देना चाहिये। किसी भी तरह से क्रोध को प्रकट नही होने देना चाहिए। अपना प्रयोजन सिद्ध करने के लिए शत्रु के प्रति अपना आनुगत्य प्रकट कर देना चाहिए। हृदय मे शत्रु के प्रति अत्यन्त अविश्वास रखते हुए भी प्रकट रूप मे अत्यन्त विश्वसनीय की तरह व्यवहार करना चाहिए। शत्रु के लिए भी प्रत्यक्ष रूप मे नित्य प्रिय वाक्यो का ही प्रयोग करते रहना चाहिये। उससे भी अप्रिय व्यवहार नही करना चाहिए। किसी मे भी शुष्क वैर नही करना चाहिए। जिस शत्रुता से कुछ लाभ न हो, केवल क्रोध मात्र की शान्ति ही हो सके उसको शुष्क वैर कहते है।

शत्रु के प्रति कटूक्तियो की वर्षा करके कभी भी क्रोध को शान्त करने का प्रयास नही करना चाहिए। जो लोग पक्षियो को पकड कर ही अपनी जीविका चलाते है (अर्थात् व्याध जाति के लोग जिनको वैतसिक बहेलिया कहा जाता है) ये बहेलिये जिस समय जिस पक्षी को पकडने का प्रयास करते है, उस समय उसी पक्षी की बोली बोलते है। उस पक्षी की तरह आवाज करके वे बहेलिये उसको विश्वस्त कर लेते है, फिर सहसा उसको पकड लेते है। राजा भी इसी तरह बहेलिये की वृत्ति अवलम्बन कर शत्रु को अपने वश मे करके उसको मार डाले। वृहस्पति फिर और कहते है कि शत्रु को पराजित करके भी विजेता राजा उसकी तरफ से सर्वथा निश्चिन्त न हो जाय। कारण, शत्रु पराजित होने पर भी अपना प्रतिशोध लेने का विचार अपने हृदय मे बनाये ही रखता है। शत्रु दबी हुई अग्नि की तरह रहता हुआ अवसर की प्रतीक्षा करता है और अवसर प्राप्त होने पर प्रज्वलित हो उठता है। शत्रु के प्रति भयानक क्रोध है, इसी कारण से सहसा युद्ध मे प्रवृत्त नही हो जाना चाहिये। युद्ध मे सदा ही सब जगह एकान्तिक जय नही हुआ करती। इसलिए शत्रु को अपने प्रति पूर्ण विश्वस्त बना कर क्रमश उसको वश मे करना चाहिए। शत्रु को वश मे कर लेने पर अच्छी उचित सलाह देने वाले मन्त्रियो के साथ सलाह करके कर्त्तव्य का निश्चय कर लेना चाहिये। शत्रु के द्वारा उपेक्षित एव अपमानित होने पर भी राजा कभी हृदय मे हार न माने, क्योकि हृदय की हार जान लेने पर शत्रु पराजित होने पर भी कभी मौका पाकर अपने ऊपर आक्रमण कर देगा। राजा शत्रु के साथ व्यवहार करते समय बहुत अधिक सतर्क रहे। अत्यन्त विश्वस्त व्यक्तियो के द्वारा शत्रुराज्य की व्यवस्था को विश्रृंखल कर दे। इस तरह राजा शत्रुराष्ट्र मे अत्यन्त गुप्त भाव से सब काम करे। इस तरह के गुप्त कार्यों को करते समय कार्य के प्रारभ, मध्य तथा परिणाम में विशेष ध्यान रखना चाहिए।

शत्रु सेना को अनेक युक्तियों से राजा के प्रति विरक्त कर देना चाहिये; तथा शत्रु सेना के प्रधान प्रधान व्यक्तियो को रिश्वत देकर सेना में आपस में विरोध पैदा कर देना चाहिए एव अनेक औपनिषदिक प्रकरण में बतलाई गई औषधियों के द्वारा शत्रु सैनिको को युद्ध मे अयोग्य बना देना चाहिए। यह औपनिषदिक प्रकरण कौटिल्य अर्थशास्त्र के चौदहवे अधिकरण मे वर्णित हुआ है।

विजिगीषु राजा सहसा ही शत्रुराजा के साथ लडाई करने को तत्पर न हो जाय। पूर्वोक्त क्रम से शत्रु को वश मे करने के लिये यदि अधिक समय भी अपेक्षित हो तो समय लगने दे, समयाधिक्य से उद्विग्न न हो उठे। शत्रुराजा जब तक विजिगीषु राजा के प्रति पूर्ण विश्वस्त न हो जाय तब तक प्रतीक्षा करनी चाहिये। कभी भी शीघ्रता करके प्रत्यक्ष रूप में शत्रु पर आक्रमण न करे। जो राजा निश्चित रूप से अपनी जय चाहे वह कभी भी जल्दबाजी से शत्रु पर आक्रमण न करे। शत्रुराजा के साथ प्रकट रूप मे मन मुटाव बढाने वाला कोई काम न करे और न ऐसे कटु शब्द ही उसके लिए प्रयुक्त करे जिससे वह उत्तेजित हो उठे। विजिगीषु राजा जिस समय पूरी तरह से अपनी सेना अमात्य, कोष आदि की शत्रु-पराजय-सामर्थ्य की पूर्णता जान ले और इसके विपरीत शत्रु के सेनादिको की असपूर्णता समझ ले, उसी समय तनिक भी देर न कर शत्रु पर आक्रमण कर उसका उच्छेद करदे। शत्रु पर आक्रमण करने का अवसर हर समय नही मिलता। समय की प्रतीक्षा करता हुआ विजिगीषु शत्रु के विनाश का समय पाकर भी यदि उसके विनाश मे प्रवृत्त नही होता तो फिर वह अवसर चूकने पर शत्रु का विनाश न कर सकेगा। शत्रु के विनाश का मौका बार बार नही आता। शत्रु पर चढाई करने का समय न आने तक राजा अपने मित्रो का सग्रह करता रहे। शत्रु पर आक्रमण न करे। विजिगीषु राजा अपने काम, क्रोध, और अहकार को छोड कर हर समय शत्रु की कमजोरियो की खोज करता रहे। शत्रु के छिद्रान्वेषण मे कभी भी लापरवाही नही करनी चाहिये। एकान्त मदुता या एकान्त उग्रता, निरन्तर आलस्य और असावधानता ये चार महादोष मूर्ख राजा को नष्ट कर देते है। इन चार महादोषो का परित्याग कर बुद्धिमान् राजा शत्रु पर आक्रमण करने मे समर्थ हो सकता है।

गुप्त सलाह सब मन्त्रियो के साथ मिल कर नही करनी चाहिए। जिसके साथ जिस विषय की सलाह करने से कार्य सिद्ध होता जान पडे, केवल उसी के साथ उस विषय की सलाह करना उचित है। अनेक व्यक्तियो के साथ गुप्त सलाह करने से वह मन्त्रणा अवश्य ही प्रकाशित हो जायगी एवं इस मन्त्रणा का प्रकट हो जाना ही घोर अनर्थ पैदा कर सकता है। यदि समझा जाय कि औरों की सलाह न लेने पर वे लोग इसमे विघ्न पैदा कर सकते है तो उनकी भी सम्मति ले लेनी होगी। सुगुप्त शत्रु के प्रति अभिचार (तान्त्रिक मारणादि)

क्रया के द्वारा ब्रह्मदण्ड एव प्रकट शत्रु के प्रति चतुरङ्गिणी सेना के द्वारा प्रकट ण्ड का विधान करना होगा। गुप्तरूप से शत्रु के राज्य मे फूट डाल देना वजिगीषु राजा का प्रधान कार्य है। परराष्ट्र मे भेद पैदा करने के लिए उस राष्ट्रके ोधी, लोभी, अपमानित, और भीत व्यक्ति ही उपयुक्त होते है। इनके द्वारा ही भेद ाला जा सकता है। इसी लिये क्रुद्ध आदि इन चार तरह के व्यक्तियो को त्यवर्ग कहा है। क्रोधी को उसके क्रोध का प्रशमन करके, लोभी को धन ादि देके, डरे हुए को अभय वचन देकर, एव अपमानित को सम्मान प्रदर्शन कर ात्रुराजा से भेदित किया जा सकता है। इसलिये विजिगीषु राजा पहले से ही क्त कृत्यवर्ग मे भेद का प्रयोग करे जिसको दूसरे लोग जानने न पावे। मन्त्री, रोहित, युवराज और सेनापति मे भेद डाल देने मे शत्रुराजा अनायास ही ष्ट किया जा सकता है। इसलिये राजा को इनमें भेद डालने के लिए अत्यन्त प्तरूप से प्रयत्न करना चाहिये। क्रोधी, लोभी, अपमानित, और भीत, इन ार प्रकार के व्यक्तियो मे ही भेद डाला जा सकता है। परराष्ट्र मे अमात्य ादिको मे कौन व्यक्ति किस कारण से क्रुद्ध, लुब्ध, अपमानित और भीत हो केगा इसको जान कर उक्त भेद प्रयोग किया जा सकता है। यही भेद डालने ा उपयुक्त समय है। शत्रु के प्रबल होने पर उसके प्रति दण्ड विधान असम्भव , यह विचार कर पहले उनमे भेद डाल कर शत्रु को दुर्बल बना देना होगा।

शत्रुराज्य के अमात्य आदि मे भेद डालकर उन अमात्यादिको को अपने क्ष मे मिला कर फिर विजिगीषु राजा उन्ही व्यक्तियो के द्वारा शत्रुराजा का उच्छेद कर सकता है। शत्रु के विनाश करने मे राजा को हर समय अति समाहित रहना चाहिये। कभी भी असावधानी नही करनी चाहिये। शत्रु जब असावधान हो, वही शत्रु के विनाश का समय है। इस बात को विजिगीषु राजा हर समय ध्यान मे रखे। शत्रु के प्रबल होने पर विजिगीषु राजा उसके सामने नम्र हो जाय, अनेक तरह की भेट आदि देकर उसको सतुष्ट रखने का प्रयास करता रहे, और उससे बडी ही मधुरता से बाते करे। इस तरह शत्रुराजा की इतनी सेवा करे जिस से वह उसको अपना ही समझने लगे।

जिन कामो के करने से शत्रुराजा के मन मे सन्देह हो सके ऐसा कोई भी काम न करे। स्वय शत्रुराजा का विश्वास कभी भी न करे किन्तु उसको अपने ऊपर विश्वस्त बना ले। शत्रुराजा कभी भी असावधान नही है यह विजिगीषु राजा सर्वदा स्मरण रखे। अनेक प्रकार के ऐश्वर्य को पाकर उसकी रक्षा करने के बराबर दूसरा कठिन काम नही है। इस ऐश्वर्य की रक्षा करने मे हर समय ही अनेक विघ्न बाधाये आती रहती है। इसलिये राजा अनेक तरह की व्यवस्थाओं से शत्रु और मित्र का निरूपण सतर्कता से करता रहे। सभी तरह के मानवविघ्न ही शत्रु पक्ष से पैदा हो सकते है। राजा के एकान्त मृदु होने पर सब जगह

ही अपमानित होना होगा एव अति तीक्ष्ण होने पर राजा से सारी प्रजा उद्विग्न हो उठेगी। इसलिये राजा को हर समय मृदु एव हर समय तीक्ष्ण नही होना चाहिए। प्रयोजनानुसार किसी समय मृदु और किसी समय तीक्ष्ण होना उचित है।

बडे वेग से बहने वाली एव अगाध जल वाली नदी के किनारे खडे वृक्षो के विनाश की शका हर समय बनी ही रहती है। इसलिये राजा को अपने राज्य की रक्षा मे कभी भी प्रमाद नही करना चाहिए। विजिगीषु राजा को एक समय ही अनेक शत्रुओ के साथ युद्ध मे प्रवृत नही होना चाहिये। किसी शत्रु से साम का, किसी से दान का, किसी के साथ भेद का प्रयोग करना चाहिये। कभी किसी से युद्ध भी करना चाहिये।

दण्ड द्वारा एक एक शत्रु का विनाश कर क्रमश दूसरे शत्रुओ का दण्ड द्वारा उच्छेद करना उचित है। दण्ड द्वारा एक शत्रु का विनाश करने पर दूसरे शत्रु विक्षुब्ध न हो उठे इसका विजिगीषु राजा को पूरा ध्यान रखना चाहिये। प्रचुर कोष एव प्रचुर सैन्य होने के कारण अनेक शत्रुओ पर विजय पा लेने का सामर्थ्य रखते हुए भी बुद्धिमान् विजिगीषु राजा को किसी अवस्था मे भी अनेक शत्रुओ से एक साथ युद्ध नही छेड देना चाहिये। विजिगीषु राजा जब देखे कि हाथी, घोडे, रथ और पदाति सेना उसके यहाँ पर्याप्त है, सारी ही फौज युद्ध के लिए तैयार है एव युद्धोपयोगी अनेक तरह के स्थिर एव चल यत्रो की सुव्यवस्था है, कोष भी परिपूर्ण है तथा युद्धोपयोगी देश भी अनुकूल हो रहा है, बुद्धिमान् मित्र भी काफी है, चतुरङ्गिणी सेना और उसके अधिनायक एव अमात्य वर्ग सभी उसमें अनुरक्त है—इस तरह अपनी पूरी तैयारी जान कर तथा इसके विपरीत शत्रु की ये सभी बाते उल्टी है इसको निश्चित रूप से समझ कर तब शत्रु के साथ प्रकट रूप मे युद्ध के लिए तैयार हो जाय एव विलम्ब न कर शत्रुवर्ग का विनाश कर दे। इस वार्हस्पत्यनीति का सारा मर्म यही है कि प्रबल शत्रु के साथ साम वाक्यो का प्रयोग व्यर्थ समझ कर उसके प्रति गुप्त दण्ड का प्रयोग करना चाहिये। प्रबल शत्रु के साथ कभी भी प्रत्यक्ष रूप मे शत्रु का सा व्यवहार नही करना चाहिये। किन्तु अनेक तरह के छल छद्मो से शत्रु का क्षय करना चाहिये। शत्रु के साथ कभी एकान्त मृदुता, या युद्ध के द्वारा एकान्त तीक्ष्णता का व्यवहार प्रकाश रूप मे नही किया जाना चाहिये। इसलिये प्रच्छन्न रूप मे अनेक उपायो से शत्रु को दुर्बल बनाता रहे और मौका पाते ही उसको नष्ट कर दे।

विजिगीषु राजा गुप्त रूप से अपने शत्रुओ को परस्पर लडा कर नष्ट करने का प्रयत्न करता रहे। शत्रु का बल नष्ट करने के लिए उसकी अनेक तरह की आमदनी के प्रतिरोध के लिए कपट नीति का प्रयोग करता रहे। इन सब कूटनीतियो का प्रयोग इस तरह गुप्त रीति से करे जिससे लोगो को उसके प्रति किसी तरह सदेह करने का अवसर न मिले। अत्यन्त विश्वासी गुप्तचरो को

शत्रुराज्य मे तथा उसके नगर मे घूमने के लिए इस तरह नियुक्त करे जिससे वे समस्त शत्रुराज्य के छिद्रो को विजिगीषु को सतत बताते रहे और विजिगीषु उनको जानकर शत्रु के विनाश की व्यवस्था गुप्त रूप से कर सके। इसी तरह अपने राज्य की त्रुटियो को जानने के लिए भी गुप्तचरो को नियुक्त करे जिससे अपने राज्य की त्रुटियो को जान कर शीघ्र ही उनका प्रतिविधान कर सके।

जो व्यक्ति अनेक प्रकार से शत्रुराज्य मे उच्छृङ्खलता पैदा कर सके ऐसे बुद्धिमान् एव अत्यन्त विश्वासी अपने राष्ट्र के रहने वाले विशेष योग्य व्यक्तियो को राजा झूठे अनेक दोष लगा कर अपने राष्ट्र से निर्वासित कर के शत्रु राज्य मे तथा शत्रु के नगरो मे भेज दे और प्रकाश रूप में उनकी सारी सम्पत्ति जब्त कर ले। गुप्तरूप मे उनको पर्याप्त धन दे दे जिससे वे वहाँ सुख से रह सके। नीतिज्ञ विजिगीषु राजा इस तरह शत्रुराज्य मे अपने अत्यन्त विश्वस्त एव नीति प्रयोग मे कुशल पुरुषो को भेज कर उनके द्वारा शत्रुराज्य का ध्वस करा सकता है। इसका एक उदाहरण दशकुमार चरित्र के अष्टम उच्छ्वास मे महाकवि दण्डी ने वर्णन किया है। हमने इस प्रबन्ध मे पहले उसका आभास दे दिया है।

इसी तरह शत्रुराजा भी विजिगीषु के राजमण्डल में गुप्त रूप से अपने ऐसे योग्य व्यक्तियो को नियुक्त न कर सके इस पर विजिगीषु को पूरा ध्यान रखना चाहिए।

इसके बाद इन्द्र वृहस्पति से फिर पूछते हैं कि जो व्यक्ति गुप्त शत्रु है या जो राजा से विरक्त है ऐसे व्यक्तियो को जानने का क्या उपाय है? ऐसे कौन से चिन्ह हैं जिनसे दुष्ट भावापन्न व्यक्ति को जाना जा सके? इसके उत्तर मे वृहस्पति कहते हैं कि जो दुष्ट भावापन्न व्यक्ति या जो जिस से गुप्तरूप मे शत्रुता रखता है वह उसके पीछे उसके दोषो का वर्णन करेगा, उसमे गुण होते हुए भी अनेक तरह के कलक लगावेगा। कोई दूसरा व्यक्ति भी यदि उसका गुण कहेगा तो वह नीचा मुँह करके चुप हो जायगा। उसके चुप होकर बैठने पर भी देखने से उसमे अनेक तरह के दुर्भाव लक्षित हो सकेंगे। वह बार बार अपना होठ चबाने लगेगा या सिर हिलाने लगेगा। उससे उस समय कुछ पूछा जाय तो वह असम्बद्ध बात बोलेगा। पीछे असाक्षात् में अनुकल काम नही करेगा और साक्षात् भी इच्छापूर्वक कुछ नही बोलेगा। हर समय अलग ही रहना चाहेगा। एक साथ भोजनादि नही करेगा, सोने उठने बैठने मे भी उसकी विलक्षणता दिखाई पडेगी। दुःख मे दुःखी होना और सुख मे सुखी होना यह मित्र का लक्षण होता है। इसके विपरीत शत्रु का लक्षण समझना चाहिये। इन समस्त लक्षणो से अनायास ही शत्रु और मित्र जाना जा सकता है। वृहस्पति के ये सारे नीति वाक्य सुनकर शत्रुहन्ता इन्द्र ने इन सब उपायो का ठीक ठीक प्रयोग किया और शत्रु को वश में कर लिया।

हमने सूत्राध्याय की आलोचना के प्रसङ्ग मे जो वार्हस्पत्यतन्त्र की बात कही थी वह तन्त्र आज सपूर्ण उपलब्ध न होते हुए भी इस तन्त्र के कुछ सूत्र (श्लोक) की जो याज्ञवल्क्यस्मृति की बालक्रीडा नामक टीका मे उद्धृत हुए है, हमने आलोचना कर दी है एव महाभारत मे भी जहाँ जहाँ वार्हस्पत्यतन्त्र के प्रतिपाद्य विषय को लेकर आलोचनाये की गई है उन सब स्थलो का भी हमने आभास दे दिया है। इस तन्त्र का आकार क्या था और किस रूप मे यह समग्र तन्त्र विरचित हुआ था यह कहना कठिन है। महाभारत मे वार्हस्पत्यनीति श्लोकवद्ध पाई जाती है, किन्तु याज्ञवल्क्य की बालक्रीडा टीका मे सूत्ररूप से उपनिवद्ध उद्धृत की गई है। महाभारत के राजधर्म २३ वे अध्याय की समालोचना करने पर ज्ञात होता है कि वृहस्पति ने जो नीतिशास्त्र प्रणयन किया उसने श्लोकोपनिबद्ध वाक्य भी थे। हम कौटिल्य अर्थशास्त्र मे भी देखते है कि वह सूत्ररूप मे तथा श्लोकरूप मे भी उपनिबद्ध हुआ है। वार्हस्पत्यतन्त्र मे भी कौटिल्य अर्थशास्त्र की तरह सूत्र तथा श्लोक दोनो ही होगे ऐसा प्रतीत होता है। प्राचीन ग्रन्थो की रचना प्रणाली के अनुसार यही ज्ञात होता है कि गद्यात्मक सूत्रो के द्वारा जो अध्याय निर्मित हुआ, उस अध्याय की समाप्ति मे उस के सिद्धान्तो का सार सकलन करने के लिए कुछ श्लोक भी बना दिये गये। यह रीति कौटिल्य अर्थशास्त्र मे भी अनुसृत हुई है। एव चरक, सुश्रुत आदि आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थो में भी पाई जाती है। वेदो के ब्राह्मण भागो मे भी यही रीति देखी जाती है।

भारद्वाज नीति

हमने पहले वृहस्पति के ज्येष्ठ पुत्र भरद्वाज की बात कही है। वृहस्पति जैसे नीतिशास्त्र के प्रणेता आचार्य है वैसे ही वृहस्पति के पुत्र भरद्वाज भी नीतिशास्त्र सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य थे। महाभारत के आपद्धर्मपर्व के १४० वे अध्याय मे इस भारद्वाज नीति की आलोचना की गई है। महाभारत के उक्त अध्याय मे नीतिशास्त्र के प्रवक्ता आचार्य को भारद्वाज कह कर निर्देश किया है। भरद्वाज वशोत्पन्न होने से भारद्वाजनीति वार्हस्पत्यनीति की एक शाखा ही है। यद्यपि आपद्धर्म के १४० वे अध्याय मे भारद्वाज प्रोक्त नीति कही गई है तो भी भगवान् भरद्वाज नीतिशास्त्र के प्रवक्ता थे यह बात हमने राजधर्मपर्व के ५८ वे अध्याय के ३ रे श्लोक की उक्ति के अनुसार बतला दी है। इसलिये भगवान् भरद्वाज भी वृहस्पति के समान नीतिशास्त्र के प्रणेता है एव भरद्वाज प्रणीत शास्त्र भी वार्हस्पत्य शास्त्र के द्वारा प्रभावित हो सका यह कहा जा सकता है। आपद्धर्म के १४० वें अध्याय मे जो भारद्वाज नीति कही गई है, इसी के अनुरूप एक और अध्याय आदिपर्व मे है। आदिपर्व १४० वे अध्याय मे जो

कणिकनीति वर्णित है वह भी इस भारद्वाज नीति के अनुरूप ही है। वह हम कणिकनीति की आलोचना के प्रसंग मे बतलायगे।

सौवीर राज शत्रुजय एक समय राजनीति जानने के लिए भारद्वाज के पास गये। राजा शत्रुजय भारद्वाज से पूछने लगे कि राजा किस तरह अलब्ध पृथ्वी का लाभ एव लब्ध भूमि का विवर्धन तथा विवर्द्धित का परिपालन एव परिपालित-वस्तुओ का योग्य पात्रो को दान कर सकता है। ठीक इसी तरह की बात मनु—सहिता के सप्तमाध्याय के ९९ वे श्लोक मे कही गई है, एव याज्ञवल्क्य स्मृति के आचाराध्याय के ३१७ वे श्लोक में भी यही बात वर्णित है। कामन्दक नीति-शास्त्र मे प्रथमाध्याय के १८ वें श्लोक मे भी यही बात कही गई है।

मनुसहिता मे कहा गया है कि, अर्जन (सग्रह), अर्जित का रक्षण एव परि-वर्द्धन और परिवर्द्धित का दान, ये चार बातें ही सर्वविध पुरुषार्थों का मूल है—"एतच्चतुर्विध विद्यात्पुरुषार्थप्रयोजनम्"। इस श्लोक के भाष्य में मेधातिथि कहते है कि राजा कभी भी ब्राह्मणों की तरह प्राप्त वस्तु से ही सन्तुष्ट न हो जाय किन्तु सर्वदा अलब्ध वस्तु के अर्जन एव रक्षण में तत्पर रहे। कोई भी व्यक्ति यह न समझे कि हमारे पास जो धन है उसे बढाने की जरूरत नहीं है या हमारे पास जो विद्या है उसको परिवर्द्धन करने की आवश्यकता नही है, या हमारा जैसा स्वास्थ्य है उससे अधिक स्वस्थ होने की जरूरत नही है, या हम जो आयु भोग चुके है इससे अधिक आयु की आवश्यकता नही है। किन्तु हर एक को ही अप्राप्त धन अनधिगत विद्या आदि को प्राप्त करने के लिए प्रयास करते रहना चाहिये। इसी तरह राजा भी मित्र, धन, भूमि आदि के लाभ के लिए सतत उद्योग करता रहे। जो अपनी वृद्धि के लिए प्रयास करते रहते है उनकी वृद्धि न होने पर भी अन्तत लब्ध वस्तु की रक्षा तो इससे हो ही सकेगी, और जो वृद्धि के लिए प्रयास ही नही करते उनकी लब्ध वस्तु भी थोडे ही समय में उनके हाथ से निकल जाती है। जो व्यक्ति अपनी वस्तुवृद्धि के लिए प्रयास न करके अपने को उतने से कृतार्थ मान कर बैठ जाते है उनमे आलस्य एव दुर्व्यसन अपना स्थान बना लेते है। भारत के सभी नीतिशास्त्रकार इसमे एकमत है कि ब्राह्मणों की तरह प्राप्त वस्तु से ही राजा को सन्तोष नही कर लेना चाहिए। ऐसा करना राजा का एक महान् दोष है।

सौवीर राज शत्रुजय के इस प्रश्न का उत्तर देते हुए भारद्वाज कहते है कि राजा हर समय उद्योगशील बना रहे। राजा सदा ही हाथी, घोडे आदि सैन्य वर्ग को अनेक प्रकार से शिक्षित कराने की व्यवस्था करके इस चतुरङ्गिणी सेना को कार्यक्षम बनाये रहे एव हाथी घोडे, पदाति आदि के लिए उपभोग योग्य वस्तुएँ वस्त्रादि का यथोचित सग्रह करता रहे। इस तरह चतुरङ्गिणी सेना को सब तरह पूर्णांग रखने की जो चेष्टा करता है ऐसे राजा को 'उद्यत दण्ड' कहा जाता है। उद्यत-

दण्ड का अर्थ यह नही होता कि राजा हर समय हाथ मे लाठी लिये बैठा रहे। सुशिक्षित चतुरङ्गिणी सेना को युद्धोपकरण युक्त बनाये रखने का ही नाम उद्यत-दण्डता है। राजा हर समय अपने पुरुषार्थ का परिचय देता रहे। राज्य की सीमा रक्षा के लिए प्रान्तपाल और प्रान्त स्थित पर्वत तथा जगलो की रक्षा के लिए अधिकृत पुरुषो के द्वारा अधिष्ठित अस्त्र-शस्त्रो से सन्नद्ध पुरुषो को सदा तत्पर रखते हुए रक्षण कार्य मे नियुक्त करे। सर्वदा पुरुषार्थ प्रकट करने का अर्थ शब्दों के द्वारा अपना दम्भ प्रकट करना नही है। महाभारत के इस श्लोक का अभिप्राय मनु के सप्तमाध्याय के १०२वे श्लोक मे बतलाया गया है। राजा हर समय शत्रु के छिद्र ढूँढता रहे और अपने छिद्रो को छिपाता रहे। राजा के जो जो विषय अरक्षित अथवा अन्यथा रक्षित हो, उनको ही राजा का छिद्र कहा जाता है। जैसे किले आदि की मरम्मत नही कराना, नदी मे पुल न बँधवाना, वाणिज्य करने वालो के लिए सुदूर देशगामी मार्ग न बनाना आदि, कोष दण्ड आदि की कमी ही राजा के छिद्र होते हैं।

जैसे राजा को शत्रु का छिद्रान्वेषी होना जरूरी है वैसे ही उद्यत-दण्ड होना भी आवश्यक है। क्योकि उद्यत-दण्ड राजा से सभी डरने लगते हैं। इसलिये राजा दण्ड से ही सबको अपने वश मे कर सकता है। साम, दान, भेद और दण्ड इन चारो उपायो मे दण्ड ही प्रधान होता है। राजा का यह दण्ड नष्ट होने से सब कुछ नष्ट हो जाता है। राजा और उसकी समृद्धि सब का ही मूल दण्ड है। जिसका दण्ड ठीक नही उसका कुछ ठीक नही। मूल नष्ट हो जाने से जैसे वृक्ष स्थित नही रह सकता, वैसे ही दण्ड के विनाश होने पर राजा का कुछ भी स्थिर नही रह सकता। राजा को शत्रुराजा के विनाश मे यत्नवान् होना चाहियें। इसके बाद शत्रु के मित्र पक्षीय राजाओ के विनाश का यत्न करना चाहिये। विजिगीषु राजा सुमन्त्रणा पूर्वक जो कर्तव्य स्थिर करे तदनुसार ही पराक्रम दिखलावे और विक्रमानुरूप ही युद्ध मे भी प्रवृत्त हो। जहाँ युद्ध में जय की आशा न दिखाई पडे वहा अपनी सेना का व्यर्थ विनाश न करा कर युद्ध भूमि से भाग खडा होना ही उत्तम है। अपनी वृद्धि के समय विजिगीषु राजा का जैसे युद्ध करना कर्त्तव्य होता है वैसे ही आपत्ति के समय युद्ध से भागना भी कर्तव्य होता है। इसमे राजा को कभी सन्देह नही करना चाहिये। विजिगीषु राजा प्रबल शत्रु के सामने बात चीत करने में अति विनीत रहे किन्तु हृदय में तेज छुरे की तरह तीक्ष्ण-धार बना रहे।

शत्रु के लिए भी मृदु शब्दो का प्रयोग करे। साधारण व्यवहार मे कभी भी क्रोध वा काम के वशीभूत न हों। विजिगीषु राजा मतलब देख कर शत्रु के साथ संधि करके भी कभी शत्रु का विश्वास न करे। विजिगीषु राजा ने जिस मतलब से सधि की है वह उद्देश्य सिद्ध होने पर शीघ्र ही उस सधि की

शर्तें तोड दे। विजिगीषु राजा शत्रु के साथ बाहर से मित्ररूप में ही व्यवहार करे एव शत्रु को जिस बात से उद्वेग हो सके ऐसी कोई बात न करे। मित्रवत् व्यवहार करने पर भी शत्रु से हर समय उद्विग्न बना रहे जैसे सर्प युक्त घर मे लोग उद्विग्न रहते है। शत्रु की वृद्धि जिस से विभ्रष्ट हो जाय इसके लिए पिछली किसी भयानक घटना का उल्लेख कर उसको उद्विग्न कर अत्यन्त विश्वसनीय की तरह उस उद्वेग से उसको संभाल कर अपनी हितैषिता का पूर्ण परिचय दे देना चाहिये। दुर्बुद्धि शत्रु को आगे होने वाले झूठे भयानक परिणाम बतला देना चाहिये एव बुद्धिमान् शत्रु को वर्तमान के ही अनिष्ट बतला कर उनके प्रति उसकी दृष्टि आकृष्ट करते हुए उसे शान्त रखना चाहिये।

विजिगीषु राजा को शत्रु के सामने हाथ जोडने में, शपथ खाने मे, शत्रु के हृदय को सन्तोष देने वाले प्रिय मधुर वचन कहने में हिचकना नही चाहिये। यहाँ तक कि शत्रु के सामने अति नम्र होकर उसकी स्तुति करने लगे तथा उसके दु ख मे दु ख प्रकाशित करने लगे। अपना अभ्युदय चाहने वाला राजा इन सब कामों के करने मे ज़रा भी सकोच कभी न करे। अपने स्वार्थ के लिए शत्रु को कन्धे पर बैठा कर ले चले, और जब तक अपनी अच्छी दशा न हो जाय तब तक शत्रु का अनुगत बना रहे। अपनी अनुकूल दशा आने पर कन्धे पर बैठाये हुए शत्रु को जोर से जमीन पर पटक कर मार डाले। जैसे कन्धे पर रखे हुए मिट्टी के घडे को जमीन पर पटक कर फोड़ दिया जाता है। भारद्वाज सौवीर राज शत्रुंजय को कहते है कि हे महाराज! बहुत समय तक जलने वाली ज्वाला रहित एवं धूमायमान तुषाग्नि की तरह अन्दर ही अन्दर जलते हुए जीवन बिताना विजिगीषु के लिए किसी भी तरह उचित नही।

धूमायमान दीर्घ जीवन की अपेक्षा तिन्दुक काष्ठ की तरह प्रज्वलित होकर मुहूर्त्त मात्र भी जीना अच्छा है। तिन्दुक लकडी जिस समय जलती है, उस समय इससे बहुत सी चिनगारियाँ निकलती है और उनमे चट् चट् शब्द हुआ करता है। बहुत सा प्रयोजन रखने वाला भी पुरुष कृतघ्न के साथ सम्बन्ध न रखें। अपना मतलब निकल जाने पर कोई अनुगत नही रहता है। अपना मतलब निकालने के लिए लोक जिससे मतलब निकालना है उसका सम्मान करता है किन्तु मतलब निकल जाने पर फिर उसकी उपेक्षा ही कर देता है। इसलिये प्रार्थी व्यक्ति को कोई कार्य निरवशेष रूप में सम्पन्न नही कर देना चाहिए। क्योंकि जब तक उसका मतलब पूरा सम्पन्न न हो सकेगा तब तक वह कार्य सम्पादक का अनुगत रहेगा। राजा को कोकिल का, शूकर का, शून्य गृह का, नट का और भक्ति-मित्र का स्वभाव अवलम्बन करना चाहिये।

कोयल जैसे अपने बच्चो का पोषण दूसरो से कराती है इसी तरह राजा अपने विशेष कार्य दूसरो से ही करा ले। शूकर जैसे जड़ को उखाड देता है राजा

भी शत्रु का मूलोच्छेन कर दे। सुमेरू पर्वत स्वभावत अचचल एव अनुल्लघनीय होता है वैसे ही राजा भी अचचल एव अनुल्लघनीय हो। सूनाघर जैसे निराश्रय प्राणियो का आश्रय होता है इसी तरह राजा भी निराश्रितो को आश्रय दे। नट का स्वभाव होता है कि वह अनेक तरह के रूप धारण कर लेता है इसी तरह राजा भी प्रयोजनानुसार कभी प्रसन्न एव कभी क्रुद्ध होता रहे। भक्ति-मित्र जैसे अपने आराध्य पुरुष की मगल कामना करता रहता है ऐसे ही राजा भी अपनी प्रतिपाल्य प्रजा की वृद्धिकामना करता रहे। अपना अभ्युदय चाहने वाला दुर्बल राजा प्रबल शत्रु राजा का अनुवर्तन करता रहे।

जब तक वह समर्थ न हो सके तब तक शत्रुराजा का अनुवर्तन करे। जो राजा आलसी, हीन वीर्य, अभिमानी, और संसार के लोगो की समालोचनाओ से डरने वाला है, और जो सदा ही समय की प्रतीक्षा करता रहता है वह कभी भी उन्नति नही कर सकता। विजिगीषु राजा को सदा ऐसी व्यवस्था रखनी चाहिये जिससे शत्रु उसके कोष बल आदि की त्रुटि को न जान सके।

विजिगीषु राजा की कोई कमजोरी जिससे शत्रु न जान सके और वह शत्रु की समस्त कमजोरियो को जान सके ऐसा प्रयत्न विजिगीषु को करना चाहिये। राजा अपने मण्डल मे—लोभी, क्रोधी, भीत एव अपमानित प्रकृति वर्ग को गुप्तचरो के द्वारा जानकर दान मान आदि के द्वारा उनको अपने अधीन कर ले। कछुआ जैसे अपने मुख पैर आदि सब अगों को अपने अन्दर कर लेता है इसी तरह राजा भी राज्य के क्रोधी लोभी आदि प्रकृत वर्ग को दान-मानादि से अपने अधीन करले। अमात्य आदि प्रकृति के विरोध का कोई कारण हो जाने पर राजा शीघ्र उसका प्रतिविधान कर उनमे समता पैदा करदे। ये सब बाते मनु के सप्तमाध्याय के १०५ वें श्लोक में भी कही गई है। विजिगीषु राजा किसी कार्य के सम्पन्न न हो सकने पर निर्विण्ण (दुखी) न हो। जैसे अति अगाध जल मे रहने वाले मत्स्य समुदाय का पकडना दुसाध्य होने पर भी बगुला मिथ्या ध्यान-योग द्वारा उनको पकड सकता है, इसी तरह राजा भी चित्त के अतिशययोग से दुष्प्राप्य वस्तु को भी प्राप्त कर सकता है। हाथी की अपेक्षा कृश शरीर भी सिंह प्रबल एवं अति स्थूल शरीर वाले हाथियो के झुण्ड पर आक्रमण कर सकता है, ऐसे ही अल्प बल भी राजा अपनी सर्वशक्ति द्वारा शत्रुओ पर आक्रमण कर सकता है। पशुपालको की असावधानी को जान कर भेडिया जैसे पशुओ को मार डालता है, इसी तरह विजिगीषु राजा दुर्गस्थित भी शत्रु राजा की असावधानी को जानकर उसको नष्ट करदे। खरगोश जैसे अस्त्र सज्जित व्याधों के बीच मे फँस जाने पर भी अपनी कुटिल तीक्ष्ण गति से भाग जाता है ऐसे ही दुर्बल विजिगीषु राजा शत्रुओं से घिर जाने पर भी शत्रुओं को अनेक उपायो से विमुग्ध कर शत्रुओ के घेरे से निकल भागे। यह बात मनुसहिता के सातवें अध्याय के १०६ वे श्लोक मे कही गई है।

शराब पीना, जुआ खेलना, स्त्री सभोग, शिकार खेलना और गीत वाद्य आदि का परिमित मात्रा मे ही राजा सेवन करे। इन सारे व्यसनो मे आसक्त होकर राजा नष्ट हो जाता है। विजिगीषु राजा प्रबल शत्रु से आक्रान्त होने पर आत्म रक्षा का जो उपाय ठीक जँचे उससे आत्म रक्षा करे, और फिर कोई सुयोग प्राप्त होने पर शत्रु का विनाश करदे। यदि आवश्यक समझे तो हाथ का शस्त्र भी गिरादे। व्याध जैसे हरिण को मारने के लिए जंगल में मुर्दे की तरह पड कर पास मे आये हुए हरिण को अचानक मार डालता है, इसी तरह विजिगीषु राजा भी मृगशायिका अवलम्बन कर शत्रु का विनाश करदे। अपनी प्रतिकूल दशा मे राजा शत्रु की दुर्नीति देखकर भी अन्धे की तरह उसको न देखे, एव सुनकर भी बहिरे की तरह उसको न सुने, किन्तु देश काल अनुकूल होने पर विपुल पराक्रम से शत्रु पर आक्रमण कर दे। असमय मे वेमौके किया हुआ विक्रम निष्फल हो सकता है। जैसे जल मे स्थलचरो का एव रात्रि में रात्र्यन्ध जीवो का विक्रम निष्फल हो जाता है।

जो काल विजिगीषु के लिए उपयोगी है वह शत्रु के लिए अनुपयोगी होगा, एव जो देश विजिगीषु के लिए उपयुक्त है, वह शत्रु के लिए अहित होगा। विजिगीषु राजा की जिस समय सैन्य, कोष, मित्र आदि की पूर्णता हो और शत्रु की इसके विपरीत दशा हो, अर्थात् उसकी सैन्य, कोष मित्र आदि सम्पत्ति क्षीण हो, उस समय विजिगीषु को शत्रु पर आक्रमण कर उसका विनाश साधन कर देना चाहिये। दण्ड द्वारा उपनत शत्रु का जो राजा विनाश नही कर देता वह अपनी मृत्यु की व्यवस्था अपने आप करता है। (जैसे मुहम्मद गोरी को पकड़ कर भी पृथ्वीराज ने छोड कर अपनी मृत्यु की व्यवस्था आप ही की)। विजिगीषु राजा कभी भी शत्रु से निष्कपट व्यवहार न करे। शत्रु के प्रति अनुकूल व्यवहार प्रदर्शन करने की आवश्यकता होने पर भी हृदय मे अनुगत भाव न आने दे। शत्रु की कार्य सिद्धि के लिए सुसज्जित हो उस कार्य को कर उसका फल स्वय कुछ न चाहे, फल मिलने पर भी अपने को उसके अयोग्य बताकर उसका फल स्वीकार न करे। किसी कार्य के अयोग्य होते हुए भी अपने को योग्य प्रमाणित करदे। अनेक उपायो से इसी तरह शत्रु का कालक्षेप करता रहे और अपने कोष एवं दण्ड सचय करने मे दत्तचित्त रहे। जिनमें फूट डालनी है उनको अनेक तरह की आशाये दिखाकर अपने पक्ष मे मिला ले। किन्तु सहसा ही उनकी वे आशाये पूरी न कर दे। समय पर सब आशाये पूर्ण हो सकेगी यही प्रकाशित करता रहे। समय आने पर भी उनमें अनेक विघ्न डाल दे और उन विघ्नो के आने के कारण भी उनको बता दे, जिससे वे विश्वस्त रहें, किन्तु भेद्यवर्ग की आकाक्षाये सपूर्ण रूप मे पूरी न कर दे। विजिगीषु राजा कभी भी शत्रु से निर्भय होकर न रहे एव भय उपस्थित होने पर निडर होकर उसका प्रतिविधान करे। अना-

ग्रास ही कोई किसी कल्याण का भागी नही हो जाता। कल्याण प्राप्त करने मे अनेक विपत्तियो का सामना अवश्य करना पडता है। उन विपत्तियो का सामना करने पर यदि कोई जीवित रहता है तो वह कल्याण प्राप्त करता है। जो राजा शत्रु के साथ सधि करके विश्वस्त भाव से सुख की नीद सोता है, वह वृक्ष के ऊपर सोये हुए व्यक्ति के समान वृक्ष से नीचे गिर कर जागता है और फिर मृत्यु का ग्रास हो जाता है, वैसे ही वह राजा भी मृत्यु के पास पहुँच कर ही जागता है। विजिगीषु राजा किमी भी विपत्ति के आने पर अवसाद ग्रस्त न हो। मृदु या दारुण किसी भी उचित प्रकार से विपत्ति को पार कर स्वस्थ होने पर धर्माचरण करे। शत्रु पक्ष के जो शत्रु हो उनसे राजा मित्रता बढावे एवं अपने मण्डल में शत्रु के भेजे हुए गुप्तचरो का पूरा सवाद जानता रहे। गुप्तरूप से अपने चरो को राजा अपने मण्डल तथा शत्रुमण्डल मे भेजता रहे। कापटिक, उदास्थित, गृहपति व्यजन, वैदेहक व्यजन, और तापस व्यजन इन पॉच प्रकार के गुप्तचरो के शत्रु राज्य मे घमने का पूर्ण प्रबन्ध करे।

१ कापटिक—दूसरो के मर्म को जानने वाले, प्रगल्भ, वृत्ति चाहने वाले छात्र को जो कपट व्यवहार जानने के लिए नियुक्त किया जाता है, कापटिक कहते हैं। इस कापटिक छात्र को राजा अपने पक्ष मे मिला कर उससे कहे कि तुम जिसका जो दुराचार देखो वह उसी समय हमको बतलाते रहो।

२ उदास्थित—भ्रष्ट सन्यामी को उदास्थित कहते है। सन्यास से भ्रष्ट होकर जो व्यक्ति बुद्धिमान्, कार्य करने मे समर्थ, लोक व्यवहार का वेत्ता हो एव अपने लिये वृत्ति चाहता हो, तो उस भ्रष्ट सन्यासी को उक्त गुण सम्पन्न जान कर राजा अपने पक्ष मे मिला ले। पहले की तरह दूसरो के दुराचारो को बतलाने के लिए शिक्षा देकर बहुत धन सम्पन्न मठ मे उसके रहने का प्रबन्ध कर दे एव अधिक अन्न पैदा होने वाली भूमि मे पैदा होने वाले अन्न से वह भ्रष्ट सन्यासी अन्यान्य संन्यासियो के भोजन और वस्त्र की व्यवस्था कर सके इतनी भूमि उसे दे दे। यह संन्यामी शत्रुराज्य मे सन्यामी के वेश मे घूम कर शत्रुराज्य के पूरे समाचार विजिगीषु को देता रहेगा।

३ गृहपति व्यजन—जो किसान क्षीणवृत्ति, बुद्धिमान् एव लौकिक व्यवहार मे निपुण हो, ऐसे किसान को जीविका चाहने वाला होने पर राजा अपने पक्ष मे मिला कर पहले की तरह सब बाते बता दे और अपने ही राज्य मे उससे खेती का काम कराने लगे। किसानो मे जिस व्यक्ति की राज्य के प्रति दुर्नीतियाँ वह देखे उसको राजा के सामने प्रकट कर दे।

४ वैदेहक व्यजन—जिसका व्यापार ठीक न चलता हो या जिसके व्यापार में अत्यधिक घाटा हो गया हो ऐसे व्यवसायी को यदि वह राज्य से वृत्ति चाहता हो तो अपने पक्ष में मिला कर राजा उसको पूर्व व्यक्तियों की तरह सब

बाते बतला दे एव व्यापार के बहाने से उसको अपने तथा शत्रुमण्डल मे घूमने दे।

५ तापस व्यजन—भ्रष्ट ब्रह्मचारी या तापसी, जो बुद्धिमत्ता आदि गुणो से सम्पन्न हो और यदि वे राज्य से वृत्ति चाहते हो तो उनको राजा अपने पक्ष मे मिला कर पहले व्यक्तियो की तरह सब बाते समझा दे एव सुसमृद्ध गाँव के पास अथवा नगर के समीप ही कपट शिष्यो से युक्त करके रक्खे। वे कपटी शिष्य इस तापस व्यजन (झूठा सिद्ध) की महिमा सब लोगो मे फैलावे। वह दिन में कुछ न खाय रात्रि मे छिप कर खूब भोजन करले तथा महीने दो महीने बाद प्रकट रूप मे सब के सामने एक मुट्ठी भर जौ या चावल मात्र खायें। उसके वे कपटी शिष्य—गुरुजी को भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीनो काल का पूर्ण ज्ञान है, ऐसा लोगो मे प्रचार करे। इससे उसके पास बहुत से आदमी आने लगेगे। उस समय वह कपटी साधु उन लोगो से अनायास ही गुप्त और प्रकट सभी समाचार जान सकेगा।

इन पाँच तरह के गुप्तचरो का विवरण कौटिल्य अर्थशास्त्र के प्रथमाधिकरण के सातवे प्रकरण मे विस्तृत रूप से बतलाया गया है। इस प्रकरण का नाम "गूढ पुरुषोत्पत्ति" है। राज्य का कण्टक वर्ग—चोर डाकू आदि प्राय जिन स्थानो मे रहते हो उन सब स्थानो की रक्षा का प्रबन्ध राजा विशेष रूप से करे और उन स्थानो मे जो चोर डाकू पकडे जाय उनके उचित दण्ड की व्यवस्था करे। जैसे उद्यान, विहार (बौद्ध भिक्षुओ के निवास स्थान), पथिको को जल पिलाने के स्थान, धर्मशालाये, शराबखाने, तीर्थभूमि, सभा, इन सब जगहो मे स्वभावत बहुत से लोग इकटठे होते है एव लोककण्टक (चोर और गठकटे आदि) भी वहाँ बहुत से घूमते रहते है। अत राजा को इन सब स्थानो की सुरक्षा का पूरा प्रबन्ध करना चाहिये। राजा अविश्वासी व्यक्ति का तो विश्वास सर्वथा ही न करे, विश्वसनीय व्यक्ति का भी विश्वास अधिक मात्रा मे न करे। राजा जहाँ जहाँ अधिक विश्वास करेगा वही से उसको आपत्ति आवेगी। इसलिये राजा अधिक छान बीन न करके कही भी पूर्ण विश्वास न करे। अनेक उपायो से अपने प्रति शत्रु राजा का विश्वास प्राप्त करके शत्रु की असावधानी पर पूरा ध्यान रखते हुए मौका पाकर शत्रु पर चोट करदे। अशकनीय मित्रादिकों से भी राजा को सशकित रहना चाहिये। मित्र राजा भी छिद्र पाकर अनिष्ट कर सकता है। इसलिये मित्रादिको से भी शंकित रहना चाहिये और शंकनीय शत्रु से तो अधिक मात्रा मे शकित रहना ही चाहिये। शत्रु जब कभी भी और जिस किसी प्रकार का भी अनिष्ट कर सकता है। राजा मित्र से भी अशकित न हो। असंकित स्थान से भय होने पर उसका प्रतिकार असंभव है और उससे राजा का समूलोच्छेद हो सकता है। विजिगीषु राजा अनेक तरह के धार्मिक ढोंग बना

वीभत्स कार्य	४८	१० से ५०० डालर या ६ महीना	१० से १००० डालर या ३० दिन से १० वर्ष[1]
अय्याशी का व्यवहार	२२	डालर[2] २५	१० वर्ष[3]

संयुक्तराज्य के वासना सम्बन्धी दंड-विधान का निचोड़ ऊपर दे दिया गया। वहाँ की परिस्थिति पर प्रकाश डालते हुए श्री टप्पन लिखते हैं[4]—

"संयुक्त राज्य के अपराधी-समूह में कामवासना के उग्र तथा भयावह अपराधी एक प्रकार से बहुत कम हैं। ऐसे अधिकांश अपराधी विनम्र, आज्ञाकारी इत्यादि हैं। वे समाज के लिए परेशानी का कारण हो सकते हैं, ख़तरा नहीं हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से वे किसी एक प्रकार के लोगों में से नहीं हैं बल्कि बहुत ही भिन्न श्रेणियों में से हैं। वासना के अपराधियों में बहुत कम ऐसे हैं जो दुबारा वही अपराध करते हैं। वे चोर डाकुओं की तरह से उसी अपराध को बारबार नहीं दुहराते। यदि ठिकाने से चिकित्सा की जाय तो सज़ा की मियाद के भीतर ही ऐसे अपराधियों का सुधार हो सकता है। पर जिन अपराधियों को हम सुधार के परे समझते हैं, उनको अनिश्चित काल तक के लिए रोक रखना उचित नहीं है। क्योंकि अन्य जघन्य अपराधियों को भी बिना सुधारे छोड़ दिया जाता है.... मेरे पास जो कुछ प्रमाण हैं उनसे मैं यही कह सकता हूँ कि इस दिशा में वासना के अपराधी की आन्तरिक भावना तथा प्रवृत्ति की थाह लगाने में तथा वासना के अपराधों में रोकथाम करने में हम सफल नहीं हुए हैं....इस विषय में असली खोज होनी चाहिए, न कि नये-नये क़ानून बनाते जायँ तथा लम्बी-लम्बी सजाएँ देते रहें।"

श्री टप्पन एक स्थान पर लिखते हैं कि "यह स्पष्ट है कि छोटे-मोटे वासना के अपराधों के लिए कुछ जुर्माना कर देना या कुछ दिनों की क़ैद से कोई फ़ायदा नहीं होता। पर इसके साथ ही सवाल उठता है कि क्या लम्बी क़ैद या अनिश्चित काल के लिए क़ैद से भी कोई लाभ हुआ है? अभी तक का अनुभव यह सिद्ध करता है कि अप्राकृतिक संभोग, अश्लील व्यवहार तथा प्रदर्शन, ताक-झांक, लपक-झपक और अन्य साधारण वासना के अपराधों की रोकथाम का कोई उपाय नहीं है।"[5]

१. ओकलाहोमा २. एक अमेरिकन डालर लगभग पाँच रुपए के बराबर हुआ ३. नेवादा ४. Sexual Offences**—पृष्ठ ५१३—५१४ (सारांश) ५. वही, पृष्ठ ५१२**

कुछ रस भी नही मिलता। इसलिये गोश्रृग चर्वण की तरह शुष्क वैर कभी नही करना चाहिये। धर्म, अर्थ, काम इस त्रिवर्ग को समान रूप मे ही सेवित करना चाहिये। इनमे से किसी का भी अधिक सेवन करने पर दूसरो पर आघात होगा। धर्म अति मात्रा मे सेवित हुआ तो अर्थ के लिए घातक होगा, अर्थ-साधन मात्र मे ही लगे रहने पर धर्म पीडित होगा, एव अति मात्र काम लोलुप होने पर धर्म और अर्थ दोनो ही नष्ट हो जायेगे। इसलिये उक्त त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) का इस तरह सेवन करना चाहिये जो एक दूसरे का बाधक न बन सके। ऋण, व्याधि, अग्नि और शत्रु इनको कथचित् शान्त कर देने पर भी ये नि शेष न होने से फिर बढ सकते है। इसलिये इनको निरवशेष रूप मे ही नाश करना उचित है। इनका शेष न रहने दिया जाय। ऋण चुका देने पर भी यदि कुछ शेष रह जाता है तो वह समय पाकर बढने पर ऋणकर्ता के लिए भय का कारण बन जाता है। इसी तरह पराभृत शत्रु भी उपेक्षित होने पर समय पाकर अधिक सम्पत्तिशाली होने से भय का कारण हो उठता है। इसी तरह व्याधि भी सामान्य चिकित्सा से शान्त सा होकर पथ्यादि की उपेक्षा से फिर बढ सकती है और भय का कारण होती है। इसी तरह अग्नि भी सावशेष शान्त होने पर वायु आदि की सहायता से परिवर्द्धित हो भयानक हो उठती है। इससे इन चारो को ही निरवशेष नष्ट कर देना चाहिये। विजिगीषु को कभी भी इनसे असावधानी नही रखनी चाहिये।

शरीर मे लगे हुए काँटे का आधा भाग निकाल देने पर भी उसमे तकलीफ बनी ही रहती है। एव वह आधा भाग ही अनेक तरह के विकार का कारण बन जाता है। इसी तरह आधे किये हुए काम से भी कुछ फल नही होता। शत्रु विनाश मे असमर्थ होने पर शत्रु का अपचय (ह्रास) अथवा पीडन या कर्षण करना चाहिये। उच्छेद, अपचय, पीडन और कर्षण इन चार तरह के कार्यो का शत्रु के प्रति प्रयोग करने के लिए विजिगीषु को सर्वदा तैयार रहना चाहिये। शत्रु को राज्य से च्युत कर देने को उच्छेद कहते है। शत्रुराज्य का कुछ अश नष्ट कर देना अपचय कहलाता है। शत्रु के किसी प्रधान पुरुष (मन्त्री, सेनापति आदि) को मार डालना पीडन कहा जाता है। शत्रु के कोष दण्ड आदि का विनाश कर देना कर्षण कहलाता है। विजिगीषु राजा शत्रुराज्य के इन चारो कार्यो को करने के लिए सदा उद्युक्त रहे।

विजिगीषु राजा को गीध की तरह दूरदर्शी होना चाहिये। बगुले की तरह स्थिर भाव से ध्यानशील होना चाहिये। कुत्ते की तरह सदा जागरूक स्वभाव होना आवश्यक है। एव कुत्ते की ही तरह शत्रु की खोज मे निरत रहना चाहिये। सिंह की तरह विक्रमशील और अनुद्विग्न होना चाहिये। कौआ जैसे दूसरो की चेष्टाओ को समझ लेता है, राजा को भी उसी तरह दूसरो की चेष्टाओ

को समझ लेना चाहिये। साँप की तरह अचानक दूसरो के दुर्ग आदिमे राजा को प्रवेशशील भी होना चाहिये। विजिगीषु राजा प्रबल शत्रु के सामने नम्र हो जाय, भीरु शत्रु मे भेद डाल कर वश मे करने की चेष्टा करे, लोभी शत्रु को कुछ देकर निरस्त करे और समशक्ति के साथ युद्ध करे। विजिगीषु राजा को अपने मण्डल के मुख्य व्यक्तियो पर पूरी निगाह रखनी चाहिये, जिससे शत्रु के गुप्तचर उनमे भेद न डाल सके। राजा के मित्रो को शत्रु पक्षीय राजा न अपना ले इस पर भी उसको पूरी निगाह रखनी चाहिये। विजिगीषु के मन्त्री आदि प्रधान व्यक्ति शत्रु के चारगणो से प्रभावित होकर अपने राजा से विरुद्ध न होने पावे और न आपस मे ही वे एक दूसरे के प्रतिकल हो सके, इन सब बातो पर राजा को पूरी निगाह रखनी चाहिये। राजा केवल मृदु स्वभाव का होने पर भी सबके उद्वेग का कारण बन सकता है। इसलिये राजा को प्रयोजनानुसार कभी मृदु, कभी तीक्ष्ण होना चाहिये।

अमात्य वर्ग यदि राजा के विरुद्ध सघवद्ध हो सका तो राजा को शीघ्र नष्ट कर सकता है। बुद्धिमान् राजाको शत्रु के साथ विरोध करके 'हम शत्रु से बहुत दूर है, यहाँ हमारा वह कुछ नही कर सकता'—यह समझ कर कभी भी आश्वस्त होकर नही बैठ जाना चाहिये। क्योकि बुद्धिमान् की भुजाये लम्बी होती है। इसलिये बुद्धि प्रभाव मे ही वह सुदूरस्थ शत्रु का भी विनाश कर सकता है। उस विषय के पार जाने की चेष्टा राजा न करे जिसके वह पार न जा सकता हो। शत्रु का वह धन कभी भी राजा अपहरण न करे जिसको शत्रु जबर्दस्ती उससे छीन सके। ऐसे शत्रु को उखाड फेकने की राजा चेष्टा न करे जिसके जडसे उखाड़ फेकने की सभावना न हो। ऐसे शत्रु को मारने की चेष्टा न करे जिसका शिरश्छेद करना उसके लिए सम्भव नही।

भगवान् भारद्वाज राजा शत्रुजय से कहते है कि हे महाराज! हमने अनेक क्रूर और नृशस कार्यों का तुमको उपदेश दिया। इसका अभिप्राय यही है कि आपत्ति-काल मे इन सब उपायो से काम लिया जा सके और अच्छी दशा मे भी यदि कोई शत्रु राजा प्रतिकूलता के लिए इन सब कूटनीतियो का प्रयोग करे तो उनको राजा अनयास ही जान सके और उनका प्रतिकार कर सके। अच्छी दशा मे दूसरे की प्रयुक्त कूटनीति का प्रतिविधान करने के लिए एव आपत्ति के समय स्वय इनका प्रयोग करने के लिए ही हमने ये सब उपदेश कहे है। किन्तु अपनी स्वस्थ दशा मे स्वय इन कूटनीतियो का प्रयोग कभी भी नही करना चाहिये। सरल और कूट इन दोनों ही तरह की नीति का जान लेना आवश्यक है। कूटनीति का परिज्ञान बिना हुए शत्रु द्वारा प्रयुक्त कूटनीति का प्रतिविधान संभव नही हो सकता।

भगवान् भारद्वाज की नीति के अनुसार कार्य करके सौवीर राज शत्रुजय सुवि-शाल राज्य के अधिपति हुए थे।

आ[illegible]न्त्र (शुक्रनीति)

हमने इस प्रबन्ध के प्रारम्भ मे ही भारतीय दण्डनीतिशास्त्र के प्रणेता आचार्यगणो की परम्परा दिखा दी है। उसमे पितामह (ब्रह्माजी), विशालाक्ष (शङ्कर), वृहस्पति आदि आचार्यगणो ने जो भिन्न-भिन्न दण्डनीतिशास्त्रोका प्रणयन किया है, वह बतला दिया गया है। दण्डनीतिशास्त्र के प्रणेता आचार्यगणो मे वृहस्पति और उशना (शुक्राचार्य) अधिक प्रसिद्ध है। रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थो मे जहाँ तहाँ दण्डनीतिशास्त्र की आलोचना के प्रसङ्ग मे वृहस्पति और उशना का ही नाम उल्लेख विशेष रूप से किया गया है। जैसे शान्तिपर्व के ३७वे अध्याय मे कहा है कि भीष्म ने सब आचार्यगणो के पास जाकर अनेक विद्याएँ ग्रहण की। उनमे से वृहस्पति और उशना से राजनीति शास्त्र का अध्ययन किया। "वृहस्पति पुरोगाँस्तु देवर्षीनसकृन् प्रभु। तोषयित्वोपचारेण राजनीतिमधीतवान्।। उशना वेद यच्छास्त्र यच्च देवगुर्रुद्विज। तच्च सर्वं सवैयाख्य प्राप्तवान् कुरुसत्तम।।" इसका मतलब यही है कि, भीष्म ने अनेक प्रकार के उपचारों से सन्तुष्ट करके वृहस्पति आदि देवर्षिगणो से राजनीतिशास्त्र का अध्ययन किया। उशना जिस नीतिशास्त्र को जानते है तथा देवगुरु वृहस्पति जिस नीतिशास्त्र को जानते है व्याख्या के सहित वे सब नीतिशास्त्र भीष्म ने उनसे अध्ययन किये।

रामायण उत्तर काण्ड के ६३वे अध्याय मे वर्णन मिलता है कि कुश और लव जिस समय महर्षि वाल्मीकि के पास रामायण पढते थे, उस समय की उनकी उपमा मे कहा है कि अश्विनी कुमारद्वय जैसे शुक्राचार्य के पास अत्यन्त आदर के साथ नीतिशास्त्र पढता था, इसी तरह कुश और लव वाल्मीकि के पास रामायण पढते थे (१६ श्लो०)। इसी तरह महाभारत वनपर्व के ३२वे अध्याय मे कहा है कि द्रौपदी महाराज युधिष्ठिर से कहती है कि मेरे पिता महाराज द्रुपद ने मेरे भाइयो को राजनीति पढाने के लिए अति विचक्षण एक ब्राह्मण को नियुक्त किया था। वह ब्राह्मण मेरे भाइयो को वृहस्पति प्रोक्त राजनीतिशास्त्र पढाता था (६०।६१ श्लोक)। इसी तरह जहाँ तहाँ राजनीतिशास्त्र की आलोचना के प्रसङ्ग मे वृहस्पति और उशना का नाम ही विशेष रूप से उल्लिखित हुआ है। उशना प्रणीत नीतिशास्त्र का बहुत जगहों मे उल्लेख देखे जाने पर भी यह ग्रन्थ आज कही भी नही मिल रहा है। शुक्रनीतिसार नाम के जो ग्रन्थ वर्तमान समय मे उपलब्ध है, वे साक्षात् शुक्राचार्य प्रणीत न होने पर भी उनमे जो नीति-शास्त्र की उपादेय बाते पायी जाती है, वे सब बाते उक्त ग्रन्थ से ही ली गयी है, इसमे कोई भी सन्देह नही। इस ग्रथ मे तोप और बन्दूको का वर्णन है और उनके चलाने आदि की व्यवस्था भी बतलायी गई है, तथा बारूद का व्यवहार और उसके बनाने की रीति भी वर्णित हुई है। शुक्रनीतिसार ग्रन्थ के चौथे

व्यक्तियों को बलात्कार आदि जघन्य अपराधों के लिए सज़ा मिली जिनमें से २४५ यानी ६६ प्रतिशत की सज़ा स्थगित की गयी। दोनों ही देशों में अपराधी की इच्छा पर उसके अंडकोष काटे जा सकते हैं या इन्द्रिय ही काट दी जा सकती है। पर इसके लिए स्वास्थ्य बोर्ड के अध्यक्ष से अनुमति लेनी पड़ेगी। दोनों ही देशों में वासना के अपराधी के सम्बन्ध में अदालत के सामने दो मनोवैज्ञानिकों की रिपोर्ट होनी चाहिए। दोनों ही देश पागलपन में किये गये अपराध को क्षम्य मानते हैं।

स्वीडन में पुरुष-पुरुष संभोग या परस्पर योनिप्रसंग कोई अपराध नहीं है। १८ वर्ष से कम उम्र के या १८ से २१ वर्ष की उम्र के भीतर के लोगों के साथ उनकी अनुभवहीनता का लाभ उठाकर किया गया व्यभिचार होने पर दंडनीय होता है। यह सन् १९५३ के नये नियम, धारा १० और १० ए भाग १८ के अनुसार है। सन् १९४७ से १९५१ के बीच में २१९ व्यक्तियों को इस अपराध में दंड मिला पर किसी की सज़ा एक वर्ष से अधिक नहीं थी। नार्वे में धारा २१३ के अनुसार केवल पुरुष-पुरुष सम्बन्ध ही दंडनीय है। स्त्री-स्त्री सहवास अपराध नहीं है। पर पुरुष-पुरुष संभोग पर भी तभी मुक़दमा चलाना चाहिए जब सार्वजनिक हित में नितान्त आवश्यक हो। सज़ा भी केवल एक वर्ष तक है। इसी धारा के अन्तर्गत पशु-संभोग भी दंडनीय है। सन् १९५३ के नियमानुसार २१ वर्ष के नीचे के लोगों की विशेष रक्षा का प्रबंध किया गया है।

माता-पिता, भाई-बहिन आदि के साथ संभोग के संबन्ध में १ से ८ वर्ष तक कारा-गार का नियम नार्वे में है। १६ वर्ष के बच्चे या लड़की पर अभियोग नहीं लगता। भाई-बहिन के संभोग में दो वर्ष की सजा है। सन् १९४७ से १९५० के बीच में ऐसे अपराध में १२ पुरुषों को तथा ४ स्त्रियों को धारा २०७ के अनुसार दंड मिला। स्वीडन में प्रत्यक्ष सम्बन्धियों तथा भाई-बहिन के संभोग में भाग १८ धारा १-३ के अन्तर्गत दस वर्ष की सज़ा मिल सकती है। स्वीडन में अपने आश्रितों के साथ संभोग पर विशेष कठोर दंड मिलता है। सन् १९४९ में ऐसे २१ अपराध (माता-पिता, भाई-बहिन प्रसंग) हुए। तब से अब तक प्रायः २०-३० के बीच में ऐसे अपराध प्रति वर्ष होते हैं। स्वीडन में वेश्यावृत्ति के लिए अपनी कन्या का या किसी दूसरे की कन्या का उपयोग करने पर ४ वर्ष तक की सज़ा मिलती है।

नार्वे में १६ वर्ष से नीचे के बालक-बालिकाओं के साथ अश्लील कार्य करने पर ६ महीने से ३ वर्ष की सज़ा तथा दुबारा अपराध करने पर २ से ५ वर्ष का दंड है। १४ वर्ष की कन्या से प्रसंग करने पर कम-से-कम ३ वर्ष और अधिक-से-अधिक १५ वर्ष की क़ैद है। सन् १९४७-५० के बीच में २५७ व्यक्तियों को इस प्रकार के अपराध

तो वह मधुलाभ के लोभ से दौडता हुआ सूखे पत्ते आदि से ढँके हुए किसी गड्ढे मे गिर कर मर जायगा। जिनके साथ बहुत दु ख देने वाला चिरकाल से वैर चला आता है उनका कभी भी विश्वास नही करना चाहिए। यह वैर कभी शान्त नही हो सकता, इसकी वजह यह है कि शत्रुओ मे से कोई व्यक्ति कभी शान्ति स्थापन का प्रयास कर भी ले तो उसके और वशज लोग उसके उस पूर्व वैर को प्रज्वलित कर देंगे। पूर्व वैर को बतलाने वाले व्यक्तियों की शत्रुकुल में कभी कमी नही रहा करती। शत्रुवश मे ऐसे लोग होते ही रहेंगे जो पहले वैर को बतला कर शत्रुता को प्रदीप्त कर देंगे।

मनुसहिता के सप्तमाध्याय के १५४ वे श्लोक मे राजा के आठ तरह के कर्म बतलाये गये है। इस अष्टविध कर्म को दिखाने के लिए भाष्यकार मेधातिथि ने औशनस तन्त्र से दो श्लोक उद्धृत किये है। उक्त दोनों श्लोको का अर्थ यही है कि अष्ट-विध कार्यो के प्रति राजा को पूरा ध्यान देना अत्यावश्यक है। १—प्रजावर्ग से कर आदि लेना, २—नौकरो को उचित समय पर वेतन आदि देना, ३—अनेक कार्यों के लिए अमात्य आदि को आदेश देना, ४—प्रत्यक्ष मे ही जो कार्य बुरा फल देने वाले हो, और जो परकाल मे परलोक मे भय देने वाले हो उन कार्यों से अमात्यादिको को तथा प्रजागणो को रोकना, ५—सदिग्ध कार्यों मे कर्त्तव्य का निश्चय करना, ६—व्यवहार की व्यवस्था करना, ७—स्थापित किये हुए व्यवहार के अनुसार अर्थ आदि दण्ड की व्यवस्था करना, ८—बुरे कामो मे निरत जनों के ठीक हो मकने की व्यवस्था करना। जो राजा इन आठ प्रकार के कार्यों के सम्पादन मे नित्य निरत रहता है, शत्रुगण भी उसकी पूजा करते है एवं मरने के बाद वह स्वर्ग प्राप्त करता है। मेधातिथि ने इन आठ कार्यों की और तरह से व्याख्या की है। शुक्रनीतिसार के प्रथमाध्याय मे भी (१२४।१२५ श्लोक मे) राजा के आठ प्रकार के कार्यों का उल्लेख किया गया हैं, किन्तु ये आठ कर्म औशनसतन्त्र से जो मेधातिथि ने बतलाये है, वे नही है।

शुक्रनीतिसार में कहा गया है कि राजा के ये आठ कर्त्तव्य कर्म होते है, जैसे—१—दुष्टों का निग्रह, २—सत्पात्र मे धन दान करना, ३—प्रजा परिपालन, ४—राजसूय आदि यज्ञ करना, ५—राजकोष को बढाना, ६—शत्रु राजाओ को दमन करके उनसे कर आदि लेने की व्यवस्था करना, ७—कर्षण और पीडन आदि कर्मों के द्वारा शत्रुराष्ट्र का परिमर्दन, ८—साम्राज्य का परिवर्द्धन। मनुसहिता मे राजा के अष्टविध कर्म ही कहे है, किन्तु वहाँ यह नहीं बताया है कि ये आठ कर्म कौन कौन होते है। मालूम होता है कि राजनीतिशास्त्र में ये आठ कर्म अति प्रसिद्ध होने के कारण इन आठ कामों का पृथक् निर्देश नही किया गया है। भाष्यकार मेधातिथि ने औशनसनीति से इन आठ कर्मों का नाम निर्देश कर दिया है।

अध्याय ११

वासना और अपराध का सम्बन्ध

पृथ्वी मे भिन्न-भिन्न देशो मे, जातियो तथा सभ्यताओ मे वासना का अपना-अपना प है। जो चलन है तथा समाज का उसके प्रतिकूल या अनुकूल अनुशासन है, उसके म्बध मे मेरे विचार से ऊपर के पृष्ठो मे अध्ययन की प्रचुर सामग्री दे दी गयी है। ार कल के समाज तथा आज के समाज के पतन की परिभाषा भी पर्याप्त मात्रा में र्तमान है। अब सोचना यह है कि क्या काम-वासना के अपराध स्वत अपने मे ही माप्त हो जाते है अथवा विश्व के अन्य अपराधो मे या अपराधी जगत् मे भी उनका ाई भाग होता है। सिगमड फ्रायड ऐसे प्रकाण्ड मनोवैज्ञानिक ने समूचे अपराध ा जनक कामभाव या कामवासना को माना है।[1] इस विषय पर हम आगे चलकर ख्खेंगे। पर सब बातो की बात मेरी दृष्टि मे सन् १८६९ मे क्वेटलेट ने अपने ग्रन्थ कह दी थी।[2] मेरे विचार से उनका वाक्य अमर है—"समाज अपराध को तैयार रता है। अपराधी उसे कार्यरूप मे परिणत करता है।" प्रश्न यह है कि जहर तैयार रनेवाला दोषी है या खानेवाला या दोनो। किन्तु पुराने अपराधशास्त्री इटालियन ाजारी लोम्ब्रोज़ो का एक दूसरा ही मत है और उनका मत वासना तथा अन्य सभी पराधो के लिए लागू होता है। लोम्ब्रोज़ो[3] आधुनिक अपराध शास्त्र के जन्मदाता कहे

१. Sigmund Freud—"The Contributions to the Sexual heory"—New York—Journal of Mental & Nervous Diseases—age 91

२. क्वेटलेट (जन्म १७९६—मृत्यु १८७७) "Social Physics" By uetlet—प्रकाशित १८६९

३. लोम्ब्रोजो का जन्म १८३६ मे एक यहूदी परिवार मे हुआ था। १८६६ में होंने मनोविश्लेषण में विशिष्ट शिक्षा समाप्त की। ये चिकित्सक (डाक्टर) भी । १९०९ में इनकी मृत्यु हुई।

जाते है, यद्यपि स्वयं उनके ग्रथ[1] से पता चलता है कि उनके पहले भी बडे-बडे अपराध-शास्त्री हो गये थे। ५९०७ अपराधियो के चेहरे, मुख, आँख, नाक, कान आदि की परीक्षा कर तथा ३८३ मुर्दा खोपडियो की परीक्षा कर लोम्ब्रोजो इस नतीजे पर पहुँचे कि विशिष्ट प्रकार की नाक, आँख, कान या बनावट वाले व्यक्ति ही विशेष प्रकार के अपराध करते है। अपने निष्कर्ष की पुष्टि मे उन्होने लिखा :—

"मैं जिन नतीजो पर पहुँचा हूँ वे इतिहासकाल के पहले से ही चले आ रहे है। होमर ने थरसाइटीज का जिक्र किया है। सोलोमन ने लिखा है कि हृदय जैसा होगा वैसा बुरे आदमी का चेहरा बदल जायगा। और सर्वोपरि अरस्तू, एविकन्ना और जे० बी० डल्ला पोर्टा ने अपराधियो के चेहरे तथा शरीर की रचना पर विचार प्रकट किये है तथा पिछले दो तो हमारे निष्कर्षो से भी आगे बढ गये है। और अब क्या कहे जब पोलोमन यहाँ तक कहते है कि अपराधी का मस्तक अमूमन पतला और कम चौडा होगा तथा उसका बायाँ हाथ ज्यादा चलता होगा।"

तब क्या यह माना जाय कि वासना के अपराधियो का नाक-नक्शा भी खास किस्म का होता होगा और उस प्रकार के नाक-नक्शे वालो पर नियंत्रण कर देने से, रोकथाम कर देने से, वासना के अपराध रुक जायँगे? हम रोज नयी बात सीखते है, सिद्धान्त बनाते है, मिटाते है। सन् १८०१ के पहले पागलपन तथा अन्य अपराध मे कोई अन्तर नही था। दोनो को एक ही स्थान पर रखा जाता था। पागल को अलग कर उसे अपराधी न मानने का उपदेश पिनेल ने अपने ग्रन्थ[2] द्वारा १८०१ मे दिया और तब से पागल को अन्य अपराधी वर्ग से पृथक् किया गया। शायद बहुत दिनो तक हम लोम्ब्रोजो के नाक-नक्शे वाले सिद्धान्त के धोखे मे रहते कि अपराधी चार प्रकार के होते है—

१ जन्मजात अपराधी	२ वासना-अपराधी
३ पागल अपराधी तथा	४. समय-समय पर अपराध करनेवाले

लोम्ब्रोजो कामुक अपराधी के विषय मे लिखते है—

१. Criminal Sociology Appleton & Co. 1915 **लेखक—एनरिको फेरी—इस ग्रन्थ से लोम्ब्रोजो के विचार स्पष्ट रूप से समझ में आ सकते है।**

२. Pinel—Medical & Philosophical Treatise on Mental Alienation–1801

"प्रभाव डालनेवाले क्षेत्र की विकृतियाँ, घृणा, बिना सकल्प के ही उत्पन्न होनेवाली द्वेष या तिरस्कार की भावना, आत्म-नियत्रण का एक दम अभाव या उसकी कमी, पैतृक प्रवृत्तियाँ—ये सब मिलकर अनैतिक रोगी की अबाधित भावनाओ को उत्पन्न करती है। यही बात जन्मजात अपराधी के लिए भी है।"[१]

आज का अपराध विज्ञान इनमे से किसी बात को नही मानता। कुछ वर्षो तक यह माना जाता था कि पैतृक कारणो से वासना के अपराध होते है, पर अब यह सिद्धान्त भी खडित हो गया है। लोम्ब्रोजो के जीवन काल मे ही उनके सिद्धान्तो की धज्जियाँ उडानेवाला पैदा हो गया था। उसका नाम था एनरिको फेरी।[२] सन् १८७६ मे उसका प्रसिद्ध ग्रन्थ प्रकाशित हुआ।[३] फेरी का कहना था कि नाक-नक्शा या रूप रंग से अपराध का कोई सबध नही है। अपराधी जो कुछ करता है वह अपनी व्यक्तिगत स्वतत्र इच्छा से। वे लिखते है—

"कोई भी अपराध, चाहे कोई भी करे तथा किसी भी परिस्थिति मे करे, उसका और कोई कारण नही पर केवल यही कहा जा सकता है कि वह व्यक्तिगत स्वतत्र इच्छा से किया गया है, या फिर प्राकृतिक यानी स्वाभाविक कारणो का स्वाभाविक परिणाम है। चूँकि इस कथन का कोई वैज्ञानिक महत्त्व नही है अतएव किसी अपराध के कारण का वैज्ञानिक स्पष्टीकरण भी नही हो सकता। यह तभी सम्भव है जब यह विचार किया जाय कि विशिष्ट शारीरिक तथा सामाजिक वातावरण मे विशिष्ट ऐन्द्रियिक और मनोवैज्ञानिक गठन पर अमुक कारण बनता है।"[४]

अपराध या अपराधी

पर इन लोगो के सिद्धान्तो को मिलाकर गैरोफालो और भी आगे बढ गये। वे

१. **लोम्ब्रोजो का एक व्याख्यान जरूर पढ़ना चाहिए**—Speech at the sixth Congress of Criminal Anthropology at Turin in April, 1906. **इसके तीन वर्ष बाद ही वे मर गये।**

२. Enrico Ferri **इतालियन—जन्म १८५६**

३. **इनका ग्रन्थ** "The Theory of Imputability and Denial of Free Will"—Pub 1876—**फेरी बोलोन विश्वविद्यालय में अपराधविधान के अध्यापक थे।**

४. Ferri—Criminal Sociology—**पृष्ठ ७४–७५, सन् १९१५ का प्रकाशन।**

ऊपर लिखे दोनो अपराधशास्त्रियो के समकालीन[१] थे। नेपुल्स (इटली) के विश्व-विद्यालय मे कानून के प्रोफेसर थे और मजिस्ट्रेट के पद पर भी काम कर चुके थे। राज्य की कौसिल के सदस्य भी थे। सन् १८५२ मे इनका जन्म हुआ था। इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ "अपराध शास्त्र" सन् १८८५ मे प्रकाशित हुआ था। लोम्ब्रोजो और फेरी से इनका काफी मतभेद था पर लोम्ब्रोजो ने जिस बहुत बडी बात को शुरू किया था तथा फेरी ने जिस सिद्धान्त की "पुष्टि" की थी, उसे गैरोफालो ने भी स्वीकार किया था। अपराधशास्त्रियो मे लोम्ब्रोजो पहले व्यक्ति समझे जाते थे जिन्होने इस सिद्धान्त को चालू किया कि "अपराध" को मत देखो, "अपराध" स्वत कोई वस्तु नही है, "अपराधी" का अध्ययन करो। इसलिए १९वी सदी से "पाप" नही "पापी" को, अपराध नही अपराधी को महत्त्व देना शुरू किया गया। गैरोफालो जीवविज्ञान (लोम्ब्रोजो) तथा समाजविज्ञान (फेरी) के द्वारा अपराधी की चिकित्सा नही करना चाहते थे। उनका उपचार मनोवैज्ञानिक था। वे चार प्रकार के अपराधी मानते थे—हत्यारे, उग्र अपराधी, सम्पत्ति के विरुद्ध अपराधी तथा कामुक वासना या ऐयाशी के अपराधी। इन चारो प्रकार के अपराधियो को वे मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सुधार के परे तथा समाज के लिए घोर शत्रु समझते थे। स्वाभाविक अपराधी के प्रति दया करना वे अनुचित समझते थे। इस अपराधी-वर्ग को एकदम मिटाने के लिए उनके अनुसार प्राणदड, आजन्म कारागार या देश-निकाला, यही तीन प्रकार की सजा होनी चाहिए। वे लिखते है कि "ऐसे अपराधी सामाजिक जीवन के अधिकारी नही है।"

धीरे-धीरे चलकर इस विचारधारा मे और परिवर्तन होने लगे। यह विचार स्थिर हो गया है कि अपराध को नही, अपराधी को देखकर दड देना चाहिए। फिर, दंड ही क्यो दिया जाय। समाज की रक्षा के लिए सुधार की भी आवश्यकता है और अपराधी को दड न देकर उसका सुधार करना तथा अपराध की रोकथाम का उपाय करना अधिक श्रेयस्कर है। इस सिद्धान्त के अपनाने के पहले एक बीच का सिद्धान्त भी कुछ दिनो तब चालू था, जिसे "दुहरा प्रवेश" कहते है। इस मध्यम मार्ग के स्कूल के अनुसार फान हामेल ऐसे शास्त्री एक तरफ तो कुछ प्रकार के अपराधियो को कठोर दड देने के पक्ष मे थे तथा कुछ के सुधार के पक्ष मे।[२] इसी विचारधारा के लोगो ने,

१. Refaele Garofalo लेखक "Criminology"—सन् १८८५।

२. International Union of Criminal Law. (आगे देखो)

जर्मनी के लिज्त, बेलजियम के प्रिंज तथा हालैन्ड के फान हैमेल ने पेरिस में "अपराधी दडविधान का अतर्राष्ट्रीय सघ" सन् १८८९ मे स्थापित किया। इस सघ की रचना ने अपराध-शास्त्र के जगत् मे एक नयी जाग्रति तथा एक नयी हलचल पैदा कर दी। इस सघ ने कुछ ऐसे सिद्धान्त निर्धारित किये जिनका बडा महत्त्व है। सघ के अनुसार —

१. सघ का निश्चय है कि अपराध तथा दड के साधनो का सामाजिक तथा न्याय की दृष्टि से पुन समीक्षण किया जाय।

२ अपराध-विधान का उद्देश्य समाज मे प्रचलित अपराधी प्रवृत्ति को दूर करना है।

३ दड का बहुत अच्छा असर पडता है, पर दड को अन्य सामाजिक उपायो से पृथक् न कर दिया जाय। सुधार के उपायो की उपेक्षा भी न की जाय।

४ कभी-कभी अपराध करनेवाले तथा आदतन अपराध करनेवालो मे अन्तर है और इसी हिसाब से कानून बनना चाहिए।

पश्चिम के लिए आधुनिक अपराधशास्त्र के जन्मदाता बक्कारिया ने जो कुछ लिखा था, वह बात तो काफी दूर पीछे रह गयी। १९वी सदी का अन्त होते-होते अपराध के स्थान पर अपराधी व्यक्ति बहुत सामने आ गया और फ्रेन्च पडित तार्दे[1] ने नैतिक ज़िम्मेदारी "व्यक्तिगत विशिष्टता तथा सामाजिक समनुकूलता" पर रख दी। वे लिखते है कि "यह विशिष्टता ही मानव के साथ स्थायी रूप से लगी हुई है मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मनुष्य अपनी चेतना तथा अन्तश्चेतना का समुच्चय मात्र है . . . .यह "मैं" है जो कि सामाजिक तथा राजकीय बधनो से बँधा हुआ है। यह "मैं" है जो दूसरे के लिए अनुकरण या अनुकरण के अयोग्य होता है इसलिए व्यक्ति को नैतिक ज़िम्मेदारी महसूस कराने के लिए उस व्यक्ति को तथा उसके कार्य से पीडित व्यक्ति दोनो को ही महसूस कराया जाय कि दोनो एक देश के, एक समाज के तथा एक ही सामाजिक नियमो के अन्तर्गत रहनेवाले है।"

दण्डनीय कौन है ?

समाज तथा उसके प्रचलित नियम के साथ अपराधी का सम्बन्ध स्थापित करने का उद्देश्य यही था कि रोज लोग नये-नये नियमो की या अपराधो की कल्पना न किया करे। वरना, जिन्दगी दूभर हो जायगी। इसलिए इटालियन दडविधान

१. Tarde–Penal Philosophy—पृष्ठ ११५

मे सबसे पहले तथा फ्रेन्च राज्यक्रान्ति मे "मानव के अधिकार की घोषणा" मे, या पोलैण्ड के दडविधान मे १९३२ मे, या फ्रास के नये दडविधान मे १९३४ मे, या जर्मनी के दडविधान मे सन् १९३७ मे यह स्पष्ट लिख दिया गया है कि "कोई भी व्यक्ति तब तक किसी कार्य के लिए दडनीय न होगा जब तक कि उस कार्य के करने के पहले उसके सम्बन्ध मे कोई कानून न बना हो।" जर्मनी मे नाजी शासन-काल मे भी इतनी गुन्जायश रखी गयी थी कि व्यक्ति की स्वतन्त्रता पर राज्य के हस्तक्षेप का अनुचित प्रभाव न पडे। सन् १९३५ मे अन्तर्राष्ट्रीय दड-विधान सम्मेलन के अवसर पर भाषण करते हुए (बर्लिन मे) नाजी शासन के न्याय-मत्री डा० गुतनर ने कहा था कि "न्यायाधीशो का काम कानून बनाना नही है। उनका कार्य है व्यवस्थापक सभा द्वारा बनाये गये कानूनो के अनुसार काम करना। यदि किसी व्यक्ति ने कोई ऐसा अपराध किया है जिसके लिए दड का, कानून का, विशेष सकेत नही मिलता, तो खीचतान कर, किसी कानून के अतर्गत उस व्यक्ति की सजा करने से कही बेहतर है उस अपराधी को छोड देना।"

किन्तु डा० गुतनर ने जितने ऊँचे सिद्धान्त की बात कही है, उतना ऊँचा सिद्धान्त व्यवहार मे नही आता था। डा० गुतनर ने स्वय अपने उपरिलिखित भाषण के सिल-सिले मे आगे चलकर कहा था —

"न्याय का तकाजा है कि प्रत्येक अपराध का समुचित प्रायश्चित्त हो न्यायाधीश को यह हिदायत होनी चाहिए कि जान बूझकर किये गये अपराध मे दुर्भाव कितना था, और दुर्भाव की कमी-बेशी के हिसाब से दड दिया जाय तथा लापरवाही से किये गये अपराध मे किस सीमा तक लापरवाही तथा अज्ञान था, उस हिसाब से जिम्मेदारी ठहरायी जाय।"[१]

हर अपराध दडनीय है,-यह नाजी सिद्धान्त नया नही है। इस सिद्धान्त को मानने-वाले काफी लोग है। कार्ल रोदक ने, जिनका जन्म सन् १८०६ मे तथा मृत्यु १८७९ मे हुई थी, दड की महत्ता पर बहुत कुछ लिखा है। वे तो यहाँ तक कह बैठे है—[२]

"अपराधी को उसके कार्यों के लिए जो दड मिलता है, वह उसे अभिशाप

१. Proceedings of the XI International Penal and Penitentiary Congress—Page 10-15

२. Bernaldo de Quiros—Modern Theories of Criminality—Pub. Little Brown & Co., 1912—Page 126

या वरदान समझता है, यह तो उसकी बुद्धि की स्थिति पर निर्भर करता है। उसके मन की जैसी नैतिक स्थिति होगी, उससे वह अनुमान लगा सकेगा कि उसका वास्तविक हित क्या है . अपराधी के लिए दड को बुरा समझना वैसा ही है जैसे कोई मरीज अज्ञानवश दवा को बुरा समझे या बच्चा स्कूल जाने के लिए बाध्य किये जाने पर रोना शुरू करे।"

सन् १८६३ मे ब्रिटेन के प्रधान विचारपति काकबर्न ने "रॉयल कमीशन" के सामने कहा था—

"इनका (दड का) उद्देश्य दुहरा है। पहला यह कि वैसे ही लालच मे पडकर वैसा अपराध करने से डरे या हिचके तथा दूसरे, अपराधी का स्वत सुधार हो। समाज की रक्षा के लिए प्रथम वस्तु अधिक महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि समाज का बहुत बडा स्वार्थ इसमें भी है कि अपराधी सुधरे पर ऐसा सुधार केवल एक व्यक्ति का होगा जब कि दड के भय से समूचे समाज पर असर पडेगा......"

पर, दूसरे को दड देने से क्या हमारा यानी समाज का कल्याण होता है? क्या यह सम्भव है? प्लेटो ने कहा था कि "जिसने हमारा नुकसान किया उसे नुकसान पहुँचाना कभी न्यायोचित नही होगा। प्रसिद्ध समाजशास्त्री सिजविक लिखते है—

"पुराने ढग की सजाएँ दड सम्बधी लोकप्रिय भावनाओ मे अब भी वर्तमान है। यह अब भी समझा जाता है कि न्याय का तकाजा है कि जिसने भूल की है उसे पीडा पहुँचायी जाय। मैं इस भावना का घोर विरोधी हूँ। मै समझता हूँ कि यह भावना साधारण समझदारी से भी दूर है। धीरे-धीरे प्रगतिशील समुदायो मे शिक्षित समाज इसके विरुद्ध होता जा रहा है।"[१]

इस प्रकार परस्पर-विरोधी भावनाओ के सामञ्जस्य की कोई सूरत न पैदा होती यदि सन् १९२६ मे, दण्डविधान के प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन मे ३५० प्रमुख न्याय-पडित एकत्र न होते। ब्रसेल्स काग्रेस के एक प्रस्ताव ने हलचल तो बहुत मचा दी पर यह भी सत्य है कि उस प्रस्ताव ने अपराधी के लिए नया मार्ग खोल दिया। प्रस्ताव के अनुसार "समाज की रक्षा तथा दड, दोनो ही न्यायाधीश के दायरे की चीजे है। न्याया-धीश को प्रत्येक मामले मे घटनाओ को ठीक से समझकर, अपराधी के व्यक्तित्व का अध्ययन कर यह निश्चय करना चाहिए कि वह दड का पात्र है या सुधार का।" सन्

१. Sidgwick—Methods of Ethics—Pub. Macmillan & Co., London, Fifth Edition, 1893—Page 281

१९२५ मे लन्दन मे ९वे अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन मे लार्ड हाल्डेन ने ब्रसेल्स के प्रस्ताव की पृष्ठ-भूमि पर ही अपना प्रसिद्ध व्याख्यान दिया था। उन्होने कहा था कि "दड की प्रतिशोधात्मक विशेषता हो सकती है, और सुधारात्मक विशेषता भी हो सकती है। इन दोनो रूपो से भिन्न भी एक रूप हो सकता है। अपराधी के लिए दड निजी प्रायश्चित्त का भी रूप ग्रहण कर सकता है . . .अपनी स्वतत्रता मे रुकावट पडने की पीडा या अपने जीवन की हानि के भी दु ख को स्वीकार कर वह समाज के उन उसूलो को स्वीकार कर रहा है जिनके आधार पर दड के नियम बने है और कानून के फल को स्वीकार कर वह अपराधी अपने साथियो की इच्छा तथा सकल्प को स्वीकार कर रहा है . इस उसूल को मान लेने से भला बनने तथा भला करने का एक नया रास्ता खुल जाता है और जेलो मे इस उसूल की ओर कैदी का ध्यान दिलाकर उसका बडा कल्याण किया जा सकता है नैतिकता धर्म से भिन्न है और बिना धर्म का सहारा लिये भी उसकी सत्ता है।"

लार्ड हाल्डेन ने भी दड का महत्त्व हानि के विचार से ही माना है, अपराध के विचार से नही। पर आज से पचास वर्ष पूर्व, ब्रिटिश पार्लमेण्ट मे तत्कालीन गृहमत्री विस्टन चर्चिल ने एक ऐसा महत्त्वपूर्ण व्याख्यान दिया था जो आज भी अपनी विशेषता रखता है। उन्होने कहा था—"अपराध तथा अपराधी के प्रति जनता की कैसी भावना है तथा दृष्टि है, उसीसे उस देश की सभ्यता का वास्तविक अनुमान लग सकता है। अपराधी तथा दडित व्यक्ति के अधिकारो को समझदारी तथा निर्मम भाव से स्वीकार करना, दड देने का काम जिनके जिम्मे है उनका बराबर अपने हृदय को टटोलते रहना, जिन्होने दड का अभिशाप प्राप्त कर लिया है, उनको उद्योग की दुनिया मे फिर से बसा देना, अपराधी मनोवृत्ति मे सुधार तथा नयी भावना की जाग्रति के उपायो को अनवरत रूप से ढूँढते रहना, इस विषय मे अटल विश्वास कि यदि आप चाहे तो हर एक हृदय मे जो खजाना छिपा है उसे ढूँढकर निकाल सकते है—अपराध तथा अपराधी के प्रति व्यवहार मे ये वे प्रतीक या चिह्न है जिनसे राष्ट्र की अन्त शक्ति का अनुमान लगता है तथा राष्ट्र के भीतर वर्तमान सजीव गुणो का लक्षण तथा प्रमाण है।"

चर्चिल के उपरिलिखित महान् वाक्य आज भी अपराधशास्त्र के विद्यार्थियो के लिए अति मूल्यवान् है और वास्तव मे समाज के भीतर जो छिपा हुआ गुण है, वही इस बात का सबूत देता है कि हम सामाजिक नियमो की अवज्ञा करनेवाले का किस रूप मे उपचार करना चाहते है। हमने पुस्तक के आरम्भ मे ही हिन्दू धर्मशास्त्रो का उद्धरण देकर दड की नीति बतलायी है। प्रत्येक धर्मशास्त्री ने अपराध पर विचार न कर व्यक्ति को, व्यक्तिविशेष को दोषी माना है तथा दड की कल्पना न कर

प्रायश्चित्त की कल्पना की है। अतएव पश्चिम में भी पूर्व का यह मंत्र पहुँच गया है कि क़ानून का उद्देश्य व्यक्ति का सुधार करना है। व्यक्ति सदैव मुख्य वस्तु है, अपराध गौण है।

नीयत क्या है

इसी लिए ब्रिटिश क़ानून की सबसे बड़ी शक्ति है "नीयत का सबूत"। यदि अपराध हो गया और अपराधी की अपराध करने की नीयत नहीं थी तो वह निर्दोष है। इसी लिए सायर[१] ने आज के २७ वर्ष पूर्व लिखा था कि—"जब क़ानून घोर अपराधों के लिए ऐसे लोगों को दंड देने लगता है जो निर्दोष हैं तथा नैतिक दृष्टि से बेगुनाह हैं, वे व्यक्ति समाज के प्रतिष्ठित तथा सम्भ्रान्त सदस्य भी हो सकते हैं, तो उस क़ानून की अपराध को रोकने की शक्ति समाप्त हो जाती हैं।" इसी लिए निर्दोष की रक्षा के लिए किसी भी अपराध को प्रमाणित करने के लिए यह साबित करना होगा कि अपराधी ने वह काम "दुर्भाव से, स्वेच्छया, जान-बूझकर, धूर्ततापूर्वक किया, कराया, करने दिया या होने दिया।"[२]

ब्रिटेन के भूतपूर्व प्रधान मंत्री श्री रैमज़े मैकडोनल्ड जब मज़दूर दल के नेता थे, उनके पास किसी व्यक्ति ने एक पुलिस इंस्पेक्टर की हत्या करने की धमकी का पत्र भेजा। उस आदमी पर मुक़दमा चला। उसके मामले में सज़ा देते हुए जज डार्लिग ने अपने फ़ैसले में कहा था —"आदमी बहुत से ऐसे दुर्भावपूर्ण कार्य करता रहता है जो अनुचित होते हैं और अत्यप्रक्ष रूप से बुरी नीयत से किये जाते हैं. . . .मेरे विचार से दुर्भाव शब्द का अर्थ ऐसा कार्य करना है जिसे करने का उस व्यक्ति को जायज़ अधिकार न हो और न किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए ऐसे उपाय अपनाये जो कि अनुचित हों।"[३]

जस्टिस डार्लिग की यह व्याख्या ध्यान में रखनी चाहिए। आगे चलकर यह

१. Sayre—Public Welfare Offences (1933), 33 Edition—L. R. 55

२. Maliciously, Wilfully, Knowingly, Permitting, Suffering, Causing, Allowing, Fraudulently.

३. J. Edwards—"Mens Rea in Statutory Offence"—Macmillan & Co., London 1955—पृष्ठ ७

बडा काम देगी। जो काम बुरा है, उसे करना तबतक दडनीय नही है जब तक हम उसे बुरा समझते हुए न करे। पागल अगर सडक पर नगा चला जाता है तो उसे "अश्लील प्रहार" का दोषी नही ठहराते। ब्रिटेन मे सन् १४८६ मे औरत भगाने के विरुद्ध कानून पास हुआ था। पर इस कानून के अनुसार अपराध तभी था जब "जान-बूझकर किसी स्त्री को उसकी इच्छा के विरुद्ध प्राप्त किया जाय।"

बहुत से अपराध ऐसे होते है जो अपराध होने के कारण ही अपराध नही रह जाते। ब्रिटेन मे विवाह के सम्बन्ध मे ऐसी ही बात है। तीन प्रकार के विवाह "नाजायज" या "नाजायज होने योग्य" हैं, अतएव उनको करनेवाला दडनीय भी नही रह जाता। जैसे (१) यदि वर या वधू १६ वर्ष से कम उम्र की हुई तो वह विवाह हुआ ही नही समझा जायगा, (२) यदि वर-वधू मे से कोई भी पूर्व विवाहित है तो वह विवाह हुआ ही नही समझा जायगा, (३) यदि अपने ही कुल मे, निकट रिश्तेदार से विवाह हो गया तो वह विवाह नाजायज होने योग्य हैं और उसे विवाह मानना ही नही चाहिए।[1] इससे एक नयी बात पैदा होती है। वह यह कि नाजायज़ काम को नाजायज कह देने से ही समाज की रक्षा का काम चल गया। अब और ज्यादा मामला बढाने से क्या लाभ ? इसी प्रकार "धूर्ततापूर्ण" कार्य मे भी धूर्तता की इच्छा का होना जरूरी है। यदि जल्दी मे गलती से कोई रेलवे स्टेशन पर दूसरे का बक्स उठा ले तो वह चोरी नही हुई।[2]

१. वही, पृष्ठ ७१–७२

२. वही, पृष्ठ १८३––लार्ड गोर्डाड कहते हैं––जो दूसर की सम्पत्ति को यह जानते हुए कि दूसरे की है, गलती से नहीं जान बूझकर उठाता है...वह अपराधी है।

अध्याय १२

असाधारण कामुकता

अपराध की उपरिलिखित पृष्ठ भूमि देने के उपरान्त हम इस बात की समीक्षा करना चाहते है,कि क्या वासना अपराध है? क्या कामुकता से और अन्य प्रकार के अपराधो से कोई सम्बन्ध है? सर्व-गुण-सम्पन्न न तो कोई समाज बना है और न कोई व्यक्ति। धूप और छॉह दोनो साथ-साथ चलते है। लेडी अलेन[१] ने सत्य लिखा है कि "छाया तथा गोधूलि वेला भी शिशु के लिए उतने ही आवश्यक है जितना सूर्य का प्रकाश तथा ताजी हवा।" यही दशा समाज की भी है। उसे धूप-छॉह मे सॅभलकर ले चलने के लिए ही शासनविधान तथा कानून बनते है। पर इनकी रचना करने-वालो के विचार चाहे कितने ही उदार क्यो न हो, जिन कागजो पर ये कानून लिखे रहते है, "वे निर्जीव होते है, स्वय उनको कार्यरूप मे नही परिणत किया जा सकता। इसके लिए एक मानवी एजेन्सी की जरूरत है।"[२] यह मानवी एजेन्सी अदालत समझी जाती है। पर अदालत मे जो बैठता है, वह भी हमारा भाई है। अतएव इस एजेन्सी यानी वास्तव मे मनुष्य को मनुष्य को पहचानना होगा। मनुष्य जैसा सोचता है, वैसा ही कानून बनता है। जे० हूवर[३] ने इसी लिए लिखा है कि "कोई भी समुदाय जैसा चाहता है या आग्रह करता है उससे बेहतर कानून का पालन नही करा सकता।"

कामुकता पेट से या परिवार से ही नही आती, सग-साथ का भी बडा प्रभाव पडता है। जेल मे जवान-बूढे, हर प्रकार के कैदी एक साथ रख दिये जाते है और

१ Lady Allen of Hurtwood

२. John R Dethmers, Chief justice, Supreme Court of Michigan (U. S A)—In U. S. News & World Report, Dec , 12, 1958, Page—88

३ J Edgar Hoover, Director, Federal Bureau of Investigations, U. S A

वहाँ रहकर वे नये-नये सबक सीख लेते है। एक जेलयात्री ने लिखा है—"तीन महीने जेल मे रहकर मैने जो शिक्षा प्राप्त की है उससे मेरे पेशे मे बडी तरक्की हुई है। सरकार ने तो मुझे ऐसी जगह रख दिया कि मै व्यवसाय सीखूँ और जब सीख लिया तो उस पर अमल करना ही चाहिए।"[१] दर्जनो मर्त्तबा हमारे पास ऐसे उदाहरण आये है जब कि जेलजीवन से ही वास्तविक पतन प्रारम्भ हुआ है। दो नौजवान जो कभी के परिचित नही थे, जेल मे जाकर एक-दूसरे से परिचय प्राप्त कर लेते है और फिर जेल के बाहर निकल कर अपनी बुरी आदत चालू रखते है। मनुष्य का स्वभाव प्रेमी है। एक दूसरे से प्रेम करना चाहता है। जेल मे ही ऐसा प्रेम पैदा हो जाता है और फिर वही भ्रष्ट रूप धारण कर लेता है। जेलो मे कैदियो के बीच मे कामवासना खूब चलती है। परस्पर सभोग बहुत अधिक होता है। यह कोई भारत की ही बात नही है बल्कि ससार भर के जेलो का यह बडा भारी अवगुण है। सयुक्तराज्य अमेरिका के नेब्रास्का राज्य के जेलो का अध्ययन कर श्री वाइडेन ने लिखा है[२] कि उन्होने जिन युवक कैदियो से बात की उससे स्पष्ट हो गया कि ६० प्रतिशत कैदियो मे कामुक अवगुण वर्तमान थे तथा जेलो मे ६० फीसदी व्यक्ति परस्पर सभोग करते थे। इस विषय मे एक मार्के की बात हीली ने लिखी है। उनके कथनानुसार बालिग लडकियो मे परस्पर सभोग लडको की अपेक्षा जल्दी शुरू हो जाता है। यानी, जेलो मे लडकियाँ लडको की अपेक्षा कुटेव जल्दी सीखती है। हीली लिखते है कि बहुत-सी लडकियो ने हमसे कहा कि सभोग के बारे मे जितना वह जिन्दगी भर नही सीख पायी थी, उतना वह जेल मे रहकर २४ घण्टे मे सीख गयी।[३]

वासना की ऐसी असाधारण शिक्षा मे मानव कैसे सावधान रह सकता है। कैसे सँभल सकता है। वासना स्वत अपनी ही सीमा तक अपराधो को सीमित नही रखती, उससे अनेक अनर्थ उत्पन्न होते है। मानव के स्वभाव की रचना मे मन तथा शरीर दोनो का हाथ है। कौन कह सकता है कि जो मनुष्य समाज-विरोधी कामुक प्रवृत्तियो को प्रकट करता है उसके शरीर के भीतर कुछ ऐसे रस की उत्पत्ति हो रही है जिससे वह ऐसा कर रहा है या उसके मन की कल्पनाशक्ति इतनी बढी हुई है कि

१ Healy—"Individual Delinquency" पृष्ठ ३१४

२. L. E. Widen—"Young Criminals in Nebraska State Penitentiary"—The Survey, Nov., 18, 1957, पृष्ठ १२२१–१२२४

३. Healy—पृष्ठ ३१३

वह बिना वासना के रह नही सकता, या फिर वह ऐसे वातावरण मे रहता है या ऐसे शरीरजन्य अनुभव प्राप्त कर चुका है कि उसकी वासना रोके नही रुकती या सँभाले नही सँभलती। कही किसी के मामले मे यह कहा जा सकता है कि परिवार या पिता माता का बुरा प्रभाव पडा है, तो उससे अधिक ऐसे मामले सामने आते हैं जिनमे साधु तथा सज्जन परिवार मे भी ऐसे भयकर रोगी मिलते हैं। यह भी स्पष्ट है कि कामुक वासना के कारण ही बहुत से अपराध पैदा होते है। जर्मनी मे एक व्यक्ति केवल कामुक उत्तेजना प्राप्त करने के लिए खून करता था। ऐसे अनेक मामले मिलेगे जिनमे केवल कामुकता के कारण पुरुष या स्त्री मे दूसरे को पीडा देने की भावना पैदा होती है और वह मार पीट करते हैं। अतृप्त कामवासना के कारण लाखो व्यक्ति चिड-चिडे स्वभाव के या क्रोधी हो जाते हैं। नपुसकता की ग्लानि के कारण कितने ही व्यक्ति डकैती करने लगते हैं। कामवासना से अनेक ही नही, अनगिनत अनर्थ पैदा होते है—बलात्कार, निकट सम्बन्धी के साथ सभोग, सह-योनि प्रसग, इत्यादि। ये सब परेशान दिमाग या दिमागी उलझन या दूषित वातावरण के कारण अच्छे खासे सीधे-सादे व्यक्ति मे भी उत्पन्न हो सकते है। असाधारण कामुकता का बहुत बडा कारण बचपन का अनुभव होता है। अच्छे स्वस्थ लडके तथा लडकियॉ जल्दी शिक्षा पाने लगती है। कभी-कभी घर पर माता-पिता का प्रसग वे देख लेते हैं, माता-पिता तो सोचते है कि वे सो रहे हैं। हीली ने १५ वर्ष की एक लडकी की कथा लिखी है कि वह इतनी कामोन्मत्त थी कि कोई अवसर नही चूकती थी। उसे इस बात का घमड था कि उसने अत्यधिक पुरुषो का प्रसग प्राप्त किया है। १५ वर्ष की उम्र मे ही वह गर्भवती हो गयी थी। उसका इतिहास जानने पर पता चला कि बचपन मे ही उसके साथ बलात्कार किया गया था, जिससे उसे नसीहत मिल गयी थी।

पर हीली यह भी लिखते है कि यह असाधारण कामुकता भिन्न दशाओ मे भी पायी जाती है। अमेरिका मे गोरी लडकियॉ नीग्रो (काले) लडको पर बहुत आसक्त हो जाती है—यह क्या बात है। केवल असाधारण कामुकता का ही परिणाम है। छोटी उम्र मे बहुत से बच्चे चोर तथा गिरहकट हो जाते है—यह भी उनमे व्याप्त असाधारण कामुकता है।[1] कामुकता सबमे है और उसकी सतुष्टि के लिए समाज ने नियम बना रखे है पर जो व्यक्ति—चाहे पुरुष हो या स्त्री, आत्मसयम करना नही जानता, वही विशेष परिस्थितियो मे पडकर, सामाजिक दायरे के बाहर निकलकर

१. हीली—पृष्ठ ४०३

आत्म-सन्तुष्टि करता है। समाज में ऐसे रोगी भी होते हैं जिनको "हर युवती के पीछे भागने" का रोग होता है या ऐसी स्त्रियाँ भी होती हैं। पर डाक्टरी जाँच से पता चला है कि ऐसे लोगों का मन का विकार उतना दोषी नहीं है जितना कि उनके शरीर की बनावट, जिसमें ऐसी ग्लैंड होती हैं जिनसे कामुकता का विचित्र रस द्रवित होता रहता है, जो उनको उग्र कामोन्मत्त बनाने पर मजबूर करता है। ऐसे लोगों की दवा जेल में नहीं, अस्पताल में होती है। ऐसे रोगियों से समाज की रक्षा करनी होगी, यह सही बात है। ऐसी रक्षा के लिए ऐसे रोगियों को अलग ही रखना होगा, क्योंकि वे स्वस्थ पुरुषों को यानी सदाचारी स्त्री-पुरुषों को भ्रष्ट करते रहते हैं।

कुछ का मन इतना कमज़ोर होता है कि काम की उत्पत्ति होते ही वे काबू के बाहर हो जाते हैं। वे अपने को सँभाल नहीं सकते। जब उत्तेजना को शान्त करने के लिए और कोई साधन नहीं मिलता तो वासना के बजाय वे अन्य प्रकार के अपराध करने लगते हैं। पागल तथा उन्मत्त व्यक्ति भी इसी वासना के रोगी हो सकते हैं। कामोन्माद का रोगी प्रायः दूसरों की उपासना या आराधना की चीज़ें, जैसे मूर्त्तियाँ चुराया करता है। उसकी वासना को इसी में संतुष्टि मिलती है।[१] ऐसे कामुक चोर प्रायः औरतों के रूमाल या उनके जूते चुराया करते हैं। अत्यधिक काम-भावनावाली स्त्रियाँ जिनको पुरुषों के आघात में आनन्द आता है, वासना के ही कारण पुरुषों की "दासी" बन जाती हैं। बहुत-सी स्त्रियों को पुरुषों के हाथों पिटने पर अधिक सन्तुष्टि प्राप्त होती है, पर ऐसी स्त्रियाँ बड़ी ख़तरनाक भी होती हैं। वे वासना की सन्तुष्टि में कमी पाकर पुरुषों के प्राण भी ले सकती हैं। बहुत से पुरुषों में कामोत्तेजना तभी होती है जब वे अपनी पत्नियों या रखेलियों से पिटते हैं। ऐसे ही व्यक्ति दूसरों को पीटने, कोड़ा, मारने, दूसरे के साथ उद्दंडता करने में सुख का अनुभव करते हैं। उन्हें तो सज़ा मिलती है मारपीट की और उनका अपराध कुछ और ही होता है। बहुत से ऐसे अपराधी होते हैं जिनकी कामवासना इसी से सन्तुष्ट हो जाती है कि स्त्री के शरीर का जो भाग उन्हें सब से सुन्दर प्रतीत हो, उसे काट लें। औरतों की नाक या कान काट लेने का भी प्रायः यही कारण होता है।

कुछ मर्दों में आदत होती है कि गुप्त रूप से स्त्रियों की ताक-झाँक किया करें। कैसे कपड़ा पहनती हैं, कैसे शौचालय में बैठती हैं, इत्यादि। कुछ स्त्रियों में भी यह

१. Havelock Ellis—"The Criminal"—3rd Edition, London Scott & Co., 1907—पृष्ठ ४१९

आदत होती है। इन दोनो प्रकार के लोगो को इस प्रकार की ताक-झाँक से ही वासना की सन्तुष्टि प्राप्त होती है। कुछ लोगो मे कम उम्र की लडकियो को भ्रष्ट करने का बडा मर्ज होता है। वे उनके साथ बलात्कार भी नही करते पर अन्य प्रकार से उनका कामुक उपयोग करते रहते है। हीली एक ऐसे व्यक्ति का जिक्र करते है[1] जो छोटी उम्र की लडकियो को बिगाडने के अपराध मे पाँच बार जेल हो आया था। छूटने के कुछ ही महीने के भीतर उसने कई बच्चो को ख़राब किया। अब यह मान लिया गया है कि छोटे बच्चो को ख़राब करनेवाले ज्यादातर लोगो को सजा नही मिल पाती। वे अदालत तक जा भी नही पाते और उनके कार्य का भयानक परिणाम लाखो निर्बोध, सीधे, भोले बच्चो का जीवन नष्ट कर देता है। कुछ पुरुषो की आदत होती है कि स्त्रियो के सामने सीना तानकर चलना, अपना बल-वीर्य दिखलाना, पर पुरुषों से ज्यादा स्त्रियो मे यह अवगुण होता है। प्राय प्रत्येक स्त्री चाहती है कि दूसरो की निगाहो मे अच्छी लगे और अपने स्तन को ऊँचा उठाकर, आधा खुला छोडकर या बारीक चादर से ढँक कर, कामुक आकर्षण करते हुए चलना भी एक प्रकार का वैसा कामुक अपराध है जो आजकल पढी लिखी लडकियाँ ज्यादा करती है।

हस्तक्रिया की आदत से बहुत से अपराध होते है। हस्तक्रिया मे एक ख़ास बात है, उसके करने से जितनी शारीरिक हानि नही होती उससे अधिक हानि हस्तक्रिया के बाद उत्पन्न हुई ग्लानि तथा उसे करने या न करने की चिन्ता से होती है। यह अवगुण लडके तथा लडकियो मे काफी पाया जाता है। हस्तक्रिया करनेवाला या वाली का मन बराबर इस बोझ से दवा रहता है कि "यह काम बुरा है"। फिर, उसे एकान्त की बडी तलाश रहती है। इससे इस कुटेव के रोगी के मन का नैतिक बल एकदम समाप्त हो जाता है। रोगी निरुद्यमी तथा आलसी हो जाता है। अपना आलस्य दूर करने के लिए सिगरेट-बीडी पीना शुरू करता है। अत्यधिक चाय या कहवा पीनेवाले भी हस्तक्रिया या अन्य कामुक उत्तेजना के मरीज हो सकते है। हीली एक १६ वर्ष की लडकी का जिक्र करते है जो हस्तक्रिया करती थी और उसकी प्रतिक्रिया मे छोटी-मोटी चोरियाँ करती थीं। उस कन्या की माता ने बडे परिश्रम से उसकी आदत छुडा दी। उसका सब ऐब भी जाता रहा। इस सम्बन्ध मे एक चीज ध्यान मे रखनी चाहिए। बचपन मे कामोत्तेजना की सीख प्राय लडके को लडके से ही तथा लडकी को लडकी से ही मिलती है। एक दूसरी योनिवाले से नही मिलती।

१. Healy—पृष्ठ ४०६

अध्याय १३

वासना के अपराधों की व्यापकता

विचार बदलते रहते हैं

ब्रिटिश जेलो के भूतपूर्व कमिश्नर सर विलियम नारउड ईस्ट ने[1] बिल्कुल सत्य लिखा है कि आधुनिक समाज के प्रवाह मे कामुक अपराधी पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है। हम उनके विचारो को नीचे सक्षेप मे देने का प्रयास करेगे। वास्तव मे यह बात समझने की है कि समाज किस प्रकार अपने ही नये नियमो के जाल मे फँसकर नये अपराध करा रहा है। उदाहरण के लिए पश्चिमीय देशो मे एक पत्नी रहते दूसरा विवाह नही किया जा सकता। सन् १८५८ मे, आज के १०१ वर्ष पूर्व जब तलाक का कानून बनने लगा था, इंग्लैण्ड मे कुछ लोगो ने सलाह दी कि पर-पत्नी सम्भोग को दडनीय बना दिया जाय। पर घोर विरोध के कारण वैसा न हो सका और आज तलाक के कानून की बदौलत हर साल लाखो व्यक्ति नयी पत्नी या नया पति प्राप्त करते है या बदलते है। बहु-विवाह से अधिक निन्दनीय तथा घृणित स्थिति हो गयी है।

नारउड लिखते है कि समय के अनुसार विचार भी बदलते जाते है। हजरत मूसा के विधान के अनुसार विवाहित पति-पत्नी को व्यधिचार करने पर, दोनो को प्राणदंड मिलता था। प्राचीन रोमन नियम के अनुसार व्यभिचारिणी पत्नी दडित होती थी, पति नही। पिता अपनी व्यभिचारिणी पुत्री को जान से मार सकता था पर पति नही। एक दूसरे प्राचीन देश के नियम के अनुसार व्यभिचारिणी स्त्री की नाक, कान काट लेते थे। १७ वी सदी मे ईसाई पादरी व्यभिचारिणी पत्नी को घोर दड देते थे। पर आज स्विट्जरलैंड मे सन् १९३७ के कानून के अनुसार केवल एक वर्ष

१ Sir William Norwood East, M. D , in "Sexual Crime"—The Journal of Criminal Science, Vol. I, Macmillan & Co., Pub. 1948—Page—45

अध्याय १३

वासना के अपराधों की व्यापकता

विचार बदलते रहते हैं

ब्रिटिश जेलों के भूतपूर्व कमिश्नर सर विलियम नारउड ईस्ट ने[१] बिल्कुल सत्य लिखा है कि आधुनिक समाज के प्रवाह में कामुक अपराधी पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है। हम उनके विचारों को नीचे संक्षेप में देने का प्रयास करेंगे। वास्तव में यह बात समझने की है कि समाज किस प्रकार अपने ही नये नियमों के जाल में फँसकर नये अपराध करा रहा है। उदाहरण के लिए पश्चिमीय देशों में एक पत्नी रहते दूसरा विवाह नहीं किया जा सकता। सन् १८५८ में, आज के १०१ वर्ष पूर्व जब तलाक़ का क़ानून बनने लगा था, इंग्लैण्ड में कुछ लोगों ने सलाह दी कि पर-पत्नी सम्भोग को दंडनीय बना दिया जाय। पर घोर विरोध के कारण वैसा न हो सका और आज तलाक़ के क़ानून की बदौलत हर साल लाखों व्यक्ति नयी पत्नी या नया पति प्राप्त करते हैं या बदलते हैं। बहु-विवाह से अधिक निन्दनीय तथा घृणित स्थिति हो गयी है।

नारउड लिखते हैं कि समय के अनुसार विचार भी बदलते जाते हैं। हज़रत मूसा के विधान के अनुसार विवाहित पति-पत्नी को व्यधिचार करने पर, दोनों को प्राणदंड मिलता था। प्राचीन रोमन नियम के अनुसार व्यभिचारिणी पत्नी दंडित होती थी, पति नहीं। पिता अपनी व्यभिचारिणी पुत्री को जान से मार सकता था पर पति नहीं। एक दूसरे प्राचीन देश के नियम के अनुसार व्यभिचारिणी स्त्री की नाक, कान काट लेते थे। १७ वीं सदी में ईसाई पादरी व्यभिचारिणी पत्नी को घोर दंड देते थे। पर आज स्विट्ज़रलैंड में सन् १९३७ के क़ानून के अनुसार केवल एक वर्ष

१. Sir William Norwood East, M. D., in "Sexual Crime"—The Journal of Criminal Science, Vol. I, Macmillan & Co., Pub. 1948—Page—45

१४ वर्ष से कम उम्र के थे, १५ प्रतिशत १७ से २० वर्ष की उम्र के, ९ प्रतिशत २१ से २५ वर्ष की उम्र के बीच के, १२ प्रतिशत २५ से ३० वर्ष की उम्र के, ५६ प्रतिशत ३० की उम्र के नीचे तथा ४४ प्रतिगत ३० से ऊपर की उम्र के थे—पुरुष तथा स्त्रियाँ दोनो। सन् १९३८ मे कामी अपराध के लिए २३२१ को दड मिला था। अपील करने पर जितने लोगो की सजा बहाल रही, वह इस प्रकार है—

अपराध	दडित पुरुष	दडित स्त्री
अप्राकृतिक व्यभिचार	५८	०
अप्राकृतिक व्यभिचार की चेष्टा	७६	१
पुरुपो के साथ अश्लीलता	१४१	०
बलात्कार	४०	०
स्त्रियो पर अश्लील प्रहार	११५	०
१३ वर्ष से कम उम्र की लडकियो से भ्रष्टाचार करना	३१	०
१३ से १६ वर्ष की उम्र की लडकियो से भ्रष्टाचार करना	१७९	०
निकट सम्बन्धी से प्रसग	४०	४
व्यभिचार के लिए प्राप्त करना	१५	२
व्यभिचार के लिए भगा लाना	४	१
एक से अधिक पुरुष या स्त्री सम्बध	१९५	८१
	८९४	८८

इसी वर्ष मे १५४ पुरुष तथा ३२ स्त्रियो पर वेश्यावृत्ति को जीविका का साधन बनाने पर मुकदमा चला। ५ पुरुष तथा १७२ स्त्रियो पर वेश्याकार्य के लिए मुकदमा चला तथा ४४९ पुरुष तथा ८१ स्त्रियो पर अश्लील ढग से शरीर प्रदर्शन के लिए दड मिला।

वासना की प्रतिद्वन्द्विता

पशु हो या मनुष्य, जैसे वासना स्वाभाविक है, वैसे ही उसके साथ द्वेष तथा ईर्ष्या और "अपना बनाकर रखने की भावना" भी स्वाभाविक है। नारउड ने एक मज़बूत घोडे का ज़िक्र किया है जिसके ज़िम्मे दो घोडियाँ थी। इनमे से एक के प्रति उसका विशेष अनुराग अवश्य था क्योंकि जब वह दूसरी घोडी से प्रसग करने चलता

और उसकी प्रियतमा घोडी आवाज लगाती तो वह प्रसग छोडकर पहले उसे सान्त्वना के शब्द सुना देता, तब अपना कार्य जारी करता।[1] जगली सॉड अपने दायरे से निकल कर दूसरे सॉड की तरफ जानेवाली गाय के लिए द्वद्व युद्ध करता है और दो की लडाई मे उस गाय के टुकडे-टुकडे हो जाते है। चिडियाखाने मे ऐसे अजीब दृश्य प्राय. देखे जाते है जब "पुरुष पशु" की लडाई मे स्त्री पशु की जान जाती है। ऐसी कितनी ही हत्याएँ होती है। जब कोई व्यक्ति यह देखता है कि वह जिसे प्यार करता है, वह उसकी न होकर पराये की गोद मे जानेवाली है तो उसे इसलिए मार डालता है कि दूसरा तो उसको न अपना सके। वासना एक उन्माद है, एक ऐसी वस्तु है जिसका विचित्र मनोवैज्ञानिक तथा शारीरिक मिश्रण है। सोमाली लोगो[2] को तभी सुख मिलता है जब सुहागरात के दिन वे अपनी नव-वधू की योनि को बुरी तरह से क्षत कर डाले। स्त्रीप्रसग के पहले वे अपनी प्रियतमा को कोडे से पीटते है। कामुक वासना रूप तथा लावण्य पर ही नही निर्भर करती। एक २६ वर्ष के नौजवान ने ७० वर्ष की एक अविवाहिता कुमारी बुढिया के साथ बलात्कार किया और फिर उसे मार भी डाला।[3]

वासना कैसे बढती है, कैसे जागती है, यह कुछ कहना बडा कठिन है। अभी तक लोग अँधेरे मे टटोल रहे है। बूढे कामी लोगो के लिए कहा जाता था कि उनके पेशाब के स्थान के ऊपर प्रास्टेट ग्लैंड मे वृद्धि हो जाने के कारण ऐसा होता था। पर अब चिकित्साविज्ञान ने इसे झूठा साबित कर दिया है। यदि यह कहा जाय कि बार-बार कामी अपराध करनेवाले का यही इलाज है कि उसकी इन्द्रिय काट लो या आधी काट लो—तो इससे भी काम नही चलेगा। फोरेल का कहना है कि जवानी मे खतना करानेवाले लोग आगे चलकर अपनी स्त्री के साथ प्रसग के योग्य हो जाते है। यह कहना भी गलत है कि ऐसे अपराधी स्त्री-पुरुष को ऐसा नश्तर लगा दिया जाय कि वे सन्तान न पैदा कर सके—क्योकि अब यह साबित हो गया है कि यह कोई जरूरी नही है कि लम्पट की औलाद भी लम्पट होती है।[4] अधिकाश लम्पटो की सतान बड़े

१ वही, पृष्ठ ५०

२. "मध्य आस्ट्रेलिया के आदिम निवासी"—Roheim ने इनके विषय में विशेष अध्ययन किया है।

३. नारउड, पृष्ठ ५२

४. Dr. W. Narwood East in "Mental Abnormality & Crime", Macmillan & Co., Pub. 1949–Page 100

अच्छे मार्ग पर चलने वाली होती है। इन्द्रिय आदि के काटने से मन नही कटता। मन को जीतना है, तभी इन्द्रियो पर विजय होगी। किसी आदमी का शिश्न काट लिया जाय तो बहुत होगा वह प्रसग न कर सकेगा। पर रातो दिन वासना उसका मन सताया करेगी। तब तो उसका जीवन और भी कष्टमय होगा। नपुसकता यदि लानी है तो मन मे लानी चाहिए। इसका मनोवैज्ञानिक उपाय हो सकता है। यह न भूलना चाहिए कि मानसिक सभोग, मन ही मन बैठे व्यभिचार, बडी घातक तथा भयकर वस्तु है।

परन्तु व्यभिचार के अपराध ससार मे, प्रत्येक देश मे, दूसरे की सम्पति अपहरण करने के अपराधो के बाद दूसरा स्थान रखते है, यद्यपि प्रथम का भी कारण वही हो सकते है। पागल, उन्मत्त, रोगी की कामवासना का कारण समझा जा सकता है पर स्वस्थ व्यक्ति की बात आसानी से समझ मे नही आती। हम लोग यह भूल जाते है कि बचपन मे ही बच्चो मे, लडके-लडकियो मे, वासना की नीव पडती है। अनायास उनके नन्हे हाथ उनकी योनि या इन्द्रिय पर चले जाते है। यदि माता-पिता ने योनि तथा इन्द्रिय को साफ नही रखा तो खुजली भी होती है। इसलिए हाथ बार-बार जाता है। उससे कुछ सुख मिलता है और यही सुख आगे चल कर कामुक सुख का रूप धारण कर लेता है। और प्रसग का पहला अनुभव जैसा होगा, वैसा मन का एतत्-सम्बन्धी सस्कार बनेगा। एक युवक को औरतो का जूता चुराने की बडी आदत थी। पर इसका कारण यह था कि जब उसने होश सँभाला, बहुत अच्छा जूता पहनने वाली एक आकर्षक लडकी ने उसका मन मोह लिया था। लडकी दूसरो की हो गयी—जूते का असर छोड़ गयी। एक युवक का एक लडकी से ससर्ग हुआ, जिसमे स्खलन के बाद उसके नीचे के वस्त्र गीले हो गये। गीला वस्त्र देखकर लडकी बहुत बिगड़ी। उसके इस बिगडने का प्रभाव युवक पर ऐसा पडा कि वह लडकियो के कपडे खराब करने में ही बडा सुख अनुभव करता था। एक २२ वर्ष का नौजवान पुलिस-कास्टेबुल पर प्रहार करने के अपराध मे ब्रिटिश जेल मे भेजा गया। वहॉ पर छानबीन करने पर मालूम पडा कि वह वास्तव मे भला मानुस लडका था। उसकी माता की उम्र पिता की उम्र से बहुत कम थी। दोनो मे फूट हो गयी। माता एकान्त स्थान मे अपने बेटे को लेकर चली गयी। उस बेटे के साथ वह क्रीडा भी करने लगी। अब उस युवक के जीवन मे पतन के लिए और क्या चाहिए था? जिसने सिखाया, वह दोषी है।

इसी प्रकार बलात्कार की भी बात है। यदि कन्या के साथ बलात्कार हुआ और वह गर्भवती हो गयी तो उस बेचारी का सत्यानाश हो गया। पर क्या बलात्कार मे कन्या गर्भवती हो सकती है? जब तक उसका स्खलन न होगा यह गर्भवती कैसे होगी?

यदि स्खलन हुआ तो इसका अर्थ है उसे सुख मिला। यह भी कहा जाता है कि अपने बराबर शक्ति वाली स्त्री के साथ पुरुष बलात्कार कर ही नही सकता। अमेरिकन वैज्ञानिक तो यह कहते हैं कि वयस्क स्त्री जब तक न चाहे, उसकी योनि मे प्रवेश नही हो सकता। इग्लैण्ड मे १९२९-३८ के बीच मे, २५८ पुरुषो को बलात्कार के लिए दड मिला। इनमे से ऐसे भी मामले थे जिनमे स्त्री ने "स्वीकार" करना अस्वीकार कर दिया और जान से हाथ धो बैठी। ऐसी दशा मे बलात्कार तो प्रतीत होता है वरना आज तर्क होने लगा है कि बलात्कार स्वत कोई वस्तु नही है। जोर, जुल्म, जबर्दस्ती आदि अपराधो के आधार पर दड हो सकता है। इसी प्रकार पिता-पुत्री या माता-पुत्र या बहिन-भाई के प्रसग के अपराध भी दो मे से एक पक्ष की भूल से शुरू होते है। इग्लैंड मे १९२९-३८ के बीच मे ऐसे अपराध से ४७१ पुरुष तथा ४९ स्त्रियाँ दडित हुई थी। ५३० स्त्रियाँ, जिनमे अधिकाशत वेश्याएँ थी, परस्पर प्रसग के लिए दडित हुई।

इस विचित्र ससार मे भिन्न-भिन्न प्रकार के मनोवैज्ञानिक अनुभव होते हैं। हैवलाक एलिस ऐसे विद्वानो ने भी सिद्ध कर दिया है कि ससार मे दो प्रकार के प्राणी होते है। एक वह जो दूसरे को पीडा पहुँचाकर कामुक का मानसिक सुख प्राप्त करता है तथा दूसरा वह जो पीडा सहकर सुख का अनुभव करता है। इस प्रकार पुरुष तथा स्त्री दोनो ऐसे ही दो भावो मे से एक के शिकार होते है। स्त्री को पीडा सहने मे सुख मिलता है—यह अधिकाश स्त्रियो का सहज गुण प्रतीत होता है, पुरुष को पीडा देने मे। स्त्री प्रसग मे पुरुष के आघात से सुख का अनुभव करती है। परपीडन मे सुख पानेवाले ही हत्या, मारपीट, दूसरे की सम्पत्ति का नाश, आग लगाना, दूसरे के कपडे ही खराब कर देना या किसी पर स्याही उडेल देने का अपराध करते है। पुरुष ही अधिकतर ऐसा अपराध करते हैं। स्त्रियो मे आत्म-हत्या, कुएँ मे कूद पडना, पति को उत्तेजित कर उससे पिट जाना, अपने शरीर मे आग लगा लेना इत्यादि के अपराध काफी होते है। पीडा सहकर सुख उठाने की एक बडी मार्के की मिसाल नारउड ने दी है। वे लिखते है कि एक युवती स्त्री प्राय चोरी की सजा पाती थी। उसमे आदत थी कि मासिक धर्म होने के समय वह अपनी धोती मे, पैर मे, हाथ मे अपने से घाव कर देती थी, अपने ही चमडे मे, अपने हाथो मे सुई चुभो देती। इस प्रकार पीडा से कराहने मे तथा अपना रक्त देखकर उसे बडा कामुक सुख मिलता था।[1]

१. The Journal of Criminal Science–Vol. I—पृष्ठ ७३, ७४

यदि स्खलन हुआ तो इसका अर्थ है उसे सुख मिला। यह भी कहा जाता है कि अपने बराबर शक्ति वाली स्त्री के साथ पुरुष बलात्कार कर ही नहीं सकता। अमेरिकन वैज्ञानिक तो यह कहते हैं कि वयस्क स्त्री जब तक न चाहे, उसकी योनि में प्रवेश नहीं हो सकता। इंग्लैण्ड में १९२९-३८ के बीच में, २५८ पुरुषों को बलात्कार के लिए दंड मिला। इनमें से ऐसे भी मामले थे जिनमें स्त्री ने "स्वीकार" करना अस्वीकार कर दिया और जान से हाथ धो बैठी। ऐसी दशा में बलात्कार तो प्रतीत होता है वरना आज तर्क होने लगा है कि बलात्कार स्वतः कोई वस्तु नहीं है। ज़ोर, ज़ुल्म, ज़बर्दस्ती आदि अपराधों के आधार पर दंड हो सकता है। इसी प्रकार पिता-पुत्री या माता-पुत्र या बहिन-भाई के प्रसंग के अपराध भी दो में से एक पक्ष की भूल से शुरू होते हैं। इंग्लैंड में १९२९-३८ के बीच में ऐसे अपराध से ४७१ पुरुष तथा ४९ स्त्रियाँ दंडित हुई थीं। ५३० स्त्रियाँ, जिनमें अधिकांशतः वेश्याएँ थीं, परस्पर प्रसंग के लिए दंडित हुईं।

इस विचित्र संसार में भिन्न-भिन्न प्रकार के मनोवैज्ञानिक अनुभव होते हैं। हैवलाक एलिस ऐसे विद्वानों ने भी सिद्ध कर दिया है कि संसार में दो प्रकार के प्राणी होते हैं। एक वह जो दूसरे को पीड़ा पहुँचाकर कामुक का मानसिक सुख प्राप्त करता है तथा दूसरा वह जो पीड़ा सहकर सुख का अनुभव करता है। इस प्रकार पुरुष तथा स्त्री दोनों ऐसे ही दो भावों में से एक के शिकार होते हैं। स्त्री को पीड़ा सहने में सुख मिलता है—यह अधिकांश स्त्रियों का सहज गुण प्रतीत होता है, पुरुष को पीड़ा देने में। स्त्री प्रसंग में पुरुष के आघात से सुख का अनुभव करती है। पर-पीड़न में सुख पानेवाले ही हत्या, मारपीट, दूसरे की सम्पत्ति का नाश, आग लगाना, दूसरे के कपड़े ही ख़राब कर देना या किसी पर स्याही उड़ेल देने का अपराध करते हैं। पुरुष ही अधिकतर ऐसा अपराध करते हैं। स्त्रियों में आत्म-हत्या, कुएँ में कूद पड़ना, पति को उत्तेजित कर उससे पिट जाना, अपने शरीर में आग लगा लेना इत्यादि के अपराध काफ़ी होते हैं। पीड़ा सहकर सुख उठाने की एक बड़ी मार्के की मिसाल नारउड ने दी है। वे लिखते हैं कि एक युवती स्त्री प्रायः चोरी की सज़ा पाती थी। उसमें आदत थी कि मासिक धर्म होने के समय वह अपनी धोती में, पैर में, हाथ में अपने से घाव कर देती थी, अपने ही चमड़े में, अपने हाथों में सुई चुभो देती। इस प्रकार पीड़ा से कराहने में तथा अपना रक्त देखकर उसे बड़ा कामुक सुख मिलता था।[1]

१. The Journal of Criminal Science-Vol. I—पृष्ठ ७३, ७४

जब पुरुष की बुद्धि तथा उसकी पहचान इतनी कठिन वस्तु है तो उसका निदान तथा उसकी चिकित्सा भी किस प्रकार हो सकती है? अब इस विषय में दो चार बातें और लिखकर इस समस्या के दूसरे पहलू पर विचार करेंगे। मनुष्य-स्वभाव की व्याख्या करना कठिन है। हमें रोज़-रोज़ नये-नये ढंग के नये-नये व्यक्ति मिलते हैं। उदाहरण के लिए कोई आदमी है जो स्वभाव का चिड़चिड़ा है। अक्सर ज़रा सी बात पर उसे क्रोध आ जाता है। वह लोगों पर बहुत जल्दी चिल्ला पड़ता है। बातें ख़ूब करता है। उसे बातें करने का बड़ा शौक़ है। उसकी भूलें यदि उसे बतलायी जायँ तो वह नाराज़ हो सकता है। ऐसे आदमी मनोवैज्ञानिक रूप से एक विशिष्ट अहंभाव के रोगी हैं। अपने को महत्त्वपूर्ण समझने का इनमें इतना बड़ा रोग है। वे मन चाहने पर ख़ूब ख़र्चीले बन जाते हैं। ख़ूब शराब भी पी लेते हैं और मौक़ा पड़ा तो वासना सम्बंधी अपराध भी कर बैठते हैं। ऐसे लोगों से मिलते-जुलते ऐसे भी व्यक्ति हैं जिनको यह ख़ब्त हो जाता है कि वे अन्तरात्मा की आवाज़ सुन रहे हैं या ईश्वर से उन्हें प्रत्यक्ष आदेश प्राप्त हो रहा है। अपने सभी कार्यों को वे ईश्वरीय आदेश समझने लगते हैं। समाज से यदि किसी बात में उनकी खटपट हो गयी तो वे उससे चिढ़-कर अपने को अपने में ही खींच लेते हैं और उस खिचाव को ईश्वरीय आदेश में मिला लेते हैं। उनके मन में प्रेम तथा घृणा का ऐसा प्रवाह है जो कभी उत्तेजनावश उन्हें मजबूर करता है कि वे अपनी कामवासना से बचने के लिए अपना अंडकोष काट डालें। ऐसे ही लोग अपने विवाह के दिन ही अपनी आत्महत्या कर लेते हैं। मन में बैठी घृणा तथा प्रेम का मिलान न मिला सकने के कारण वे यह सब अनर्थ करते रहते हैं।[१]

वासना के ही मरीज ऐसे बहुत से काम करते हैं जिनका देखने में प्रत्यक्षतः वासना से कोई सम्बन्ध नहीं रहता—जैसे भद्दी भाषा का उपयोग, दूसरे के विरुद्ध अपमान-जनक बातें कहना, गालीगलौज भरा पत्र भेजना,[२] परिवार की देखरेख नहीं करना, दूसरे के काम में बाधा डालना, शराब पीना, इत्यादि। कामुक वासना की उत्तेजना ही अनेकों में हत्या के भाव उत्पन्न करती है। केवल अपने मन की खीज मिटाने के लिए किसी के शीशे की खिड़की पर ढेला फेंकना भी तो यही है। वासना की ही प्रति-क्रिया होती है कि अक्सर लोगों के मन में बिना कारण भय समा जाता है। लोग हाथ में चाकू लेने से डरते हैं कि कहीं उस चाकू से वे किसी का गला न काट लें। एक अज्ञात

१. Mental Abnormality—पृष्ठ २२, २३

२. वही, पृष्ठ ३१

डा० हैडरसन[1] का कहना है कि काम-भाव से पीडित तथा काम-अपराध करने-वाले अधिकाश व्यक्ति शुरू मे सह-योनि प्रसग के शिकार होते है। वे लिखते है कि "शुरू मे मेरा ऐसा खयाल था कि वासना का अपराधी डाक्टरी चिकित्सा का विषय है। मेरे अनुभव ने मुझे अपना विचार बदलने के लिए मजबूर किया है। वासना के बहुत कम अपराधी का मन रोगी सिद्ध हुआ। वह व्यक्ति और हर मामले मे भद्र पुरुष है। केवल उसका वासनामय कार्य ही समाज के प्रतिकूल है। यह कहना बडा कठिन है कि उसके ऐसे कार्य का कितना प्रतिशत भावुकता, आवेश आदि के कारण है और कितना मानसिक रोग के कारण और कितना अन्य कारणो से। आज तक इसका उचित मापदड नही प्राप्त किया जा सका।" इतने बडे विद्वान् के मन मे जो शका है, यदि वह हमारे मन को भी सता रही हो तो क्या आश्चर्य है। हैडरसन ने एक व्यक्ति का उदाहरण दिया है जो २६ दिसम्बर १९१६ से लेकर १० सितम्बर १९४० तक १२ बार सजा भोग चुका था। अपराध भी एक ही था।

१	२६ दिसम्बर, १९१६	अश्लील व्यवहार	१० या ५ दिन कैद
२	१५–४–१९१९	"	३० दिन कैद
३	१२–२–१९२०	"	६० दिन कैद
४	१०–६–१९२०	"	६० दिन कैद
५	२३–२–१९२३	"	६० दिन कैद
६	२९–८–१९२४	"	६० दिन कैद
७.	१३–५–१९२५	"	६० दिन कठोर कारागार
८.	९–१२–१९२५	"	३० दिन कैद
९	८–१०–१९२६	"	८ महीना कैद
१०	२८–९–१९३१	"	१२ महीना कैद
११	३–१–१९३६	"	१८ महीना कैद
१२	१०–९–१९४०	"	१८ महीना कैद

ऐसे ही उदाहरण हमारी बुद्धि को चकरा देते है। सजा, जेल मे सुधार के उपाय, मनोवैज्ञानिक चिकित्सा, सब कुछ हुआ और परिणाम कुछ न निकला। हैडरसन लिखते है—

१. डा० डी० के० हैंडरसन, मनोविज्ञान के अध्यापक, एडिनबर्ग विश्व-विद्यालय,—Mental Abnormality पृष्ठ ११४–११५

'सब बातो पर पूरी तरह से विचार करने के बाद हम यह मानने के लिए मजबूर होते है कि कामुक अपराध को चिकित्सा तथा सामाजिक सम्मिलित समस्या कहा जा सकता है। फिर भी आज तक ऐसे अपराध तथा अपराधी के साथ समुचित उपाय की हमको जानकारी नही हो पायी है।"[१]

वासना का रोगी मनोवैज्ञानिक रोगी है या समाज का रोगी? जब तक यह निर्णय न किया जाय, दड का भी निश्चय नही हो सकता। यदि मानसिक रोगी है तो जेल या पिटाई से मरीज पर कोई असर न पडेगा। यदि साधारण चोर डाकू की तरह सजा दी जाय तो उससे अपराध मे कमी नही आ सकती। वासना का रोग शरीर की विशिष्ट बनावट तथा उसके भीतर विशिष्ट रस—सुख के कारण है, यह भी कहना बडा कठिन है। आज का विज्ञान अब इस उसूल को भी मानने को तैयार नही है। प्रत्येक डाक्टर या वैद्य यह जानता है कि बीमारी की हालत मे रोगी जैसा व्यवहार करता है, स्वस्थ दशा मे वैसा नही करता।[२] पर कामुक व्यक्ति के व्यवहार मे स्वस्थ या रोगी दशा मे अन्तर नही मालूम होता। यही बात अनुसधान के लिए बडा महत्त्व-पूर्ण विषय है। अभी तक निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता।

सन् १९५५ मे लन्दन मे अपराध-शास्त्र विषयक द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ था। उसमे विचारणीय विषयो मे "बार-बार अपराध करनेवाले" की समस्या थी, जिस पर बहुत विचार किया गया था। इन पक्तियो का लेखक तथा विश्व-विख्यात अपराध शास्त्री डा० शेल्डन ग्लूक और उनकी पत्नी एलिनर ग्लूक उस सम्मेलन मे उपस्थित थे। उसके निर्णयो की समीक्षा मे श्री शेल्डन ग्लूक ने एक लेख लिखा है। उसमे आप लिखते है[३]

"अपराधी की रचना मे पिता-माता की लापरवाही या फिर बहुत लाड-प्यार भी महत्वपूर्ण प्रभाव रखता है। जॉच से एक बात यह मालूम होती है कि हर अपराधी का इतिहास अपनी विशेषता रखता है। उनमे एक-स्वरता (समानता) नही है। फलत बहुत से आर्थिक अपराधो की तह मे उद्दडता या कामुक अपराध हो सकता है या दोनो ही वर्तमान हो सकते है। जब अपराधी का इतिहास एक समान मालूम होता है तब भी मनोविश्लेषण से यह पता चल जाता है कि एक अपराधी के व्यक्तित्व के अन्तरतम मे कोई गहरी उलझन या गडबडी छिपी हुई है।"

१. वही, पृष्ठ ११५ २. वही, पृष्ठ १५९ ३. Two International Criminologic Congresses—A Panorama—By Sheldon Glueck, Published in "Mental Hygiene"—Vol. XI. No. 3, July 1958 तथा No. 4, Oct. 1958

आत्मीय से आत्मीय को चूमा नही जा सकता। पुर्तगाल तथा स्पेन मे भी सबके मने प्रेम प्रकट करना अपराध समझा जाता है। इटली मे "चुम्बन" शब्द का विधान मे प्रयोग नही है। उसे "चिढ पैदा करनेवाला," "अपमानजनक", "निजी ार", "सार्वजनिक शिष्टता के विरुद्ध कार्य" आदि सम्बोधनो से इगित किया गया
प्राचीन रोमन कानून मे चुम्बन तीन प्रकार के होते थे, १. स्नेह का परिचायक ाल का आलिगन,"[1] प्रेम का परिचायक "मुख का चुम्बन",[2] वासना का चायक "भरपूर चुम्बन"[3]। रोमन कानून मे अपनी कन्या के सामने अपनी पत्नी चूमना भी अपराध था। आज भी अनेक इटालियन नगरो मे पुलिस की टोली गश्त ाकर चूमनेवालो को गिरफ्तार करती रहती है। रात को पुलिस की गाडियाँ तेज ानी फेककर देखती रहती है कि कोई चूम तो नही रहा है।

८ मार्च १५५२ को नेपुल्स (इटली) मे, जो उस समय स्पेन के अधीन था, कानून लागू हुआ जिसके अनुसार सार्वजनिक चुम्बन पर प्राणदड की सजा रित हुई। सन् १५८९ मे वेनिस के राजा ने इसी अपराध पर अपनी लडकी को से निकाल दिया। इटालियन दडविधान की धारा ७२६ के अनुसार चुम्बन के राधी को एक मास कैद तथा १६,००० लिरा (इटालियन सिक्का) यानी १३८० े जुर्माना देना पडेगा। चूमने के विरुद्ध १८वी सदी मे पोप का भी फतवा जारी ा था।

पर, सन् १९०९ से चुम्बन के हिमायतियो का आन्दोलन शुरू हुआ। इटली के जेतो नगर मे लिस्तुरे नामक युवक का मेरिया नामक लडकी से प्रेम हो गया। समय बाद मेरिया ने दूसरे नौजवान को अपना लिया। लिस्तुरे ने यह सम्बध ने के लिए एक उपाय किया। एक दिन मेरिया बीच बाजार मे से अपने नये प्रेमी ाथ जा रही थी। लिस्तुरे ने दौडकर उसे भरमुह चूम लिया। लिस्तुरे का लक्ष्य हुआ। मेरिया का नया प्रेमी चिढकर चला गया। पर युवक पर चुम्बन के लिए दमा चला और तबसे अदालतो के सामने यह समस्या है कि ऐसे अवसरो पर दड ा न दे। लिस्तुरे छोटी तथा बडी अदालत से, दोनो से छूट गया था। सन् १९२९ २१ जनवरी को एक अपील कोर्ट ने फैसला किया कि अपने भावी पति या पत्नी को जनिक स्थान मे चूमना अपराध नही है। पर, १९५१ की जुलाई मे इटली के म कोर्ट ने फैसला किया कि यदि "चुम्बन कामुकता अथवा कामवासना को व्यक्त

१. Osculum २. Basium ३. Savium

नही करता" तो वह अपराध नही है। पर, जून १९५५ मे एक अपीलकोर्ट ने पुन फैसला दिया कि "चुम्बन अश्लील कार्यों मे से है।" सन् १९५८ मे रोम मे एक युवक पर एक कन्या को सार्वजनिक उद्यान मे चूम लेने का अभियोग लगा, पर जब यह सफाई दी गयी कि लडके ने चूमा पर लडकी ने चूमने का जवाब चूमकर नही दिया तो अपराधी छोड दिया गया।

वासना के सबसे अधिक अपराध फ्रान्स मे होते हैं। सयुक्त-राष्ट्रपरिषद् के अनुसार सन् १९५३-५४ मे मिस्र मे प्रति दस लाख व्यक्ति पीछे वासना के ९ अपराध हुए, जापान मे ३६ का औसत था, तुर्किस्तान मे १०३५ तथा फ्रान्स मे ५०३६ अपराध हुए।[1] मिस्र तथा जापान मे गार्हस्थ्य जीवन की मर्यादा कही अधिक है। पूर्वी देशों मे तथा मुसलिम राज्यो मे सार्वजनिक चुम्बन पर रोकथाम है। चुम्बन की सबसे ज्यादा आजादी फ्रान्स मे है। वहाँ पर हर गली, कूचा, चौराहा पर लोग एक-दूसरे से चिपटे-चूमते नजर आयेंगे। उसका परिणाम भी प्रत्यक्ष है।

१. राष्ट्रपरिषद् की रिपोर्ट, १९५५

अध्याय १५

विवाह तथा तलाक

सामाजिक जीवन मे स्थिरता लाने के लिए, परस्पर प्रेम-भाव कायम रखने के लिए तथा साथ ही वासना को एक नियत्रण मे रखने के लिए विवाह से बढकर कोई वस्तु नही है। पर इस सम्बध मे भारतीय सभ्यता ने जो ऊँचा आदर्श प्रतिपादित किया है वह कही नही है—विवाह भोग के लिए नहीं, सन्तानोत्पत्ति के लिए, पितृ-ऋण से मुक्ति पाने के लिए है। यह आदर्श मानकर चलने से पत्नी को वेश्या भी नही बनाया जा सकता। पर हिन्दू धर्म मे भले-बुरे की सभी गुन्जायश है।[1] ज्योतिष की गणना करके किस समय कहाँ पर प्रसग हो, यह भी निर्देश कर दिया गया है। "जातक-पारिजात" के अनुसार सुख-स्थान मे यदि सूर्य हो तो घर के अतिरिक्त वन या उद्यान मे प्रसग करना चाहिए। सुख-स्थान मे चन्द्रमा हो तो रमणीय गृह मे, मगल हो तो कुटी मे, बुध हो तो विहार के स्थान मे हो विहार हो, गुरु सुख-स्थान मे हो तो मदिर

१. ज्योतिष शास्त्र की प्रसिद्ध पुस्तक "जातक पारिजात" दैवज्ञ श्री वैद्यनाथ विरचित, काशी संस्कृत सीरीज ग्रथमाला, १०. प्रकाशक जयकृष्णदास हरिदास गुप्त, चौखम्भा, वाराणसी, सन् १९४२–में श्लोक है—

वंध्यासगमिनेऽस्तगे समवधूकेलिर्निशानायके
भूपुत्रे तु रजस्वलाजनरतिं वंध्यावधूमेति वा
वेश्यामिन्दुसुते तु विप्रवनितां जीवे सिते गर्भिणीं
नीचस्त्रीरतिमर्कजोरगशिखिप्राप्तेऽथवा पुष्पिणीम् ॥३९॥

(सप्तमाष्टमनवम भाव फलम्, अ० १३)

यानी सूर्य सप्तम हों तो वंध्या स्त्री से संगम हो, चन्द्रमा सप्तम हों तो अपने समान स्त्री से, मंगल में रजस्वला से, बृहस्पति सप्तम हों तो ब्राह्मणी से, शुक्र सप्तम में गर्भिणी से, बुध में वेश्या से, शनि, राहु वा केतु सप्तम हों तो नीच स्त्री या रजस्वला से रति हो।

नहीं करता" तो वह अपराध नहीं है। पर, जून १९५५ में एक अपीलकोर्ट ने पुनः फ़ैसला दिया कि "चुम्बन अश्लील कार्यों में से है।" सन् १९५८ में रोम में एक युवक पर एक कन्या को सार्वजनिक उद्यान में चूम लेने का अभियोग लगा, पर जब यह सफ़ाई दी गयी कि लड़के ने चूमा पर लड़की ने चूमने का जवाब चूमकर नहीं दिया तो अपराधी छोड़ दिया गया।

वासना के सबसे अधिक अपराध फ्रान्स में होते हैं। संयुक्त-राष्ट्रपरिषद् के अनुसार सन् १९५३-५४ में मिस्र में प्रति दस लाख व्यक्ति पीछे वासना के ९ अपराध हुए, जापान में ३६ का औसत था, तुर्किस्तान में १०३५ तथा फ्रान्स में ५०३६ अपराध हुए।[१] मिस्र तथा जापान में गार्हस्थ्य जीवन की मर्यादा कहीं अधिक है। पूर्वी देशों में तथा मुसलिम राज्यों में सार्वजनिक चुम्बन पर रोकथाम है। चुम्बन की सबसे ज़्यादा आज़ादी फ्रान्स में है। वहाँ पर हर गली, कूचा, चौराहा पर लोग एक-दूसरे से चिपटे-चूमते नज़र आयेंगे। उसका परिणाम भी प्रत्यक्ष है।

१. राष्ट्रपरिषद् की रिपोर्ट, १९५५

है जहाँ विवाह योग्य पुरुषो की कमी है। अलास्का या फाल्कलैंड द्वीप समूह मे, सन् १९५५, ५६, ५७ के साल मे १५ वर्ष से ऊपर, विवाह योग्य स्त्रियो मे फी १००० पीछे २०५, १५१ तथा १४९ का विवाह हो गया। इसी अवधि मे इसी उम्र की विवाह योग्य स्त्रियो मे फी १००० पीछे केवल ८७ का विवाह सयुक्तराज्य अमेरिका तथा वेस्ट इडीज मे हुआ। ससार मे ७२ ऐसे देश है जहाँ पर विवाह योग्य स्त्रियो की अधिकता है। पूर्व जर्मनी (कम्यूनिस्ट) का स्थान आँकडो से इन देशो मे प्रधान प्रतीत होता है। वैसे पश्चिमी जर्मनी, पोलैंड आदि मे भी यही दशा है। सन् १९५७ मे पूर्वी जर्मनी मे विवाह योग्य १००० पुरुषो मे ११३ का विवाह हो गया।[१] ससार मे विवाहित लोगो की सख्या इधर बराबर बढ रही है। बहुत से देशो ने विवाह करने के लिए तरह-तरह के प्रलोभन दे रखे है। इग्लैंड मे ४२ पौड (६३० रुपये) टैक्स मे छूट मिलती है। फ्रास मे सतान होने पर सरकारी सहायता मिलती है। जो हो, विवाहित लोगो की संख्या बढ रही है। राष्ट्रपरिषद् के अनुसार "४५-५४ उम्र के बीच के अविवाहित पुरुषो की सख्या घट गयी है।" यह बात प्राय हर एक देश मे है। यद्यपि भारत के लिए आँकडे नही दिये गये है पर वहाँ भी यही स्थिति है। विश्व के इतिहास मे "इतने अधिक विवाह नही हुए थे जितने कि आजकल यानी पिछले तीन साल मे।" सयुक्तराज्य अमेरिका मे ४५-५४ वर्ष की उम्र के बीच मे केवल ८·५ प्रतिशत व्यक्ति अविवाहित है। इस उम्र के ७५ प्रतिशत लोग वहाँ विवाहित है बाकी या तो विधुर है या तलाक दिये जा जुके है। भारत तथा थाईलैंड (स्याम) मे इस उम्र के केवल ४ प्रतिशत लोग बिना स्त्री के है। सयुक्त अरब प्रजातन्त्र, मोरक्को, अल्जीरिया, लीबिया, तुर्किस्तान आदि मे इस उम्र के केवल ५ प्रतिशत अकेले है। कनाडा, पश्चिमी यूरोप आदि मे लगभग सयुक्तराज्य अमेरिका का औसत है। आयरलैंड मे विवाह बहुत कम होते है—हजार पीछे पाँच और ४५-५४ के उम्र के बीच मे वहाँ ३१ प्रतिशत अकेले है। मध्य तथा दक्षिणी अमेरिका मे २२ प्रतिशत अविवाहित है तथा कोलम्बिया, निकारागुआ, पारागुये, क्यूबा आदि मे १५ से १८ प्रतिशत।

पश्चिमी यूरोपीय देशो मे ४५ से ५४ वर्ष की उम्र की १०-१४ प्रतिशत स्त्रियाँ बिना ब्याही है। आयरलैंड मे २४ से २६ प्रतिशत स्त्रियाँ कुमारी है। पर वहाँ की स्त्रियो का चरित्र अन्य देशो की तुलना मे कही अधिक अच्छा है। वहाँ कुमारी

१. ये सब आंकड़े राष्ट्र संघ द्वारा प्रथम वार प्रकाशित रिपोर्ट से लिये गये है—
U. N. Demographic Year Book, 1958

में प्रसंग हो। शुक्र हों तो जल के समीप हो, शनि, राहु तथा केतु, इनमें से कोई यदि सुख-स्थान में हो तो शंकर, देवी या गणेश के मन्दिर में प्रसंग हो।[१] देखने में यह श्लोक मूर्खता-पूर्ण मालूम होता है। पर इसका एक फल अवश्य है। इतना विचार कर, ग्रह, नक्षत्र आदि देखकर चलने वाला बिरला ही अपनी कामुकता का अवसर प्राप्त करेगा। ये सब भी वास्तव में वासना की रुकावट के लिए बंधन हैं। जहाँ बंधन नहीं है वहाँ की परिस्थिति बड़ी खराब है। वहाँ का वातावरण नयी सभ्यता की चमक-दमक में इतना दूषित हो गया है कि पग पग पर काम-वासना को उत्तेजना मिलती है। जेन अदाम्स ने बहुत पते की बात लिखी है कि आजकल के समाज का मनोरंजन का साधन ही ऐसा है कि "पग-पग पर वासना पैदा करता है, अपराधी बनाता है। नाच, गाना, खेल, कूद, सिनेमा, थियेटर, रेडियो, टेलीविजन, सड़क के साधारण मनोविनोद, जिधर देखिए वासना को प्रोत्साहन मिलता है।"[२] रजस्वला होने के बाद, उठती हुई जवानी में, चपल, चंचल घूमनेवाली लड़कियाँ पुरुषों को उत्तेजित करती हुई, ललचाती हुई, प्रसंग द्वारा उनको रोगी तथा निकम्मा बनाती हुई, अपनी समवयस्क लड़कियों को बुरी नसीहत देती हुई, समाज के लिए ख़तरे की घंटी हैं।[३]

पश्चिमी देशों में चरित्र इतना गिर गया है कि संयुक्तराज्य अमेरिका में फ़ी १००० व्यक्ति पीछे, २·२ तलाक़ होते हैं। रूमानियां (कम्यूनिस्ट) में १·९ तथा हंगरी (कम्यूनिस्ट) में १·८ और डेन्मार्क में १·५ का औसत है। उत्तरी आयर-लैंड में फ़ी एक हज़ार आबादी पीछे ०·०७ तथा पुर्त्तगाल में ०·०९ का औसत है। इंग्लैंड, फ्रान्स आदि में १·२५ से लेकर अन्य यूरोपीय देशों में ०·५ तक का औसत है।

बहुत से देश ऐसे हैं जहाँ विवाह योग्य स्त्रियों की कमी है। बहुत से स्थान ऐसे

१. क्रीडागारमिने वनं सुखगते चारु स्वगेहं विधौ
भूपुत्रे सति कुड्यमिच्छति बुधे जातो विहारस्थलम्।
जीवे देव गृहे सिते तु सलिले मन्देऽथवा पन्नगे
केतौ माधवशंकरप्रियसुतस्थानं वधूसंगमे ॥ ४० ॥ अ० १३
(जातक पारिजात, पृष्ठ ४७८).

२. Jane Addams—"The Spirit of Youth and the City Streets"—Macmillan, New York, 1909

३. हीली—चतुर्थ अध्याय, पृष्ठ २४८.

से एकदम निकम्मा पति मिलता है अक्सर १६ वर्ष की लडकी या लडका ३० वर्ष के स्त्री या पुरुष के बराबर कामुक दृष्टि से होते है पर ...."

विवाह क्यो तथा कब ?

उत्तर प्रदेश के मुख्य मत्री डा० सम्पूर्णानन्द जी ने सन् १९५० मे जब शिक्षामन्त्री के पद से युवक-युवतियो को सलाह दी कि वे जल्दी विवाह करे, तो लोगो ने उनके कथन की अहमियत को नही समझा। पर अब धीरे-धीरे लोग यह स्वीकार करने लगे है कि आर्थिक स्थिरता के लिए भी तथा सामाजिक स्थिरता के लिए बहुत देर का विवाह हानिकर होता है। जवानी उभडते ही वासना जरूर जागती है। उसे रोक-थाम लेना बिरलो का ही काम है। जो सँभाल सकते है वे वास्तव मे ससार मे अमर काम भी कर जाते है।

जवानी आते ही पुरुष तथा स्त्री के दृष्टिकोण मे एक बडा अन्तर होता है। लडकी एक अति सहनशील कार्य की तैयारी करती है—उसे पूर्ण मातृत्व की तैयारी करनी है। उसकी तैयारी केवल शारीरिक ही नही है, वह मनोवैज्ञानिक, भावनामय तथा आध्यात्मिक होती है। कामुक ससर्ग उसके लिए उस महान कार्य मे केवल एक घटना मात्र है।[1] जब वह किसी जवान लडके से प्रेम करती है तो वह कहती है—"मै तुमसे प्रेम करती हूँ। चलो हम लोग विवाह कर ले"। पर जवान होता हुआ लडका किसी युवती से कहता है—"मै तुमको प्यार करता हूँ। चलो हम हम-विस्तर हो।" इस-लिए अनेक दृष्टियो से लडके को अधिक शिक्षा मिलनी चाहिए। उसे शारीरिक आवश्यकता का आभास होता है। पर भावुकता उसके पल्ले नही पडती।'[2]

पर, पुरुष की भूलो को समाज सुधारता था। आज से सौ दो-सौ वर्ष पहले के पश्चिम के लोग यदि आजकल की तरह लडके-लडकियो का पूर्ण स्वतत्र रीति से मिलना देखे तो घबडा जायँ। उन दिनो भी व्यभिचार आदि होते थे पर पारिवारिक जीवन अधिक स्थिर था। पति को न प्यार करने पर भी स्त्री उसके साथ रहती थी, इसलिए कि और कोई दूसरा चारा नही था। पुरुष अपनी स्त्री को छोड नही देता था, इसलिए कि यदि वह ऐसा करता तो समाज मे नक्कू बन जाता और उसकी प्रगति मे भयकर

१. "Ahead of Marriage"—By Dr. E Chesser in "Getting Married—1958. पृष्ठ ७४

२. वही, पृष्ठ ७५

बाधा पड जाती।[1] आज के युग मे हमको पिछली सफलता तथा असफलता से नसीहत लेनी चाहिए। जवानी स्थायी वस्तु नही है। थोडे दिनो की चीज है। अतएव जवानी की भूल से शेष जीवन को क्यो नष्ट किया जाय? अधेड उम्र आते-आते वासना शान्त होने लगती है। पुरुष अपने स्वभाव मे स्वय नर्मी महसूस करता है तथा परिवार के प्रति अधिक आर्कषित होने लगता है। स्त्री तो शुरू से ही अपने परिवार मे फँस जाती है। विवाह एक पवित्र कार्य है। उसकी पवित्रता को जब तक हम लोग नही समझेगे तब तक विवाह की मर्यादा नही बन सकेगी।[2]

आदर्श प्रेम तथा आदर्श विवाह के सम्बन्ध मे एक रूसी पुस्तक "माँ-बाप और बच्चे" मे बडे सुन्दर शब्दो मे लिखा है—"और प्योत्र एलेक्सान्द्रोविच ने अपने पारिवारिक जीवन की बडी विवेकपूर्ण और सुन्दर व्यवस्था कर रखी है। अपनी युवावस्था मे उन्होने सुन्दर युवतियो के आकर्षण का सही-सही विश्लेषण और मूल्यांकन करके नीना वसीलियेव्ना को अपनी पत्नी के रूप मे चुना था। वह उस समय एक भूरी आँखोवाली लडकी थी जो दूसरो को थोडी व्यंग भरी दृष्टि से देखती थी। प्योत्र ने समझ-बूझकर अपनी भावनाओ की लगाम ढीली छोड दी और नीना से गहरा और स्थायी प्रेम करने लगे, जिसमे मित्रता तथा पुरुष की सूक्ष्म श्रेष्ठता भी मिली हुई थी। नीना ने मधुर उपेक्षा के साथ इस श्रेष्ठता को स्वीकार किया . . .[3]"

किन्तु विवाह एक धार्मिक कृत्य है। किसी हिन्दू-मुसलमान को या यो कहिए कि किसी भारतीय को यह समझाने की जरूरत नही है। पश्चिमी देशो मे जहां ईसाई मजहब के होते हुए भी इसका धार्मिक महत्त्व जाता रहा है, अब लोग पुन. उसके धार्मिक रूप पर आ रहे है। हम कहते है कि पितृ-ऋण से उऋण होने के लिए विवाह करना चाहिए। विवाह का लक्ष्य कामुकता नही, सन्तानोत्पत्ति है। डा० यूस्टेस चेसर ने अपने अनुसधान से यह सिद्ध कर दिया है कि उस पुरुष-स्त्री का बचपन तथा जवानी, कौमार्य और वैवाहिक जीवन अन्य की तुलना मे कही अधिक सुखी तथा सफल होता

१. "The Good old days"—Doris M Odlum—Article in "Getting Married", 1958, पृष्ठ, ८०, ८२

२. इस सम्बंध में देखिए "Whom God Hath Joined"—Dr. David R. Mace–Pub. Epsworth Press. London

३. माँ-बाप और बच्चे–ले० अ० स० माकारेंको. विदेशी भाषा प्रकाशन ब्यूरो, मास्को, पृष्ठ १७९.

है जो धार्मिक विश्वासी होते है। जिस परिवार मे धार्मिक भावना होगी, उसके बच्चे अधिक सुखी होगे। आज के वैवाहिक जीवन की कटुता का कारण पति-पत्नी का अलग-अलग घोर स्वार्थी होना है। जहाँ पुरुष तथा स्त्री अपना-अपना स्वार्थ लेकर खीचते है, कटुता होगी ही, पर जिनका विश्वास होता है कि "भगवान् की इच्छा सर्वोपरि है", वे निजी स्वार्थ को सर्वोपरि नही मानेगे। सच्ची धार्मिकता क्षुद्र स्वार्थ को परास्त कर देती है।[1] ईश्वर ने सृष्टि की रचना की। अब हम "सृष्टि की रचना कर यानी सन्तान उत्पन्न कर" ईश्वर का कार्य कर रहे है। इस भाव से सतान का पैदा करना समाज का परम कल्याण करना है। आज जो लोग विवाह को धार्मिक कृत्य नही मानते उनके मन मे भी धर्म के प्रति आस्था है। इग्लैंड मे सरे नगर के गिरजाघर के पास विवाह की रजिस्ट्री का दफ्तर है। जो लोग गिरजा मे विवाह न कर रजिस्ट्री कराते है उनमे ९० फ़ी सदी पास के गिरजा के जीने पर पति-पत्नी की तसवीर खिचा लेते हैं? क्यो आज इग्लैंड और वेल्स मे प्रति १० विवाह पीछे सात धार्मिक रूप से होने लगे हैं। इतिहास इस बात का साक्षी है कि धार्मिक रीति से किया गया विवाह सदैव श्रेष्ठ समझा गया है।[2]

निकट-सम्बन्धी विवाह और अपराध

हिन्दू शास्त्र मे गोत्र तथा निकट सम्बध बचाकर विवाह करने की सलाह दी गयी है। आज विज्ञान भी इस बात को स्वीकार कर रहा है कि निकट सम्बन्धी विवाह बडा हानिकारक है।[3] ऐसे विवाह से उत्पन्न सन्तान अधिक अपराधिनी या अपराधी होती है। निकट सम्बधियो मे विवाह के कारण ही स्पार्टा, यूनान या रोम ऐसी सभ्यताए नष्ट हो गयी। यूनान मे सगे भाई-बहिन का विवाह होने लगा था। प्लेटो ने ऐसे विवाह की बड़ी निन्दा की है। पादरी जी० आई० मेडल ने वर्षो खोज करके

१. What Matters Most—Joseph Brayshaw–Getting Married, 1958, पृष्ठ ९१

२. वही, पृष्ठ ८७

३. इस विषय में देखिए "Is Racidivism due to Natural Urge for Crime or Defective Marriages—" By Paripurnanand Varma, Address to Third Inter-national Congress on Criminology, London, 12-18th Sept., 1955.

यह पता लगाया था कि निकट सम्बन्धी विवाह से पैदा होनेवाली सतान प्राय बदजात होती है। सन् १२१५ मे ही पादरियो की महासभा ने सम्बधियो की चार श्रेणी का बराव करके विवाह करने की हिदायत दी थी। ब्रिटिश नरेश हेनरी आठवे ने सोलहवी सदी मे सगी साली से भी विवाह करने की मनाही कर दी थी। सन् १५६३ मे बडे पादरी पार्कर ने "किन-किन से विवाह नही करना चाहिए" का नक्शा तैयार किया था। सन् १६०३ मे वह समूचे ईसाई जगत् मे मान्य हो गया। स्पेन तथा पुर्तगाल मे ममेरा, चचेरा, मौसेरा रिश्ता भी नही हो सकता। सयुक्त राज्य अमेरिका में, वाशिगटन समेत १६ राज्यो मे चचेरे भाई-बहिन या मौसेरे भाई-बहिन के साथ विवाह वर्जित है। सन् १६७३ मे सायमन डुगार्ड का एक लेख प्रकाशित हुआ था जिसमे यह सिद्ध किया गया था कि निकट सम्बन्धियो के विवाह से पैदा होनेवाली सतान मरती अधिक है, जीवित कम रहती है। सन्तानोत्पत्ति की सख्या तो प्राय बराबर रहती है, क्योकि पियर्सन तथा नेटलशिप की खोज के अनुसार ११८ परिवारो मे, जिनमे निकट सम्बन्धी विवाह हुआ था, औसतन ५ से ६ बच्चे थे तथा २२४ परिवार जिनमे रिश्तेदारी मे विवाह नही हुआ था, औसतन ५·४ बच्चे थे। पर कोलम्बिया विश्वविद्यालय के श्री आर्नर की खोज के अनुसार सयुक्त राज्य अमेरिका मे २० वर्ष से कम उम्र के मरनेवाले लडके-लडकियो मे १६ ७ प्रतिशत चचेरे या मौसेरे पति-पत्नी की सतान थे, १४.९ प्रतिशत अन्य निकट सम्बधियो की सन्तान थे तथा ११·६ प्रतिशत साधारण विवाह की सन्तान थे। इस प्रकार निकट सम्बधी की सन्तान की उम्र कम होती है। यही डारविन का भी मत है।

सन् १८६५ मे सर आर्थर मिचेल ने साबित किया था कि निकट सम्बधी विवाह की सतान अन्य सन्तान की तुलना मे पागलपन तथा दोषी मस्तिष्क की अधिक शिकार होती है। अमेरिका के श्री फे का कहना है कि ऐसे विवाह की सन्तान का कम से कम ३ प्रतिशत बहरा या गूंगा होता है। आयरलैड के जनगणना विभाग का कथन है कि ऐसी सन्तान मे ७ प्रतिशत, गूंगी बहरी होती है। डाक्टरी खोज का निचोड है कि ऐसे बच्चो मे क्षयी रोग अधिक होता है, लगभग ४ से ६ प्रतिशत तक ऐसे बच्चो मे अपराधी प्रवृत्ति, अपराधी भावना, कामुक वासना, शारीरिक दोष, मस्तिष्क विकार, उन्माद आदि रोग अन्य बच्चो की तुलना मे अधिक होते है। ऐसे रोगी तथा अपराधी ससार मे कही अधिक होते, पर निकट संबधी विवाह ही कम होते है। डारविन के कथनानुसार सन् १८७२-७३ मे इग्लैड मे ऐसे विवाहो का औसत १ प्रतिशत ही था। प्रो० पियर्सन को ब्रिटिश मेडिकल जर्नल ने ४·७ प्रतिशत सख्या बतलायी थी। श्री आर्नर के अनुसार सयुक्त राज्य अमेरिका मे ५ प्रतिशत है और प्रो० पीट का कहना है कि

सभ्य देशों के सभी विवाहो मे निकट सम्बधियो के विवाह का २ प्रतिशत का औसत पडेगा।

निकट-सम्बधी विवाह के मना करने का वैज्ञानिक कारण यह है कि एल्डरटन के अनुसार एक ही खून के लोगो मे विवाह होने से एक ही प्रकार के गुण या अवगुण सन्तान मे आते है। पर, चूँकि गुण और अवगुण के मेल मे स्वभावत· अवगुण पहले घर कर लेता है अतएव एक ही रक्त का दोनो का सिम्मिलित अवगुण बच्चे मे समा जाता है। यदि दो प्रकार के प्राणी मिलेंगे तो दोनो के भिन्न-भिन्न गुण-अवगुण मे जो दोनो का सम्मिलित गुण होगा, वही अधिक बलशाली होगा। वैज्ञानिक खोज से[1] सिद्ध हो चुका है कि निकट-सम्बधी विवाह मे स्वभाव तथा बुद्धि मे समानता सबसे अधिक होती है। फलत. पिता-माता का सम्मिलित स्वाभाविक अवगुण शिशु मे जल्दी प्रवेश करता है। यह बात भाई, बहिन, चाचा, भतीजा, चाचा, चाची-भतीजा, चाचा-भतीजी आदि में पूरी तरह से लागू होती है। अतएव आजकल अपराध रोकने का प्रयत्न करने-वाले यदि अपराधो मे कमी करना चाहते है तो इस प्रकार के विवाह भी अवश्य बन्द होने चाहिए।

विवाह शीघ्र करे

डा० सम्पूर्णानन्दजी ने शीघ्र विवाह करने पर जोर दिया है। डा० जी० आई० एम० स्वायर[2] भी उन्ही के मत मे है यद्यपि डा० सम्पूर्णानन्दजी के कथन के ८ वर्ष बाद स्वायर उसी नतीजे पर पहुँचे है। उनका कहना है कि विवाह कब करे, इसका उत्तर इस बात पर निर्भर करता है कि तुम कौन हो, तुम्हारी क्या उम्र है, तुम क्यो विवाह करना चाहते हो। यदि पचास के ऊपर के विधुर याँ विधवा विवाह करेंगे तो उनके लिए समस्या ही दूसरी होगी। वास्तव मे यह पहेली नवयुवक तथा नवयुवती के लिए है।

जो निजी जीवन का सुख चाहते है, जो सुरक्षा तथा स्थिरता चाहते है, वे जितनी जल्दी विवाह कर ले, उचित है। यदि सतान चाहिए तो तभी विवाह कर लो जब तक स्त्री मे उत्पादनशक्ति है। बहुत दिनो तक ब्रह्मचर्य रखनेवाले स्त्री-पुरुष प्राय नपुसक

१. The Biometrics and Eugenics Laboratories.

२. "The Right Age to Marry—" G. I. M. Swyer Getting Married 1958, पृष्ठ १०६ से १०८

यह पता लगाया था कि निकट सम्बन्धी विवाह से पैदा होनेवाली संतान प्रायः बदजात होती है। सन् १२१५ में ही पादरियों की महासभा ने सम्बंधियों की चार श्रेणी का बराव करके विवाह करने की हिदायत दी थी। ब्रिटिश नरेश हेनरी आठवें ने सोलहवीं सदी में सगी साली से भी विवाह करने की मनाही कर दी थी। सन् १५६३ में बड़े पादरी पार्कर ने "किन-किन से विवाह नहीं करना चाहिए" का नक्शा तैयार किया था। सन् १६०३ में वह समूचे ईसाई जगत् में मान्य हो गया। स्पेन तथा पुर्तगाल में ममेरा, चचेरा, मौसेरा रिश्ता भी नहीं हो सकता। संयुक्त राज्य अमेरिका में, वाशिंगटन समेत १६ राज्यों में चचेरे भाई-बहिन या मौसेरे भाई-बहिन के साथ विवाह वर्जित है। सन् १६७३ में सायमन डुगार्ड का एक लेख प्रकाशित हुआ था जिसमें यह सिद्ध किया गया था कि निकट सम्बन्धियों के विवाह से पैदा होनेवाली संतान मरती अधिक है, जीवित कम रहती है। सन्तानोत्पत्ति की संख्या तो प्रायः बराबर रहती है, क्योंकि पियर्सन तथा नेटलशिप की खोज के अनुसार ११८ परिवारों में, जिनमें निकट सम्बन्धी विवाह हुआ था, औसतन ५ से ६ बच्चे थे तथा २२४ परिवार जिनमें रिश्तेदारी में विवाह नहीं हुआ था, औसतन ५·४ बच्चे थे। पर कोलम्बिया विश्वविद्यालय के श्री आर्नर की खोज के अनुसार संयुक्त राज्य अमेरिका में २० वर्ष से कम उम्र के मरनेवाले लड़के-लड़कियों में १६.७ प्रतिशत चचेरे या मौसेरे पति-पत्नी की संतान थे, १४.९ प्रतिशत अन्य निकट सम्बंधियों की सन्तान थे तथा ११·६ प्रतिशत साधारण विवाह की सन्तान थे। इस प्रकार निकट सम्बंधी की सन्तान की उम्र कम होती है। यही डारविन का भी मत है।

सन् १८६५ में सर आर्थर मिचेल ने साबित किया था कि निकट सम्बंधी विवाह की संतान अन्य सन्तान की तुलना में पागलपन तथा दोषी मस्तिष्क की अधिक शिकार होती है। अमेरिका के श्री फे का कहना है कि ऐसे विवाह की सन्तान का कम से कम ३ प्रतिशत बहरा या गूँगा होता है। आयरलैंड के जनगणना विभाग का कथन है कि ऐसी सन्तान में ७ प्रतिशत, गूँगी बहरी होती है। डाक्टरी खोज का निचोड़ है कि ऐसे बच्चों में क्षयी रोग अधिक होता है, लगभग ४ से ६ प्रतिशत तक ऐसे बच्चों में अपराधी प्रवृत्ति, अपराधी भावना, कामुक वासना, शारीरिक दोष, मस्तिष्क विकार, उन्माद आदि रोग अन्य बच्चों की तुलना में अधिक होते हैं। ऐसे रोगी तथा अपराधी संसार में कहीं अधिक होते, पर निकट संबंधी विवाह ही कम होते हैं। डारविन के कथनानुसार सन् १८७२-७३ में इंग्लैंड में ऐसे विवाहों का औसत १ प्रतिशत ही था। प्रो० पियर्सन को ब्रिटिश मेडिकल जर्नल ने ४·७ प्रतिशत संख्या बतलायी थी। श्री आर्नर के अनुसार संयुक्त राज्य अमेरिका में ५ प्रतिशत है और प्रो० पीट का कहना है कि

अध्याय १६

आज की कृत्रिम सभ्यता

परिवार की महत्ता

वासना सम्बन्धी अपराध को रोकने के लिए, समाज मे बढते हुए हर प्रकार के अपराधो को रोकने के लिए, तथा बाल-अपराध के वेग कम करने के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि हम समाज मे परम्परा तथा शिष्टता की मर्यादा पुन स्थापित करे। शहरो की चकाचौध से आज मानव अपनी मानवता को जिस प्रकार खो रहा है, उसे बचा लें।[1]

नगर की सभ्यता

श्री मार्गन लिखते है—". .. अनजाने ढग से ससार के अधिकाश भागो मे यह समझ लिया गया है कि नगर के जीवन के कुछ विशिष्ट गुण ही वास्तव मे महत्त्वपूर्ण तथा अन्य गुणो के आधार है। प्राय इसी कारण परम्परा के पुजारी ग्रामो से, संसार भर मे, लोग भाग-भागकर शहरो की ओर चले आ रहे है। फिर भी समाज को शक्ति देनेवाले कुछ ऐसे गुण तथा प्रवृत्तिया—जिनसे समाज मे स्थिरता तथा परिष्कृति आती है—न तो मन के भीतर ऐसी बैठी हुई है कि जानवरो की तरह जहाँ चाहा, हाँक दिया और न तो वे मौजूदा पीढी की तीव्र आलोचना से ही पैदा हो सकती है। वे तो हमारी परम्परागत सास्कृतिक देन है।"

मार्गन लिखते है कि "यदि नगर की सभ्यता अपने को समुदाय की वास्तविक पृष्ठभूमि से दूर कर ले तो उसका क्या भविष्य होगा। पहले तो कोई स्पष्ट हानि नही दीखती। शिष्टाचार का स्थान सद्भावना ले सकती है। केवल अनुभवी व्यक्ति ही इसके अन्तर की थाह पा सकेगा। स्पष्टवादिता तथा सचाई का स्थान "हिकमत"

१. Arthur E. Morgan—The Community of the Future–Pub. Hindustani Talimı Sangh, Wardha–1958 पृष्ठ २७ तथा ४९

ले सकती है। नकदी काम ज्यादा आसान होता है और पडोसी के सहयोग की जरूरत महसूस नही होती। अपने क्लब मे, अपने मदिर मे या अपने व्यवसाय में हमने मित्र बना रखे है तो पडोसी को पहचानने या उससे जान पहचान करने की क्या जरूरत है। यदि हमारे मन पर कोई बोझ है तो मनोवैज्ञानिक तो है ही, अतएव घनिष्ट मित्र बनाने की क्या जरूरत है?"

कृत्रिम सभ्यता इसी प्रकार कृत्रिमता पैदा कर हमारे सामाजिक तथा पारिवारिक जीवन को नष्ट कर रही है और उनके ही नष्ट होने के कारण समाज का सारा ढाँचा ही बिगड गया है, बिगडता जा रहा है। अब यह सोचना भी भूल होगी कि विवाह के बाद जीवन सुधर जाता है, आदमी अपने को सम्भाल लेता है। मद्रास सरकार के २१ अप्रैल १९५९ के पत्र के अनुसार,[१] ४ अप्रैल १९५९ को मद्रास के जेलो मे जितनी स्त्रियाँ बन्दी थी उनमे विवाहित-अविवाहित का औसत था—५ ७५ विवाहित तथा १ अविवाहित। सन् १९५८ मे मद्रास के जेलो मे ८० व्यक्तियो को फाँसी की सजा मिली (फाँसी पर ३० ही लटकाये गये) जिनमे से ७५ मर्द थे, ५ औरते तथा इनमे सभी स्त्रियाँ अविवाहित थी तथा ९० फीसदी मर्द विवाहित थे। उत्तर प्रदेश की सरकार के १२ मई १९५९ के पत्र के अनुसार[२] सन् १९५८ मे प्रदेश के ६२ जेलो मे ८६, ५४३ कैदी थे जिनमे ४६,७८९ विवाहित तथा १८,१४६ अविवाहित थे। १७३ विधवाएँ थी और ४५३० विधुर थे। वेश्याएँ ४ थी। इन आँकड़ों से तो यही स्पष्ट होता है कि हमारे पारिवारिक जीवन मे भी कुछ बडी गडबडी है जिस कारण हम जीवन का सुख या महत्त्व कुछ भी नही समझ पाते। अविवाहित की तुलना में विवाहित अपराधी अधिक है।

इसी लिए राष्ट्रसघ द्वारा आयोजित प्रथम अपराध-निरोधक सम्मेलन में, जेनेवा में ३ सितम्बर १९५५ मे जो प्रस्ताव "परिवार" के सम्बध मे पास हुआ था,[३] उसकी महत्ता पर हमको विचार करना चाहिए—

"साधारणत यह सर्वमान्य बात है कि प्रारम्भ से ही बच्चे के जीवन मे परिवार का सबसे महत्त्वपूर्ण हाथ होता है तथा उसके व्यक्तित्व, प्रवृत्तियो तथा व्यवहार के

१. अखिल भारतीय अपराध-निरोधक समिति के नाम

२. अखिल भारतीय अपराध-निरोधक समिति के नाम.

३. First United Nations Congress on the Prevention of Crime & Treatment of Offenders—Geneva–Report–Page 4.

निर्माण मे परिवार का मौलिक हाथ होता है। यह भी मान लिया गया है कि नगरों की वृद्धि तथा औद्योगिक सभ्यता की प्रगति ने हमारे सामाजिक, पारिवारिक तथा निजी जीवन को असगठित कर दिया है। अपराधो मे वृद्धि का एक बहुत बडा कारण है परिवार मे सामाजिक तथा सास्कृतिक परिवर्तन। इसलिए यह नितान्त आवश्यक है कि रोकथाम के ऐसे उपाय किये जायँ जिससे पारिवारिक बधन अधिक दृढ हो, जिससे परस्पर स्नेह, भावुक सुरक्षा तथा नियत्रण मे वृद्धि हो। बच्चे मे अपनत्व की भावना उत्पन्न करनी चाहिए। उसे यह मालूम होना चाहिए कि मै अमुक परिवार का हूँ।"

परिवार की दृढता ही समाज की दृढता है। कुनबे का पुख्तापन ही समाज को पुख्ता बना सकता है। इसलिए ज़रूरत है कि हम समाज मैं परिवार की मर्यादा को लुप्त होने से बचाये, तभी कामवासना के अथवा अन्य प्रकार के अपराध कम होगे। आजकल युवक समुदाय अपने पिता-माता, बहिन-बेटी, पडोस की कन्या, किसी की इज्जत नही करता। उसका सर्वनाश निश्चित है, चाहे वह सर्वनाश कितना ही शनै-शनै क्यो न हो। आज पुरुष अपने अधिकार के लिए लडता है। स्त्री अपने अधिकार के लिए।[1] हम चाहते है कि लोग परिवार के अधिकार के लिए लडे।

सदाचार की व्याख्या

दूसरी आवश्यकता यह है कि हम अपने मन मे सदाचार की व्याख्या समझ ले। हर ज़रा सी बात को भ्रष्टाचार के दायरे मे ले आना तथा "पतन" समझना भी बडी घातक चीज़ है। इससे समाज की नैतिकता का अनायास ह्रास होता है। जागर लिखते हैं—

"जिस समाज या जनसमूह का कामवासना सम्बन्धी दृष्टिकोण जितना ही सकुचित तथा नखरेबाज़ होता है, जितना ही उस समाज मे स्वाभाविक भूलो को अपराध समझा जाता है, उतना ही उस समाज में वेश्याओ का सघटन अनियत्रित तथा लज्जाजनक होता है—विष को फैलानेवाली वेश्याएँ बढती ही जाती है—तथा

१. Mary Wallstonecraft (1759-1797) in "A Vindication of the Rights of Women"-Says-"Women will never attain the same degree of emancipation as man, and man will always surpass them in many things".

बडे नगरो की अभिशाप अर्द्ध-वेश्याओ मे बडी अधिकता हो जाती है—और मै कहता हू कि ऐसे समाज मे गुप्त दुराचार खूब फैलता है तथा ऐसे दुराचार के शिकार लोगो को अपनी "सुन्दर" नैतिकता का बडा गर्रा रहता है। यह बात खास तौर पर इग्लैड के लिए लागू होती है।"[१]

व्यक्तिगत नैतिकता बना लेने से, व्यक्तिगत आदर्शों के चक्कर मे पड जाने से समाज का कल्याण नही हो पाता। समूह के साथ व्यक्ति के सुख की जितनी अच्छी कल्पना प्राचीन काल का भारतीय करता था उतना कोई नही कर सकता। श्री जितेन्द्रनाथ बनर्जी के कथनानुसार—

"प्राचीन काल के भारतीयो के चरित्र मे एक बात सबमे पायी जाती थी, वह यह कि वे अपने स्वतत्र अनुसधानो को समाज की प्रथा मे मिला देते थे, अपने व्यक्तित्व को विशद समूह मे डूबा देते थे, ताकि ज्ञान के विशेष अगो मे प्राप्त उनके अनुभव सर्वसाधारण की सम्पत्ति बनकर अधिक अधिकारशील एव पवित्र शिला पर स्थापित हो जायँ।"[२]

सदाचार की बहुत बढ-बढकर बाते करनेवालो से प्रो० मैकनील डिक्सन ने अपनी गिफर्ड व्याख्यानमाला मे सवाल किया है—[३]

"जो लोग जुआ और शराब बन्द कर देना चाहते है, जो यहाँ तक चाहते है कि सब लोग १० बजे रात तक सो जायँ, उनसे यह पूछना चाहिए कि क्या उनको मालूम है कि वे जीवनी-शक्ति के सोते को ही सुखा देना चाहते है। यदि वे मानव की शक्ति को जमीन मे गाड देना चाहते है तो एक दिन यह इतनी एकत्रित होकर विस्फोट करेगी कि चन्द्रमा तक पहुँच जायगी। फ्रायड ने हमको स्मरण दिलाया है कि जब हम अपनी किसी दृढ तथा बलवती इच्छा को दबा देते है, तो वह एक दिशा मे दबकर किसी दूसरी सूरत मे, दूसरी दिशा मे, दूसरे वेश मे उभड पडती है और उस व्यक्ति के जीवन मे भयकर उथल-पुथल पैदा कर देती है। ऐसी ही अतृप्त तथा दबी हुई वासना के फलस्वरूप भद्दे-भद्दे रीति-रिवाज पैदा होते गये। प्राचीन रोम मे हर साल २३ फरवरी

१ Gustav Jager—"Discovery of the Soul" -Leipzig, 1884-Vol I-Page 265.

२. The Development of Hindu Iconography by Jitendranath Bannerjee-Pub. Calcutta University, 1941-Page 14

३. Prof. Macneile Dixon-"The Human Situation".

को रोम नगर मे युवक तथा युवतियाँ एकदम नग्न होकर सडक पर जलूस बनाकर चलते थे और एक दूसरे को कोडा मारते रहते थे—ऐसी बेहूदी रीति का कोई भद्दा कारण होगा।"

समाज मे प्रत्येक को तरह-तरह के अनुभव होते है। "समाज वह पाठशाला है जिसमे मनुष्य भले-बुरे की पहचान करना सीखता है।"[१] समाज हमे शिक्षा देता है कि अपने लिए कम लाभवाली होने पर भी अपने को अच्छी लगनेवाली वस्तु के मुकाबले मे, सबके लिए अधिक लाभवाली वस्तु को अधिक पसन्द करे।[२] सर जेम्स स्टीफन ने कहा है[३] कि उचित वह है जिससे दूसरो को सुख मिले। अनुचित वह है जिससे दूसरो को कष्ट मिले या उस सुख मे कमी हो।[४] बेथम के कथनानुसार उपादेयता की दृष्टि से उचित तथा अनुचित की पहचान करनी चाहिए।[५] काम कुछ भी हो, परिणाम कुछ भी हो। काम का औचित्य और अनौचित्य काम करनेवालो की नीयत से समझना चाहिए—यानी असली चीज नीयत है, काम कुछ महत्त्व नही रखता। वेस्टरमार्क लिखते है—

"यद्यपि हमारी प्रकृति के भावुक आधार मे गहरी जड जमाये हुए भी हो, पर नैतिकता के सम्बध मे हमारे विचार तर्क तथा बुद्धि द्वारा ठीक किये जा सकते है। उनकी सुन सकते है। हर समाज मे, अधिकाश लोग परपरा से चली आनेवाली उचित-अनुचित की भावना को, भले-बुरे की भावना को, कर्तव्याकर्तव्य की भावना को स्वीकार करते है। प्रचलित भावना के बारे मे विशेष ऊहापोह भी नही करते। यदि ऐसी भावनाओ के प्रारम्भ या उद्गम की छानबीन की जाय तो पता चलेगा कि इनमे से बहुतो के पीछे निजी उपेक्षा, घृणा या स्वीकृति, पसन्द या नापसन्द की भावना छिपी होती है। इसलिए समझदार, विचारवान् को ऐसी घृणा या प्रेम की छानबीन करके तब उसके भले-बुरेपन का फैसला करना चाहिए।" यद्यपि दक्षिण सागर के द्वीपो

१. Dr. Edward Westermarch–"The Origin and Development of Moral Ideas"—Macmillan & Co, London 1912–Vol. I page 9

२. प्रो० सिजविक

३. सर जेम्स स्टीफन–पृष्ठ ३३८.

४. Benthem—"Principles of Morals and Legislation"–Page 4.

५. वही, पृष्ठ ११

मे यह नियम है कि कोई सरदार यदि किसी साधारण स्त्री से विवाह कर ले तो उसे प्राणदड मिलता है, पर इतनी जरा सी बात पर प्राणदड देने के औचित्य या अनौचित्य का निर्णय तो करना ही पडेगा।

भीतर बैठी हुई कामुक वासना ही मनुष्य को निर्दय तथा हृदयहीन बना देती है। यदि दड देते समय मनुष्य भावना-शून्य हो जाय तो वह शायद न्याय भी कर सकता है, उदारता भी कर सकता है। किन्तु क्या बिना हृदयहीन बने न्याय का काम नही चल सकता। ब्रिटेन के सम्राट् चार्ल्स प्रथम को प्राणदड की सजा देते समय पाँच न्यायाधीशो की जो अदालत बैठी थी उसने अपने फैसले मे कहा—

यहाँ से तुम उसी स्थान को जाओगे जहाँ से तुम आये थे। वहाँ से तुम एक छकडे पर बैठाकर वध-भूमि को ले जाये जाओगे। वहाँ पर तुम्हे गर्दन से तब तक लटकाया जायेगा जब तक तुम आधे मुर्दा न हो जाओ। फिर तुम उसके बाद जिन्दा काटे जाओगे। पहले तुम्हारे सामने तुम्हारे अडकोष और इन्द्रिय काटकर आग मे फेक दी जायँगी, तुम्हारा पेट चीरा जायेगा और भीतर का पाकाशय आग मे जलाया जायगा। फिर तुम्हारे धड से सिर अलग किया जायेगा। तुम्हारे शरीर के चार टुकडे करके सरकार जैसे चाहेगी उसका उपयोग करेगी।[१]

यह न्याय नही, सामाजिक उद्दडता है, प्रतिहिंसा है, घोर कामुकता है जो इस प्रकार मानव-जीवन को कलकित करती है। अदना से अदना और छोटी से छोटी बातो मे समाज की विचित्र भावनाओ का द्योतक है। पुराने ज़माने मे पश्चिम के अनेक देशो मे स्त्रियाँ चाँदनी रात मे खुले मे नही सोती थी—इसलिए कि उनका विश्वास था कि चन्द्रमा अपनी रश्मियो से, किरणो से उनके साथ सभोग करेगा।[२]

समाज बदल गया है। धारणाएँ भी बदल गयी है। पर, पुरुष और स्त्री का जीवन के प्रति भिन्न दृष्टिकोण न तो कभी एक केन्द्र पर आकर स्थिर हुआ है और न उसकी कोई सम्भावना प्रकट होती है। दोनो के मन के भीतर एक ऐसी कामवासना बैठी है जो जिधर चाहती है, घुमा देती है। इसी लिए केसरलिग लिखते है कि "आज के

१. सम्राट चार्ल्स प्रथम को प्राणदड मिला था. देखिए—
Sex in History–By G. Rattray Taylor, Pub. Thomas & Hudson, London–Page 183.

२. M. E Harding–"Womens' Mysteries"–Longman Green & Co, Pub. 1935-Chapter II.

नर और नारी वासना की प्रेरणा से ही सचालित तथा परिचालित हो रहे है अधिकाश लोगो का विवाह अनुपयुक्त है। उनका जोडा बेमेल है। उन्हे पता भी नही चलता पर जब वे विवाह कर लेते है तब मालूम होता है कि उनके दोनो के दृष्टिकोण तथा जीवन मे कितना व्यापक अन्तर है। प्राय प्रत्येक स्त्री-पुरुष गलत व्यक्ति से प्रेम करता है। उनमे से बिरले को ही मालूम है कि विवाह का असली अर्थ क्या है?" प्रेम उस वस्तु का नाम है जो सर्वांग सम्पूर्ण हो। विवाह वास्तविक प्रेम का परिचायक नही है।[१] यदि ईसा से ५०० वर्ष पूर्व तक यूनान मे भाई-बहिन तथा चाचा-भतीजी मे विवाह होता था तो क्या यह प्रेम था। जब ज्यूस ने अपनी सगी बहिन हेरा से, हाइपरियन ने अपनी बहिन थिया[२] से विवाह किया तो क्या यह प्रेम था? या, होमर के कथनानुसार आयोलस के ६ लडको ने अपनी ६ सगी बहिनो से विवाह किया तो क्या यह प्रेम था? किन्तु प्रेम किसे कहे? सदाचार किसे कहे? यदि "नैतिकता उस वस्तु का नाम है जिसमे अपने शरीर को केवल पीडा ही देना है, सुखाना है"[३] तो फिर ऐसी नैतिकता कितने दिन चलेगी?

टेलर ने सच लिखा है कि—

"मनुष्य अपने धर्म की दृष्टि से अपने लिए आचरण के जिन व्यावहारिक नियमो को बना लेता है, उसी का नाम नैतिकता है। नैतिकता उसके मन की भावना का एक प्रकट रूप है, उसके सपनो का सक्रिय कलेवर है। यदि नैतिकता को धर्म से पृथक् कर दिया जाय तो वह अपना महत्त्व खो बैठती है। केवल बुद्धिमत्तापूर्ण विचार से ही समाज मे स्थिरता नही आती। उससे केवल आदमी हाड-मास की पुकार के ऊपर उठता है। पर केवल दार्शनिकता से काम नही चलेगा। उसके साथ भावना का भी सम्मिश्रण ज़रूरी है। भारत मे दर्शन तथा धर्म दोनो एक साथ मिले-जुले है। यूनान में दोनो भिन्न हैं। यूनान की सभ्यता समाप्त हो गयी है। भारत की सभ्यता अमर है। जो आध्यात्मिक विकास की ओर ले जाये, वही धर्म है। आवश्यकता इस बात की है कि मानव-जाति के अनुभवो के द्वारा ईश्वर का अर्थ पहचानें[४]। जिस लक्ष्य की प्राप्ति

१. Keyserling—"The Book of Marriage"—Part I

२. "Sex in History" पुस्तक इस प्रकार के उदाहरणों से भरी पड़ी है.

३. James—"The Varieties of Religious Experience"—Pub. 1912

४. Hocking

की कल्पना करके हम चलते है, उसका नाम है धर्म। पैर संसार मे हो और आँख उस पार लगी हो—इसमे कुछ समन्वय तो करना ही होगा।

सभ्यता मे समन्वय

आज सभ्यता का रूप बिगड गया है। जो भले है वे हाथ-पैर सिकोडे वासनाओ से दूर बैठे है। जो बुरे है वे गहरी वासनाओ से खेल रहे है।[1] आज चारो ओर समस्याएँ ही समस्याएँ है। व्यापारिक वधनो ने आर्थिक शक्ति को कुण्ठित कर दिया है। मानव इतना दुर्बलहृदय हो गया है कि सिगरेट का धुआँ उडा उडाकर अपने मन की जलन उडा रहा है। हमारा वर्त्तमान हमारे अतीत से बहुत दूर हट गया है। हेरोडेटस[2] का यह कहना सच हो सकता है कि इतिहास प्राचीन गौरवगाथाओ के भूल जाने से बचाने का प्रयत्न मात्र हो सकता है, पर थुसाइडेडीज की यह बात भी सही है कि लोग पुरानी गलतियो को दुहराये नही, इतिहास इसका एक निराशामय प्रयत्न भी हो सकता है।[3] हमे इतिहास के बहुत से पन्ने याद रखने है और बहुत से फाड डालने भी है। रुचि-वैचित्र्य तथा रुचि-वैभिन्य समाज के लिए आवश्यक है, पर कायदे के साथ। अपनी रुचि की विभिन्नता से हम आपबीती तथा दूसरे पर बीती घटनाओ को भिन्न दृष्टि से देखते है, इसी लिए एक-दूसरे को ठीक से समझ नही सकते। कुछ वर्ष हुए जापान मे "राशोमान" नामक एक बडी अच्छी फिल्म बनी थी। एक लकडहारा मानव-जाति पर विश्वास खो बैठा है। इसका कारण एक आँखो देखी घटना है। उसने जगल मे देखा कि एक पति-पत्नी चले जा रहे थे। एक लुटेरा मिला। उसने पति को मार डाला, पत्नी के साथ बलात्कार किया। पत्नी और डाकू थाने पर लाये गये। मृत पति भी प्रेतयोनि से, एक के माध्यम से वहाँ पर पहुँचा और थाने पर तीनो का विचित्र तथा भिन्न बयान सुनकर उस लकडहारे को घोर अश्रद्धा तथा घृणा हो गयी। हमारे समाज मे आज उस लकडहारे की तरह वर्त्तमान समाज से निराशा

१. Yeats की प्रसिद्ध पंक्तियाँ है—
The Best lack all connections, while the worst
Are full of Passionate intensity.

२. यूनानी इतिहासकार

३. Charles Frankel—"The Case for Modern Man"–Pub. Macmillan & Co., London, 1957–Chapt VIII–Page 130-131.*

और घृणा करने वालो की कमी नही है। दार्शनिक हेलवातियस ने शायद सही कहा है "आदमी स्वत बुरा नही है। वह केवल अपने स्वार्थ मे रत है। मानव की अच्छाई का अन्दाज लगाने के लिए इस नये मापदड से उसके गुणो का पता लगाना होगा।"[१] नीबर[२] की यह बात जरूर याद रहे कि "ईश्वर की आत्मा" की यात्रा मे "सुख को मुक्ति या प्रगति का पर्य्यायवाची नही समझना चाहिए।" इस सुख की तलाश मे जब कभी आदमी अपनी सीमा को लाँघ जाता है, वह पाप के गडे मे गिर पडता है।[३] सुख स्वत कोई चीज नही है। वह दूसरो से प्राप्त होता है, आज के ससार मे सुख का अभाव इसी लिए है कि हम दूसरो से बडी आशा करते है।[४] हेलवातियस ने लिखा है कि "मानव-जाति से प्रेम करने के लिए यह जरूरी है कि उससे बहुत कम आशा की जाय।"[५]

पर मनुष्य मनुष्य से ही आशा करता है। वह आशा करने और जायगा कहाँ? यह जीवन आशा तथा निराशा का उतार-चढाव मात्र है। प्लेटो ने जीवन को ही "मरने की अनवरत स्थिति" कहा था। हर क्षण हम मरने के निकट जा रहे है। हर क्षण हम मरते जा रहे है। स्व० कुवर रघुवीरसिंह ने लिखा है—

जिन्दगी मौत थी एक उम्र में मालूम हुआ।
मेरा होना था महज मेरे न होने के लिए॥

इस मरनेवाले जगत मे प्रत्येक वस्तु का मूल्य चुकाना पडता है। जीवन का मूल्य मृत्यु से चुकता है। जितनी ही बडी वस्तु होगी, उतना ही बडा मूल्य होगा। स्पिनोज़ा ने सच लिखा है कि जो ईश्वर को प्यार करता है वह निश्चित न समझे कि ईश्वर भी उसे उतना ही प्यार करेगा।[६] किसको कितनी कीमत चुकानी पडेगी यह ठीक से ज्ञात

१. वही, पृष्ठ ९४
२. वही Niebuhr की उक्ति—पृष्ठ ९५
३. वही, पृष्ठ ८४
४. अष्टावक्र गीता में लिखा है—

"आशाया ये दासास्ते दासाः सर्वलोकस्य"

(जो आशा के दास है, वह संसार भर के दास हो जाते है।)

५. The Case for Modern Man, पृष्ठ ९०
६. वही, पृष्ठ ५८

नही है। समाज मे आज इसी "कीमत की आँक" से अव्यवस्था पैदा हो गयी है। हम उस अधे आदमी की तरह है "जो एक अँधेरे कमरे मे उस काली बिल्ली की तलाश कर रहा है जो वहाँ पर मौजूद नही है।"[१]

आज हमारी प्रवृत्तियो तथा हमारी आशाओ मे अन्तर्द्वन्द्व मचा हुआ है। चारो ओर उलझनें पैदा कर दी गयी है। हम जिसे तर्क कहते है, भले-बुरे को पहचान कर असलियत समझाने वाली बुद्धि कहते है, वह आज इतनी दूषित हो गयी है कि हमारे लिए कल्याणकारी नही, हमको उत्तेजित करनेवाली वस्तु बन गयी है। आज हम अपने ही तर्कों से खेल रहे हैं। आज हम अपने भीतर के अतर्द्वन्द्व से नही, बाहर मे फैले हुए कुहरे से भटक रहे है।

ठीक से कुछ समझ मे नही आ रहा है। "जिस प्रकार एक अपराधी के मस्तिष्क मे अपराध का नरक भरा हुआ है, उसी प्रकार मध्यम श्रेणी के एक बाबू के घर मे, या उसकी टोपी के नीचे (सिर मे) एक बिल्कुल भिन्न दर्शन या दृष्टिकोण का अम्बार भरा रह सकता है।"[२] इनकी असली पहचान होनी चाहिए। जो ज्ञानवान हैं, इन चीजो को पहचानते है, वे वास्तव मे भले लोग है तथा पुण्यात्मा है, यह सोचना भी भूल होगी। ज्ञान का आज के जमाने मे एक ही बडा भारी उपयोग है— उसके द्वारा हम दूसरो के विचारो से अपनी रक्षा कर सकते है।[३]

ससार मे जो होना चाहिए, जो जायज़ है तथा जो नैतिक है, उसमे जो परस्पर अन्तर आ गया है, उसके दोषी है हम तथा हमारा समाज। श्री रेमड फर्थ का कहना है[४] कि "कानून के नियमो मे, सदाचार के नियमो मे तथा वास्तविक व्यवहार के नियमो मे जो अन्तर दिखाई पडता है वह केवल अज्ञान के कारण नही है, लापरवाही के कारण नही है या व्यक्तिगत स्वार्थ के कारण नही है, बल्कि दूसरो के प्रति सचाई, ठीक से काम पूरा करने की तबियत तथा व्यावहारिकता के अभाव से, कानून की अच्छाई मे विश्वास की कमी तथा सार्वजनिक हितो के प्रति उपेक्षा के कारण है।"

श्री फर्थ लिखते है—"समाज के आदेश क्या है, इस सम्बन्ध मे कोई सर्वसम्मत

१. "A Blind Man in a dark room looing for a black cat that is not there." (वही, पृष्ठ ५४, अध्याय ४)

२. वही अध्याय ५, पृष्ठ ७०

३. वही, अध्याय ६, पृष्ठ ९२

४. Raymond Firth-Human Types —पृष्ठ १४१

परिभाषा नही है। आस्टिन के समय से पुरानी न्यायसगत परिभाषा तो यह थी कि समाज के नियमो का उल्लघन करने पर जो दड मिलता था, वही आदेश है। पर आज की विचारधारा मे नयी व्याख्याएँ शामिल हो गयी हैं जिनके अनुसार व्यक्ति या समुदाय निश्चित आदेशो की अवज्ञा करके भी अपने को सही रास्ते पर चलने-वाला साबित कर सकता है। जो लोग समाज मे मनुष्य के जीवन मे रुचि रखते हैं, अनेको सवाल पैदा होते हैं, क्या दूसरे समाजो मे भी आचरण के वैसे ही नियम है। यदि हाँ, तो उनमे से कितने नियम स्पष्टत उस समाज के लोगो द्वारा निर्धारित है, उन नियमो का किस सीमा तक पालन होता है, किस हद तक उल्लघन होता है।"[1]

"रैडक्लिफ ब्राउन ने एक अधिक सही तथा वास्तविक वर्गीकरण किया है। सगठित तथा असगठित आदेशो मे भेद करने के बाद वे यह बतलाते है कि कौन से आदेश नैतिक तथा कर्त्तव्य की परिधि मे है और कौन प्रतिशोध तथा दड के दायरे मे है तथा कौन आदेश धार्मिक परिपाटी की श्रेणी मे है। जो [illegible] के दायरे मे हैं, उन्ही को कानूनी आदेश समझना चाहिए।"[2]

आज का मानव इन्ही "आदेशो" की समस्या मे उलझा चल रहा है। चूंकि उसके सामने "आदेश"[3] स्पष्ट नही है, उसका जीवन भी स्पष्ट नही है। यह समस्या आसानी से हल नही होती दीखती। फिर फ्रैंकेल के शब्दो मे—"यह कहना कि यही समस्या है, यह कहने के बराबर है कि अपराध की समस्या तभी तक है जब तक दड-विधान है, कानून है। तलाक की समस्या तभी तक है जब तक विवाह होता है या सिरदर्द तभी तक है जब तक सिर है।"[4]

इसलिए, जब तक कानून है, अपराध रहेगा। जब तक सिर है, सिरदर्द रहेगा या जब तक मानव है, कामवासना रहेगी, अपराध रहेगा। अत निराश होने से काम नही चलेगा। एक स्वत. सिद्ध दूषित वातावरण मे हमको अधिक से अधिक सावधानी से चलना है। मानव को मानव समझकर काम करना है।

"आज की व्यापक अव्यवस्था "कर्त्तव्य, कानून तथा धर्म मे एक दूसरे के प्रति

१. वही, रेमंड फर्थ—पृष्ठ १३०
२. वही, पृष्ठ १४२
३. आदेश यानी sanctions
४. The Case for Modern Man—पृष्ठ ८७

नही है। समाज मे आज इसी "कीमत की आँक" से अव्यवस्था पैदा हो गयी है। हम उस अधे आदमी की तरह है "जो एक अँधेरे कमरे मे उस काली बिल्ली की तलाश कर रहा है जो वहाँ पर मौजूद नही है।"[१]

आज हमारी प्रवृत्तियो तथा हमारी आशाओ मे अन्तर्द्वन्द्व मचा हुआ है। चारो ओर उलझने पैदा कर दी गयी है। हम जिसे तर्क कहते है, भले-बुरे को पहचान कर असलियत समझाने वाली बुद्धि कहते है, वह आज इतनी दूषित हो गयी है कि हमारे लिए कल्याणकारी नही, हमको उत्तेजित करनेवाली वस्तु बन गयी है। आज हम अपने ही तर्कों से खेल रहे हैं। आज हम अपने भीतर के अतर्द्वन्द्व से नही, बाहर मे फैले हुए कुहरे से भटक रहे है।

ठीक से कुछ समझ मे नही आ रहा है। "जिस प्रकार एक अपराधी के मस्तिष्क मे अपराध का नरक भरा हुआ है, उसी प्रकार मध्यम श्रेणी के एक बाबू के घर मे, या उसकी टोपी के नीचे (सिर मे) एक बिल्कुल भिन्न दर्शन या दृष्टिकोण का अम्बार भरा रह सकता है।"[२] इनकी असली पहचान होनी चाहिए। जो ज्ञानवान हैं, इन चीजो को पहचानते है, वे वास्तव मे भले लोग है तथा पुण्यात्मा है, यह सोचना भी भूल होगी। ज्ञान का आज के जमाने मे एक ही बडा भारी उपयोग है— उसके द्वारा हम दूसरो के विचारो से अपनी रक्षा कर सकते है।[३]

ससार मे जो होना चाहिए, जो जायज है तथा जो नैतिक है, उसमे जो परस्पर अन्तर आ गया है, उसके दोषी है हम तथा हमारा समाज। श्री रेमड फर्थ का कहना है[४] कि "कानून के नियमो मे, सदाचार के नियमो मे तथा वास्तविक व्यवहार के नियमो मे जो अन्तर दिखाई पडता है वह केवल अज्ञान के कारण नही है, लापरवाही के कारण नही है या व्यक्तिगत स्वार्थ के कारण नही है, बल्कि दूसरो के प्रति सचाई, ठीक से काम पूरा करने की तबियत तथा व्यावहारिकता के अभाव से, कानून की अच्छाई मे विश्वास की कमी तथा सार्वजनिक हितो के प्रति उपेक्षा के कारण है।"

श्री फर्थ लिखते है—"समाज के आदेश क्या है, इस सम्बन्ध मे कोई सर्वसम्मत

१. "A Blind Man in a dark room looing for a black cat that is not there." (वही, पृष्ठ ५४, अध्याय ४)

२. वही अध्याय ५, पृष्ठ ७०

३. वही, अध्याय ६, पृष्ठ ९२

४. Raymond Firth–Human Types –पृष्ठ १४१

परिभाषा नही है। आस्टिन के समय से पुरानी न्यायसगत परिभाषा तो यह थी कि समाज के नियमो का उल्लघन करने पर जो दड मिलता था, वही आदेश है। पर आज की विचारधारा मे नयी व्याख्याएँ शामिल हो गयी हैं जिनके अनुसार व्यक्ति या समुदाय निश्चित आदेशो की अवज्ञा करके भी अपने को सही रास्ते पर चलने-वाला साबित कर सकता है। जो लोग समाज मे मनुष्य के जीवन मे रुचि रखते हैं, अनेको सवाल पैदा होते हैं, क्या दूसरे समाजो मे भी आचरण के वैसे ही नियम है। यदि हाँ, तो उनमे से कितने नियम स्पष्टत उस समाज के लोगो द्वारा निर्धारित है, उन नियमो का किस सीमा तक पालन होता है, किस हद तक उल्लघन होता है।"[1]

"रैडक्लिफ ब्राउन ने एक अधिक सही तथा वास्तविक वर्गीकरण किया है। सगठित तथा असगठित आदेशो मे भेद करने के बाद वे यह बतलाते है कि कौन से आदेश नैतिक तथा कर्त्तव्य की परिधि मे है और कौन प्रतिशोध तथा दड के दायरे मे है तथा कौन आदेश धार्मिक परिपाटी की श्रेणी मे है। जो आदेश दड तथा प्रतिशोध के दायरे मे हैं, उन्ही को कानूनी आदेश समझना चाहिए।"[2]

आज का मानव इन्ही "आदेशो" की समस्या मे उलझा चल रहा है। चूंकि उसके सामने "आदेश"[3] स्पष्ट नही है, उसका जीवन भी स्पष्ट नही है। यह समस्या आसानी से हल नही होती दीखती। फिर फ्रैंकेल के शब्दो मे—"यह कहना कि यही समस्या है, यह कहने के बराबर है कि अपराध की समस्या तभी तक है जब तक दड-विधान है, कानून है। तलाक की समस्या तभी तक है जब तक विवाह होता है या सिरदर्द तभी तक है जब तक सिर है।"[4]

इसलिए, जब तक कानून है, अपराध रहेगा। जब तक सिर है, सिरदर्द रहेगा या जब तक मानव है, कामवासना रहेगी, अपराध रहेगा। अत निराश होने से काम नही चलेगा। एक स्वत. सिद्ध दूषित वातावरण मे हमको अधिक से अधिक सावधानी से चलना है। मानव को मानव समझकर काम करना है।

"आज की व्यापक अव्यवस्था "कर्त्तव्य, कानून तथा धर्म मे एक दूसरे के प्रति

१. वही, रेमंड फर्थ—पृष्ठ १३०
२. वही, पृष्ठ १४२
३. आदेश यानी sanctions
४. The Case for Modern Man—पृष्ठ ८७

प्रतिकूलता या विभिन्नता आ जाने के कारण है, जिसने सभ्य समाज में असामंजस्य की जो परिस्थिति उत्पन्न कर दी है वह पिछडे हुए कहे जानेवाले सरल समाजो मे नही है।"[१]

आधुनिक सभ्यता अपनी सभ्यता के बोझ से ही दबी हुई है, परेशान है।

१. Human Types–पृष्ठ १४८

अध्याय १७

बाल अपराधी की समस्या

कतिपय कारणों पर विचार

प्रथम अध्याय मे कामवासना तथा अपराध के सबध पर विचार करते हुए हमने यह दिखलाने का प्रयत्न किया था कि बहुत अंशो तक वासना की भूलों का ही दुष्परिणाम बाल-अपराधी है। आजकल की नित्य नयी खोजो से भी बहुत कुछ यही निष्कर्ष निकलता जा रहा है।

फिलप्पीन के कैथोलिक असोशियेसन के अध्यक्ष फेलिसियानो जोवर लेडेस्मा ने मनीला (राजधानी) के रोटरी क्लब के सामने भाषण करते हुए बाल-अपराधियों की सख्या मे वृद्धि का कारण निम्नलिखित बतलाया—[१]

१. गलत ढग के सिनेमा-चित्र, प्रति १० फिल्मो मे ८ मे डकैती, लूटपाट, कम-उम्र के बच्चो की शरारते, बन्दूकबाज़ी तथा प्रहार के खेल होते हैं जो लडके-लडकियो के मस्तिष्क पर बड़ा बुरा प्रभाव डालते हैं।
२. गन्दे साहित्य, नंगी, भद्दी तसवीरों की बिक्री तथा स्कूल और घर में पहुँच जानेवाली गन्दी कहानियो की पुस्तके उनके मन को गन्दा कर देती हैं।
३ सरकारी अधिकारी (फिलप्पीन के) बच्चो के चरित्र-निर्माण पर ज़रा भी ध्यान नही देते। वे स्कूल से बहुत निकट शराबघर, नाचघर, सिनेमा आदि मे कोई रुकावट नही डालते।
४ पिता-माता या अभिभावक अपने बच्चो की पारिवारिक शिक्षा की कोई चिन्ता नही करते। वे प्राय समझते है कि बच्चो को अच्छा खाना, कपड़ा देना तथा स्कूल भेज देना उनके लिए पर्याप्त कर्त्तव्य हो गया। बच्चों की माताएँ अपने सामाजिक जीवन मे, क्लब तथा पार्टी मे, खेल तथा अन्य

१. "Guide Post" Fortnightly, Manila, Philippines, 15th August, 1958.

मनोरंजनो मे इतनी व्यस्त है कि उनको बच्चो के लिए अवकाश नही है।"

इसलिए, श्री फेलसियानो के मत के अनुसार बाल-अपराध रोकने के लिए यह आवश्यक है कि—

१. गन्दे सिनेमा-चित्र बन्द किये जायँ,
२. अश्लील खेल तथा अश्लील चित्रो पर रोक लगा दी जाय;
३ स्कूल के आसपास सिनेमा, शराबघर, नाचघर आदि बन्द कर दिये जायँ,
४. अभिभावको या माता-पिता को अपनी सन्तान को नैतिक शिक्षा देने की नसीहत देनी चाहिए,
५. स्कूलो मे चरित्र-निर्माण का एक अलग पाठ्य-विषय ही बना दिया जाय,
६ धार्मिक शिक्षा देने का प्रबन्ध किया जाय तथा इसके लिए सविधान में सशोधन किया जाय,
७ स्काउटिग आन्दोलन को प्रोत्साहन दिया जाय,
८ सरकार और सार्वजनिक सस्थाएँ युवको के लिए व्यायामशालाओ तथा खेल-कूद का प्रबन्ध करे।

बालअपराधी तथा परिवार की महत्ता पर हम आगे चलकर विशेष प्रकाश डालेंगे पर यहाँ पर हम एक बात लिख दे। पिता-माता का एक कटु-वचन बालक के ऊपर कितना स्थायी प्रभाव उत्पन्न कर देता है इसकी एक मिसाल हीली ने अपनी पुस्तक मे दी है। उन्होने एक बहुत ही सच्चरित्र तथा सिगरेट आदि दुर्गुणो से रहित ऐसे लडके का ज़िक्र किया है जिसकी उम्र ११-१२ वर्ष की थी। वह अपने पिता के एक वाक्य से एकदम बदल गया। एक दिन, शाम को उसका पिता घर आया। पिता का स्वभाव उस दिन चिड़चिडा हो रहा था। उसने देखा कि लडका पढने के समय आराम कर रहा है। छोटे लडके ने बतलाया कि उसकी तबियत ख़राब है, इसलिए आराम कर रहा है। पिता ने गुस्से से कहा—"झूठ बोलता है। वह मुझसे ज्यादा बीमार नही है।" यह बात जब उस लडके ने सुनी तो उसने सोचा—"अच्छा, मैं झूठ बोलता हूँ, मैं बहानेबाज़ हूँ, ठीक है। मैं यही करूँगा।" और उस दिन से उसका जीवन ही बदल गया। वह निरुद्यमी, आलसी, सिगरेट-पीनेवाला और न जाने कितने दुर्गुणो से युक्त हो गया। पिता की एक गलत तानाज़नी ने उसकी ज़िन्दगी चौपट कर दी और समाज के हाथ से एक भला लडका निकल गया।[1]

१. Healy—Individual Delinquency, Page 396.

चलचित्र का दुष्परिणाम

चलचित्र तथा पारिवारिक जीवन के अवगुणों पर प्रकाश डालते हुए आस्ट्रेलिया से प्रकाशित एक ताज़ी रिपोर्ट मे बडी मार्के की बाते दी गयी हैं। रिपोर्ट मे लिखा है—

"आज़माइशी तौर पर यही कहा जा सकता है कि बच्चो के पारिवारिक जीवन का जैसा भावनामय वातावरण होगा वैसा ही उनके चरित्र के निर्माण पर निश्चित प्रभाव पडेगा।"[१]

इसी लिए आस्ट्रेलिया मे बाल-अपराधी के प्रति बडी उदार नीति बरती जाती है। ३० जून, १९५७ को समाप्त होनेवाले वर्ष मे उस देश मे सरकार के ध्यान में १३७८ ऐसे लडके-लडकियो के मामले आये जो अपने परिवार अथवा माता-पिता की लापरवाही से गलत रास्ते पर चले गये थे। इनमे से ८१२ यानी ५९ प्रतिशत मामलो मे से ५३९, यानी कुल १३७८ का ३९ प्रतिशत, बिना अदालती कार्यवाही के ही निपटा दिये गये। २१४ यानी कुल के १५ ६ प्रतिशत पर अदालती कार्यवाही करनी पडी तथा ६१ यानी ४ प्रतिशत निजी तौर पर हल कर दिये गये अर्थात् लोगो ने व्यक्तिगत रूप से सुधार की ज़िम्मेदारी ले ली।

मद्रास के एक समाजशास्त्री ने मद्रास नगर के बाल अपराधियो की जॉच करके अपनी रिपोर्ट मे लिखा है कि सिनेमा बाल-अपराध का बडा भारी कारण है। उससे केवल निजी उत्तेजना ही नही प्राप्त होती बल्कि सिनेमा के अभिनेताओ का अति धनी होना भी नवयुवक-नवयुवतियो को बडा आकर्षित करता है। सिनेमा से एक लाभ होता है—दिन भर की परेशानी के बाद व्यक्ति "सब झझटो से छुटकारा पा जाता है" और "अपनी स्थिति से भागने का अवसर मिलता है। इसी लिए, बहुत से लोग उपन्यास भी पढते है।"[२]

इस प्रकार बडे-बूढ़े तथा बच्चे, सबको अपनी परेशानी से भागने के लिए सिनेमा एक साधन बन गया है। मद्रास के समाजशास्त्री का कहना है कि धार्मिक चलचित्रों के प्रति बच्चो का आकर्षण और भी ज्यादा इसलिए है कि उनमे पोशाक इत्यादि की अश्लीलता और भी अधिक है।[३] सन् १९५८ की इस रिपोर्ट मे यह भी कहा गया है कि

१. Report by the Minister on the "Child Welfare Department—Australia", for the year ended 30th June, 1957 Page 7.

२. दैनिक Pioneer, अग्रलेख ५ दिसम्बर १९५८.

३. देखिए Film Enquiry Committee Report, India, 1958.

"बाल-अपराध रोकने के लिए जिस प्रकार चलचित्रों के प्रति काफ़ी सख्ती बरतनी चाहिए, उसी प्रकार भग्न-परिवार, माता-पिता की लापरवाही तथा पारिवारिक जीवन की पवित्रता को भी पुनः स्थापित करना ज़रूरी है।

धार्मिक चित्रों में से एक तामिल चित्र की आलोचना करते हुए फिल्म इनक्वायरी कमेटी ने लिखा है कि "सुब्रह्मण्यम (विष्णु) का ब्रह्मा को सीटी बजाकर भद्दे शब्दों में बुलाना अति निन्दनीय है। पार्वती की वेश-भूषा आपत्तिजनक है। नन्दी के प्रति श्रद्धा के स्थान पर अश्रद्धा होती है। नारद और यम तो उनसे कहीं गये-गुज़रे हैं।" फिल्म के नियमानुसार भारत में स्त्रियों की भीतरी पोशाक का प्रदर्शन नहीं हो सकता। पर दूकानों पर भद्दे ढंग से स्त्रियों के वस्त्र बिक्री के लिए क्यों रखे जाते हैं? जब चल-चित्र देवताओं का इतना गंदा रूप खींच सकते हैं तो फिर सामाजिक चित्र नितान्त गन्दे क्यों न हों। यदि इनसे बाल-अपराधी पैदा होते हैं तो दोष समाज का या सरकार का है, न कि बाल-अपराधी का। अपराधी का क्या दोष है जब कि समाज उसके सामने नयी नयी भावनाएँ रोज़ रखता जाता है। ब्रिटिश पार्लमेन्ट की एक प्रसिद्ध कमेटी[१] ने अप्राकृतिक प्रसंग या स्त्री-स्त्री-प्रसंग को अपराध न मानने की सलाह दी है। ऐसे नये नैतिक विचारकों के लिए डा० जी० डी० किलर्पैट्रिक ने आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में एक व्याख्यान में बड़ी मार्के की बात कही—

"इस विश्वविद्यालय के किसी बड़े अध्यापक को पूरा अधिकार है कि हमारे नवयुवकों के मन में निर्दयतापूर्वक ऐसे विचार भर दें जिससे उनका जीवन दुःख और पाप से भर जाय। जो इस मार्ग पर चलता है उसे अपने साथ एक मनोवैज्ञानिक को रख लेना चाहिए ताकि अगर कभी उसकी ऐसी कुचेष्टा की तरफ़ क़ानून का ध्यान जाय तो मनोवैज्ञानिक की आड़ में वह अपनी रक्षा कर सके।" समाज में युवकों को पथ-भ्रष्ट करनेवाले सिद्धान्त-प्रचारक, चल-चित्र तथा भग्न परिवार, इन सब के साथ पूरी सख्ती बरतनी होगी। तब जाकर बाल-अपराधियों की संख्या में सुधार हो सकेगा।

बाल-अपराधों में वृद्धि

समाज में उत्पन्न दूषित वातावरण के कारण ही चारों ओर बाल-अपराध बढ़ता

१. Wolfenden Committee's Report, 1958.

२. G. D. Kilpartick, Dec., 1958.

जा रहा है। ब्रिटेन मे बाल-अपराध की वृद्धि पर दो रिपोर्टो से बड़ी खेदजनक जानकारी होती है।[१] इनका साराश है—

"सन् १९४८-५६ के बीच मे १४ से १६ वर्ष के बच्चों मे शराब पीकर उन्मत्त हो जाने का अपराध ८ गुना अधिक बढ गया और १७ से २० वर्ष के युवक-युवतियो मे चौगुना अधिक हो गया। अपेक्षा की जाती है कि सन् १९५७ मे २१ वर्ष से नीचे के लडको मे नशाखोरी के अपराध मे १३ प्रतिशत वृद्धि सन् १९५६ की तुलना मे होगी। इसी अवधि मे सब उम्र के लोगो मे नशाखोरी के अपराधो मे ११ प्रतिशत की वृद्धि होगी। ऑकडो मे, सन् १९५७ मे इस प्रकार के अपराध मे ५,८०० लडके तथा ६७,००० सब उम्र के लोग दण्डनीय होंगे।"

"इन्ही उम्र के लड़को मे हिसात्मक अपराधो की संख्या दुगुनी हो गयी है। सन् १९५४ से ऐसे अपराधो की संख्या तिगुनी हो गयी है। नशेबाज़ी के अपराध, लडकियो मे लडको की तुलना से अधिक बढे है। १४-१८ वर्ष की लडकियो मे गर्भवती होनेवालो की सख्या बहुत बढ गयी है तथा १४-२० वर्ष की उम्र के बीच मे नाजायज़ बच्चे पैदा करनेवाली लडकियो की सख्या इस उम्र से अधिक की स्त्रियों के नाजायज़ बच्चो से कही अधिक है।"

सन् १९०७ मे इग्लैण्ड मे प्रोबेशन कानून (प्रोबेशन अफसर की निगरानी में छोडने का नियम) पास हुआ था। हर्बर्ट ग्लैडस्टन उस समय गृहसचिव थे। उपसचिव थे हर्बर्ट सैमुयेल (बाद मे वाइकौट सैमुयेल)। उन्होने १९०८ मे पार्लमेन्ट मे "बाल-अधिनियम" पेश किया था। उसमे १३० धाराएँ थी। उसी अधिनियम के अनुसार ग्रेट ब्रिटेन मे चारो ओर बाल-अपराधियो के लिए विशेष अदालते स्थापित हुईं। इन अदालतो के पचास वर्ष पूरे होने पर वाइकौट सैमुयेल ने एक विशेष लेख लिखा था। उसमे वे बडे रोचक ऑकडे देते है।[२] उनका कहना है कि पिछले निर्दय दडविधान को बदलने से तथा अच्छे सुधारक नियम चालू करने से इग्लैण्ड तथा वेल्स मे जेलो मे कैदियो की सख्या काफी घट गयी। सन् १९०५ मे २१,००० बन्दी जेलों मे थे। १९१८ मे ९,००० ही रह गये। फलत. ब्रिटेन के आधे जेल बद कर दिये गये। पर, प्रथम महा-

१. Two Reports of the Christian Economic and Social Research Foundation, 1957, 1958.

२. Children & Crime—50 Years of Juvenile Courts–By Viscount–Samuel–The Sunday Times, London, 2nd March, 1958

युद्ध के बाद से ही जेलो की सख्या बढने लगी। दडनीय अपराधो के लिए दडित सभी उम्र के पुरुषो की सख्या सन् १९३८ मे ६८,००० थी और १९५७ मे १,०२,००० हो गयी। सन् १९३७ मे दड देने योग्य ३,००,००० अपराधो का पता लगा था। सन् १९५१ मे इनकी सख्या ५,००,००० से ऊपर हो गयी और सन् १९५७-५८ के वर्षों मे ४,८०,००० का वार्षिक औसत है।

१९३८ मे पुरुष बाल-अपराधियो की संख्या ३६,००० थी। ८ वर्ष से २० वर्ष की उम्र के भीतर सन् १९५६ मे यह सख्या बढकर ४९,००० हो गयी।

सयुक्त राज्य अमेरिका ऐसे धनी देश मे जहाँ रोज २०,००० नयी मोटरे तथा १०,००० टेलीविजन के सेट बनते और बिक जाते है, अपराध की सख्या बेतहाशा बढती जा रही है। समाजशास्त्री डा० टप्पन का कहना है कि "अमेरिका की सास्कृतिक भूमि मे अपराध की जडे बहुत नीचे तक चली गयी है। अत्यधिक सासारिकता तथा भौतिक सुखो के पीछे पडे रहने के कारण, राजनीतिक सत्ता के प्रति स्वाभाविक उपेक्षा के कारण, व्यापारिक तथा राजनीतिक अत्यधिक प्रतिद्वन्द्विता के कारण, जीवन के मूल्याकन मे परस्पर विरोधी भावनाओ के कारण, तथा सामाजिक नियमो के प्रति उच्छृङ्खल भावना के कारण और आचरण की मर्यादा मे बराबर ह्रास होने के कारण वहाँ अपराध बढते जा रहे है।"[१]

परिणाम यह हुआ है कि अमेरिकन सरकार की रिपोर्ट के अनुसार,[२] उस देश मे प्रति ११ ३ सेकेन्ड पर एक बडा अपराध होता है। प्रति ३·९ मिनट पर एक हत्या, एक कत्ल, एक घातक प्रहार अथवा बलात्कार का मामला होता है। सन् १९५७ मे सरकार की जानकारी मे २७,९६,४०० अपराध हुए। यानी पिछले पॉच वर्षों के औसत पर २३ ९ प्रतिशत की वृद्धि हुई। कुल मिलाकर एक वर्ष मे लगभग २०,००,००० व्यक्ति गिरफ्तार किये गये जिनमे १४,०५,९६७ गोरे लोग तथा ६,१८,०२८ नीग्रो थे। हर १०० अपराधियो मे १ स्त्री अपराधिनी थी।

ऐसे भयंकर वेग मे, अपराध की ऐसी बाढ मे, सयुक्त राज्य अमेरिका मे बाल-अपराध की सख्या यदि बेतहाशा बढ रही हो तो आश्चर्य क्या है! ब्रिटिश पार्लमेन्ट

१. Juvenile Delinquency in North America—Survey for the United Nations–Page 134. Report–By Dr. Paul W. Tappan, Professor of Sociology, New York University.

२. Federal Bureau of Investigations, U S. A. Govt., 1958.

के सदस्य श्री मौटगोमरी हाइड ने सयुक्त राज्य अमेरिका की यात्रा करने के बाद लिखा है[1] कि वहाँ कम से कम प्रति वर्ष दस लाख बाल-अपराध होते है—यानी कुल २० लाख अपराधियो मे आधे अपराधी ८ से २० वर्ष की उम्र के भीतर के होते है। न्यूयार्क नगर मे ही, सन् १९५७ मे बच्चो ने ३० हत्याएँ की। इन हत्याओ के कारणो से ही पता चल जाता है कि आज वहाँ का शिशु से लेकर नवयुवक तक का समाज कितना उच्छृखल हो गया है। चौदह वर्ष के एक लडके ने, न्यूयार्क मे ही, ८ वर्ष के एक बच्चे को पेड से लटकाकर मार डाला। कारण पूछने पर उसने कहा कि "मन मे ऐसी ही तरग उठी।" कैलिफोर्निया के सैक्रामेटो नगर मे १४ वर्ष के एक बडे प्रतिभाशाली विद्यार्थी ने १० वर्ष की एक लडकी को हथौडे से मार मारकर खत्म कर दिया, इसलिए कि उसकी "किसी को मार डालने की इच्छा" बडी तीव्र हो उठी थी। न्यूजरसी में १४ वर्ष के एक लडके ने ११ वर्ष के एक बच्चे का गला घोटकर इसलिए मार डाला कि उस बच्चे ने उसे "बुजदिल" कह दिया था। न्यूजरसी मे ही १७ वर्ष की एक लडकी ने १० वर्ष के अपने छोटे भाई को इसलिए मार डाला कि उसके माता-पिता उसकी तुलना मे उस लडके से ज्यादा प्रेम करते थे। सन् १९५८ के शुरू महीने मे ही न्यूयार्क नगर मे १८-१९ वर्ष के एक नवयुवक ने १५ वर्ष के एक रोगी बच्चे के पेट मे छुरा भोककर मार डाला और जब वह अभागा बच्चा दम तोड रहा था, हत्यारे ने उससे कहा "अनेक अनेक धन्यवाद।" पुलिस को उसने बयान दिया कि "बहुत दिनो से मेरी इच्छा थी कि किसी के पेट मे छुरा भोकू ताकि देखे, कैसा लगता है।"

जिस देश मे बच्चो मे इतनी क्षुद्र प्रवृत्तियाँ घर कर जाती है, उसकी समस्या बहुत ही गम्भीर होगी। न्यूयार्क के ९०० स्कूलो के प्रधानाध्यापकों ने सितम्बर-अक्टूबर, १९५८ मे अपने स्कूलो से ५४४ लफगे विद्यार्थियो को निकाल बाहर किया।[2] उनका निश्चय था कि वे आपस के और किसी स्कूल मे दाखिल नही किये जायेगे। इतने बच्चो को स्कूल से निकालने पर भी इन प्रधानाध्यापको का कहना है कि लफगे विद्यार्थियो या छात्राओ की केवल एक प्रतिशत सख्या ही निकाली गयी है। जिस देश मे केवल एक साल मे ४४०० अबोध शिशु केवल इसलिए मोटर गाडियो के नीचे कुचल गये कि उनके माता-पिता ने उन्हे सभाल कर अपने पास नही रखा—जिस देश मे

१. "A Million Young Offenders',—By H Montgomory Hyde, M. P Sunday Times, 22nd December, 1958.

२. रायटर का संवाद, दिसम्बर १९५८

३६० बच्चे एक ही साल मे, कम उम्र मे साइकिल चलाने का अभ्यास करने मे गिर कर मर जाते हो,[१] वहाँ की स्थिति के बारे मे क्या कहा जाय ?

बाल-अपराध इतना क्यो बढ रहा है, तथा इसका क्या कारण है, यह बात आसानी से न तो समझी जा सकती है और न समझायी जा सकती है। बिल वाघम ने बड़ी पते की बात कही है कि "सृष्टि का क्षिति-मडल बाल-अपराध के समान है। हम इसका जितना पता लगाते है उसकी वास्तविकता से उतनी ही दूर प्रतीत होते है।"।[२]

अस्तु, बाल-अपराध मे वृद्धि के सम्बन्ध मे हम बहुत अधिक आँकडे न दे सकेंगे। इसके लिए सामग्री उपलब्ध नही है। सयुक्त राष्ट्र सघ ने सन् १९५३ से १९५६ के बीच मे, बाल-अपराध के सम्बन्ध मे प्रत्येक देश की स्थिति की छानबीन कर छ. भागो मे अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की है। पर इतने महत्त्वपूर्ण प्रकाशन में बाल-अपराध के वास्तविक आँकडे ही नही है। भारत मे भी प्रत्येक प्रदेश के आँकडे उपलब्ध नही है। अखिल भारतीय अपराध-निरोधक समिति ने राज्य की सरकारो को पत्र लिखकर कुछ आँकड़े एकत्रित किये है पर वे भी अधूरे है।

उत्तर प्रदेश मे हर प्रकार के जेलो को मिलाकर जेलो की सख्या ६२ है। सन् १९५८ में इनमे २,४२,९४३ कैदी रखे गये थे। इनमे विचाराधीन तथा सजायाफ्ता शामिल है। सजायाफ्ता कैदियो की संख्या ८६,४५३ तथा विचाराधीन बदियो की सख्या १,३२,४४५ थी। बाल-अपराधियो की सख्या २३,५९९ थी।[३] मद्रास मे ४ अप्रैल १९५९ को उनके कुल ११४ जेलो मे १४,४८२ दडित कैदी, १,२६५ विचाराधीन कैदी तथा बाल-अपराधी एक भी नही था[४]—इसका अर्थ यह है कि जेलो मे बाल-अपराधियो को नही रखा गया था। बम्बई के प्रदेश मे पुलिस की १०६२ हवालातों को मिलाकर १४५३ जेल है। ३१ दिसम्बर १९५८ को इनमे सब प्रकार के दंडित अपराधी १३,५७८ थे। ५८३५ विचाराधीन कैदी थे। बाल-अपराधियो की सख्या ८४७ थी।[५] बम्बई मे, मद्रास की तरह, अधिकाश बाल-अपराधी जेल मे नही रखे जाते,

१. True Story, 1958.

२. Readers' Digest, Oct., 1958

३. प्रधान कारागार निरीक्षक, उत्तर प्रदेश, पत्र सं० १३२३४–१२ मई, १९५९

४. मद्रास सरकार का पत्र सं० ४०५४६. २१ अप्रैल १९५९

५. प्रधान कारागार निरीक्षक, बम्बई का पत्र सं० ६२२, १७ जून १९५९

उनके लिए अलग सुधारगृह आदि है। बम्बई प्रदेश मे बच्चो के लिए २८ बाल-अपराधी अदालतो को मिलाकर १८४ सुधार-सस्थाए सन् १९५७ मे थी। १९५८ मे इनकी सख्या १९२ हो गयी। ३१ मार्च १९५७ को इनमे ६८१५ पुरुष बाल-अपराधी तथा २५१४ महिला बाल-अपराधी थे। ३१ मार्च,१९५८ को यही सख्या क्रमश ७७९० तथा २६९९ हो गयी। यानी एक वर्ष मे ही अपराधी काफी बढ गये थे। केरल प्रदेश मे पुलिस विभाग की रिपोर्ट है कि सन् १९५६ मे दडनीय अपराधो की सख्या ८७४५ थी तथा सन् १९५७ मे १०,४६१ यानी १९ ६ प्रतिशत की वृद्धि हुई। २५६ हत्याएँ हुईं। सन् १९५६ मे १६७ ही थी यानी ५९ प्रतिशत वृद्धि हुई। इनमे से २५ हत्याएँ कामुक वासना क कारण, ३४ हत्याएँ पारिवारिक झगडो के कारण, ६ दलबदी के कारण तथा १९१ अन्य कारणो से हुईं। किन्तु बाल-अपराधी की सख्या मे कमी हुई। सन् १९५६ मे २११ तथा १९५७ मे १४७।[१] आसाम मे बाल-अपराधियो की सख्या का पता तो नही चलता है पर यह अवश्य है कि आसाम हाईकोर्ट की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार सन् १९५५ मे, उस प्रदेश मे नागा क्षेत्र को छोडकर, नये और पुराने दडनीय मुकदमो की संख्या ६३,९३३ थी पर १९५६ मे ७१,७९५ हो गयी।[२] मध्य प्रदेश के कुल ७६ जेलो मे ३१ मार्च, १९५९ को ५१६३ पुरुष तथा ७२ महिला दंडित कैदी, क्रमश २५७५ तथा ६० विचाराधीन तथा ३० बाल-अपराधी थे।[३]

फिलप्पीन के कारागार विभाग के मुख्य सचालक श्री अलफ्रेड एम० बुनी ने सयुक्त राज्य अमेरिका के प्रसिद्ध अपराधी नगर शिकागो मे पत्र-प्रतिनिधियो से कहा था— "जिस प्रकार शिकागो मे बाल-अपराधी बढते जा रहे हैं उसी प्रकार फिलप्पीन द्वीप समूह मे भी। २० वर्ष से कम उम्र के बच्चो मे अपराध बहुत बढ गया है, और अपराध भी इस प्रकार का जिसका कोई कारण नही है। वे बिना कारण हत्या कर डालते हैं। वे बहुत से ऐसे अपराध करते है जिनका कोई कारण भी समझ में नही आता।"[४]

१. Administration Report of the Police Deptt. Govt. of Kerala, 1957–Page 7.

२. Report of the Administration of Criminal Justice in the State of Assam, 1956–Part I.

३. डिप्टी सेक्रेटरी, मध्य प्रदेश सरकार का पत्र सं० १४६५, ११ जुलाई १९५९.

४. "The Chicago American", May 24, 1958.

अध्याय १८

बाल अपराधी कौन है ?

"बाल" का अर्थ

बाल-अपराध के विषय मे और गहराई मे उतरने के पूर्व हमे यह जान लेना चाहिए कि बाल-अपराधी कहते किसे हैं तथा "बाल" से तात्पर्य क्या है ? जहाँ तक उम्र का सम्बन्ध है, भारत, पाकिस्तान, बर्मा तथा लका मे "७ वर्ष की उम्र से नीचे के बच्चे द्वारा किया गया कोई भी कार्य अपराध नही है।"[१] इन्ही देशो के दडविधान के अनुसार ७ से १२ वर्ष के बच्चो द्वारा किया गया कोई भी कार्य तब तक अपराध नही होगा जब तक कि उनमे इतनी समझ न आ जाय कि वह कार्य क्या है तथा उसका परिणाम क्या होगा।"[२] फिलप्पीन मे "९ से १५ वर्ष के भीतर बच्चे तब तक अपराधी नही है जब तक यह न मालूम हो जाय कि उन्होने भला-बुरा सोचकर वह कार्य किया है।[३] थाईलैण्ड (स्याम) मे "पूरे ७ तथा पूरे १४ वर्ष की उम्र के बीच के" लड़के-लड़कियो को "शिशु" तथा "१४ से १८ के बीच को "बाल" कहते हैं।[४] भारत मे बंगाल, मद्रास तथा बम्बई मे सन् १९२४ के बाल-अधिनियम के अनुसार ७ से १४ वर्ष को शिशु तथा १४ से १६ (अब १८) को "बाल" कहते हैं। भारत तथा पाकिस्तान मे सुधार-गृह मे १५ वर्ष से कम उम्र के बच्चो को रखते है। जापान मे "२० वर्ष से नीचे लडका या लड़की बाल-अवस्था का समझा जायगा।"[५] जापान तथा भारत के नियम मे एक बड़ा अन्तर है। बर्मा, पाकिस्तान, भारत, लका मे—भारत मे बम्बई

१. भारतीय, पाकिस्तान तथा बर्मी दंडविधान की धारा ८२ तथा लंका की ७५

२. वही क्रमशः ८३ तथा ७६

३. फिलप्पीन दंडविधान, धारा १२, उपधारा ३

४. १९५१ का थाई दंडविधान, धारा ४

५. जापानी बालविधान, धारा २

प्रदेश छोड़कर—यह नियम है कि अदालत तथा सरकार के लिए अपराधी की उम्र दंड के समय की उम्र मानी जायगी, न कि अपराध करने के समय की उम्र। फिलप्पीन, जापान तथा थाईलैण्ड मे ऐसा नही है। थाईलैण्ड मे बाल-अधिनियम की धारा २ के अनुसार यदि मुकदमा चलने के दौरान मे निश्चित उम्र पार भी कर गया हो, तो भी वही बाल-अधिनियम लागू होगा। बम्बई प्रदेश मे भी यही नियम है।

सऊदी अरब तथा यमन मे कुरान शरीफ तथा शरियत के अनुसार शासन होता है। वहाँ १२ से नीचे के बच्चे अपराधी नही समझे जाते। १२ से १५ तक नवयुवक या नवयुवती तथा १७ से १८ वर्ष को बालिग होना मानते है। इसलिए १२ से १८ वर्ष के बीच के अपराध को बाल-अपराध मानते है, जार्डन मे ९ से १८ वर्ष। मिस्र, सीरिया (अरब गणतत्र), लेबनान और ईराक मे ७ वर्ष के नीचे के शिशु को अपराधी नही मानते। मिस्र के तथा जार्डन के दडविधान मे "बाल-अपराधी" तथा "बाल आवारा" मे अन्तर कर दिया गया है।[१] ८ अगस्त १९४९ के सशोधित नियम १२४ के अनुसार बाल आवारा की उम्र १८ वर्ष तक की मिस्र मे निश्चित की गयी है। बाल-अपराधी वह है जिसने "ऐसा कार्य किया है जिससे नियम की अवज्ञा हुई है तथा जो कार्य "अपराध" हो सकता है, दुर्व्यवहार या नियमो का उल्लघन हो सकता है। बाल-आवारा, मिस्री दडविधान, धारा १२४ के अनुसार वह है जिसकी उम्र १८ वर्ष से कम है तथा जो—

१ भीख माँगता है—सडक पर निरर्थक चीजे बेचता है या कसरती खेल दिखाता रहता है,

२ सडक पर से जले हुए सिगरेट के टुकडे या अन्य फेकी हुई चीजे बटोरता है;

३ वेश्यावृत्ति, सभोग के अन्य अपराधो, जुआ आदि मे रत है या ऐसे अपराधियो का साथ देता है,

४. लफगो, गुण्डो का साथ देता है या बदनाम लोगो का साथ देता है,

५ दुश्चरित्र है, अपने माता-पिता या अभिभावक के नियत्रण के बाहर है,

६. जिसके रहने का कोई निश्चित स्थान नही है तथा जो आदतन सडको पर सो रहता है,

१. Comparative Survey on Juvenile Delinquency—Part V. Middle-East—Published by the United Nations-Department of Social Affairs, New York, 1953—Page 2.

७ जिसके अभिभावक या माता-पिता मर गये हैं, जेल मे हैं या लापता है तथा जिसकी जीविका का कोई वैध सहारा नही है।

जार्डन मे बाल-आवारा की उम्र अधिकतम १८ पर कम से कम १५ होनी चाहिए तथा बाल-अपराधियो मे शामिल है—

१. मादक द्रव्य सेवी, बारबार अपराधी तथा अयोग्य अभिभावको की देखरेख मे रहनेवाले बच्चे;
२. आदतन चोर या वेश्या का साथी,
३. वेश्या के मकान मे रहनेवाला या रहनेवाली, सभोग करानेवाला या वाली या अप्राकृतिक व्यभिचार का सन्देह जिस पर हो।

इस प्रकार बाल-अपराधी की उम्र मे जो बडा अन्तर मुसलिम देशों मे है, वह इस तालिका से प्रकट हो जायगा —

देश	कम से कम उम्र	अधिक से अधिक उम्र
मिस्र	७	१५
ईरान	११	१८
ईराक	७	१५
जार्डन	९	१८
लेवनान	७	१५
सीरिया	७	१५
सऊदी अरब तथा यमन	१२-१५	१७-१८ (बालिग)

पर मध्यपूर्व के अनेक देशो मे शिशुकाल को छोडकर केवल बालकाल तथा नवयुवक-नवयुवती को बाल-अपराधी मानते हैं। मिस्र, सीरिया, लेबनान, ईराक में शैशवकाल—जिसकी उम्र नीचे दी जाती है—को भी अपराध का काल मानते हैं पर तुर्किस्तान तथा ईरान मे केवल बाल तथा नवयौवनकाल को ही अपराधी श्रेणी मे रखते हैं। इस प्रकार उम्र का विभाजन नीचे की तालिका से स्पष्ट होगा—

देश	शैवशकाल	बाल्यकाल	नवयौवन
मिस्र	७—१२ वर्ष	१२—१५	१५—१७
ईरान	११ वर्ष तक	११—१५	१५—१८
ईराक	७—१२	१२—१५	१५—१८
जार्डन	९—१३	१३—१५	१५—१८

देश	शैशवकाल	बाल्यकाल	नवयौवन
लेवनान	७—१२	१२—१५	१५—१८
सीरिया	७—१२	१२—१५	१५—१८
तुर्किस्तान	११ वर्ष तक	११—१५	१५—१८

सऊदी अरब तथा यमन में दो प्रकार के "बाल" माने जाते हैं, एक वह जो भले-बुरे की पहचान न कर सके। दूसरा वह जो ऐसी पहचान कर सके। ऊपर की तालिका से एक बात स्पष्ट है। ईरान तथा तुर्किस्तान मे "अबोध" बच्चे की उम्र ७ वर्ष तक न मान कर ११ वर्ष तक की मानते है। सभी देशो मे इस बात का ध्यान रखा गया है कि किस उम्र मे या किस अवस्था मे भले-बुरे की पहचान होने लगती है या हो सकती है। इसी को बाल-अपराध का बहुत बडा आधार माना गया है।

पश्चिमी देशो मे भी "अपराध के पूर्व की उम्र" यानी अपराध की ओर झुकता हुआ बाल-काल का सिद्धान्त मान लिया गया है। यह उम्र सभी देशो मे एक समान नही है। यह आगे चलकर मालूम होगा पर उसकी व्याख्या इस प्रकार है कि "निश्चित उम्र का व्यक्ति जिसने कोई अपराध नही किया है पर अपने व्यवहार से वह ऐसा प्रतीत होता है कि अपराधी हो सकता है।"

अपराधी मनोवृत्ति

पश्चिमी देशो मे, जहाँ बालसुधार के काम के लिए अधिक पैसा तथा अधिक कला और ज्ञान भी है, इस समस्या पर काफी समय तथा द्रव्य खर्च होता है। वहाँ बाल-अपराधी को दो भागो मे बाँट दिया गया है। एक वह बालक या बालिका जिसने कोई अपराध नही किया हो पर जिसके स्वभाव तथा वातावरण को देखकर यह भय पैदा हो रहा हो कि वह अपराधी बनेगा या बनेगी। दूसरी श्रेणी अपराध करनेवालो की है।

आस्ट्रिया मे बाल-कल्याण अधिनियम, १९५४[१] के अनुसार शरीर तथा नैतिकता में दुर्बल बच्चो को विशेष शिक्षा देने के लिए प्रोवेशन के अन्तर्गत, या सरकारी स्कूल या सुधार-पाठशालाओ या समाज-कल्याण की संस्थाओ मे भर्ती कर देते हैं। कभी कभी ऐसे बच्चो को बालिग होने तक ऐसी सस्थाओ मे रहना पडता है। बेल्जियम मे[२]

१. Jugendewohlfahrtagesetz.

२. Loi Sur La Protection De La Enfance.

ऐसे लडके-लडकियो को प्रोवेशन मे या "बन्द" पाठशालाओ मे भर्ती कर देते है जो "घरेलू जीवन मे अपनी बुरी चाल-चलन से या सयम के अभाव के कारण अपने माता-पिता या अभिभावको के लिए एक समस्या बन गये हो। इनकी उम्र १८ वर्ष से कम होनी चाहिए या १६ वर्ष से कम उम्र के हो जो अपने जीवन को वेश्यावृत्ति, जुआ, लफगापन, अपराध आदि की तरफ ले जा रहे हो।" फ्रास मे ३० अक्टूबर सन् १९३५ के कानून के मुताबिक तथा सन् १९४५ के सशोधन के अनुसार ऐसे बच्चो की देखरेख का विशेष प्रबध है जिनके माता-पिता सरकार को यह रिपोर्ट करे कि उनके बच्चे मे अपराध करने की प्रवृत्ति उत्पन्न हो रही है।

पश्चिम जर्मन प्रजातन्त्र मे २८ अगस्त १९५३ के अपने कानून[१] के मुताबिक १८ वर्ष की उम्र के जिन बच्चो मे शारीरिक, मानसिक या नैतिक उपेक्षा के कारण कोई कमज़ोरी आ गयी हो, उनके सरक्षण का भार राज्य को लेना पडेगा। यूनान के सन् १९५० के दडविधान के अनुसार ७ से १२ वर्ष की उम्र के ऐसे बाल-अपराधियो के लिए, जिन्होने अपराध तो किया है, पर जो अपने काम की बुराई को ठीक से नही समझते हैं, विशेष सस्थाओ मे रखने का प्रबंध है। आयरलैण्ड मे सरकार १५ वर्ष से नीचे के उन बच्चो को अपनी निगरानी मे ले लेती है जो मशहूर चोर या वेश्याओ के साथ रहते पाये जाते है। इज़रायल मे १६ वर्ष से कम उम्र के बच्चे, जिनको सरकारी निगरानी मे रखना चाहिए, प्रोवेशन अफसरो द्वारा बाल-अपराधी अदालतो मे ले जाये जाते है। इटली तथा नीदरलैन्ड्स[२] मे भी १६ वर्ष तक की उम्र के बच्चो के लिए यही नियम है। स्वीडन, नार्वे, फिनलैण्ड तथा आइसलैण्ड मे अपराधी तथा गैर-अपराधी दोनो को निगरानी मे रखने, शिक्षा देने आदि का नियम है। डेन्मार्क का सन् १९५१ का कानून है कि "यदि कोई लडका या लडकी अपने घर मे माता-पिता का कहना न मानता हो, उसके अभिभावक उसे शिक्षित करने मे असमर्थ हो—यानी उनके पास साधन न हो—या बच्चा ही उद्दड हो—तो सरकार उसे अपनी निगरानी मे ले लेगी। स्वीडन मे यदि १६ वर्ष से नीचे के लडको मे कोई खराबी देखी जाती है तो माता-पिता को सख्त चेतावनी दी जाती है तथा बच्चे को भी। यदि माता-पिता मे अनैतिकता के कारण बच्चे पर बुरा प्रभाव समझा जाता है तो चेतावनी और कठोर हो जाती है। स्विट्जर-लैंड मे भी "नैतिक

१. Reichsgesetz Fur Jugendwohlfahrt.

२. Burgerlijk Wetbock, 1838.

खतरे" मे से बच्चो का उद्धार करते हैं। इग्लैण्ड, स्काटलैण्ड तथा वेल्स में बाल-अपराधी तथा बाल-अपराधी-वृत्ति को रोकने के लिए अनेक नियम तथा उपाय है, जिनका ज़िक्र हम आगे करेंगे।[1]

विशेष व्यवहार का प्रश्न

अध्याय के प्रारभ मे हमने "बाल अपराधी" की उम्र की व्याख्या की है। समाज के नियमो को तोडनेवाला "अपराधी" हुआ। पर अपराधी की भी श्रेणियाँ होती हैं और आधुनिक समाज ने उसकी व्याख्या कर दी है। प्राय सभी देशो ने कम से कम १७ या १८ वर्ष तक की उम्र के अपराधी को "बाल-अपराधी" कह कर उसके साथ विशेष व्यवहार तथा विशेष प्रकार का दंड या सुधार-प्रणाली को अपनाने का नियम बनाया है। किन्तु ऐसा करने मे समाज को सैकड़ो वर्ष लग गये। आसानी से वह यह मानने को तैयार नही हुआ कि बालिग और नाबालिग के अपराध और कार्य मे किसी प्रकार का अन्तर है।

ब्रिटिश कानून का यह महान् सिद्धान्त है कि "कानून की जानकारी न होने से कोई अपराध क्षमा नही हो सकता।" प्रत्येक के लिए वह समान रूप से सब देशो मे लागू था। फिर भी अदालते किसी न किसी रूप मे, दड देते समय, यह साबित करने की चेष्टा करती थी कि "यह अपराध जान-बूझ कर किया गया है।" कानून चाहे उनसे इस प्रकार की सफाई न भी माँगता रहा हो पर उनके मन मे चोर रहता ही था कि "बिना बुरी नीयत के किया गया कोई भी काम अपराध नही है।"

ब्रिटेन के सन् १९२२ के कानून के अनुसार[2] १३ से १६ वर्ष की उम्र की कन्या के साथ प्रसग जघन्य अपराध है। पर यदि अपराधी २३ वर्ष की उम्र से नीचे का है और उसका पहला अपराध है तो वह यह सफाई दे सकता है कि उसने लडकी की उम्र १६ वर्ष से अधिक समझी थी। पर सन् १८७५ मे लन्दन मे ऐसी ही एक कन्या को अनैतिक कार्य के लिए उसके घर से भगा लाने का अभियोग एक व्यक्ति पर लगा।

१. Children & Young Persons Act of England, 1952! Criminal-Justice Act, 1949—Scotland.

२. Criminal Law Amendment Act, 1922 (12 and 13, Geo, 5, 6–56– section 2)

उसने यही सफाई दी कि उसकी समझ में लड़की १६ वर्ष की उम्र से ज्यादा थी। जूरी लोगों की भी यही राय थी कि अभियुक्त सच्ची नीयत से यही समझता था कि लड़की १६ से ज्यादा है। पर विचारपति ब्रेट अपनी राय पर अड़े रहे और अन्त में अदालत ने बहुमत से इस सफाई को मानना अस्वीकार कर दिया और दंड देते समय कहा कि "कोई भी व्यक्ति यदि किसी अविवाहिता कन्या को उसके माता-पिता से बिना पूछे ले आता है तो उसे यह ख़तरा उठाने के लिए तैयार रहना चाहिए कि उसकी उम्र १६ से कम की साबित हो जायगी।"[१]

किन्तु बाल-अपराध के बारे में इतनी छानबीन पहले नहीं होती थी। अभी तक इतने सुधार के बाद भी यही शिकायत है और पहले तो बहुत अधिक थी कि हम बाल-अपराधी के मामले में सही तरीक़ा नहीं अपनाते थे। उनका "अपराध" समझने का भी ठीक से प्रयत्न नहीं होता था। सर विलियम क्लार्क हाल ने बड़ी मार्के की बात कही है। वे बाल-अपराधियों को विशेष अदालतों के सामने लाने के पक्षपाती थे। वे कहते हैं।[२] "असली बात तो यह है—और ऐसी बात है जिसे हमारे व्यवस्थापक एक न एक दिन समझ जायँगे—कि बाल-अपराधियों के लिए मुक़दमा करने के तरीक़ों को सरल बना देने से ही हम इस समस्या की तह तक नहीं पहुँच सकेंगे। जब तक हम बच्चों को "अपराधी" समझते रहेंगे, तब तक हम केवल यही प्रबंध करके प्रसन्न रहेंगे कि उनकी कम-उम्री का लिहाज करके उनके अपराध की समीक्षा हो, हम बाल अपराध की समस्या का वास्तविक उपाय नहीं कर सकेंगे। अपराध के निर्णय के लिए कोई नाटकीय प्रबन्ध करने से बेहतर है दुष्प्रवृत्तियों की रोकथाम करने के लिए सही उपाय सोचना...।"

जेल क्यों भेजें ?

ऐसे ही उपायों में प्रोबेशन की प्रणाली भी है। बाल-अपराधी को जेल न भेजकर प्रोबेशन अफ़सर या अभिभावक की निगरानी में छोड़ दिया जाय। इंग्लैण्ड में जब सन् १९२२ में यह नियम बना कि छोटे-मोटे अपराधों पर जेल का दंड न देकर, आर्थिक

१. Mens Rea in Statutory Offences—Macmillan & Co., 1955—Page 59.

२. "Children's Courts" by Sir William Clarke Hall—Pub. George—Allen & Unwin Ltd., London, Page 64

दड दिया जाय और जुर्माना जमा करने के लिए भी मियाद दी जाय तो लोगो ने, यानी कानूनी दुनिया ने इसे "क्रान्तिकारी सुधार" समझा था। सन् १९२५ मे लन्दन में अन्तर्राष्ट्रीय दड-सम्मेलन हुआ।[१] उसमे "सबको एक ही प्रकार की सजा देने या अल्पकालीन जेल की सजा" के विरुद्ध बोलते हुए, ब्रिटेन के प्रधान न्यायाधीश बेरी के लार्ड हिवर्ट[२] ने कहा था—

"हमारी यह राय नही है कि जेल भेजने की सजा समाप्त कर दी जाय या उसका जो ध्येय है, वही समाप्त हो जाय। समस्या यह है कि उचित मामलो मे एक ऐसा वास्तविक तथा सही सन्तोषजनक तरीका अपनाया जाय जिससे आज जो काम जेलों के द्वारा पूरा हुआ समझा जाता है, वही काम बाहर हो सके। हमे पूरे समाज की रक्षा तथा उसके हितो की ओर देखना है। हमे यह देखना है कि हममे से एक ने जो भूल की है, वही भूल और लोग न करे . . अन्ततोगत्वा यह ध्यान रखना चाहिए कि समाज कुछ वर्गों को मिलकर नही, बल्कि व्यक्तियो से बनता है और हमको हर एक व्यक्ति को, उसके गुण-दोष के अनुसार देखना पडेगा . . आम तौर से जो बात लोग ठीक से नहीं समझते वह यह है कि अपराधी तैयार करने का सबसे अच्छा तरीका है बाल-अपराधियो को अनायास जेल भेज देना . जहाँ पर वे ऐसे मनुष्यो तथा उपायो से परिचित हो जाते है जो उन्हे सदा के लिए नष्ट कर देते हैं. . . उन पर बड़ी भारी जिम्मेदारी है जो किसी लडके या लडकी को, या यो कहिए कि किसी पुरुष या स्त्री को पहली बार जेल भेजते हैं।"

बहुत काफी ठोकर खाने के बाद ब्रिटेन के प्रधान विचारपति या उनके साथियों ने यह बात समझी। ग्रेट ब्रिटेन मे पुराने जमाने मे, नाजुक से नाजुक उम्र का बच्चा कानून की अवज्ञा करने पर जेल भेज दिया जाता था। जेल मे जाकर वह "अपराधों की पाठशाला" से "अपराध-पडित" होकर बाहर निकलता था। १९वी सदी के मध्यकाल मे यानी सन् १८२५ से १८७५ तक—यदि इंग्लैण्ड के जुर्मो की छानबीन की जाय तो अधिकाश अपराधियो की औसतन उम्र १५ वर्ष की मिलेगी। इग्लैण्ड मे ८ वर्ष के एक बच्चे को किसी खलिहान मे "द्वेषपूर्वक, प्रतिशोध की भावना से मक्कारी तथा चतुराई से" आग लगा देने के अपराध मे प्राणदड हुआ और वह बेचारा फाँसी पर लटका दिया गया। सन् १८३३ मे ९ वर्ष के एक छोटे बच्चे को 'एक दूकान

१. International Penitentiary Congress, London, 1925.

२. Lord Chief Justice of England, Lord Hewart of B ıry.

की शीशे की खिड़की का शीशा फोड़ कर दो आने क़ीमत की चीज़ चुरा लेने के अपराध में प्राणदंड हुआ।[1] महारानी विक्टोरिया के ज़माने में बड़ी निर्लज्जतापूर्वक खुले आम कारखाने के मालिक माता-पिता से उनके बच्चे खरीद लेते थे। ५ वर्ष से ऊपर के बच्चे लंकाशायर के कारखानों में "अप्रेंटिस" के नाम से बेच दिये जाते थे। इस अप्रेंटिस का जीवन ऐसी नरकमय गुलामी का जीवन था जिससे बचना असम्भव था। पांच वर्ष के छोटे लड़के लड़की से बड़ों के बराबर काम लिया जाता था। कारखानों में एक व्यक्ति को १२ घंटे काम करना पड़ता था। बच्चों के लिए भी काम करने के यही घंटे थे। गन्दा वातावरण, दूषित स्थिति, बुरा भोजन, सफाई का नितान्त अभाव—इतनी विकट पीड़ा तथा ऐसी दर्दनाक मृत्यु-जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।[2]

बच्चों की ऐसी दुर्गति देख कर ही उस देश में मैथ्यू डेवनपोर्ट हिल (१७९२-१८७२) या सिडनी टर्नर (१८१४-१८७९) ऐसे आन्दोलन करनेवाले पैदा हुए कि चार्ल्स डिकेन्स ऐसे प्रसिद्ध उपन्यासकार का ध्यान भी इस ओर गया और उनकी लौह-लेखनी ने भूखे-नंगे कामुक रोग से पीड़ित बालक या बालिका को समाज के सामने खड़ा कर दिया और इस सब सामूहिक विरोध का अच्छा परिणाम भी हुआ। सन् १८५४ का प्रथम रिफार्मेटरी स्कूल ऐक्ट (सुधारगृह) पास हुआ। बाल-अपराध की समस्या को हल करने का तथा बाल-अपराधी की नयी व्याख्या करके अन्य अपराधियों से उसे पृथक् करने का यह पहला प्रयत्न था। भारतवर्ष में, जो इंग्लैण्ड का गुलाम था, सन् १८५४ के ब्रिटिश क़ानून के ठीक ७५ वर्ष बाद बच्चों की ओर ध्यान दिया गया। १९१९-२० में भारतीय जेल कमेटी ने अपनी सिफ़ारिश में "जेल के स्थान पर अन्य उपाय" पर विचार करते हुए यह सिफ़ारिश की कि अदालतों को माता-पिता के समान बाल-अपराधी के प्रति व्यवहार करना चाहिए। शरीर से दोषी बच्चों के लिए विशेष संस्थाएँ होनी चाहिए, प्रोबेशन प्रणाली, रिमांडहोम आदि का प्रबंध होना चाहिए। फिर भी, हमारे देश में बाल-अपराधी के प्रति कोई कथनीय ध्यान नहीं दिया जाता था। सन् १९३३ में बंगाल में २१ वर्ष की उम्र से कम ५,३५८ बाल-अपराधी जेल भेजे गये तथा केवल १२४ बच्चे प्रोबेशन पर छोड़े गये। इसी वर्ष १९३२ बाल-अपराधी मद्रास में जेल भेजे गये थे तथा ५१४ प्रोबेशन[3] पर छोड़े गये थे।

१. सम्राट् ने यह सजा माफ कर दी।
२. Sir William Clarke Hall—"Queen's Reign for Children."
३. परिवीक्षण

बाल-वृद्ध मे भेद

सभी देशो मे बाल-अपराधी को शेष अपराधी समाज से पृथक् करने मे काफी समय लगा, काफी सघर्ष भी रहा। इस सम्बन्ध मे हम आगे चलकर विचार करेगे। लाकासेन का यह मत माननेवाले बहुत कम मिलेगे कि "ससार मे अपराध नही है, केवल अपराधी है।"[1] और इस अपराधी को सही रास्ते पर लाने के लिए एक नही अनगिनत उपाय सोचे जा चुके है और सोचे जा रहे है। सन् १७७१ तथा सन् १७७५ मे शायद पहली बार "बुरा काम करनेवाले या आलस मे जीवन बितानेवाले लोगो के निजी कल्याण के लिए तथा उन्हे राज्य के लिए उपयोगी बनाने के उपाय" पर घेट (फ्रान्स) के प्रसिद्ध शासक (कोतवाल) बिलेन १४वे ने फ्लैडर्न के राज्यो की महासभा मे अपना प्रसिद्ध वक्तव्य रखा था।[2] सन् १७७७ मे लंदन मे जान हावर्ड[3] ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक[4] प्रकाशित कर ब्रिटिश जेलो की दुर्दशा का चित्रण किया था। इस पुस्तक ने बडी हलचल पैदा कर दी थी। इसी से पता चलता है कि पुराने ज़माने में कठोर कारावास की सज़ा मे बालक या वृद्ध कैदी से कितना निरर्थक काम लिया जाता था। जैसे केवल एक पहिया घुमाते रहना, एक गठरी को इधर से उठाकर उधर रखना, एक तख्ते पर चढना और उतरना, इत्यादि। मनुष्य को पशु से भी बुरा बना दिया गया था। सन् १७९० मे फ्रान्स के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ मिराबो ने "नज़रबन्द करने वाले यातनागृहो को" समाप्त करने के लिए अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की थी। सन् १७७६ मे पेनसिलवानिया (सयुक्त राज्य अमेरिका) प्रदेश ने जेल-सुधार पर अपना प्रथम सुधारक नियम बनाया था।

ऊपर कही गयी बातो से स्पष्ट है कि इसके पहले बालक हो या वृद्ध किसी की अपराधी-वृत्ति की "चिकित्सा" की बात भी नही सोची गयी थी। हरएक को "भौतिक, शारीरिक तथा नैतिक रूप से अपने अपराध का प्रायश्चित्त करना पडता था। लम्बी लम्बी सज़ाएँ दी जातीं थी और लम्बी सज़ा का मतलब यह था कि उस

१. Lacassagne's Epigram—"There are no Crimes, there are only Criminals.

२. Vilain XIV of Ghent in the States General of Flanders

३. जिनके नाम पर विश्व-विख्यात संस्था Howard League of Penal Reform है।

४. The State of Prisons—John Howard.

"भयानक" व्यक्ति से समाज जितना अधिक दिनो तक सुरक्षित रह सके, उतना ही उसका यानी समाज का कल्याण होगा। जेल के अधिकारियो का कर्त्तव्य था कि दो कारणो से कैदी को सजा देते रहे—(१) अपराधी दड के भय से फिर अपराध न करे तथा (२) अपने गुनाह का वह प्रायश्चित्त भी करे और प्रतिशोध भी होता रहे।[१]

किन्तु, दड का उद्देश्य धीरे धीरे बदलने लगा। सन् १८५४ मे प्रकाशित ग्लैड-स्टन कमेटी की रिपोर्ट मे लिखा है —"जेल मे जो बन्दी है, वे मनुष्य है। यदि जेल का एक उद्देश्य बदी के या अपराधी के मन मे भय उत्पन्न करना है तो उसका उद्देश्य उसे समाज के लिए सुयोग्य नागरिक बनने की पुन शिक्षा-दीक्षा देना भी है। जेल का शासन ऐसा होना चाहिए कि बदी के भीतर बैठे श्रेष्ठ गुणो का विकास हो सके। उसके चित्त के सद्गुण जाग उठे। वह समाज के लिए उपयोगी तथा अधिक उपयुक्त नागरिक होकर घर लौटे।"

"जेलो के शासन का सिद्धान्त आज भी, मेरे विचार से, यही है और इस भावना के ऊपर अभी कोई बात समझ मे नही आयी है। फ्रास का सन् १८८५ का जेल-कानून तथा लगभग इसी समय सयुक्त राज्य अमेरिका मे ब्राकवे का एलमिरा के सुधारगृह का अनुभव भी इसी सिद्धान्त को पुष्ट करता है। इसी समय से बदी के प्रति समाज का दृष्टिकोण बदलने लगा। नयी खोजो ने नये नये सिद्धान्त सामने रखे। अपराधी के व्यक्तित्व की परख तथा परीक्षण, उसका वर्गीकरण, मानसिक खराबियो की जॉच तथा शिष्ट नागरिक के जीवन मे उस अपराधी को पुन स्थापित कर देने की चर्चा और उसका उपाय होना चाहिए।"[२]

जिन दिनो यह तय हो रहा था—और उसकी बडी चर्चा थी कि बन्दी के जीवन का कल्याण किस प्रकार हो तथा अपराधी के प्रति निर्दय व्यवहार के स्थान पर उदा-रता का व्यवहार होना चाहिए तथा सबसे महत्त्वपूर्ण बात बाल-वृद्ध, हर अपराधी के व्यक्तित्व को पुन स्थापित करना है और उसके भीतर के छिपे हुए अथवा सोये हुए सद्गुणो को जाग्रत करना है—उन्ही दिनो यह चर्चा भी चल पडी कि बालिग और नाबालिग, बच्चे और बडी उम्र के, नासमझ तथा समझदार के अपराध तथा कार्य, विवेक तथा बुद्धि, मन तथा प्रेरणा मे बडा भारी अतर है और उस अन्तर को

१. Modern Methods of Penal Treatment Pub. International Penal & Penitentiary Foundation–1956–Page xvii

२. Modern Methods of Penal Treatment, पृष्ठ xx.

समझकर तब उसके साथ पृथक् व्यवहार होना चाहिए। इन्हीं दिनों अपराधी तथा बाल-अपराधी की भिन्न व्याख्या शुरू हुई। दोनों के प्रति समाज के रुख में फ़र्क़ आने लगा और (१) अपराध से एकदम अनजान उम्र, यानी सात वर्ष तक; (२) उसके बाद नासमझी की उम्र यानी १७-१८ वर्ष तक—और फिर (३) वयस्क अर्थात् बालिग हो जाने की उम्र, इस प्रकार का श्रेणी-विभाजन हो गया। इस विभाजन की भावना के क्रमशः विकास पर हम आगे चलकर कुछ अधिक प्रकाश डालेंगे। यहाँ पर हम केवल यह जानना चाहते हैं कि "बाल-अपराधी" कहते किसे हैं। जब तक यह न निश्चित हो जाय कि "बाल-अपराधी" से तात्पर्य क्या है, तब तक "बाल-अपराधी" की चिकित्सा भी कैसे हो सकेगी।

चिकित्सा भी जितनी जल्दी शुरू हो जाय, उतना ही कल्याणकर होगा। कच्ची उम्र से ही यह अपराधी मनोवृत्ति की रोकथाम शुरू हो जायगी तो आगे चलकर मानव सँभल जायगा। हीली ने अपनी पुस्तक में अपराधी की जल्दी चिकित्सा शुरू करने पर बड़ा अच्छा प्रकाश डाला है। सही उम्र से बालक-बालिका की देख-रेख हो और देख-रेख करनेवाले सही लोग हों—इन दोनों बातों की ओर ध्यान देना ज़रूरी है। अपराध के ऐसे बहुत से मामले होते हैं जिनमें जो वास्तविक कारण हैं, वे सामने देर से आते हैं।[1] इन कारणों को ढूँढ़ निकाल कर ही, इनको समझकर इनका उपाय करने से ही कल्याण होगा। बच्चों में एक विचित्र बेचैनी, उत्तेजना तथा पाशविक प्रवृत्ति होती है।[2] उसे रास्ते पर लगा देने से उनका जीवन उपयोगी हो जाता है। केवल घर के बाहर के कामों में उन्हें बहुत अधिक व्यस्त कर देने से काम न चलेगा। हमारा अनुभव है कि बाहर के जीवन की अधिकता से ही वे वासना के अपराधों में पड़ जाते हैं। बचपन की शिक्षा-कुशिक्षा आगे जीवन को प्रभावित करती है। मनुष्य क्या है—बच्चा ही तो है। बच्चा केवल बड़ा हो गया है।[3] इसलिए बाल-अपराधी की समस्या यदि हल हो जाय तो बड़ी उम्र के अपराध तथा अपराधी, दोनों आप से आप कम हो जायँगे। हीली की राय में बाल-अदालतों में १७-१८ वर्ष तक की उम्र के लड़के-लड़कियों पर विचार करना ठीक नहीं है। यह उम्र २०-२१ साल तक कर देनी चाहिए, क्योंकि "अदालतों में रोज काम करने के अनुभव से मैं कह सकता हूँ कि अधि-

१. Healy—Individual Delinquency—**पृष्ठ १७२-१७३।**

२. **वही, पृष्ठ २४६**

३. **वही, पृष्ठ १२-१३**

काश लडके-लडकियो का बचपन १७-१८ वर्ष की उम्र मे ही नही समाप्त हो जाता। हम इसे साबित कर देगे कि जीवन का रचनाकाल भिन्न व्यक्तियो मे भिन्न-भिन्न होता है और बाल-अदालतो मे निश्चित उम्र मे समाप्त नही हो जाता।"[1]

आदतन अपराधी

आदतन अपराधी या बार-बार अपराध करनेवाले बाल-वृद्ध की सम्मिलित व्याख्या करते हुए हीली के मत का साराश है—[2]

"बार बार अपराध करनेवाला समाज को बडी हानि पहुँचा रहा है। हमने देखा है कि बाल-अदालतो मे भी आदतन अपराधी बार बार आते हैं। ऐसे अपराधियो की अनेक श्रेणियाँ होती है पर एक बार अपराध करके फिर उसे न दुहराने वाला वह व्यक्ति है जिसने उस कार्य के परिणाम से ऐसी नसीहत प्राप्त कर ली है कि फिर उसे दुहराता नही है। पर अपराध को बार-बार दुहराने वाला वह व्यक्ति है जो धमकी, चेतावनी तथा दड के बाद भी समाज-विरोधी कार्य करता रहता है। बडे हो चाहे छोटे, ऐसे बहुत से अपराधी है जिनका अपराध अदालत के सामने "पहला" मालूम पडता है पर वे अपने परिवार मे रहते हुए भी बार बार वही अपराध करते हुए पुलिस तथा अदालत के पञ्जे मे नही आये हैं। लेकिन इनके सम्बन्ध मे बाते करते समय हम यह भी साफ कर दे कि हमारा यह तात्पर्य नही है कि प्रथम अपराधी की तुलना मे वह अधिक पापी या दुष्ट ही होगा। कानून के जिस दायरे मे वह दंडनीय समझा गया है, उस दायरे के बाहर के भी बहुत से ऐसे काम, जिन पर कानून चुप है, अधिक नीच, पतित तथा दुष्ट हो सकते हैं और हैं। हमारे सामने १५-१६ वर्ष के ऐसे बहुत-से लडके लडकियो की मिसाले मौजूद हैं जो सुधार का अनेक प्रयत्न करने पर भी समाज-विरोधी भावना तथा कार्य से दूर नही हो सके, दूर नही जा सके। अपराधी मनोवृत्ति के लिए स्थान, नगर या आबोहवा का वैसा प्रभाव नही पडता जैसा कि हम समझते हैं। यह समस्या मानव-स्वभाव की है। यह जटिलता मानवी मनोवृत्ति की है। इसका कोई सही हल निकाल सकना कठिन है। यह अवश्य है कि समाज, परिवार, माता-पिता तथा धार्मिक पुरोहितो की सहायता से यह बहुत कुछ हल हो सकती है।"[3]

१. वही, पृष्ठ, १७३
२. वही, पृष्ठ १३–१४
३. बालकों के स्वभाव, बालक–बालिकाओं की मनोवृत्ति आदि के संबंध में अंग्रेजी

बाल-अपराधी की व्याख्या

अप्रैल १९५५ मे प्रकाशित अपनी रिपोर्ट मे सयुक्तराष्ट्र-संघ ने "बाल अपराधी" के पूर्व की परिस्थिति यानी 'पूर्व-बाल-अपराधी' उसे माना है जो, बाल अपराधी के लिए निर्धारित अधिकतम उम्र के समानान्तर उम्र मे कोई ऐसा काम नही करता या करती है जिससे उस देश के कानून की अवज्ञा हो, पर अनेक कारणो से जिसे समाज के प्रतिकूल तथा अपने आचरणो से समाज के विरुद्ध काम करनेवाला माना जा सकता है और सामाजिक नियमो की उसकी अवज्ञा इतनी अधिक हो गयी है कि यदि उसकी रोकथाम न की गयी तो अपराधी बन जायेगा।"[१]

स्पष्ट है कि पूर्व-बाल-अपराधी तथा बाल-अपराधी की उम्र—कानूनी उम्र—बराबर है।

बाल-अपराधी की व्याख्या करते हुए सयुक्त राष्ट्र-सघ कहता है—

"बाल अपराधी वह नवयुवक तथा नवयुवती है जिसने निश्चित उम्र के भीतर दडविधान के अतर्गत अपराध किया है और न्याय-अदालत या बाल-कल्याण समिति ऐसी विशेष सस्था के सामने पेश किया गया है ताकि उसकी ऐसी चिकित्सा का प्रबध हो सके जिससे वह समाज द्वारा पुन स्थापित यानी स्वीकृत हो जाय बहुत से मामलो मे कानून बाल अपराधी की अधिक से अधिक ही नही, कम से कम उम्र भी निश्चित कर देता है जिसके नीचे की उम्र का बच्चा अपने अपराधो के लिए ज़िम्मेदार नही होता।"[२]

अमेरिकन मेडिकल असोशियेसन के एक प्रकाशन मे बाल अपराधी को "निजी व्यवहार मे या व्यक्तित्व मे व्यक्तिक्रम का दोषी" माना है। स्कूल जानेवाले विद्यार्थियो के इस दोष के सम्बन्ध मे लिखा है—

"स्कूल के बच्चो मे व्यवहार अथवा व्यक्तित्व मे व्यतिक्रम की व्याख्या इस प्रकार

में बड़ा साहित्य उपलब्ध है। पाठक खास तौर पर इस पुस्तक को पढ़ सकते हैं। Harry and Bonaro Overstreet—"When Children Come First"—Pub. National Congress of Parents & Teachers, Chicago, Illinois, 1949.

१. The Prevention of Juvenile Delinquency—U. N. O. April 1955—Page 2.

२. वही, पृष्ठ ३

की जा सकती है कि "उनका ऐसा कार्य या उनमे ऐसी प्रतिक्रिया जिससे बच्चे की शिक्षा के कार्य पर बुरा असर पडता हो, बाधा पडती हो या स्कूल के समुचित सचालन मे अव्यवस्था पैदा होती हो।"[१]

बहुत सोच-समझकर की गयी यह व्याख्या बाल-अपराध तथा बाल अपराधी को समझना काफी आसान कर देती है। पर बाल अपराधी की जो व्याख्या हम नीचे दे रहे है, वह शायद बहुत ही उपयुक्त और विषय को स्पष्ट कर देनेवाली हो। सयुक्त राज्य अमेरिका के ओहियो प्रदेश की सरकार के बाल-कल्याण विभाग ने इस व्याख्या को प्रकाशित किया है और आज यह व्याख्या बहुत ही उपयुक्त तथा युक्ति-सगत समझी जाती है। उसमे लिखा है —[२]

बाल-अपराधी वह है जो —

१. प्रदेश के किसी अग या उपाग या प्रदेश या देश (सयुक्त राज्य अमेरिका) के किसी नियम का उल्लघन करता है।

२ अपने माता-पिता, गुरुजन, अध्यापक, अभिभावक के वाजिब नियत्रण मे नही रहता, गलत रास्ते पर चलता है, उनकी आज्ञा का पालन नही करता।

३ स्कूल या घर से अक्सर भाग जाया करता है।

४ जिसके काम ऐसे है जिनसे अपने तथा दूसरो के चरित्र तथा स्वास्थ्य पर बुरा असर पडता है तथा हानि होती है।

५. बिना माता-पिता या अभिभावक या वैध अधिकारी की अनुमति के, इस प्रदेश द्वारा निश्चित नियमो के विपरीत, इस प्रदेश मे या बाहर किसी के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करता है।

मै समझता हूँ कि बाल अपराधी की एक अच्छी, उपयुक्त व्याख्या हमारे सामने है। यदि ऊपर लिखा बालक या बालिका अपराधी है तो क्या उसको मार-पीटकर, दड देकर ठीक करना चाहिए या सुधार से भी काम चलेगा ?

१. Report of the 5th National Conference on Physicians and Schools, Oct., 12-13-14, 1955—Pub. Bureau of Health Education, American Medical Association, Page 56.

२. Manual of Child Welfare Laws, Children's Service, Division of Social Administration, Department of Public Welfare, Columbus, Ohio, 1939.

अध्याय १९

दोषी कौन है ?

मनोवैज्ञानिक बात

बाल-अपराधी की व्याख्या के उपरान्त अब यह देखना है कि दोषी कौन है ? बच्चे अपराधी क्यो और कैसे बनते है ? बच्चो के स्वभाव का गूढ अध्ययन कर उनकी शिक्षा-प्रणाली मे क्रान्तिकारी परिवर्तन करनेवाली इटालियन महिला मेरी मौटेस्सरी के नाम से आज कौन नही परिचित है ? उनकी प्रसिद्ध पुस्तक "मौटेस्सरी प्रणाली" का तीसरा सस्करण सन् १९२९ मे प्रकाशित हुआ था। उसका एक नया अनूदित सस्करण मद्रास मे सन् १९४८ मे प्रकाशित हुआ था। इस पुस्तक मे उस प्रसिद्ध महिला का सन् १९०७ का एक भाषण है जो एक "बाल भवन" खोलने के समय किया गया था। ५३ वर्ष हो गये और ऐसा प्रतीत होता है कि वही बात आज के लिए भी लागू है। वे कहती है[१]—

"प्राय हम समाचारपत्रो मे ऐसे समाचार पढ़ते हैं कि एक बडा परिवार है, लडके और लड़कियो की उम्र बढती जा रही है और वे एक ही कमरे मे सोते हैं। उस कमरे के एक कोने मे एक दुश्चरित्र, बाहरी औरत भी रहती है जिसके यहाँ रात को व्यभिचारी लोग आते हैं। लडके-लड़कियाँ यह सब दृश्य देखते हैं। उनके मन मे भी दुर्भावना जाग उठती है और वे ऐसे अपराध तथा रक्तपात के दोषी बन जाते हैं जिससे हमारे सामने एक अति खेदजनक दृश्य का परदा उठ जाता है ...... समाचारपत्रो मे प्रकाशित हिंसात्मक तथा अनैतिक अपराधो की कहानी सामने आती है जिससे ऐसी खेदजनक तथा भयावह परिस्थिति का पता चलता है और उन उदार लोगो के मन मे जो इनके बीच मे काम करना चाहते हैं, बडी हलचल पैदा कर देती

१. Maria Montessori, M. D., D Litt., F. E. I. S.—"The Discovery of the Child"—Translated by Mary A. Johnstone, Pub. Kalakshetra, Adyar—Madras—1948—Page, 57, 58, 61 and 62.

है। कहने को जी चाहता है कि हर वेदना का अपना विशेष इलाज है पर, उदारता है क्या चीज़? आन्तरिक खेद तथा करुणा को कार्यरूप मे परिणत करना? पर ऐसी दानशीलता से विशेष लाभ नही भी होता। सगठन के अभाव तथा साधन की कमी से इससे केवल थोडे से लोग लाभ उठा सकते हैं... "

इस विषय की बहुत कुछ समीक्षा करने के बाद अन्त मे वे लिखती है—[1]

"अपने जीवन के आरम्भ के दो वर्षों मे अपनी ग्राह्य बुद्धि से शिशु व्यक्ति के चरित्र-निर्माण की तैयारी कर रहा है। वह अनजाने ही ऐसा कर रहा है। तीन वर्ष की उम्र होते ही उसमे चल शक्ति आ जाती है। वह अपनी चेतन बुद्धि के लिए निश्चित अनुभव सचय करने लगता है। उसकी यह चल शक्ति उसके हाथो मे आ जाती है, जिसका वह हर काम मे उपयोग करना चाहता है। यह सभी जानते है कि बच्चा हर एक चीज को छूना चाहता है और बुद्धि तथा हाथ के सम्मिलित प्रयत्न से वह खेल-कूद मे लग जाता है.. .दो वर्ष तक उससे कुछ अधिक के अपने शैशवकाल मे अपनी अनजानी ग्राह्य शक्ति से वह अद्भुत अनुभव प्राप्त कर लेता है। उसमे इतनी शक्ति नही है कि बडो की तरह वाणी से बोलकर कुछ सीख सके... पर यह निश्चित है कि अपनी ग्राह्य बुद्धि से वह इन दिनो जो कुछ सीखता है, वह याद-दाश्त मे न रहते हुए भी उसकी सजीव इन्द्रियो मे समा जाता है और व्यक्ति के चरित्र तथा मस्तिष्क के निर्माण मे आधार बन जाता है . . .यही उम्र है जब मानव बिना थके काम करता रहता है और जीवनदाता भोजन की तरह ज्ञानकोष सचित करता रहता है, उन मानसिक उपायो से, जिनसे मानव की बुद्धिमत्ता के गुप्त द्वार का ताला खुलता है, काम न लेने से बच्चा अनायास साधारण तथा उचित मार्ग से दूर चला जाता है . आज मनोवैज्ञानिक लोग यह स्वीकार करने लगे है कि उद्दड या अपराधी मनोवृत्ति वाले बच्चे "मानसिक भूख से पीडित" हैं, उनका विश्वास रुक गया है और वे मानव-विकास के सीधे मार्ग से विचलित हो गये है....बच्चों की समस्या मनोवैज्ञानिक है।"

नशाखोरी

बचपन से जो सस्कार बनता है तथा परिवार और वातावरण का जो असर होता है, उसे अस्वीकार नही किया जा सकता। हीली लिखते है कि ठीक से तो नही कहा

१. वही, पृष्ठ ५००, ५०१ तथा ५०२

जा सकता, पर कुछ ऐसे भी प्रमाण मिले है जिनसे मालूम होता है कि यदि शराब या किसी और नशे का सेवन कर पिता के सभोग से बच्चा गर्भ मे आता है तो उसमे पैदा-यशी अवगुण आ जाते है। यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात है। मेरे विचार से पश्चिमी देशो मे बाल-अपराधो की वृद्धि मे माता-पिता का नशा-सेवन भी एक कारण है। हीली की खोज के अनुसार बाल अपराधियो मे २ ७ प्रतिशत नशेबाज़ माता-पिता की सतान थे, यद्यपि यह औसत कुछ ज्यादा नही मालूम होता। पर हीली ने १००० बाल-अपराधियो की जॉच करके यह भी पता लगाया कि ५६ प्रतिशत अपराधियो के परिवार मे किसी न किसी प्रकार का अपराध भी वर्तमान था, जिसमे नशाखोरी का अपराध भी था। उनका यह भी कथन है कि यदि गर्भवती स्त्री किसी मादक द्रव्य का सेवन करती है तो गर्भ के शिशु पर बडा घातक प्रभाव पड़ता है। हीली लिखते हैं—[1]

'नशेबाज़ी से, बहुत साधारण नशा-सेवन नही, परिवार मे नाना प्रकार के उपद्रव, दुर्भाव तथा झगडे खडे होते रहते है। प्राय. इनका परिणाम यह होता है कि बच्चे मे अपराधी प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। यह कहना तो कठिन है कि शराब के कारण किस सीमा तक अपराधी भावना पनपी पर यह सभी जानते है कि शराब से ही झगडालू प्रवृत्ति पैदा होती है।"

अपने कथन की पुष्टि मे उन्होने एक परिवार का जिक्र किया है जिसमे मॉ-बाप दोनो नशेबाज़ थे। उनको १२ बच्चे पैदा हुए जिनमे से सात मर गये, एक लडका अच्छा निकला, एक लड़की बदचलन हो गयी, तीन लडके बदमाश, अवारा, जेबकट तथा गिरहकट निकल गये।

पश्चिमी देशो मे बच्चो को ज़रा बडा होने पर, उनके नवयुवक-नवयुवती होने पर, माता-पिता उन्हे शराब देने लगते हैं। इसका परिणाम उनके चरित्र पर बहुत बुरा होता है।[2] जिन देशो मे बाल अपराधी बहुत बढ गये है, उनके बालक-बालिकाओ के जीवन पर प्रकाश डालने से पता चलेगा कि नशाखोरी का बहुत बडा ऐब उनमे आ गया है। अमेरिकन मनोविश्लेषक डा० फ्रेडरिक वर्थम[3] ने बालको मे मादक

१. Healy—Individual Delinquency, पृष्ठ २६४

२. वही, पृष्ठ २६७

३. Dr. Frederick Werthan **संयुक्त राज्य अमेरिका में कालेज के ही नहीं, स्कल के छात्रों में भी नशाखोरी बढने पर कई साधिकार पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं।**

द्रव्य के उपयोग का बडा भयानक चित्र खीचा है। उनका कथन है कि सिनेमा या डाकाजनी आदि की बाज़ार मे बिकनेवाली पत्रिकाओ मे नशाखोरी की तसवीरे, उनके मुख मे बेढगे तरीके से लगे हुए सिगार या अफीम के पाइप आदि को देखकर बच्चो को भी शौक पैदा होता है कि उनकी नकल करे और वे पहले तो महज़ शौक मे शुरू करते है, फिर उनको लुक-छिप कर, चोरी से अफीम, चरस, गाँजा आदि प्राप्त करने मे बडी उत्तेजना प्रतीत होती है और वे इनको पीकर हर प्रकार के उत्पात करते हैं।

सयुक्त राज्य अमेरिका मे मादक द्रव्य का उपयोग तथा उसकी समस्या काफी जटिल है। वहाँ की आबोहवा भी ऐसी है कि कुछ भागो मे चुपचाप भारतीय गाँजा तथा अफीम की खेती होती है। "सयुक्त राज्य अमेरिका मे मादक द्रव्यो के नाजायज यातायात तथा विक्री की समस्या ग्रेट ब्रिटेन से कही अधिक कठिन है।"[१] माता-पिता जो व्यवसाय करते है, उसका प्रभाव बच्चो पर पड़ता ही है और वे भी उन घातक द्रव्यो के शिकार बन जाते है।

प्रत्येक अपराधी पर, चाहे बालक हो या वृद्ध, वातावरण तथा समाज का प्रभाव तो पडता ही है। जुर्म करनेवाले के सिर मे कोई खास सीग नही होते। गोरिग ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक मे इस विषय को स्पष्ट कर दिया है। वे लिखते है—

"एक ही उम्र के कानून तोडनेवाले अपराधी तथा कानून के दायरे मे रहने वाले नागरिक के मन तथा शरीर की रचना मे कोई अन्तर नही होता। एक ही वर्ग, एक ही श्रेणी, एक ही समान सामाजिक पद तथा बुद्धि दोनो की हो सकती है। जीव-विज्ञान से किसी विशिष्ट अपराधी वर्ग को सिद्ध नही किया जा सकता।"[२]

इसलिए यदि हमारे बाल-बच्चे अपराध करते हैं तो हमारा दोष होगा, समाज या परिवार का दोष होगा। बहुत से अपराध-शास्त्री परिवार को ही दोषी ठहराते हैं। बहुत अशो मे हम भी उनसे सहमत हैं।

१. International Criminal Police Review, December, 1949—Paris. पृष्ठ २३

२. Charles Goring, "The English Convict & Statistical study", Pub. London, Wyman & sons, 1913—Page 440.

परिवार का दोष

हीली ने इस पर विस्तारपूर्वक विचार किया है।[1] उनका कथन है कि बच्चो के प्रति घर मे जरूरत से ज्यादा सख्ती होने से भी वे अपराधी हो जाते है। बच्चे घर मे आपस मे लडते रहते है। माता-पिता चिढकर उन्हे पीटकर घर से बाहर कर देते है। इसकी बडी बुरी प्रतिक्रिया होती है। एक पिता ने अपने बच्चे को मारकर घर से बाहर ढकेल दिया। उसने सडक पर एक लडके को छुरा भोक दिया। बच्चो को अपनी बचपन की उद्दडता को खर्च करने का मौका मिलना चाहिए। माता-पिता की सख्ती से यह प्रवृत्ति कुचल कर दूसरे ऐबो मे बदल जाती है। इसके विपरीत, यदि अभिभावक बच्चो पर कोई नियत्रण या रोकथाम या प्रभाव नही रखते तो वे बिगड़ जाते हैं। प्राय देखा गया है कि अधे, गूगे, बहरे माता-पिता की सन्तान गलत रास्ते पर चली जाती है। उनके दुर्बल सरक्षक उनका सरक्षण ही नही कर सकते। जिन बच्चो के माता-पिता दिन भर बाहर काम पर चले जाते है, अपनी जीविका की फिराक मे रहते हैं, वे भी पथभ्रष्ट हो जाते है। कम से कम इसकी सम्भावना रहती है। कम्यूनिस्ट देश पोलैंड के एक समाचारपत्र "नोवा कल्चुरा"[2] ने सितम्बर ३, १९५६ मे प्रकाशित किया था कि पोलैड मे कम से कम २० लाख माताएँ कारखानो मे काम करती हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि बाल-अपराधी बहुत बढ गये है। पश्चिमी देशो के लिए यह समस्या निश्चयत बडी गम्भीर है। औद्योगिक सभ्यता का आवाहन करना तो उचित है पर औद्योगिक सभ्यता के कतिपय अभिशापो के लिए भी तैयार रहना पडेगा।

माता-पिता के पारस्परिक झगडे का भी बच्चो पर बुरा प्रभाव पडता है और उससे भी बुरा प्रभाव तब पडता है जब वे एक दूसरे से तलाक देकर या यो ही अलग हो जाते हैं।[3] हो सकता है कि माँ या बाप, दो मे से किसी एक का चरित्र बहुत खराब हो और यदि वे अलग हो जायँ तो बच्चे पर बुरा प्रभाव पडना बद हो जाय। पर पारिवारिक जीवन की इस उथल-पुथल का परिणाम बच्चो पर हर हालत में बुरा होता ही है। १००० अपराधी बालको की समीक्षा करने के बाद हीली इसी नतीजे

१. हीली की पुस्तक, पृष्ठ २८८–२९१
२. Nowa Kultura, Warsaw, Sept., 1956.
३. हीली, पृष्ठ २९०

पर पहुँचे।[१] कभी कभी ही नहीं, प्रायः ही ऐसा होता है, विशेष कर पश्चिमी देशों में, कि माता अपने छोटे बच्चों को लेकर दूसरे पति के पास चली जाती है या पिता इन बच्चों के लिए दूसरी माता बना लेता है। इसलिए बच्चे के जीवन में यकायक एक नया वातावरण, अजनवी चरित्र, विचित्र परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है। अधिकतर बच्चे अपने को नयी परिस्थिति में सँभाल नहीं पाते। बहुत से सौतेले माता-पिता अपने सौतेले बच्चों से प्रेम भी नहीं करते। तलाक़ दे या लेकर आये हुए नव-पति-पत्नी बड़े कामुक तथा विलासी भी होते हैं। इनके हास-विलास का बच्चों पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है। जिस परिवार के लोगों का यह खयाल है कि बच्चे उनकी हर एक चीज़ को बड़ी बारीक़ी से नहीं देखते, जिनका यह अनुमान है कि बड़ों के जीवन का छोटों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, वे बड़ी गहरी भूल कर रहे हैं। याद रखना चाहिए कि आज हम जो भी कुछ हैं उसका आधा श्रेय या अपयश हमारे परिवार को है।

जिस परिवार के लोग बराबर एक स्थान छोड़कर दूसरा स्थान, एक नगर छोड़-कर दूसरा नगर, एक घर छोड़कर दूसरा घर बदलते रहते हैं, उसका भी बच्चों पर बड़ा बुरा असर पड़ता है। उनके जीवन में अस्थिरता आ जाती है। "हमारा घर" की भावना निकल जाती है। इससे उस बालक या बालिका में किसी चीज़ के प्रति सहज स्नेह नहीं रह जाता। क्रूरता तथा उदासीनता की भावना आ जाती है। कुछ बालक-बालिका इसलिए अपराधी हो जाते हैं कि उनका जन्म साधारण, सीधे-सादे परिवार में होता है पर उनकी महत्त्वाकांक्षाएँ बहुत होती हैं। वे "दूसरों" के समान अधिक शिक्षित, अधिक मर्यादाशील तथा पद-वृद्धि चाहते हैं। यदि उनकी महत्त्वाकांक्षा की पुष्टि नहीं हुई, उसे किसी प्रकार का प्रोत्साहन नहीं मिला तो निराशा की प्रतिक्रिया में भी वे कुमार्ग पर चल देते हैं। माता-पिता की अपने बच्चों के प्रति उदासीनता, अपने ही मनोरंजन में व्यस्त रहकर बच्चों को नौकर-चाकर के भरोसे छोड़ देना, बच्चों की साधारण जिज्ञासा की भी पूर्ति न करना, उनके प्रश्नों का उत्तर तक न देना, प्यार के स्थान पर झिड़क देना, इन सब बातों का बच्चों पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है। पारिवारिक लापरवाही से अपराधी बननेवाले बच्चों की विशद छानबीन हीली ने की है। उन्हें १००० अपराधी बच्चों में परिवार तथा वासना के कारणों से निम्नलिखित अपराधी मिले। ताज़ी छानबीन करने से यह संख्या और भी अधिक प्रमाणित होगी।

१. वही, पृष्ठ १३४

दोषपूर्ण घरेलू वातावरण के कारण

कारण	१८ वर्ष से ऊपर के लड़के-लड़कियाँ	१८ वर्ष से नीचे के लड़के-लड़कियाँ
घरेलू झगड़ा	२६	७८
परिवार के लोगों का शराबी, दुराचारी आदि होना	६२	९५
ग़रीबी	४	५९
अभिभावकों के अज्ञान के कारण घरेलू नियंत्रण का अभाव	२	१०
बीमारी	२	२६
पिता का अधिकांशतः बाहर रहना	...	६
माता बाहर काम करती है	२१	३२
माता-पिता की अत्यधिक लापरवाही	७	३१
माता-पिता का अलग हो जाना	२०	३५
घर का अभाव, सड़क की ज़िन्दगी	...	१
घर का अभाव, घूमते रहनेवाली ज़िन्दगी	...	४
अस्पताल या बोर्डिंग स्कूल में बच्चा बदल गया	२	१७
घर में व्यभिचारी वातावरण	५	२३
	१६२	४१७

मानसिक उलझनों से भी बड़े अपराधी पैदा होते हैं। आखिर मन ही तो समूचे उत्पात का कारण होता है। ऐसे अपराधी बच्चों का १००० अपराधियों में औसत इस प्रकार निकला —

मानसिक उलझन के कारण

कारण	१८ वर्ष से ऊपर	१८ वर्ष से नीचे
कामुक भावना की उलझन	४३	१२
"माता-पिता कौन हैं" की उलझन	७	२
अज्ञात कारण से	४	...

कारण	१८ वर्ष से ऊपर	१८ वर्ष के नीचे
घरेलू परेशानी से	. .	२
समाज के विरुद्ध आतरिक घृणा	४	३
अध-विश्वास के कारण	..	१
अपने शारीरिक दोष से ग्लानि		१
	५८	२१

कामवासना के कारण

कच्ची उम्र मे कामवासना की जानकारी या उसका अनुभव	३४	७३
अत्यधिक हस्तक्रिया	१२	७५
अप्राकृतिक सभोग इत्यादि	....	११
	४६	१५९

इन ऑकडो से कई चीज़े बहुत स्पष्ट हो जाती है। जिन लोगो का यह खयाल है कि गरीबी के कारण अपराध तथा अपराधी बढते है, उनको वडे आश्चर्य की बात मालूम होगी कि गृहविहीनो मे भी, सडक पर सोनेवालो मे भी अपराध कितना कम है। यह भी मार्के की बात है कि पिता की अनुपस्थिति से बच्चे का जीवन नष्ट होता है। तीसरी मार्के की बात है कि बच्चो की जिस मानसिक उलझन की बड़ो को जानकारी भी नही होती, वह उनका कितना पतन करा देती है। नयी नयी खोजों से तो यहाँ तक साबित हो गया है कि शारीरिक दोष से भी, अपने को औरो के सामने छोटा समझने से बड़े अवगुण उत्पन्न होते है। नाक, कान, दाँत की खराबी से, आँख दुखने से, कान बहने से, नेत्रो मे रोहू इत्यादि से बच्चो मे चिढ पैदा होती है, चिडचिड़ापन पैदा होता है। फलत वह अपनी चिढ दूसरे ढग से निकालते हैं। ऑख कान के दुख से बराबर पीड़ित बच्चे कामवासना के अपराध मे इसी लिए फँसते हैं कि उनका दुख थोड़ी देर तक भूला रहता है। शारीरिक दोष किस सीमा तक अपराधो के लिए जिम्मेदार हैं, इसकी निश्चित छानबीन अभी तक नही हो पायी है। हीली ने जो छानबीन की थी उसके अनुसार नाक और गले की खराबी वाले ४१ बाल-अपराधी, नेत्र के दोषी ७२, सड़े दाँतवाले १९, दोषी कानवाले १३, समय से पूर्व यौवनवाले ३३, ६ दिल

की बीमारी वाले—यानी १००० मे इन्ही चार-पाँच बीमारियो के १८४ मरीज़ मिले। बच्चो की किसी भी बीमारी को उपेक्षा से नही देखना चाहिए।

बुरे साथी

हम लोग कभी यह जानने-समझने की चेष्टा भी नही करते कि हमारे बच्चे कैसे लोगो के साथ खेलते-कूदते है। उनकी साथ-सोहबत क्या है। याद रखना चाहिए कि अपराधी बनाने का सबसे बडा कारण बुरा साथ होता है। और भी कारण है, पर बुरे साथी, दुष्ट साथी, पतित साथी से बढकर बाल-वृद्ध को गढे मे गिरानेवाला और कोई कारण नही होता। इसी लिए आम कहावत है—

भले सग रहना, खाना बीडा पान,
बुरे सग रहना, कटाना दोनो कान।"

बुरे साथियो मे, घरेलू जीवन मे माता-पिता भी होते है, रिश्तेदार भी होते है, अपना सगा भाई या बहिन भी होती है। पाठशाला के साथी का नम्बर बाद मे आता है। रिश्तेदारो पर कोई शुबहा भी नही करता। समवयस्क या उम्र मे काफी अन्तर वाले रिश्तेदार जितना घर के बच्चो को बिगाडते है उतना बाहरी लोग नही। इस विषय मे काफी लम्बे विवेचन की आवश्यकता है। हम बुरे साथ पर आगे चलकर काफी प्रकाश डालेगे। यहाँ पर इतना ही लिख देना उचित होगा कि कुटेव या कामवासना के अपराध प्राय बुरे साथ से शुरू होते है।

अभिभावको को यह भी ध्यान नही रहता कि बच्चो को कौन सा सिनेमा यानी खेल तथा थियेटर दिखाना चाहिए। सिनेमा का तथा अपराध का सम्बन्ध हम ऊपर बतला चुके है। थियेटर तथा अपराध का प्रत्यक्ष कोई सम्बन्ध तो नही [illegible] होता पर कामुक वासना को प्रोत्साहन मिलता है। थियेटर के पात्र-पात्राओ का स्वतत्र तथा वाननामय जीवन भी लडके-लडकियो को आकृष्ट करता है और वे प्राय. उनका अनुकरण करना चाहते है। पर थियेटर का प्रभाव वासनामय जीवन पर ही पडता है। अन्य किसी प्रकार के अपराध पर भी पडता होगा, पर उसका प्रमाण नही मिलता है। अप्रत्यक्ष प्रभाव ज़रूर होता है। थियेटर के पात्र-पात्राओं की भडकीली पोशाक, दुकानो मे सजी भडकीली पोशाक, सडक पर चलनेवाले स्त्री-पुरुषो की रग बिरगी बढिया पोशाको को देखकर लालचवश काफी चोरियाँ होती हैं। चोरी करने की आदत पड जाती है। सार्वजनिक नाचघर, होटल, उनका विलासितामय जीवन न केवल बाल-अपराधी बल्कि चरित्र-भ्रष्ट युवक-युवती तैयार कर रहे हैं।

पाठशालाओ मे बुरे छात्र-छात्राओ की संगत के अलावा ऐसे अनेक कारण हैं जिनसे अपराधी बन जाते है। अध्यापकवर्ग किसी छात्र को बुद्धू या बोदा समझकर पीछे बिठाते है। उसके मन मे भयकर प्रतिक्रिया होती है। अध्यापको को पता भी नही चलता। कोई छात्र अपने नेत्रो की या कान-नाक की कमजोरी छिपाने के लिए पीछे बैठ जाता है। उसकी प्रतिभा तथा बुद्धि औरो की तुलना मे अधिक होते हुए भी विकसित नही हो पाती। बहुत से छात्र पढने से ज्यादा मशीन के काम के शौकीन है। उनको मार-पीटकर पढाने का प्रयत्न किया जाता है। ये सब ऐसी बाते है जिन पर ध्यान देने की ज़रूरत है, जिनके विषय मे यह आवश्यकता है कि समाज, शिक्षक तथा अभिभावक सभी अपनी ज़िम्मेदारी को समझे। उनकी लापरवाही का फल हमारे बच्चे भोगते हैं।

आज समाज मे बडे-बूढे प्रत्येक को पथ-भ्रष्ट करने के लिए साधन बिखरे पडे है। गदे उपन्यास, कहानी की गन्दी किताबे, गन्दा साहित्य, रद्दी-भद्दी तसवीरे, वासना, उत्तेजना तथा चोरी-डकैती से भरे समाचारपत्र, मोटे अक्षरो मे छपनेवाले अपराध के संवाद[1], ये सभी बुद्धि तथा चरित्र को भ्रष्ट करनेवाले होते है। चित्रो मे जो उपन्यास प्रकाशित होते है उनमे बदमाशो की धूर्त्तता बड़े आकर्षक ढग से दी जाती है। माना कि अंत मे बदमाश की हार होती है पर वह हारता इसलिए नही है कि उसका काम बुरा है, बल्कि इसलिए कि उसमे चतुराई की कमी आ गयी—ये सब अपराध के पैदा करनेवाले है। समाज मे अनगिनत चीज़े सम्बद्ध तथा असम्बद्ध रूप से फैली हुई है। इनमे से कौन सी चीज मनुष्य के लिए हितकर है, कौन सी कितना प्रभाव रखती है, यह कहना बडा कठिन है। पर समाजशास्त्र के विद्यार्थी को इसी कठिनाई के भीतर से अपना मार्ग निकालना है। मायर फोर्टेज़ ने सही लिखा है कि "एक निश्चित समाज मे सामाजिक सम्बन्धो की भिन्न श्रेणियो की एक निश्चित प्रणाली मे प्रत्येक वस्तु कितनी एक दूसरे से सम्बन्धित है तथा एक दूसरे पर निर्भर करती है, इसी एक तथ्य की ओर हर एक सामाजिक ढाँचा हमारा ध्यान आकृष्ट करता है।[2]" इन परस्पर-

१. Francis Fenton, "The Influence of Newspaper Presentation upon the Growth of Crime".—Thesis University of Chicago Press, 1911, Page 96.

२. Meyer Fortes—"Americal Anthropologist", Vol. 55, 1953 —Page, 22.

संबन्धित समस्याओ के बीच से ही हमको ऐसा सामाजिक हल निकालना है जिससे बाल-समाज तथा बाल-अपराध की समस्या हल हो सके।

उस समाज के विषय मे क्या कहेंगे जो आज बच्चो के प्रति बिलकुल उदासीन हो गया है। जी० के० होडेनफील्ड ने लिखा है कि "यदि अमेरिकन लोग जितनी चिन्ता तथा सावधानी अपनी मोटरकार के विषय मे बरतते है, उसकी आधी भी अपने बच्चो के प्रति बरतते तो आज सयुक्त राज्य अमेरिका मे बाल-अपराध की समस्या न होती। देश की समूची पुलिस-शक्ति की एक तिहाई केवल मोटरगाडियो की चोरी, मोटर से होनेवाली दुर्घटना आदि के काम मे लगी हुई है। पर बच्चो की देखरेख या उनकी रक्षा में कितनी पुलिस लगी हुई है? बहुत होगा, हर पुलिसथाना पीछे एक कास्टेबुल होगा। आज बाल-अपराधी के लिए नियुक्त अफसर अपने दफ्तर मे बैठा हुआ इस प्रतीक्षा मे रहता है कि बाल-अपराधी उसके पास पहुँचा दिया जाय। पर, कितने ऐसे व्यक्ति है जो परिवार मे तथा घरमे जाकर बाल-अपराधी बनने के पूर्व ही बालक-बालिका की रक्षा करते है। आज सयुक्त राज्य अमेरिका मे ८५ प्रतिशत बाल-अपराधी व्यक्तिगत अपराधी नही है। वे किसी न किसी गरोह के, अपराधियो के गरोह के सदस्य है। ये अपराधी अकेले घूमनेवाले भेडिये नही है। इनका एक समुदाय है। इनका एक गुट है।"

इस गुट को तोडने के लिए हम क्या कर रहे है? ऐसे अपराधी गुट एक ही देश मे नही, चारो तरफ फैले हुए है। इस गुट से बच्चो को निकालने का क्या प्रयत्न हो रहा है। ७ वर्ष से १८ वर्ष के बच्चो की उम्र बडी कठिन, बडी समस्यामय तथा रहस्य-मय उम्र होती है। इस उम्र मे बच्चो को सँभालने मे, उनकी बातो को तथा उनकी आवश्यकताओ को समझकर उनकी पूर्ति करने मे माता-पिता तथा अभिभावको को बडी कठिनाई होती है। बहुत से इस कठिनाई को समझते हैं और बहुत से नही भी समझते। यह उम्र बच्चो के साधारण विकास मे असाधारण परिस्थिति की है। यह वह उम्र है जिसमे न वह बच्चा है, न बालिग। दो मे से किसी श्रेणी का नही है। उसके साथ किस प्रकार का आचरण किया जाय, यह समझ मे नही आता। माता पिता विशेषज्ञो से सलाह माँगते है, वह भी नही मिलती। तब कैसे उनकी समुचित रक्षा या सेवा की जाय?[1]

१. Marie Battle—"Rebels With a Cause"—Article in the Hindustan Times, Ist June, 1958.

हैंस हाफ का मत

आस्ट्रिया के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक प्रो० हैंस हॉफ[1] ने सन् १९५८ में संयुक्त राज्य अमेरिका की यात्रा करने के बाद समाचारपत्रों में एक लेख लिखा था। उनका कहना है कि यूरोप के बाल-अपराधियों की तुलना में वहाँ के बाल-अपराधी कहीं अधिक गये गुज़रे हैं। अपने एक व्याख्यान में उन्होंने कहा था —

"यूरोप तथा संयुक्त राज्य अमेरिका के बाल-अपराधियों में मौलिक भेद है। वहाँ के अपराधी नवयुवक तथा नवयुवतियाँ कहीं अधिक उग्र तथा उद्दंड होते हैं। उदाहरण के लिए यदि आस्ट्रिया में किसी व्यक्ति के सामने कोई नवयुवक पिस्तौल तानकर खड़ा हो जाय तो उससे बातचीत कर उसे राज़ी किया जा सकता है। पर अमेरिका में इसकी कोई सम्भावना नहीं है। वहाँ तो बात करना चाहें तो वह गोली दाग देगा। वहाँ पर बाल-अपराध का एक बड़ा कारण यह भी है कि जो पितृ-विहीन शरणार्थी वहाँ गये हैं, वे बच्चे जल्दी पतित हो जाते हैं। जिन बच्चों के पिता अंग्रेजी की कम जानकारी के कारण नौकरी पाने में असमर्थ होते हैं, वे घर में ही सम्मान खो बैठते हैं। बच्चे अपने पिता से ही नफ़रत करने लगते हैं। माता के प्रति तो उनका आदरभाव रहता है पर पिता का बुरा प्रभाव पड़ता है। इसके अलावा अमेरिकन सिनेमा फ़िल्मों की डकैती की कहानी का भी बड़ा बुरा असर पड़ता है। उस देश में सबसे बुरी बात यह है कि वहाँ की अ़दालतों में यह नियम नहीं है कि कुछ समय बाद प्रथम अपराधी की सज़ा का रेकार्ड रद्द कर दिया जाय। यूरोप में बहुत से देशों में ऐसा होता है। परिणाम यह होता है कि जीवन में एक बार अपराध करनेवाला सदा के लिए कलंकित हो जाता है. . .पर उस देश में बाल-अपराधियों को सन्मार्ग पर लाने का भगीरथ प्रयत्न हो रहा है और ऐसी अनेक संस्थाएँ बड़ा काम कर रही हैं। इन संस्थाओं का यही मंत्र है कि समाज को इन बच्चों से बदला न लेकर इनका सुधार करना चाहिए।"

सहानुभूति बनाम कठोरता

लार्ड सैमुयेल[2] ने विशेषज्ञों से प्रश्न किया है कि उनको यह बतलाना चाहिए कि बाल-अपराधियों के लिए बाल-अदालतों से वाक़ई कोई लाभ भी हुआ है या नहीं।

१. Prof. Hans Hoff, Chief of Vienna's Psychiatric Neurologic University Clinic.

२. Sunday Times, २ मार्च १९५८, लन्दन

क्या उनके प्रयत्न से पारिवारिक सयम मे कोई वृद्धि हुई है? क्या यह अब नही साबित हो गया है कि इनके साथ कठोरता के स्थान पर सहानुभूति दिखलाने से अधिक लाभ होगा? क्या यह सम्भव नही है कि डाकुओ या कामुक वासना के अपराधियो से समाज की अधिक रक्षा का प्रयत्न किया जा सके? पर मेरे विचार से इन विशेषज्ञो पर निर्भर करना बडा खतरनाक होगा। मै सिर्फ दो खास बाते कहना चाहता हूँ।

"पिछले पचास वर्षो मे विज्ञान ने मानव-स्वभाव के अध्ययन मे बडी प्रगति की है। फ्रायड के विज्ञान ने मन के पीछे अज्ञात तथा अचेतन अवस्था मे पडी हुई दुष्प्रवृत्ति की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। इस जानकारी से अपराधशास्त्र को भी नयी बाते मालूम होने का अवसर मिला है। पैतृक अर्जित वासनाएँ भी सामने आ गयी है। 'स्वतत्र इच्छा' से होनेवाले काम की बात अब पीछे पड गयी है। अपराधी के साथ दया तथा सहानुभूति की माँग करनेवाले दड-सुधारक अब व्यक्ति के कार्यो की "निजी ज़िम्मेदारी" के सिद्धान्त को गलत साबित कर रहे है। अब यह नही कहा जाता कि मनुष्य अपनी स्वतत्र इच्छा से काम करता है, यह गलत बात है। उसके साथ उसका पैतृक सस्कार तथा वातावरण से उत्पन्न अनुभव तथा शिक्षा भी है जो उसके चरित्र तथा आदतो को बनाती है तथा उसके मस्तिष्क के अन्तरतम मे अपनी छाप छोड देती है। मनुष्य के कार्य इन्ही सब सम्मिलित कारणो से होते है। पर मैं ऐसा नही मानता। अन्तर भावना को इतना महत्त्व दे दिया जाय कि चेतन भावना का कोई स्थान न हो, ऐसा नही है। हम देखते है कि रोजमर्रा की जिन्दगी मे मन के भीतर अतर्द्वन्द्व चलता रहता है। हम कुछ काम करना चाहते है, एक तरफ मन होता है कि उसे करे, दूसरी तरफ कोई ताकत कोई प्रेरणा उसे रोका भी करती है—रोकती रहती है। इसी प्रकार पैतृक सस्कारो की भी बात है। यदि हमने उन सस्कारो से वासना को प्राप्त किया है तो वासना पर नियत्रण करने की शक्ति तथा प्रेरणा भी प्राप्त की है। साधारणत व्यक्ति अपने कार्यो के लिए स्वत अपने को जिम्मेदार समझता है। वह अपने से, अपनी पूरी ज़िम्मेदारी के साथ काम करता है। समाज इसी लिए उसको ज़िम्मेदार समझकर दड देता है। यदि मनुष्य अपने कार्यो के लिए जिम्मेदार न हो तो समाज चल भी नही सकता।

"मेरी दूसरी बात है अपने कानून बनानेवालो, न्याय करने वालो तथा कानून का पालन करानेवालो से यह पूछना कि वे अपराधी के साथ किस प्रकार का व्यवहार करे, जो वास्तव मे समाज के हित का हो तथा जिससे समाज की रक्षा हो। पर सबसे बडा काम यह है कि किस प्रकार अपराध होने से ही रोका जाय। हमको केवल मर्ज़ की दवा ही नही करनी है, उसका कारण भी जानना है। साफ बात तो यह है कि

अपराध तथा अपराधी बराबर बढते जा रहे है। आखिर इनकी रोकथाम का भी कोई उपाय है अथवा नही।

"यह किसी से छिपा नही है कि आजकल योनि सम्बन्ध, स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध बहुत ढीला हो गया है। बडे हल्के मन से विवाह हो जाता है, बडी आसानी से तलाक हो जाता है। परिवार भग्न हो जाते है। घरेलू जीवन विषाक्त हो जाता है। बच्चो का जीवन सकटमय हो जाता है। उनका जीवन असतुलित तथा असयमित हो जाता है। ससार मे चारो ओर औद्योगिक तथा अनेक प्रकार के सघर्ष छिडे हुए है। जिस शताब्दी मे मनुष्य ने बौद्धिक जगत् मे अद्भुत विकास तथा गति प्राप्त की है, उसी शताब्दी मे दो भयकर युद्ध हो चुके तथा मानव-सहार की भीषण वेदना भी उत्पन्न हो गयी है। तीसरे तथा अन्य सब युद्धो से भयकर युद्ध की भी सभावना हमारे सामने उठती रहती है। हम देख रहे है कि आज की दुनिया ही बीमार है, बेचैन है। वह अपनी बीमारी को समझ रही है पर बौद्धिक तथा आध्यात्मिक रूप से वह इतने घपले मे है कि उसे अपनी बीमारी का कारण ही नही समझ मे आ रहा है। यह जरूर प्रत्यक्ष है कि चारो तरफ नैतिक स्तर बहुत नीचे गिर गया है हम बाल-सुधार के, अपराधी के सुधार के, नये दडविधान के, सब कुछ उपाय करते रहे पर यह सोचने की बात है कि ऐसे दूषित वातावरण मे स्वस्थ तथा चरित्रवान् बच्चे कैसे पनप सकते है? वे कैसे नैतिक दृष्टि से स्वस्थ तथा अच्छे हो सकते है? समाज की आबोहवा सार्वजनिक विचारधारा पर निर्भर करती है और सार्वजनिक विचारधारा के बनानेवाले हम लोग है।"

लार्ड सैमुयेल ने इतनी पते की बात कही है कि आज की बाल-अपराध की समस्या का इससे अच्छा और कोई विश्लेषण नही हो सकता। आज समाज ही बीमार है, ससार मात्र का चरित्र गिर गया है, तो फिर हम अपराधी की समस्या मे अधिकतम उलझते क्यो न जायँ?

धन का दुष्परिणाम

लार्ड सैमुयेल ने यह प्रश्न किया था कि बाल-अदालतो मे कितना कल्याण हुआ है। इसका उत्तर लदन की बाल-अदालतो के अध्यक्ष जान वाटसन ने दिया है।[1] वे लिखते हैं—

१. John Watson, Chairman of the Metropolitan Juvenile Courts since 1936—Sunday Times, London, 9th March, 1958.

"आजकल अपराधो की इतनी वृद्धि देखकर लोग पूछते हैं कि क्या बाल-अदालतो से वह काम पूरा हो रहा है जिसके लिए वे बनायी गयी हैं। जनता का आम तौर से यह खयाल है कि ये अदालतें इसलिए बनी है कि बाल-अपराधियो को उनके अपराध के अनुसार दड दें। पर पार्लमिन्ट ने जब इस प्रकार की अदालतो की रचना की थी, उस समय उसका स्पष्ट आदेश था कि बच्चो के कल्याण की भावना सर्वोपरि रहे, और समाज की रक्षा की दृष्टि से यह बात सर्वथा उचित भी है। इस प्रकार बाल-अदालतो का लक्ष्य, उनका कार्य-क्षेत्र सभी काफी व्यापक हो जाता है। बच्चो की नैतिक आवश्यकता का अनुमान लगाकर उनके लिए ऐसे "दड" की व्यवस्था करनी होगी जिससे उनके सुधार मे रचनात्मक कार्य भी हो सके। सभी बाल-अपराधियो के लिए ऐसी चिकित्सा की आवश्यकता नही होती। ऐसे भी पूर्ण स्वस्थ अपराधी आते है जो बडे शरारती होते है। यह उम्र ही ऐसी है कि साधारण शरारत तथा अपराधी कार्य के बीच मे कोई रेखा खीचना सम्भव नही होता। सब कुछ देखने के बाद हम इसी परिणाम पर पहुँचे है कि माता-पिता द्वारा देखरेख ही सबसे अच्छी चिकित्सा है। उसके सुधार के लिए इससे अच्छी कोई पाठशाला नही है।

"यह भी सही है कि सभी माता-पिता यह कार्य नही कर सकते। उनमे बहुत से गैर ज़िम्मेदार होते है। सब शरारतो की जड आत्म-सयम का अभाव है। बहुत से माता-पिता मे स्वय यह वस्तु वर्त्तमान नही है अत उनके बच्चो मे कहाँ से आये।

"दरिद्रता या अभाव अब अपराधो का प्रमुख कारण नही रह गया है। मेरा विश्वास है कि आज मुख्य कारण है साधारण प्रयत्न पर अत्यधिक भौतिक सुख-सामग्री का उपलब्ध होना। इन सुख-सामग्रियो की तलाश मे परिवार के लोग इतन समय नष्ट करते है कि अपने बच्चो की देखरेख की उन्हे चिंता नही रहती या समय नही रहता। बहुत सी माताएँ बिना किसी आर्थिक कारण के यानी बिना रोजी की समस्या के भी काम के, केवल सुख-सामग्री सञ्चय करने मे अपना समय नष्ट करती हैं। बच्चो की वास्तविक देखरेख मे तो लापरवाही की जाय और फिर उनकी जेब पैसों से भर दी जाय या उन्हे कीमती तोहफे दिये जायँ, यह कोई सन्तोष की बात नही हैं। इसका उलटा असर होता है कि बच्चे मे भी एक से एक चीज़ो को प्राप्त करने की हवस बढ जाती है जो पूरी नही होती। अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए वह चोरी करने लगता है .. आज कल्याणकारी राज्य की भावना ने भी एक बडा दोष पैदा कर दिया है। परिवार के लोग यह सोचते हैं कि राज्य की तुलना मे उनकी ज़िम्मेदारी बहुत कम है।

"किन्तु, बाल-अदालतो मे हमारे लिए सबसे कठिन समस्या उन बच्चो की नही है जो घरेलू वातावरण मे बिगड गये है या जिनमे सयम तथा विनय का अभाव है। सबसे कठिन तो वे है जो घर मे प्रेम, सहानुभूति तथा सुरक्षा के अभाव मे बिगड गये हैं। वे बडे भयकर अपराधी होते है—इसलिए नही कि उनका अपराध गुरुतर होता है, बल्कि उनके अपराध की पृष्ठभूमि अनुभवी से अनुभवी विचारपति को हैरत मे डाल देती है।

"भला प्रेम का भूखा बच्चा प्रेम कैसे पा सकता है जब उसके माता-पिता स्वय 'अपने को प्यार करते है।' उसे अपने घर मे सुरक्षा कैसे मिलेगी जहाँ रोज़ झगडा, उपद्रव, पति-पत्नी की लडाई होती रहती है, तलाक होता है, नया बाप या नयी मा आ जाती है। जिस परिवार मे पारस्परिक गाली-गलौज बहुत होता है या जहाँ माता अपने किसी एक बच्चे को प्यार करती है, पिता किसी दूसरे को और घरेलू कलह मे बच्चो की दलबदी भी स.मने आ जाती है— वहाँ कैसे ये बच्चे, धूर्त झूठे, अवारा, तथा लम्पट न निकले? इनका अपराध साधारण होता है पर समस्या विकट होती है।

" . . . हमारे काम मे बडा क्लेश है, बडा खेदजन्य काम है, पर उसमे एक सतोष भी है। इन बच्चो मे इतना मूल्यवान् गुण भरा हुआ है कि बस उसे तह मे से निकालकर ऊपर लाने की जरूरत है। हम देखते हैं कि उनमे साहस है, सहिष्णुता है, नेतृत्व शक्ति है, ऐसी मौलिक ईमानदारी भरी है जो उनकी झूठी बातो के बीच से निकलकर चमक उठती है। इनमे से कुछ को दड मिलना चाहिए। पर सभी को सहायता की, उनके गुणो का विकास करने के लिए सहायता की आवश्यकता है। बाल-अदालते उनके इन छिपे गुणो की पहचान कर, उनके विकास का मौका पैदा कर, भविष्य मे एक अधिक स्वस्थ समाज की रचना का कार्य कर सकती है।"

वाटसन ने कुछ ऐसी बाते कही है जिनसे हमे बडा सबक मिलता है। क्या बच्चो को मुट्ठी भर पैसा जेबखर्चका दे देने से काम चल जाता है। क्या उन्हे मूल्यवान् वस्तुएँ देने से अधिक उत्तम यह न होगा कि उनको प्रेम तथा पुचकार का पुरस्कार दिया जाय? क्या बच्चो के सामने गाली-गलौज या माता-पिता की परस्पर लड़ाई बद नही हो सकती?

आप अपनी ओर देखिए

ब्रिटेन के वर्तमान गृहमत्री श्री बटलर ने लार्ड सैमुयेल के लेख के ही सिलसिले मे स्वय एक रोचक लेख लिखा। उन्होने इस बात पर बडा खेद प्रकट किया है कि सन् १९०८ में जब बाल-अदालते खुली थी, साधारण अपराधो के लिए २०,००० तथा

बडे अपराधो के लिए १३,००० लडके-लडकियाँ उनके सामने लाये गय थे। सन् १९५६ मे साधारण अपराधियो की सख्या २९,००० तथा बडे अपराधियो की सख्या ३८,००० हो गयी थी। सन् १९५२ से ब्रिटेन मे बाल-अपराधियो की सख्या गिरने लगी थी पर पिछले तीन वर्षो से फिर बढने लगी है। इन बाल-अदालतो के सामने जो लोग लाये जाते है उनमे से एक तिहाई तो बिना शर्त्त रिहा हो जाते है, एक चौथाई प्रोबेशन पर छोडे जाते है, एक तिहाई पर जुर्माना होता है, शेष अपने घर से अलग करके सुधारगृह इत्यादि मे भेजे जाते है। सन् १९५६ मे १३३५ लडके तथा लडकियाँ बोर्स्टल स्कूलो मे दाखिल हुई। गृहमत्री के कथनानुसार इधर तीन वर्षो मे इस सख्या मे और अधिक वृद्धि हुई है। वे लिखते है—[१]

"मै चाहता हूँ कि मैं कुछ ऐसे एक-एक कारण बतला सकूँ जिनसे इन अपराधियो की सख्या मे वृद्धि की चुनौती का कारण मालूम हो सके . पर, जैसा कि लार्ड सैमुयेल ने कहा है, इसकी अनेक जडे हैं, पैतृक सस्कार, भग्न पारिवारिक जीवन, स्नेह तथा घरेलू सुरक्षा का अभाव, तैतृक गैर-जिम्मेदारी, कम उम्र मे ही खर्च करने के लिए काफी पैसा मिलना, ये सभी मिलकर अपराधी बनाते है। पर, वस्तुस्थिति यह है कि हर उम्र के अपराधियो की सख्या बढती जा रही है। आज जेलो की सख्या मे जो वृद्धि हो गयी है, उतनी कभी नही थी। पचास वर्ष मे दडसुधार तथा जेलसुधार के जितने कार्यक्रम हुए हैं उनका परिणाम अपराधो मे अत्यधिक वृद्धि है और यह सोचने पर मजबूर करती है कि आखिर क्या किया जाय कि अपराधियो की सख्या मे कमी हो . . हमको देखना है कि ये वाल-अदालते किस सीमा तक हरएक बाल-अपराधी की चिकित्सा सही ढग से करने मे समर्थ हुई है। हमारे रचनात्मक सुधार कार्यों से क्या इन युवक युवतियो का चरित्र-निर्माण हो रहा है और यदि नहीं तो हमको सोचना पडेगा कि दूसरा कौन सा रास्ता अख्तियार करने से कल्याण होगा . . हमको इन प्रश्नो का सही उत्तर प्राप्त करना होगा। तभी हम सुधार के कार्यों पर अपनी आशा केन्द्रित कर भविष्य मे अपराध कम करने की आशा कर सकते है। इसी कारण से मैने गृहविभाग के साथ एक अनुसधान विभाग भी नत्थी कर दिया है जो इन चीजो की बराबर छान-बीन करता रहे .....मुझे कुछ ऐसा लगता है कि अपराधो मे वृद्धि का एक कारण यह भी हो सकता है कि हम वातावरण, परिवार आदि सबकी ज़िम्मेदारी तो मानते

१. The Rt. Hon'ble R. A. Butler, M. P. Lord Privy Seal and Home-Secretary—Sunday Times, London, March 16—1959

हैं पर व्यक्तिगत जिम्मेदारी के महत्त्व को भूल जाते है। इस मशीन के युग मे, जब सभ्यता ही यन्त्रीय हो चली है, हर एक को अपनी व्यक्तिगत ज़िम्मेदारी का महत्त्व भी समझना पडेगा। जरा हम अपने से तो पूछे कि क्या हम स्वय अपने बच्चो के प्रति अपनी जिम्मेदारी बहुत कम समझते है ? क्या हम उनकी जिम्मेदारी बहुत कुछ स्कूलो पर, युवकसगठनो पर, और अत मे अदालतो पर नही छोड देते ? प्रत्येक सन्तानवाले को यह सवाल अपने से पूछना चाहिए। बर्क ने कहा था कि मानव जाति की पाठशाला निजी उदाहरण है और उससे अच्छी नसीहत और कही नही मिल सकती। मेरी सम्मति मे बाल-अपराध कम करने के लिए यह नितात आवश्यक है कि माता-पिता अपनी सन्तान के लिए स्वयं उदाहरण बने। उनमे स्वय कर्त्तव्य, सच्चरित्रता तथा जिम्मेदारी की वह भावना हो जिससे बच्चे नसीहत ले। हमको पारिवारिक ज़िम्मेदारी को उचित स्थान देना होगा।"

बड़ो की नक़ल

ब्रिटिश पार्लमिन्ट के सदस्य श्री मौंटगोमरी हाइड, सयुक्त राज्य अमेरिका के अपराधी समाज का अध्ययन करने गये थे। २२ दिसम्बर १९५८ को लन्दन के "सडे टाइम्स" मे उन्होने एक रोमाचकारी लेख लिखा है। वे लिखते है कि आज सयुक्त राज्य अमेरिका यदि अपराध सम्बन्धी किसी वस्तु से बहुत परेशान है तो वह बाल-अपराध है जिसकी समस्या भयकर रूप धारण करती जा रही है। वे लास ऐंजीलीज़ नामक प्रसिद्ध नगर मे ठहरे हुए थे कि वहाँ कुछ नवयुवको ने एक अनजान, भोली, १५ वर्ष की लडकी को, जो मोटर से चली जा रही थी, गोली मार दी। पता चला कि उनके प्रतिद्वन्द्वी गरोह की एक लडकी की सूरत उस लडकी से मिलती जुलती थी, जिसका दड दूसरी को भोगना पड़ा। हाइड के कथनानुसार इस प्रकार के अपराध वहाँ आम तौर पर होते रहते हैं। हर साल, उनके कथनानुसार, सयुक्त राज्य मे दस लाख बाल अपराधी बढते जा रहे हैं। इस वृद्धि मे मादक द्रव्य सेवन करने वालो की संख्या भी काफी बढती जा रही है। सडक पर २० वर्ष से कम उम्र के अपराधी अपने प्रतिद्वन्दी गिरोह के लोगो को गोली मारते हुए या उपद्रव मचाते हुए बेखौफ घूमा करते हैं। इसका एक बड़ा कारण गन्दे निवासस्थान तथा मज़दूर बस्तियो का वातावरण भी है। न्यूयार्क के प्रसिद्ध नगर के पूर्वी भाग मे तथा शिकागो के दक्षिणी भाग मे जिसने भी गश्त लगाया होगा, उसको प्रत्यक्ष दिखाई पडेगा कि रहन-सहन तथा वातावरण का क्या परिणाम होता है। पर अमेरिकन अपराधशास्त्री को ऐसे गन्दे वासस्थानों के रहनेवाले अपराधियों की उतनी चिन्ता नही है; उनका कहना है

कि सयुक्त राज्य मे जो हर साल दस लाख बाल अपराधी पुलिस के कब्जे मे आते है उनमे ज्यादातर इन बस्तियो के नही होते। यहाँ के रहनेवाले बडे होने पर ये बस्तियाँ छोड देते और जहाँ कही जीविका मिल जाती है, वही बस जाते है—शादी भी कर लेते है और बचपन की अपनी शरारतो को भूलकर अच्छे नागरिक बन जाते है। असली चिता का कारण सम्पन्न परिवार का बाल अपराधी है जिसके अपराध का प्रत्यक्ष कारण भी समझ मे नही आता। ऐसे अपराधो का मनोवैज्ञानिक समीक्षण करने से पता चलता है कि वे घरेलू झगडे, घर के लोगो की विलासिता, पति-पत्नी के मतभेद, तलाक, नये माता-पिता या इनमे रद्दोबदल के कारण भावना के आघातो से उत्पन्न होते है। कही पिता बडा सख्त है तो कही माता ने लाड-प्यार मे चौपट कर रखा है। भावनाओ के आघात से बने हुए ये अपराधी ठीक से न तो पकड मे आते है और जब पकड मे आते है तो उनकी मनोवृत्ति को समझना कठिन हो जाता है। हाल मे ही ओहियो की एक बाल-अपराधी अनुसधान समिति[1] ने खोजकर ५४ हत्यारे लडके-लडकियो की समीक्षा की। इनकी उम्र ९ से १९ वर्ष के भीतर थी। इनमे से एक को छोडकर शेष ५३ ने अनायास, बिना पहले कुछ सोचे ही हत्या की थी। और छानबीन करने पर पता चला कि "घर मे या तो उनके साथ बडा बुरा व्यवहार होता था या उनकी निजी स्वतंत्रता मे बडी तानाशाही का व्यवहार था।" ये हत्याएँ वैसे व्यवहार की प्रतिक्रिया थी। कनेक्टिकट की सरकारी सार्वजनिक कल्याणसमिति[2] की खोज अधिक व्यापक थी। इस सस्था ने ४५०० बाल अपराधियो की समीक्षा की थी और उनकी रिपोर्ट का साराश यह है—

१ परिवार के कुसगठन के कारण ही अधिकाश बाल अपराध होते हैं।

२ परिवार का कुसगठन अधिकाश दशा मे माता-पिता की भावुक अस्थिरता के कारण होता है।

३ "असगठित" या "कुसंगठित" परिवार बच्चो के मन पर इतना हानिकारक प्रभाव छोड देता है कि वे बचपन से ही या आगे चलकर अपराधी बन जाते हैं।

४ असगठित परिवार से ही और अधिक हानिकारक दोष पैदा होते हैं, जैसे मानसिक रोग, पागलपन, अपराध और तलाक।

१. Bureau of Juvenile Research, Ohio.

२. Public Welfare Council, Connecticut.

अपराध के चार कारण

ऐसे अपराधियो की पूरी छानबीन करने के लिए, उनके मन तथा शरीर की पूरी परीक्षा करने के लिए सयुक्त राज्य अमेरिका मे जगह जगह मनोवैज्ञानिक केन्द्र खुले हुए है। भारतवर्ष मे ऐसे केन्द्र प्राय नही है। उत्तर प्रदेश इतने बडे सूबे मे अब, १९५९ के अन्त तक जाकर ऐसे दो केन्द्र खुलने जा रहे है, जिनमे ऐसे बच्चे जो या तो अपराधी है या जिनके अपराधी होने की सम्भावना हे, रखे जायगे तथा उनके सुधार या उद्धार के लिए उचित निदान होगा। प्रदेश मे केवल वाराणसी तथा आगरा मे बाल-अधिनियम[१] लागू है। अतएव वही यह प्रयोग होगा।[२]

सयुक्त राज्य अमेरिका मे ऐसे केन्द्रो मे डा० राल्फ ब्रैंकेल[३] का केन्द्र बहुत प्रसिद्ध है। यहाँ पर ऐसे बच्चो को ६० दिन तक रखते है। न्यूजर्सी के मेनलो पार्क का यह केन्द्र नयी नयी खोजे ससार के सामने रख रहा है। ब्रैंकेल का कहना है कि अपराध के चतुर्मुखी कारण होते है। एक अपराधी दो प्रेरणाओ के सघर्ष का परिणाम होता है। एक तो है "किसी का अपना बनकर रहने यानी किसी द्वारा अपनाये जाने की इच्छा" और "प्रेम की भूख" तथा दूसरा है "उद्दड अथवा झगडालू मनोभाव से उत्पन्न होकर दुर्बल विरोध से लेकर हत्या तक कर डालने की प्रवृत्ति।" इस परिणाम पर पहुँचने के पूर्व सन् १९४९ मे ही इस सस्था ने २५०० अपराधियो की तथा २८०० कामवासना के अपराधियो की परीक्षा की थी। इन वासना के अपराधियो पर, नाबालिगो पर, कामुक प्रहार का दोष लगा था। ऐसा ही प्रयोग, पर जरा भिन्न ढग से, उत्तरी कैलिफोर्निया के ट्रैसी नगर मे हो रहा है। इस सस्था[४] मे १२०० नवयुवक १७ से २५ वर्ष की उम्र के हैं। इनको हवाई जहाज की मशीन ठोक करने तक का काम सिखलाया जाता है।

डा० ब्रैंकेल के मत से आधुनिक सभी मनोवैज्ञानिक सहमत न होगे पर कितने भी नये नये कारण ढूँढ निकाले जायँ, बाल-अपराध कम होता नही दीखता। अमेरिकन करेक्शन (सुधार) सघ के गत ३५ वर्षो से महामत्री श्री एडवर्ड कास ने सस्था के

१. Children's Act.

२. Child Guidance Clinic ३ जुलाई १९५९ का समाचार।

३. Run by Dr Ralph Broncale at Menlo Park in New Jersey.

४. Denuel Vocational Institute.

५. Congress of the American Correctional Association, Chicago, 1958, Edward Cass.

मन् १९५८ के वार्षिकोत्सव मे ससार मे चारो तरफ बाल अपराध मे वृद्धि का कारण बतलाते हुए कहा था कि—"यह वृद्धि क्यो हो रही है, इसका कोई सरल उत्तर देना कठिन है। सरकार तथा समाज के नियमो का उल्लघन करने की प्रवृत्ति पारिवारिक जीवन से प्रारम्भ होती है। उसकी जडे वही पर मिलेगी।[1] बाल अदालते कायम कीजिए, बाल सुधार गृह कायम कीजिए, मनोवैज्ञानिक केन्द्र खोलिए—यह सब कीजिए, इनसे काम भी होता है, पर इस प्रकार का इलाज केवल गौण है। असली रोकथाम के लिए आवश्यकता है सामाजिक दृष्टि से चैतन्य तथा अच्छे माता-पिता या अभिभावक वाले पारिवारिक जीवन की। ऐसे परिवार की रचना की शिक्षा भी बचपन से ही मि नी चाहिए।"

माता-पिता का महत्त्व

अन्ततोगत्वा सभी वैज्ञानिक हमारे प्राचीन भारतीय मत के होते जा रहे है। आज हम भारतीय भी "माता" तथा "पिता" का महत्त्व भूल गये है। हम स्वय अपना महत्त्व भूल गये है. माता कौन है ? शास्त्र का वचन है—

"मान्यते पूज्यते इति माता,"
विनान्नान्नश्वरो देहो न नित्यः पितुरुद्भवः।
तयोः शतगुणा पूज्या माता मान्या च वन्दिता ॥[2]

पिता से सौगुनी अधिक वन्दनीय माता है, यदि वही माता हमारे तिरस्कार की वस्तु बन जाय या यदि वही माता अपने महान् पद के महत्त्व को भूल जाय तो सन्तान की क्या गति होगी ?

पिता का भी बडा महत्त्व है—

"पाति रक्षत्यपत्यं यः स पिता,"
मान्यः पूज्यश्च सर्वेभ्यः सर्वेषां जनको भवेत्।
अहो यस्य प्रसादेन सर्वान् पश्यति मानवः॥
जनको जन्मदानाच्च रक्षणाच्च पिता नृणाम्।
तातो विस्तीर्णकरणात् कल्पनात् सा प्रजापति ॥

१. Warden Ragen का भी यही मत है।
२. ब्रह्मवैवर्त पुराण
३. वही

पिता के प्रसाद से ही मनुष्य सब कुछ देख समझ पाता है। यदि वही पिता अपने कर्त्तव्य से च्युत हो जाय, यदि वही अंधा हो जाय तो बच्चे की क्या गति होगी ?

चरित्रनिर्माण में त्रुटि

ऊपर निर्दिष्ट कई विद्वानों ने साफ़ कह दिया है कि बाल-अपराध में वृद्धि का कारण परिवार के संगठन में त्रुटियाँ हैं। प्रधान कारण यह होते हुए भी और कारण भी हैं। हम भारतीय तो बार बार यह कहते आ रहे हैं कि यदि परिवार में धार्मिक बुद्धि होगी, धार्मिकता होगी तो उसका बच्चों पर बड़ा अच्छा असर पड़ेगा। आजकल चारों ओर धर्म के प्रति रुचि तथा आस्था समाप्त हो गयी है। कुछ ऐसे राज्य हैं जहाँ धर्म का नाम लेना भी गुनाह है। ऐसी दशा में केवल 'समाज'-'समाज' की रट लगाने से काम नहीं चलेगा। पिछले पचास वर्षों में बाल-अपराध बहुत बढ़ गये हैं और यही समय है जब धर्म के प्रति आस्था तथा श्रद्धा सभ्यता की चकाचौंध में गिरने लगी है। इंग्लैण्ड के लेसेस्टर नगर के रैटक्लिफ क्लब के अध्यक्ष श्री क्लाड लीथम[१] का कहना है कि पिछली दो पीढ़ियों से हम अपनी धार्मिक भावना को खोते जा रहे हैं। इसी लिए अपने बच्चों को हम सदाचार का वह दृढ़ मंत्र नहीं दे पाते जिसके मूल में धर्म है। इसी लिए वे जीवन का तात्त्विक सिद्धान्त भी नहीं समझ पाते। लीथम का यह भी कहना है कि सन् १९५६ में डाक्टरों की यह राय प्रकाशित हुई थी कि आज के लड़के-लड़कियाँ अपनी वास्तविक उम्र से पाँच वर्ष अधिक हैं। उनमें उम्र की अपेक्षा यौवन पाँच वर्ष पहले आ जाता है। "यौवन पहले आ जाता है और बुद्धि उस अनुपात में विकसित नहीं हुई रहती। इसी लिए मानसिक हलचल सँभाले नहीं सँभलती।" ऐसे अवसर पर यदि धार्मिक बुद्धि पैदा हुई रहती तो कितनों का जीवन बच जाता।

चेशायर की कुमारी डोरोदी पैटेन प्राइस[२] ने भी वर्तमान परिस्थिति पर खेद प्रकट करते हुए इसका कारण बतलाया है—"हमारे ईसाई धर्म में आत्मसंयम को जो महत्त्व दिया गया था, वह समाप्त हो गया है। आज के कल्याणकारी राज्य में सुख तथा विलास के साधन सरलतापूर्वक उपलब्ध हो जाते हैं। कम परिश्रम से ही सब कुछ प्राप्य है। आज अपने बल-पौरुष तथा गुणों के बल पर प्रगति करने में कोई शोभा नहीं समझी जाती। आज के युग में तो यही मत है कि हमको जब जो चाहिए, तुरन्त मिल

१. Sunday Times, London, 16th March, 1958.

२. वही

जाय। बाल-अदालतें बडा अच्छा काम कर रही है, पर वे वह काम नही कर सकती जो ठोस तथा सयमशील बालजीवन से प्राप्त हो सकता है।"

ब्रिटिश पार्लमेन्ट के सदस्य जे० आर० एच० हचिसन[1] का कहना है कि "आज का युवक उत्तेजना चाहता है, उसके भीतर काम करने की, सघर्ष की अपरिमित आग है। इसलिए उसको अपने वेग के अनुकूल काम नही मिलता तो वह उच्छृखल, उद्दड तथा अपराधी हो जाता है। इधर हमारा अनुभव है कि हमने कम उम्र के सिपाहियो को कोरिया या मलाया ऐसे खतरनाक स्थानो मे भेजा तो वे अधिक अच्छे आचरण के बने रहे, बमुकाबले कम खतरे के, शान्त वातावरण मे। एक कारण और है, अतर्राष्ट्रीय रूप मे हिसा की भर्त्सना की जाती है पर फिल्म की दुनिया मे हिसा अनिवार्य समझी जाती है।"

लन्दन के एक मनोवैज्ञानिक ने अपना नाम न प्रकट करते हुए लिखा है[2] कि "सभी बच्चो के हृदय मे एक श्रेष्ठ चरित्र का स्रोत है पर सयम तथा धार्मिक शिक्षा के अभाव से वह सूख जाता है। बहुत कुछ सोचने पर बाल-अपराध का कारण धार्मिक शिक्षा का अभाव प्रतीत होता है। वाल्टर बीलीज़[3] का भी यही मत है। वे स्कूल-कालेजो की धर्मविहीन तथा सूखी, निर्जीव शिक्षा को दोषी ठहराते है। उनको वर्तमान सिनेमा तथा फिल्मो से बडी शिकायत है। वे कहते हैं कि अपराधी पैदा करने के लिए यही पाठशालाएँ हैं जिनको हम सिनेमाभवन कहते है। राबर्ट बार्टलेट[4] को शिकायत है कि हम आजकल अपने बच्चो को यह सिखाते है कि वे स्वय अपने माता-पिता तथा परिवार वालो से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। बुजुर्गों की उपेक्षा करने की नसीहत हम देते है। और यह भी ध्यान रखने की बात है कि घर के बुजुर्गो का ही नैतिक स्तर नीचा है। यदि वे ही खराब आदर्श उपस्थित कर रहे है तो हमारे बच्चो का नैतिक स्वास्थ्य अवश्य खराब होता जायगा।"

कौन जाने किस कारण से बच्चे का दिमाग खराब होता है। सयुक्त राज्य अमेरिका के कोलोराडो प्रदेश मे जोजेफ केलाब्रीज की शादी के तीन महीने बाद एक मोटर दुर्घटना हो गयी। उनकी पत्नी एलिजेबेथ गर्भवती थी। जब उनका बच्चा डोनाल्ड

१. Sunday Times, London, 9th March, 1958.
२. वही
३. वही
४. वही

पैदा हुआ, उसका मस्तिष्क निकम्मा साबित हुआ। अभी तक वह स्वस्थ नही हुआ। डोनाल्ड का छोटा भाई लारी पॉच साल बाद पैदा हुआ। उसका भी वही हाल रहा। केवल इन बच्चो की चिकित्सा के लिए, रक्षा के लिए, दुर्बल मानसिक बच्चो के लिए एक पाठशाला ही सन् १९४८ मे खोल दी गयी। इसमे इस समय ४६ बच्चे रहते हैं। १७ बाहर से आते है। यही पर एक बालक डैविड है। जब वह तीन वर्ष का था, एक ट्रक से उसे चोट लग गयी। असर उसकी जबान पर हुआ। वह हकलाने लगा। आज वह भला चगा हो गया है। दूसरा बच्चा रोनी, चलती मोटर से गिर पडा था। वह चोट खा गया। आपरेशन हुआ और उसके बाद वह उद्दड तथा राक्षसो जैसी प्रवृत्तिवाला हो गया था। अब वह ठीक हो रहा है। अतएव प्रश्न समुचित चिकित्सा का है। हमारे देश मे लाखो बच्चे ऐसी चिकित्सा के अभाव मे नष्ट हो रहे है। इनके लिए श्री लेखराज उल्फत की "नन्ही दुनिया'[1] ऐसी सस्थाएँ बनी भी है तो वे धन के अभाव मे दम तोड रही है।

आज अपराध की समस्या भयकर रूप धारण करती जा रही है। इग्लैण्ड ऐसे सम्पन्न तथा मध्यवर्ती देश मे सन् १९३८ मे ६८,००० अपराधी दडित थे। १९५६ मे १,०२,०० थे। ब्रिटिश पुलिस रिपोर्ट के अनुसार सन् १९३९ मे कुल अपराधियो की सख्या ३ लाख थी। १९५६ मे ४,८०,००० हो गयी। शायद ऐसी परिस्थिति ही मनुष्य की ऑखे खुलवा देती है। ब्रिटेनकी उप-गृह-मत्रिणी कुमारी पैटहार्नवी स्मिथ ने सन् १९५८ मे लन्दन के वेस्ट मिनिस्टर हाल मे "अनुदार-दल-महिलासम्मेलन" मे कहा था—"अपराधो की अत्यधिक वृद्धि देख कर हम माता-पिता, धर्म तथा व्यक्तिगत जिम्मेदारी के पुराने सिद्धान्तो पर वापस आते जा रहे है।" और बिना इन सिद्धान्तो को अपनाये कोई चारा भी नही है।

स्कूलो मे दलबन्दी

आधुनिक सभ्यता की एक नयी बीमारी है दलबदी। घर मे भी, बाहर भी। घर मे कुछ बच्चे माता के पक्ष मे होते है, कुछ पिता के। पाठशालाओ मे भी लड़के लड़कियाँ अपनी अपनी पार्टी बना लेते है। इसका बडा बुरा प्रभाव होता है। अच्छे लडको के या लड़कियो के दल से निकाले गये लडके लडकियॉ अपना गिरोह बना लेते हैं, और फिर अनायास अपने को "तिरस्कृत" समझनेवाला भी तिरस्कार करनेवाले के प्रति

१. नन्हीं दुनियाँ, इन्दर रोड, देहरादून

हिसात्मक भावना बना लेता है । 'शिकागो अमेरिकन" पत्र के नगर-विभाग के सम्पादक बेजली हर्जेल का कथन है—[१]

"अच्छे लडके तिरस्कृत बच्चो को अपराध के गढे मे ढकेल देते है। हर अपराधी बालक-बालिका के अपराध की पृष्ठभूमि मे हो, चाहे वह परिवार से प्राप्त तिरस्कार हो या अपने ही सहपाठियो द्वारा अपनी पाठशाला मे प्राप्त हो—यह दूसरा कारण और भी भयकर है। ऐसे तिरस्कृत बच्चे एक साथ 'गैर कानूनी जमात' वालो की तरह से एकत्रित होते है"। लोरिग के महिलाविद्यालय की प्रधान मार्गरेट यूलर ने लडकियो की पाठशाला के बारे मे यही बात दुहरायी है। अब इस दिशा की ओर हर एक अध्यापक तथा अभिभावक का ध्यान आकृष्ट होना चाहिए। यह बडी भयकर चीज है। बिना कारण ही अपने स्कूलो मे तिरस्कृत बच्चे अपराधी बने चले जा रहे है। इनकी रक्षा का प्रबध होना ही चाहिए।

अपराधी का वर्गीकरण

हर उम्र वाले अपराधियो के वर्गीकरण का प्रयत्न फिलप्पीन देश मे बडे अच्छे ढंग से किया गया है। सन् १९५६-५७ मे "अपराध समीक्षण केन्द्र" मे ३८०३ व्यक्ति दाखिल हुए, उनका वर्गीकरण इस प्रकार हुआ—[२]

१ अपराध— व्यक्तियो के विरुद्ध अपराध—४० ७ प्रतिशत,
सम्पत्ति के अपराधी—३८ १२ प्रतिशत;
विशेष नियमों को भग करने पर—९ ११ प्रतिशत ।
विगत वर्ष की तुलना मे प्रथम श्रेणी के अपराध—८ प्रतिशत और द्वितीय श्रेणी के ७ प्रतिशत बढे है तथा तृतीय के ६ ७ प्रतिशत घटे है। यानी हिसात्मक तथा चोरी डकैती के अपराध काफी बढ गये है।

२ दड— प्रथम अपराधी—८७ ६ प्रतिशत,
दुबारा अपराधी—१२ ४ प्रतिशत।

१ Wesley Hartzell, City Editor, The Chicago American, May 29, 1958.

२ Rufino Recaido, Chief, Reception and Diagnostic Centre in Guide Post, Manila, Philippines, 15th June, 1958.

(दुबारा मे दूसरी बार जेल आनेवाले ६ १ प्रतिशत थे। तीसरी बार जेल आनेवाले २ ४ प्रतिशत थे, चौथी बार जेल आनेवाले १ १ प्रतिशत थे तथा बिना इस प्रकार वर्गीकरण किये ३ ८ प्रतिशत थे।)

३ विवाहित या अविवाहित— अविवाहित १६५३, विवाहित १७८६, विधुर १०४, (रखेल औरत या बाजाब्ता शादी नही हुई) ४६

४. बुद्धि— बोदे तथा भोदू प्रकार के—५६ ८ प्रतिशत, शेष साधारणत· प्रखर बुद्धि के।

५ शिक्षा— अशिक्षित—२६ ८ प्रतिशत
प्रारम्भिक शिक्षा—३८ ६६ प्रतिशत
मध्यम वर्ग शिक्षा—१७ ३६ प्रतिशत
हाई स्कूल तक—१२ ७५ प्रतिशत
कालेज ग्रूप—२·१४ प्रतिशत

६ धर्म— कैथोलिक-सनातनी ईसाई—८६ ८ प्रतिशत
मुसलमान ४ ५ प्रतिशत
प्रोटेस्टेट—सुधारवादी ईसाई—२ ६ प्रतिशत

७ जेल मे आने के समय उम्र—अधिकाश बदी २० से २५ वर्ष की उम्र के।

८. अपराध के स्थान— सबसे ज्यादा अपराध राजधानी मनीला मे हुए, १० २ प्रतिशत

९ व्यवसाय— ५० फीसदी बन्दी किसान, मछुए, शिकारी आदि लोग हैं। उसके बाद दूसरा बडा वर्ग है कारीगर तथा मज़दूरो का। ४ प्रतिशत अध्यापक का पेशा करनेवाले लोग हैं।

बहुत से देशो की जेल-रिपोर्ट मैंने देखी है पर इतने अच्छे ढंग का वर्गीकरण मुझे देखने को नही मिला। भारतवर्ष के अनेक प्रदेशो मे तो यह भी पता नही है कि कितने क़ैदी विवाहित है तथा कितने नही। अखिल भारतीय अपराध-निरोधक समिति काफी समय से प्रधान कारागार निरीक्षको से प्रार्थना कर रही है कि कम से कम इतनी आसान बात तो मालूम हो जाये। पर अभी तक इतना कष्ट भी नही उठाया गया है। पश्चिम बंगाल, मद्रास, बम्बई—किसी भी प्रदेश को इसकी जानकारी नही है। ऊपर के वर्गीकरण में "धर्म" भी दिया गया है। इसका मतलब यह नही है कि वे अपराधी धार्मिक हैं। यह तो केवल उनका पैतृक धर्म दिया गया है। सबसे रोचक बात यह मालूम होती है

कि हमारा नवयुवक समाज (नवयुवतियो का जिक्र ऊपर के आँकडो मे नही है) कितनी बुरी तरह से अपराधी हो रहा है, जरायमपेशा हो रहा है और यह तब तक होगा जब तक कि हम इन नवयुवको को "नैतिक जिम्मेदारी" की नसीहत न दे।

सन् १९२६ मे सभी सभ्य देशो के लिए एक सर्वमान्य दडविधान की रचना का प्रयत्न हुआ था, ब्रसेल्स मे प्रथम बार अतर्राष्ट्रीय सम्मेलन इसी उद्देश्य से हुआ। इसमे सभी देशो के कुल मिलाकर ३५० न्याय-पडित एकत्रित हुए थे। इस सम्मेलन मे "नैतिक जिम्मेदारी" का सवाल उठाया गया था पर उसके समर्थक नही मिले। श्री फेरी ने अपने भाषण मे कहा था कि यह चीज हमारे दायरे के बाहर की है। यह भूल गये श्री फेरी कि यदि नैतिक जिम्मेदारी की भावना को समाप्त कर दिया जाय तो दंडविधान मे किसी प्रकार के सशोधन का स्थान ही नही रह जाता। दड चाहे कितना कठोर हो, सही है, उचित है। जब नैतिक जिम्मेदारी नही रही तो दड की कठोरता मे कमी करने का कोई तुक भी नही है। सन् १९२६ की भूल का आज तक प्रायश्चित्त करना पड रहा है।

अध्याय २०

भिन्न देशों में भिन्न उपाय

बाल-अपराध रोकने के लिए भिन्न-भिन्न देश अपनी-अपनी बुद्धि तथा शक्ति के अनुसार भिन्न-भिन्न उपाय कर रहे है। परिवार तथा पाठशाला दोनो का महत्त्व बराबर कायम रखने की चेष्टा की जा रही है। परिवार के सर्वोपरि महत्त्व को लोग समझने लगे है। सयुक्तराष्ट्र-सघ[1] की रिपोर्ट मे लिखा है कि बच्चा सुधारक स्कूलो मे कितनी ही प्रगति क्यो न करे पर यदि वह अपराधी है तो उसका उपचार तब और सफल प्रमाणित होगा जब स्कूल मे रहने के समय उसका घर से सम्बन्ध बना रहेगा तथा उसका परिवार उसे अपनाने के लिए तैयार रहेगा, तभी सुधारक स्कूल की वास्तविक सफलता होगी। ऐसे बच्चो के उपचार के लिए यह आवश्यक है कि जो भी कार्य हो वह परिवार के सहयोग तथा सम्पर्क से हो, परिवार पर इतनी बडी जिम्मेदारी लाद देना भी बडी ज़रूरी बात है।

पर यदि परिवार अपनी जिम्मेदारी न समझे, न माने तो क्या उपाय होगा ? किसे दड दिया जाय ? प्राय देखा जाता है कि परिवार मे लडके बडे शरारती हो जाते है। वे अपराध करना जानते भी नहीं। केवल उनमे बाहर घूमने की आदत पड जाती है। वे अनायास अपराधी बन जाते है। घुमन्तूपन अपराधी बनने की भूमिका है।[2] इसलिए ध्यान रखना चाहिए कि बच्चो को जबर्दस्ती स्कूल भेजने से ही उनका ऐब नही समाप्त हो जाता, उनका अपराधी बनना नही रोक देता। यह पता लगाना चाहिए कि घर का वातावरण बच्चे को क्यो काटता है। घर के बाहर, घर से दूर उसे क्यो अच्छा लगता है ? जिन देशो मे बाल अपराधियो के लिए विशेष सस्थाएँ है वहाँ पर यह सोचा जा रहा है कि बिना अपराधी बने बच्चो को अपराधी बच्चो के साथ रखना ठीक नही

१. The Prevention of Juvenile Delinquency in Selected European Countries, United Nations, April, 1955, Page 58.

२. वही, पृष्ठ ५५, ५६, ५७, ५८, ५९

है। अतएव केवल घुमन्तू होने के कारण उन्हें वहाँ नही रखना चाहिए। असल मे पता लगाया जाय कि वह अपने पारिवारिक जीवन से क्यो असन्तुष्ट है।

घुमन्तू बच्चे

जो लडके-लडकियाँ घर तथा स्कूल छोडकर इधर-उधर आवारागर्दी करते घूमते है या आवारो की तरह से घूमा करते है उनके लिए यूरोपीय देशो मे अनेक उपाय किये जाते है। अपढ आदमी के लिए नौकरी मिलना असम्भव है। इसलिए सभी यूरोपीय देशो मे प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य है। केवल वे ही अनिवार्य शिक्षा के बन्धन मे नही आते जो उन जातियो के है जो हमेशा एक स्थान से दूसरे स्थान घूमा करती है। बहुत से परिवार बडी नहरो मे नौकाओ पर रहते है। उनके बच्चो की शिक्षा के लिए नीदरलैंड्स तथा यूनाइटेड किगडम (इग्लैंड, वेल्स तथा स्कॉटलैंड) ने—जिसे हम ब्रिटेन कहते है—विशेष प्रबध कर रखा है। यूनान मे गडरियो के—चरवाहो के—बच्चो के लिए खास तौर पर स्कूल लगाये जाते है। स्वीडेन के उत्तरी भाग मे जिप्सी तथा घुमन्तू लेप्पे लोग काफी रहते है। उनके लिए विशेष पाठशालाएँ तथा छात्रावास लगाये जाते है।

अपराध के पहले उसकी शुरुआत घुमन्तू आदत या आवारागर्दी से शुरू होती है। जहाँ अनिवार्य शिक्षा है, वहाँ स्कूलो मे पढना जरूरी होने के कारण कुछ थोडी बहुत रोकथाम हो जाती है। पर केवल इतने से ही काम नही चलेगा। स्कूल की पढाई के बाद भी वही आदत बनी रहती है। मौलिक कारणो की जॉच, समीक्षा तथा खोज करनी पडेगी और उनका उपाय करना होगा।

ऑस्ट्रिया मे स्कूलो की अनिवार्य उपस्थिति के लिए कानून है पर ज्यादातर अध्यापक कानून से कोई सहायता न लेकर परिवार से सम्पर्क रखते है। उससे भी काम नही चलता तो युवककल्याण कार्यालय से सहायता लेते हैं। यदि उनसे भी काम न चला तो सुधारगृह तो है ही। बेल्जियम मे स्कूल मे हाजिरी की सूची हर महीने स्कूल इस्पेक्टरो के पास भेज दी जाती है। जिस लडके की गैरहाजिरी ज्यादा हुई उसके परिवार को चेतावनी भेजी जाती है। यदि इससे भी काम न चला तो सरकारी वकील के पास मामला भेज दिया जाता है। यह वकील अपनी छानबीन करके बच्चे के बुजुर्गो को अदालत मे तलब कर सकता है। बेल्जियम मे पुलिस का कर्त्तव्य है कि स्कूल मे पढने के समय यदि लडके-लडकियो को सडक पर घूमते देखे तो उन्हे पकडकर स्कूल पहुँचा दे। फ्रास मे लडको की इस प्रकार की भूल के लिए माता-पिता या अभिभावक को दड मिलता हैं। यही नही, यदि पढने के घण्टे मे बच्चा कोई खेल-तमाशा देखने चला गया

तो स्कूल के घटो मे उसे अपने यहाँ बिठा रखने के अपराध मे तमाशा दिखानेवाले या साथी को दड मिलेगा।[1]

पश्चिमी जर्मनी मे बच्चो को अनिवार्यत स्कूल लाने के लिए पुलिस की मदद ली जा सकती है। पर आवारा लडको के सरक्षण के लिए वहाँ एक विशेष मुहकमा ही है। इससे अधिक काम लिया जाता है। पुलिस का हस्तक्षेप प्राय हर एक देश मे "कम से कम" वाछनीय समझा जाता है। यूनान मे आवारा बच्चो के बुजुर्गो या अभिभावको को दड मिलता है। अगर उसके बार-बार अपराध करने से यह साबित हो जाय कि अब उस पर परिवारवालो का वश नही है, तब वह बाल-अदालत भेजा जाता है। हगरी मे नियम है कि पहले बुजुर्गो को चेतावनी दी जाती है और यदि उससे काम न चला तो बुजुर्गों या अभिभावको को दड देते है। यदि इससे भी काम नही चला और स्कूल मे हाज़िरी न हुई तो अपराधी बच्चो को सरकारी छात्रावासो मे ले जाकर रख देते है। आइसलैण्ड मे तो ऐसे आवारा बच्चो के लिए, जिनको हर प्रकार से चेष्टा करने पर भी स्कूल लाना असम्भव हो जाता है, परिवार से हटाकर सरकारी छात्रावास मे रखने का प्रबध है। उसी निवासस्थान मे पाठशाला भी लगती है। ३० बच्चो के लिए प्रबध है।

आयरलैण्ड मे १० से १४ वर्ष के बच्चो को स्कूल भेजने की जिम्मेदारी माता-पिता या अभिभावको की है। यदि दुबारा गैरहाज़िरी हुई तो बुजुर्गों को जुर्माना देना होगा तथा अदालत उस बच्चे का सरक्षक या अभिभावक "किसी अन्य योग्य व्यक्ति" को बना सकती है। इज़रायल मे नियम है कि पढने के समय बच्चो से काम लेनेवालो को अथवा बुजुर्गों को दड मिल सकता है। स्कूल की दाइयो या अध्यापको की जिम्मेदारी है कि बच्चों की गैरहाज़िरी की सूचना समाजकल्याण आफिस को दे। यदि कोई बार बार भाग जाता हो तो उसे बाल-अदालत के सामने पेश किया जाय। इटली मे बच्चो की गैरहाज़िरी की सज़ा बुजुर्गों को दी जाती है। नीदरलैड्स मे आवारा बच्चो के बुजुर्ग दडित होते हैं तथा स्कूल की हाजिरी की जॉच-पडताल और स्कूल जाने के लिए बाध्य करने का काम पुलिस का है।[2] उस देश मे आवारा लडको पर देखरेख रखने के लिए एक "आवारागर्दी-निरोधक समिति" भी है। नार्वे मे बच्चो को ही चेतावनी दी जाती है। यदि उससे काम न चला तो उन्हें सुधारगृह भेज देते है। स्वीडन मे ऐसे बच्चे

१. Act of 1946—La Loi Du Mai, 1946.

२ Loerplicht Wet—Article 30, Law of 7th July, 1900.

बहुत कम मिलेंगे जो पढने के समय पाठशाला न जाकर घूमा करते है। यदि बिरले मिले भी तो बाल-समाजकल्याण समिति उनकी देखरेख कर लेती है। स्विटजरलैण्ड मे बुजुर्ग या अभिभावक ही दडित होता है। तुर्किस्तान मे भी यही स्थिति है। बुजुर्ग या अभिभावक पर ही अर्थदड लगता है। ब्रिटेन मे तो माता-पिता या अभिभावक अपने बच्चो को स्कूल न भेजने के अपराध मे जेल तक भेजे जा सकते है।

आज बालक-बालिका के जीवन मे शिक्षा की महत्ता समझने की आवश्यकता नही है। पर ससार मे अभी तक सर्वमान्य आदर्श शिक्षाप्रणाली तय नही हो पायी है। इसी प्रकार यह भी नही तय हो पाया है कि किस प्रकार की शिक्षा देने से अपराधी मनोवृत्ति के अथवा आवारागर्दी करनेवाले बच्चे सँभल जायँ। इस विषय मे नये नये प्रयोग हो रहे है। औसतन बच्चे मे जो शिक्षणीय कमी रह जाती है, जिसके कारण वह जीवन मे भूले करता है, उसे दूर करने का प्रयत्न किया जा रहा है। आवारा से हमारा तात्पर्य बिना उद्देश्य घूमने की लत से है। अनुभव से यह देखा गया है कि ऐसे बच्चो का इलाज दिन की पाठशाला मे नही होता। इनको ऐसे छात्रावास मे रखना चाहिए जहाँ चौबीस घटे की देखरेख हो सके तथा पढाई भी हो सके।

तिरस्कृत बच्चे

१२ सितम्बर १९५५ को लन्दन मे अपराधशास्त्रियो का तृतीय अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ।[१] उसके एक दिन पूर्व ब्रिटेन की प्रसिद्ध दडसुधार-समिति, हावर्ड लीग के मत्री श्री हग क्लेयर ने "आबजर्वर" मे एक लेख[२] लिखा था। अपराध तथा बाल-अपराधों की वृद्धि के लिए उनको भी परिवार से ही शिकायत थी। वे लिखते है—

"सभी अपराधी भग्न परिवार से नही आते पर अधिकाशत ऐसे परिवारो से आये हैं जो या तो किसी कारण सुखी नही है, या भग्न होनेवाले है या कई दृष्टियो से उनका पारिवारिक जीवन दोषपूर्ण है। पर ऐसे ही परिवार का एक बच्चा अपराधी बन जाता है, दूसरा नही। यह कोई आश्चर्य की बात नही है। इन दोनो बच्चो का भिन्न पैतृक सस्कार हो सकता है। शरीर की रचना मे फर्क होगा, माता-पिता के स्नेह

१. लेखक भी Third International Congress of Criminologie में उपस्थित था।

२. "The Observer", London, Sept 11, 1955—Hugh Klare—"Understanding the Criminal".

की मात्रा में अन्तर होगा। वे पृथक् स्थानों में पैदा हुए होंगे, उनका मित्रवर्ग पृथक् होगा, परिवार की किसी विकट स्थिति का उनके मस्तिष्क पर भिन्न प्रभाव पड़ा होगा।

"भग्न, दुःखी या असंतुष्ट परिवार को ही अपराध का कारण नहीं कहा जा सकता पर यह भी कहना गलत होगा कि अपराध करने पर इनका प्रभाव नहीं पड़ता। यह स्वीकार करना पड़ेगा कि गत महायुद्ध के बाद बाल-अपराधों में वृद्धि का एक बहुत बड़ा कारण भग्न परिवार था या बच्चों को अजनबी जगहों में पहुँचा दिया गया था। ऐसी जगह भी पहुँचाया गया था जहाँ कोई उनको पूछनेवाला भी नहीं था। यह भी याद रखना चाहिए कि पिछले महायुद्ध के समय-जैसी सामाजिक उथल-पुथल का प्रभाव अपराध और उसके रूप पर भी पड़ता है. . .कुछ मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि जिन बच्चों के पिता युद्धभूमि में चले गये थे, उनमें बुरी लतें आ गयी थीं, वे बच्चे अपराधी, अप्राकृतिक प्रसंग के दोषी इत्यादि हो गये थे। पिता की अनुपस्थिति में लड़का किसे अपना आदर्श बनाकर चले, किसका अनुकरण करे ? केवल माता का अनुकरण करने से, केवल माता की अनुरक्ति से उसमें स्त्रीजन्य स्वभाव तथा कादरता भी आ सकती है। इसकी प्रतिक्रिया में या तो वह उद्दंडता कर सकता है या सह-योनि-प्रसंग का शिकार बन जाता है।

"अच्छे से अच्छे परिवार में अपराधी पैदा हो सकते हैं पर इनकी सबसे उपजाऊ भूमि "समस्यामय परिवार" हैं। वे परिवार हैं जो सामाजिक, आर्थिक या व्यक्तिगत कारणों से प्रसन्न नहीं हैं, सुखी नहीं हैं। महायुद्ध के पहले भी ऐसे परिवार थे पर आज उनकी संख्या कहीं अधिक है। आज समाज में सबकी नौकरी का (इंग्लैण्ड में) प्रबंध है। शिक्षा का पहले से अच्छा प्रबंध है, लोग अधिक सम्पन्न हैं। पर ऐसा लगता है कि इन सुखों ने उनकी समस्या को और बढ़ा दिया है। आज के तीस वर्ष पूर्व अधिक बेकारी, अधिक ग़रीबी तथा असुविधाएं थीं। आज प्रायः हर एक आदमी के पास काम है, वह बेकार नहीं है। जीवन-स्तर पहले से कहीं अधिक ऊँचा है. . .पर ये समस्यामय परिवार बढ़ते ही जा रहे हैं। इनका बुद्धि का स्तर नीचा है। इनमें व्यभिचार है। इनमें शराबी हैं, अपनी दुर्बलताओं के कारण ही ये अपने को समाज में गिरा हुआ तथा दूसरों से तिरस्कृत समझते हैं। आत्मग्लानि की इसी आग के कारण ये एक प्रतिशोधात्मक मनोवृत्ति धारण कर समाज के प्रति अनायास अपराधी बन जाते हैं। इसमें क्या आश्चर्य है कि ऐसे परिवार में जन्म लेनेवाले बच्चे अपराधी बन जायें या अपराध के प्रति उनकी अधिक रुचि हो। क़ानून ने यह तो साफ़ कर दिया है कि क्या अपराध है और क्या नहीं है। पर अपराधी और ग़ैरअपराधी का अन्तर स्पष्ट नहीं है। इनमें से कितने ऐसे व्यक्ति हैं जो सीने पर हाथ रखकर कह सकते हैं कि उन्होंने

कभी अपनी जवानी मे कानून के खिलाफ कोई काम नही किया या चोरबाजार से कोई चीज कभी नही खरीदी। बडे प्रतिष्ठित लोग अपनी आमदनी तथा खर्च का जो हिसाब तैयार करते है, वह क्या एकदम सच्चा हिसाब है? कैदी तथा न्यायाधीश दोनो मे कुछ मौलिक कमजोरियाँ समान रूप से है। दोनो एक दूसरे को अच्छी तरह से जानते तथा समझते भी है। बार बार अपराध करनेवाले मे एक विशेषता प्रतीत होती है।

"यह विशेषता है भावुक अपरिपक्वता, उसका स्वभाव बच्चो की तरह से होता है। वह दूसरे के कष्ट या दूसरे पर अपने काम के प्रभाव की बात नही सोच पाता। हाथ-पैर से वह स्वस्थ दीख पडता है पर उसके आचरण से भावुक अपरिपक्वता का पता चल ही जाता है। मस्तिष्क से जो विद्युत् प्रेरणा पैदा होती रहती है उसे मशीन पर रेकर्ड किया जा सकता है। ऐसे ही रेकर्ड[1] से ऊपर लिखी अपरिपक्वता का पता चला है। आज ऐसी ही खोजो से यहाँ तक पता चल गया है कि मन तथा बुद्धि के विकास के साथ ही वैसी बुद्धि का विकास होता है। आदतन अपराधियो के हाथ की उँगलियो के नाखूनो के सिरे के चमडे का फोटो लेने से बच्चो के नाखूनो के फोटो जैसी बनावट मिलती है। ऐसे बहुत से प्रमाण मिल गये है जो अपराधी तथा बचपन का स्वभाव समान रूप से साबित कर देते है।

"बच्चो की तरह इन बडे बुजुर्ग आदतन अपराधियो मे एक खास बात यह है कि ऐसा अपराधी अपने को ससार से तिरस्कृत तथा अवाछित समझने लगता है और ऐसी भावना बडी घातक होती है। जिन्हे बचपन मे घर मे तिरस्कार तथा प्रेम का अभाव प्राप्त होता है उनमे यह भावना जम जाती है कि वे कभी किसी का आदर नही प्राप्त कर सकेगे। वे पाठशाला मे अपनी जरा सी असफलता पर, या कभी कभी काल्पनिक भूल-चूक पर बहुत ही खीझ उठते है। इसी लिए वे ऐसा साथ ढूँढते है जो उनकी तरह से ही तिरस्कृत है—अपराधी है। यदि समाज को उनकी आवश्यकता नही है तो उन्हे भी समाज की आवश्यकता नही है। वे ऐसे समाज के शत्रु बन जाते है। केवल पैतृक स्नेह के अभाव मे ही ऐसी भावना नही पैदा होती। जो बच्चे घर मे बडे नियत्रण में, बडी सुरक्षा मे, बडे बधन मे रखे जाते है, वे संसार के सघर्षमय जीवन मे पड कर जब ठोकरे खाने लगते है तो उनके मन मे भी वही छोटापन, तिरस्कार तथा उपेक्षा की भावना पैदा होने लगती है। लाड-प्यार मे नष्ट बच्चे भी समाज के सामने आने पर अपने

१. Electro-encephalographic Records.

को छोटा तथा उपेक्षित समझकर बार बार अपराधी बन जाते है। यह हो सकता है कि मन के भीतर उपेक्षा तथा तिरस्कार की इस भावना के कारण ही अनायास बहुत से अपराधी बनते चले जा रहे है।

"इस अहम बात को लोग बहुत कम याद रखते है। प्रसिद्ध जेल-प्रबधक सर अलेक्जेडर पेटरसन कहा करते थे कि उनके यहॉ अपराधी दड-स्वरूप भेजे जाते है, दड के लिए नही।"

हमने श्री क्लेयर के मत को कुछ विस्तार से दिया है। इसका कारण है। श्री क्लेयर ने जो कुछ कहा है, वास्तव मे उन बातो का निचोड है जिसे अनेक पडितो ने व्यक्त किया है तथा जिनके मत को हम स्थान स्थान पर देते आये है। हम भी उनसे बहुत कुछ सहमत है। श्री क्लेयर ने बच्चो मे उपेक्षा की जिस भावना की इतनी समीक्षा की है, निस्सदेह वह भावना उनकी बडी हानि कर रही है।

सुधार की पद्धति

विभिन्न देशो मे बाल-अपराधियो के सुधार के लिए जो कार्य हुए उसका सक्षिप्त वर्णन डा० बी० एस० हैकड़वाल ने अपनी पुस्तक के एक अध्याय मे बड़े अच्छे ढग से दिया है।[१] मार्के की बात तो यह है कि पिछले पचास साल मे इस दिशा मे विचारधारा ही एकदम बदल गयी है। घूम फिरकर लोग प्राचीन भारतीय मत के होते जा रहे है—

लालयेत् पञ्च वर्षाणि दश वर्षाणि ताडयेत्।
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रे मित्रवदाचरेत्॥ (हितोपदेश)

पाँच वर्ष तक बच्चे को खूब प्यार करे। दस वर्ष तक उसके ऊपर कठिन अनुशासन करे और १६ वर्ष का हो जाने पर उसके साथ मित्र जैसा व्यवहार करे, उसे मित्र के समान परामर्श दे।[२]

पश्चिमी देशो मे पचास वर्ष पूर्व बाल-वृद्ध सभी अपराधियो को एक साथ रखते थे। जेलो मे वे घोर से घोर अपराध सीख जाते थे। अब तो ७ वर्ष से कम के बच्चे

१. Dr. B. S. Haikerwal—"A Comparative Study of Penology—" Pub. 1954.

२. संयुक्त राष्ट्रसंघ ने अपनी रिपोर्ट Comparative Survey on Juvenile Delinquency—Part IV पृष्ठ ५ पर इसे उद्धृत किया है।

को कानूनन अपराधी मानते ही नही। इस सम्बध मे हम पिछले पन्नो मे लिख आये हैं। ७ से १२ वर्ष की उम्र के बीच के बच्चो को किसी न किसी प्रकार का दड मिलता ही है। पर यदि उनका मस्तिष्क खराब हुआ तो कोई दड नही मिलता। प्राय सभी देशो मे बाल-अधिनियम बन गया है। भारतवर्ष मे भी कई प्रदेशो मे बाल-अधिनियम लागू है। जिन प्रदेशो मे बाल-अधिनियम चालू नही है, वहाँ सन् १८९७ का रिफार्मेटरी स्कूल्स ऐक्ट काम देता है। इसके पहले भी एक कानून ब्रिटिश हुकूमत ने बनाया जो वास्तव मे मालिक तथा बाल-मजदूरो से सम्बध रखता था। इसे अप्रेंटिस ऐक्ट, १९, १८५० का कहते है। अखण्ड भारत मे यानी आज के पाकिस्तान मे तथा बर्मा में यह नियम लागू था। सन १९१९–२० की जेल जाँच कमेटी ने यही सिफारिश की थी कि १६ वर्ष से कम उम्र के बच्चो को जेलो मे न रखा जाय। उनके लिए बाल-सुरक्षागृह, जिसे रिमाड होम कहते है, खोले जायँ। इस कमेटी की यह भी सिफारिश थी कि ब्रिटिश कानून के ढग पर भारतवर्ष मे भी बाल-अधिनियम बने।

उत्तर प्रदेश मे अभी तक बाल-सुरक्षागृह नही खुल सका है यद्यपि सन् १९५२ मे यहाँ बाल-अधिनियम बन गया था। उत्तर प्रदेश मे बाल-अपराधी को रिफार्मेटरी स्कूल (सुधारक सस्था) मे भेज देते है पर चूंकि ऐसे स्कूल दो ही है अतएव अब भी जेलो के एक कोने मे बाल-अपराधी कक्ष मिलेगा। रिफार्मेटरीज मे आना दो आना प्रति सप्ताह जेबखर्च भी मिलता है। धार्मिक विश्वास के अनुसार बाल-अपराधी को धार्मिक शिक्षा भी दी जाती है। दिल्ली, अमृतसर, बम्बई, मद्रास आदि मे बडे अच्छे सुधारगृह मिलेगे। पश्चिम बगाल का अलीपुर का बालसुधारगृह तथा बरेली का सुधारगृह बहुत आदर्श समझे जाते है। दोनो में हथियार या बेत लिए पहरेदार नही है। जेल की वर्दी के बजाय साधारण भद्र पुरुष की खाकी पेन्ट तथा सफेद कमीज है। इनका औद्योगिक शिक्षणकेन्द्र बहुत अच्छा काम कर रहा है। यहाँ से दस्तकारी सीखकर निकले लडके बेकार नही रह सकते। इनमे रहनेवाले 'अपराधियो' को किसी भी स्कूल के विद्यार्थियो के समान स्वच्छन्दता प्राप्त है। यह ध्यान रखने की बात है कि १८ वर्ष के ऊपर के बच्चे इनमे नही रखे जा सकते। हर रिफार्मेटरी मे रहने की मीयाद तीन वर्ष से अधिक नही रखी जाती। यह इसलिए कि समझा जाता है कि इतनी अवधि मे रहनेवाले को कोई न कोई कला या गुण आ ही जायगा। इसका एक दूसरा रूप भी है, यदि साधारण अपराध के लिए भी बच्चे यहाँ भेजे जाते हैं तो उनको तीन वर्ष तो यहाँ रहना ही पडता है।

जिन प्रदेशो मे बाल-अधिनियम लागू हो गया है, बाल-अपराधी को 'सर्टिफाइड स्कूल' (सरकार से स्वीकृत) मे भेजते हैं, जैसे बम्बई प्रदेश का माटुगा का प्रसिद्ध

स्कूल या डैविड सासून स्कूल है। यहाँ बच्चो को बाहर भाग जाने से बचाने का प्रबध तो है पर उतना नही है कि उनको यह प्रतीत हो कि वे जेल मे है। बाकायदा स्कूल लगता है। बच्चो के आमोद-प्रमोद का पूरा प्रबध रहता है। नैतिक विषयो पर अच्छे अच्छे व्याख्यान होते है। लडकियो के लिए अलग स्कूल है। बायकुला (बम्बई का उपनगर) मे शेपर्ड आफटर केयरहोम है जिसमे वे 'अपराधी' बच्चे जिनकी "शिक्षा" की अवधि समाप्त हो गयी है, पर जिनको वापस जाने के लिए घर नही है या जीविका का साधन नही है, रखे जाते है तथा उनके लिए नौकरी का प्रबध हो जाता है। एक महीने तक यहाँ मुफ्त मे रहने का तथा रोटी का प्रबध रहता है। इसके बाद जब काम लग जाता है तो अपने ऊपर किया गया व्यय वे चुका देते है।

बाल-अधिनियम हर प्रदेश मे लागू होना चाहिए। हर प्रदेश मे ही नही, हर नगर मे लागू होना चाहिए। १४ से १६ वर्ष का प्रत्येक लडका या लडकी इस नियम के अन्तर्गत देखरेख मे रहे, गृह-विहीन, आश्रयहीन बच्चो की रक्षा का भार इस नियम के अन्तर्गत काम करनेवालो पर हो। मुझे तो ऐसा लगता है कि एशिया महाद्वीप मे बाल-अधिनियम के सिलसिले मे सबसे अधिक कार्य जापान तथा थाईलैंड यानी स्याम देश मे हुआ है। भारतवर्ष मे पराधीनता के दिनो मे कुछ विशेष कार्य नही हुआ।[१] यो, हमारे यहाँ जो कुछ नियम बने वे ब्रिटिश ढग पर बने थे। बहुत धीरे धीरे हमने बच्चो के प्रति उदारता की नीति अपनायी है। जापान तथा थाईलड (स्याम) तथा फिलप्पीन देशो के नियमो पर सयुक्त राज्य अमेरिका का असर प्रत्यक्ष है।

१. राष्ट्र-संघ की रिपोर्ट, पृष्ठ ४

अध्याय २१

एशियाई देशों में बाल-अपराध निरोध

एशिया के जिन देशो मे बाल-अधिनियम यानी चिल्ड्रेन्स ऐक्ट जिस रूप मे लागू है, उसकी तालिका इस प्रकार है—

देश	पहले का क़ानून	वर्तमान कानून	प्रस्तावित क़ानून
१ भारतवर्ष	१ अप्रेटिस ऐक्ट (इडिया ऐक्ट XIX–१९५०) २ रिफार्मेटरी स्कूल्स ऐक्ट (इडिया ऐक्ट VII १८९७) ३ बाम्बे चिल्ड्रेन्स ऐक्ट १९२४	१ रिफार्मेटरी स्कूल्स ऐक्ट, १८९७ २ चिल्ड्रेन्स ऐक्ट, वम्बई १९४८, मद्रास १९५०, पश्चिमी, बगाल १९५१, आध्र[1] १९५१, दिल्ली १९४१, केरल[2] १९४५, कोचीन[3] १९४६, मैसूर[4] १९४३	मध्यप्रदेश का बाल-अधिनियम[5] अभी पूरा नही हुआ है। बिहार प्रदेश भी ऐसा ही अधिनियम बनाने जा रहा है।

१. उस समय हैदराबाद
२. उस समय ट्रावन्कोर
३. आज केरल में
४. आज आंध्र प्रदेश में
५. Children's Act.

देश	पहले का कानून	वर्तमान कानून	प्रस्तावित क़ानून
		पजाब १९४९, उत्तर प्रदेश १९५३, प्रोबेशन आव आफेंडर्स ऐक्ट —— बम्बई १९३८, मद्रास १९३६, मध्यप्रदेश १९३६, उत्तर प्रदेश १९३८, मैसूर १९४३, केन्द्रीय सरकार का ऐक्ट १९५८	
२. पाकिस्तान	१ अप्रेंटिस ऐक्ट (इडिया ऐक्ट XIX १८५०)	वही पुराने ऐक्ट लागू है	इस विषय मे सयुक्त राष्ट्र-सघ को भी कोई जानकारी नही है।
	२. रिफार्मेटरीज स्कूल्स ऐक्ट, (इडिया ऐक्ट VII १८९७)	नया अभी नही बना	
३. बर्मा	१ अप्रेंटिस ऐक्ट (इडिया ऐक्ट XIX १८५०) २. रिफार्मेटरीज स्कूल्स ऐक्ट १८९७	यग आफेंडर्स (बाल अपराधी) ऐक्ट, बर्मा ऐक्ट —१९५०	सन् १९५२ मे बाल अधिनियम बिल का मस्विदा बन गया था। इस समय तक वह अवश्य लागू हो गया होगा।
४. लका	यूथफुल आफेंडर्स (बाल अपराधी) आर्डिनेस १८८६ तथा १९२८	१ यूथफुल आफेंडर्स आर्डिनेस, १८८६, १९२८	चिल्ड्रेन्स एड यग पर्सन्स आर्डिनेस— ४८–१९३९ तथा १९५१ का

देश	पहले का क़ानून	वर्तमान क़ानून	प्रस्तावित क़ानून
		२ यूथफुल आफे-डर्स (ट्रेनिग-स्कूल) आर्डि-नेस, न० २८—१९३९ का	विचाराधीन था।
		३ प्रोबेशन आव आफेडर्स आर्डि-नेस, न० ४२—१९४४-४७ का	आज की स्थिति ठीक से ज्ञात नही है।
५ जापान	१ रिफार्मेटरी ला, १९००	१ जुवेनाइल ला १९४८	
	२ जुवेनाइल (बाल) ला (कानून) १९२२	२ चाइल्ड वेल्फेयर (शिशु कल्याण) कानून १९४७	कोई नही
	३ जुवेनाइल कट्रोल एड प्रोटेक्शन ला (बाल नियंत्रण तथा सरक्षण नियम) १९३३	३ आफेडर्स प्राबे-शन एड रिहै-बिलियेशन (रोकथाम तथा पुनर्वास) कानून १९४८	
६. फिलप्पीन	१. सन् १९०६ का ऐक्ट न० १४-३८	जुवेनाइल डेलि-क्वेंट (बाल अपराधी) ऐक्ट न० ३२०३ १९२४ का	बाल अदालतो की स्थापना हुई है।
	२. सन् १९१९ का ऐक्ट न० २८१५		
७. थाईलैंड (स्याम)	१. कंट्रोलिंग जुवे-नाइल एंड	१. चिल्ड्रेस एंड जुवेनाइल कोर्ट	कोई नही

देश	पहले का कानून	वर्तमान क़ानून	प्रस्तावित क़ानून
	'स्टूडेन्ट्स ऐक्ट १९३९	(बाल अदालते) ऐक्ट १९५१	
	२. ट्रेनिंग आव जुवेनाइल ऐक्ट १९३६	२ चिल्ड्रन एड जुवेनाइल कोर्ट प्रोसीड्योर ऐक्ट १९५१	

सामाजिक सेवा

एशिया के विभिन्न देशो मे बाल-समाज की सेवा के लिए सार्वजनिक तथा सरकारी काम भिन्न मात्रा मे हुए है। अभी कुछ वर्ष पहले तक ब्रिटेन के अधीन देशो मे, जैसे भारत, पाकिस्तान, बर्मा, लका अथवा डचो के अधीन हिन्द एशिया मे यह काम एक प्रकार से हुआ ही नही था और हुआ भी तो बहुत कम। अब जाकर कुछ-कुछ चालू हुआ है।

भारत--[illegible] काफी कम मात्रा मे भारतवर्ष मे भी हुआ है। जैसा कि हम ऊपर बतला आये है, ३१ दिसम्बर १९५८ को उत्तर प्रदेश के जेलो मे, जिनमे बाल-सुधारगृह यानी बरेली का सुधारगृह, जिसे किशोर-सदन कहते है, शामिल है, ८६,४५३ बन्दी थे, १,३२,४४५ विचाराधीन कैदी थे तथा २३,५९९ वाल-अपराधी थे। इन बाल-अपराधियो के लिए केवल २ सुधारगृह थे जिनमे बरेली का किशोर-सदन शामिल है। मद्रास मे बच्चो के लिए एक बोर्स्टल स्कूल है जो पलायम-कोट्टाई मे है। बम्बई मे ३१ मार्च १९५८ को ७७९० बाल-अपराधी तथा २६९९ बालिका अपराधिनी थी जिनके लिए २७ रिमाड होम (सुरक्षागृह), ३६ सर्टिफाइड स्कूल्स, ९३ "योग्य व्यक्ति सस्थाएँ" तथा २८ बाल-अदलाते यानी १८४ सस्थाएँ थी। बाल-अपराधियो के लिए इतना प्रबंध होने पर भी बम्बई प्रदेश की पुलिस की १०६२ हवालातो को मिलाकर १४५३ जेलो मे १३, ५७८ कैदी, ५८३५ विचाराधीन कैदी तथा ८४७ बाल-अपराधी थे।[1] ये बाल-अपराधी ऊपर लिखी १८४ सस्थाओ के बावजूद भी जेलो मे—मुख्य जेलो मे—रखे गये है।

१. प्रधान कारागार निरीक्षक, बम्बई का पत्र सं० ६२२, १७ जून १९५९—अखिल भारतीय अपराध-निरोधक समिति के नाम।

उडीसा जैसे छोटे राज्य मे, जिसकी आबादी १,४६,४९,००० के लगभग है, ३१ मार्च १९५९ को समाप्त होनेवाली तिमाही मे ५८ हत्याएँ, २९ डाके, ४१ डकैतियाँ (सशस्त्र नही), १००४ सेध लगाकर चोरी करने की घटनाएँ, १७१३ चोरियाँ तथा १०८ बलवे हुए। सशस्त्र डाको का औसत प्रति एक लाख आबादी पीछे ३ था। यही औसत हत्या का भी था। डकैतियो का औसत २७ था। चोरी का औसत प्रति एक लाख व्यक्ति पीछे ६ ८ था।[1] इन आँकडो से बाल-अपराधियो की सख्या स्पष्ट नही होती पर यह जरूर पता चलता है कि जेबकटी के ४०, चलती गाडी से चोरी के ४४ तथा छिटपुट चोरी के ८ मामले हुए। अवश्य ही इनमे बाल-अपराधी है पर उडीसा मे बाल-अपराधियो के लिए कोई विशेष प्रबध नही है।

बाल-कल्याण के कार्यो की ओर प्रथम तथा द्वितीय दोनो पचवर्षीय योजनाओ मे नियोजको का ध्यान नही गया था। अब तीसरी पचवर्षीय योजना की तैयारी मे हमारा नियोजन विभाग विशेष रूप से आकृष्ट हुआ है। हमारे देश मे १६ वर्ष से कम उम्र के बच्चो की सख्या लगभग १५ करोड है।[2] यदि इतनी बडी सख्या की ओर से हम उदासीन रहेगे तो हमारा कल्याण कैसे होगा? नयी योजना मे नियोजको की राय मे परिवार से तिरस्कृत या उपेक्षित, परित्यक्त आदि बच्चो की रक्षा, पालन तथा शिक्षण का प्रबध होगा। ऐसे सामाजिक कार्यकर्त्ता नियुक्त होगे जो बच्चो के लालन-पालन आदि की शिक्षा माता-पिता तथा परिवार वालो को देगे। अन्य सरकारी तथा समाज-कल्याण विभाग द्वारा बाल-कल्याण का जो छिटपुट कार्य होता है वह एक सूत्र मे पिरो दिया जायगा और उनके स्वास्थ्य, शिक्षा, आमोद-प्रमोद आदि का कार्य भी एक ही एजेन्सी के द्वारा सम्पन्न होगा। जो सार्वजनिक सस्थाएँ बाल-कल्याण का कार्य कर रही है, उनको प्रोत्साहन दिया जायगा, उनकी सहायता की जायगी। बच्चो को पुष्टिकारक भोजन तथा स्वस्थ शिक्षा देने की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया जायगा। केन्द्रीय सरकार बाल-अधिनियम तथा ऐसे सभी नियमो की जाँच करके सब प्रदेशो के लिए उपयुक्त नियम बनाने का प्रबध करेगी।

यह सब काम आगे चलकर होगा। इस समय न तो जनता और न सरकार ही इस ओर विशेष ध्यान दे रही है। सरकार ने तो कुछ किया भी है पर जनसमूह अपने

१. इंस्पेक्टर जनरल पुलिस, उड़ीसा का पत्र सं० ६३२०, २५ मई १९५९, अखिल भारतीय अपराध-निरोधक समिति के नाम।

२. नयी दिल्ली का १५ जून १९५९ का समाचार

ही बच्चो के प्रति एकदम उदासीन है। सब काम सरकार नही कर सकती। हमारा भी कुछ कर्त्तव्य होता है। हमारे देश मे कुछ गैर-सरकारी संस्थाएँ सरकार से सहायता प्राप्त कर इस दिशा मे अच्छा कार्य कर रही है। देश मे बहुत से अच्छे अच्छे अनाथालय, महिलाश्रम, बाल-उद्योगभवन, बाल-क्रीडा केन्द्र, बाल-सहायक समिति, बाल-कल्याण समिति, बाल-सरक्षण समिति, प्रोबेशन तथा आफ्टर-केयर (उत्तर-रक्षा) असोसियेशन[1], ऐसी सस्थाएँ है। इनका काम और भी आगे बढ सकता है यदि लोग सरकार की ओर देखना बन्द करके जरा अपने बच्चो के नाम पर ऐसी सस्थाओ की सहायता भी किया करे। हमारे उत्तर प्रदेश के बाल-जेलो मे या सुधारगृहो मे या बरेली के किशोर-सदन मे केवल ये बालक रखे जा सकते है—

१ ऐसे प्रत्येक बालक को जिसे कठोर कारावास का दड मिला हो, किशोर-सदन बरेली भेज देना चाहिए।

२ उसकी उम्र १८ वर्ष से ऊपर की न हो, २३ वर्ष की उम्र तक उसको अपनी सज़ा पूरी कर लेनी चाहिए, तथा किसी की सजा एक वर्ष से कम की न हो।

३ चेहरे से वह बालिग न मालूम पडता हो।

४ अपराधी जाति का न हो।

५ दफा १०९, ११० या १२३ (भारतीय दड-विधान) के अतर्गत दडित न हो।

६ अप्राकृतिक व्यभिचार के लिए दडित न हो।

७ जितने दिन तक वह जेल मे विचाराधीन रहा है, उसका चालचलन ठीक रहा हो।

८. उसे कोई छुतही बीमारी न हो, उसका स्वास्थ्य ठीक हो, उसकी बुद्धि ठीक हो।

इतनी शर्तो के बाद यदि किसी बाल-भवन मे श्रेष्ठ अपराधी यानी अच्छे लडके इकट्ठा न होगे तो क्या बुरे लडके पहुँचेगे ? हमारी सम्मति मे सुधार-गृहो मे प्रवेश के लिए इतनी शर्त्ते अवाछनीय है। पर, इस विषय पर हम यहाँ विचार नही करेगे।

बर्मा—बर्मा मे सन १९२८ मे परित्यक्तो के लिए एक आश्रम की स्थापना हुई

१. Probation and After care Association. प्रोबेशन के लिए हिन्दी में "परिवीक्षण" शब्द है, After-care कहते है जेल से छूटने के बाद देखरेख यानी उत्तर-रक्षा।

थी। सन् १९५१ मे इस सस्था ने अपनी जो रिपोर्ट प्रकाशित की थी, उसमे लिखा है—"यह आश्रम चार प्रकार के लडको के लिए है। परित्यक्त और घर से भागे हुए, बाल-अपराधी कहे जानेवाले, विचाराधीन बाल-बदी तथा घरेलू जीवन मे नियंत्रण मे न रहनेवाले बच्चे। प्रथम श्रेणी मे यानी परित्यक्त इत्यादि वे बच्चे है जो अनाथ है, बडे दरिद्र माता-पिता की सतान है, निर्दोष है, उन्हे सरकार ने हमारे पास नही भेजा है। बाल-अपराधी कहे जानेवालो मे बहुत से निर्दोष भी होते है, वे बाल-अपराधी नियम, धारा २० के अतर्गत हमारे पास केवल नजरकैद करने के लिए भेजे जाते हे। बाल-अपराधियो के लिए सरकार की ओर से २० रुपया फी अपराधी भोजन-व्यय हमको मिलता है जब कि हमारे आश्रम मे प्रति व्यक्ति पीछे ३८ रुपया ६ आना खर्च पडता है।"

लका—परिवीक्षण (प्रोबेशन) सेवा केन्द्र तथा अनाथालयो मे बाल-अपराधी भी रखते है, यो तो साधारण जेलो का एक कोना बाल-अपराधियो के लिए काम आता है। बाल-समीक्षण केन्द्र केवल एक है, राजधानी कोलम्बो मे। बाल-अपराधियो को दड देने के पूर्व उनकी जॉच-पडताल का काम परिवीक्षण अधिकारी करता है। अपने कार्य मे वह समाजसेवको से भी सहायता ले सकता है।

पाकिस्तान—कराची मे एक बाल-कल्याण समिति है। यह गैर-सरकारी सस्था है। यही कराची के सरकारी बाल-सुरक्षा-गृह का भी प्रबध करती है। इस सस्था को जनता को उदासीनता के कारण बडा कष्ट है। यह सरकारी सहायता से ही जीवित है। वैसे, सयुक्त राष्ट्र-सघ के अनुसार, पाकिस्तान मे बाल-सुधार या बाल-अपराधी की देखरेख का कार्य नही के बराबर है।[1]

थाईलैंड—स्याम देश मे बच्चो की देखरेख के लिए इससे अधिक उपयुक्त तथा प्रशसनीय सगठन है। वहाँ नया कानून बनने के बाद, जिसका जिक्र हम अपनी तालिका मे कर आये है, बाल-कल्याण केन्द्र तथा बाल-कल्याण समितियाँ एक मे मिलाकर केन्द्रीय सगठन के अतर्गत कर दी गयी है। पर ऐसा सगठन अभी कागज पर ही है। राजधानी बैंकाक को छोडकर और कही इसका कार्य, आज से तीन वर्ष पूर्व तक चालू नही हो पाया था, पर यह आशा जरूर करनी चाहिए कि इस बीच मे ऐसा सगठन चतुर्दिक् हो गया होगा।

फिलप्पीन—फिलप्पीन द्वीपसमूह का सरकारी समाज-कल्याण कमीशन बाल-

१. राष्ट्रसघ की रिपोर्ट—पृष्ठ १६

अपराधी, दोषी, अपाहिज, भ्रष्ट तथा परित्यक्त—हर प्रकार के बच्चो की देखरेख करता है। यह कमीशन[१] (सस्था) नजरकैद या सुरक्षागृह मे रोके हुए अपराधियो को छोड-कर परिवीक्षण का काम करता है, बाल-अपराधियो के सुधार, शिक्षा तथा पुनर्वास का प्रबध करता है। परिवीक्षण विभाग बाल-अपराधियो मे सामाजिक अनुसधान का कार्य करता है। किन्तु यह खोज तभी की जाती है जब मनीला की बाल-अदालत के विचारपति किसी मामले मे ऐसा करने का आदेश देते है। ऑकडो से पता चलता है कि बाल-अदालते बहुत कम मामलो मे इनकी सहायता प्राप्त करती है।

जापान—जापान मे सार्वजनिक और सरकारी, दोनो दृष्टियो से बालसेवा तथा बाल-कल्याण का कार्य एशिया मे श्रेष्ठ होता है। उसका रूप इस प्रकार है—

१ सुप्रीम कोर्ट (सबसे ऊची अदालत) के मुख्य सचिवालय के साथ नत्थी पारिवारिक विषयसमिति[२], इसी के अतर्गत बाल-अदालते काम करती है।

२ न्याय मत्रालय के अन्तर्गत दड-सुधारसमिति है। इसके अतर्गत बाल-अपराधियो की नजरबन्दी, वर्गीकरणगृह (जहॉ पर छानबीन की जाती है कि किस श्रेणी मे रखने योग्य अपराधी है, उनकी देखरेख, शिक्षा, पुर्नवास आदि का कार्य होता है।

३ न्याय मन्त्रालय के ही अतर्गत पुनर्वास समिति है जिसके अतर्गत जिला युवक अपराध-निरोधक तथा पुनर्वास समिति (कमीशन)[३] तथा युवक निरीक्षण कार्यालय है, जिसको निर्णय करना पडता है कि निगरानी पर छोडा जाय या नही, परिवीक्षण पर छोडे गये लोगो को उचित आदेश देना, इत्यादि।

४ स्वास्थ्य मत्रालय द्वारा बालको-बालिकाओ के स्वास्थ्य सुधार का सब कार्य।

गिरफ्तारी, अवरोध, निरीक्षण

बाल-अपराधियो की गिरफ्तारी के लिए बर्मा, सीलोन, लका, फिलप्पीन, पाकिस्तान तथा थाईलैंड (स्याम) देशो मे कोई विशेष नियम नही है। भारत के कई प्रदेशो मे यही बात है। फिलप्पीन की राजधानी मनीला तथा बर्मा की राज-

१. Social Welfare Commission

२. Family Affairs Bureau

३. District Youth Offenders' Prevention and Rehabilitation Commission called Dyopar

धानी रगून मे वेश्याओ, महिलाओ, लडकियो तथा छोटी उम्र के बच्चो की गिरफ्तारी के लिए विशेष महिला पुलिसदल नियुक्त है। मनीला मे पुलिस का बाल-विभाग भी अलग है। यह विभाग ही गिरफ्तारी के बाद तय करता है कि कौन मामला अदालत मे जाने के काबिल है और कौन डरा-धमकाकर या चेतावनी देकर छोड देने के योग्य है। बाल-अपराधियो की गिरफ्तारी के लिए मनीला पुलिसविभाग मे हाई स्कूल के लडके या लडकियाँ (छात्राएँ) नियुक्त कर दी जाती है। सन् १९४८ मे इस नगर मे ऐसे २५०० छात्रा-छात्र कास्टेबुल थे जिनका काम था कि बच्चो के लिए हानिकारक स्थानो मे, जैसे शराबखाने, रात्रि के क्लब, नाचघर इत्यादि मे उनका जाना रोके या यदि जा रहे हो तो मना कर दे।

बम्बई मे बाल-अपराधियो के लिए एक विशेष पुलिस जत्था है, जिसमे पुरुष, स्त्री दोनो ही है। अगस्त १९५२ मे इस जत्थे की स्थापना हुई थी। यह जत्था बम्बई प्रदेश की नीम सरकारी बाल-सहायक समिति के सहयोग से केवल गिरफ्तारी का ही काम नही करता, पर बाल-अपराध रोकने, या नियत्रण का तथा अनाथ, तिरस्कृत या दरिद्र बच्चो की रक्षा का भी काम करता है।

फिलप्पीन मे बाल-अधिनियम धारा १०-अ के अनुसार प्रोबेशन अफसर यानी परिवीक्षण अधिकारी को पुलिस अफसर के अधिकार प्राप्त है। बर्मा मे पुलिस विभाग के अतिरिक्त भी, वास्तविक अपराध करने के पूर्व अपराधी प्रवृत्ति के लडके-लडकियो को गिरफ्तार करने के लिए नागरिको मे से कुछ व्यक्तियो को यह अधिकार प्राप्त रहता है। इनकी नियुक्ति जिलाधीश करते हैं। शिक्षा विभाग के उच्च अधिकारियो को आवारा लडको को गिरफ्तार करने का अधिकार होता है। बम्बई मे भी परिवीक्षण अधिकारी को आवारा घूमनेवाले, बुरे चाल-चलन के, सडक पर भीख मॉगनेवाले, गृहविहीन, वेश्यावृत्ति करनेवाले, अनाथ, शराबी आदि लडके-लडकियो को पकडने का अधिकार है। कुछ नागरिको को भी यह अधिकार प्राप्त है। बाल-अधिनियम १९४८, धारा ७८-१ के अनुसार सब-इस्पेक्टर के ओहदे से नीचे का पुलिसमैन बाल अपराधियो को गिरफ्तार नही कर सकता। धारा ६६ के अनुसार ऐसी गिरफ्तारी के बाद परिवीक्षण अधिकारी को तुरत सूचना देनी चाहिए। थाईलैड के बाल-अधिनियम की धारा २४ के अनुसार गिरफ्तारी के बाद बाल-कल्याण केन्द्र अथवा समिति के सचालक तथा माता-पिता या अभिभावक को तुरत सूचना देनी चाहिए। मोटे तौर पर, यह मान लेना चाहिए कि ऊपर लिखे देशो मे बाल-अपराधियो की गिरफ्तारी के बारे मे कोई खास नियम नही चालू है—कुछ स्थानो को छोडकर—केवल एक बात जरूर है कि बर्मा, भारत, पाकिस्तान तथा लका

के दड-विधान मे इतना अवश्य लिखा है कि ऐसे "गिरफ्तार व्यक्ति पर उत ही प्रतिबध रहना चाहिए जितने से वह भाग न जाय।" यदि गिरफ्तार करनेवा अफसर चाहे तो नरमी बरत सकता है।[1]

जापान मे भी साधारण दडविधान के अतर्गत बाल-अपराधियो की गिरफ्ता आम पुलिस द्वारा ही होती है पर बाल-अधिनियम के अतर्गत गिरफ्तारी का क "बाल-अनुसधक" तथा अदालत के क्लर्क आदि करते है। ऐसी दशा मे गिरफ्ता का वारण्ट बाल-अनुसधक के हस्ताक्षर से जारी होता है। "परिवार अदालत" आज्ञा से राष्ट्रीय ग्रामीण पुलिस अफसर, म्युनिसिपल पुलिस अफसर या कोर्ट क्ल वारट की तामील कर सकता है। अन्य अपराधियो की भाँति बाल-अपराधी प्रत्येक देश मे, जमानत पर छोडा जा सकता है। पर बर्मा मे जमानत के निय इतने कठोर है कि बच्चो के लिए जमानत पर छूटने मे बडी कठिनाई होती है।[2]

हम यह ऊपर ही लिख आये है कि एशिया के अधिकाश देशो मे गिरफ्तार हो वाले बाल-अपराधियो को बडो के जेलो मे ही रखने का नियम है। कुछ देशो या प्रदे मे इन्हे बन्द करने के लिए विशेष आवास भी है। केवल जापान मे, देश भर मे [illegible] है। भारतवर्ष मे दिल्ली, पश्चिमी बगाल, मद्रास तथा बम्ब मे विशेष अवरोधगृह है। अन्यथा हमारे यहाँ भी पुलिस की हवालात तथा बडो जेल से काम लिया जाता है। हफ्तो, महीनो तक इनमे बाल-अपराधी सडते और न होते रहते है। बर्मा, पाकिस्तान, लका तथा स्याम देश मे भी यही दशा है। र मे बहुत से बाल-अपराधियो को "घुमन्तू बालको या आवारा लडकियो के लिए" आश्रमो मे, उनके अलग कक्ष मे रखने का प्रयास होता है। पर सभी बन्दी इन आश्र मे नही रखे जा सकते। फिलप्पीन की राजधानी मनीला मे ऐसे अवरोधगृह गये हैं जहाँ विचाराधीन बाल-अपराधी रखे जाते है। वही उनका मुकदमा होता और छोटी मीयाद की सजा भी वही भोग लेते है। पाकिस्तान मे, केवल कराची एक अवरोधगृह है, बाकी तो आम जेलखाना ही काम देता है। कराची नगर बम्बई का बाल-अधिनियम, (१९२४ का) अभी तक लागू है जिसके अनुसार "यदि

१. राष्ट्रसघ की रिपोर्ट, पृष्ठ १९

२. J. C. F. Hall—"Boy Crime in Burma", Pub Americ Baptist Mission Press, Rangoon, 1939—Page 29.

३ Detention Homes.

वर्ष के नीचे का गिरफ्तार व्यक्ति दफा १८ के अनुसार छोड नही दिया गया तो उसे सरकार द्वारा निर्धारित रूप मे बन्द किया जायगा।" यह निर्धारित रूप है अवरोध-गृह या सुरक्षागृह मे बन्द रखना। पर, जब ऐसे निवास ही नही हैं तो उनकी चिन्ता कौन करेगा ?

बम्बई, मद्रास, जापान तथा स्याम के कुछ भागो मे ऐसे सुरक्षागृह हैं जहाँ बाल-अपराधी केवल बन्दी ही नही रखा जाता, वहाँ पर उसके बारे मे आवश्यक छानबीन तथा जाँच-पडताल भी हो जाती है। उसका परीक्षण-निरीक्षण भी हो जाता है। पर जो सुविधा बम्बई मे बाल-अपराधियो को प्राप्त है, वह बम्बई प्रदेश मे और कही नही है। अन्य भाग मे, वे साधारण जेलो मे, उनके एक अलग कक्ष मे, रखे जाते है।

मद्रास बाल-अधिनियम की धारा १९-२० के अनुसार तथा बगाल के बाल-अधिनियम की धारा १८-१९ के अनुसार यदि बाल-अपराधी की दफा १७ के अतर्गत जमानत नही हो गयी तो उसे पुलिसथाना या जेल के अतिरिक्त निश्चित स्थान मे बन्दी रखा जायेगा। ऐसे अपराधी का मुकदमा जल्द से जल्द सुन लेना चाहिए। यदि अदालत किसी अपराधी को छोडने के बजाय उसका मुकद्दमा करना चाहती है तो ऐसी जगह उसे बन्दी रखे जो न तो जेल हो और न पुलिस की हवालात (धारा १९)। मद्रास बाल-अधिनियम इस विषय मे बहुत उदार तथा आदर्श है। उसके अनुसार बाल-अपराधी को किसी सम्मानित व्यक्ति, परोपकारी सस्था या समाज-कल्याण करनेवाली समितियाँ, गाँव का मुखिया या जहाँ सुरक्षागृह हो वहाँ रखना चाहिए। लडकियो के लिए भी यही नियम है, बल्कि कुछ अधिक कठोर है। किसी भी दशा में लड़की को पुलिस की हवालात मे नही रखा जा सकता। मजिस्ट्रेट चाहे तो लडकी को किसी ऐसे भद्र पुरुष के जिम्मे कर सकता है जो उसे समय पर अदालत मे पेश कर दे।

बम्बई तथा मद्रास के बाल-अधिनियमो के अनुसार किसी भी स्थान को अवरोध-गृह घोषित किया जा सकता है। जिस कन्या या बालक को किसी के पास रख दिया जाय, उसका घर ही अवरोधगृह मान लेना चाहिए। कन्याओ के लिए निश्चित अवरोधगृह का निरीक्षण यथाशक्य महिलाओ द्वारा ही होना चाहिए और उन्ही के प्रबध मे होना चाहिए। बम्बई सरकार ने कुछ अस्पतालो को भी, अध आश्रम, महिला-आश्रम, अनाथालय इत्यादि को भी "अवरोधगृह" के रूप मे स्वीकार कर लिया है। बम्बई मे इस समय ऐसी ४३ सस्थाएँ सरकार से मान्यता प्राप्त है जिनके द्वारा न केवल बाल-अपराधियो के नियत्रण का बल्कि उनके सुधार का कार्य भी होता है। इन सस्थाओ का प्रबध गैरसरकारी समितियो के हाथ मे है। इनमे प्रमुख बम्बई प्रदेश

बाल-सहायक समिति को सरकार से पूरा खर्च मिलता है तथा अन्य समितियो को भी सहायता मिलती है।

अवरोधगृह अथवा सुरक्षागृह[1] का सगठन बम्बई तथा मद्रास मे समान रूप से है। मद्रास मे छ अवरोधगृह है। पश्चिम बगाल मे लडको के लिए तथा लडकियो के लिए अलग-अलग एक-एक सुरक्षा (अवरोध) गृह है। ये दोनो ही कलकत्ता मे है। परिवीक्षण अधिकारी बाल-अपराधियो को जमानत पर छोडने के विरुद्ध है। उनका कहना है कि इस प्रकार छोड देने से उनकी निगरानी से जो बाते मालूम होती है, जो परीक्षण होता है, उसका लाभ नही प्राप्त होता ।[2]

परिवीक्षण (प्रोबेशन) का कार्य उत्तर प्रदेश मे भी काफी उन्नत है। यहाँ के १४ जिलो मे परिवीक्षण अफसर है और अन्य जिलो मे भी योजना को लागू करने का विचार है। इस सम्बन्ध मे हम आगे चलकर विचार करेगे। बाल-अपराधियो के लिए उचित परामर्श देने के लिए तथा आम तौर पर सभी समस्यामय बच्चो के उचित मार्ग-निर्देशन के लिए जिस प्रकार की क्लिनिक" होनी चाहिए वह हमारे देश मे प्राय नही है। कुछ थोडा बहुत कार्य बम्बई तथा पूना की दो सस्थाएँ—दो "क्लिनिक" कर रही है। बाल-अपराधियो को दस्तकारी, शिक्षा, कला तथा अनेक उपयोगी कार्य सिखलाने के लिए उत्तर प्रदेश, बम्बई, मद्रास आदि मे बडे अच्छे केन्द्र है। उत्तर प्रदेश का किशोर-सदन तथा बम्बई का उमरखेडी का केन्द्र इसके लिए प्रसिद्ध है। मद्रास मे भी बालकेन्द्र तथा कन्याकेन्द्र मे ऐसी शिक्षा का समुचित प्रबध है।

स्याम देश मे अवरोधगृह को बाल-कल्याण केन्द्र कहते है। बाल-कल्याण समिति का पदेन अध्यक्ष उस "चागवाद" यानी जिले का कमिश्नर होता है। सभापति "मुआग" यानी नगर की म्युनिसिपल कौसिल का चेयरमैन होता है। इसके तीन सदस्य न्याय मत्रालय से नियुक्त होते है तथा "चागवाद" का हेल्थ अफसर और जिला विद्यालय निरीक्षक इसके पदेन सदस्य होते है। थाई बाल-अधिनियम की धारा ३३ के अनुसार यदि अदालत उचित समझे तो बाल-अपराधी को बाल-कल्याण समिति की देखरेख मे भेज सकती है। जापान के बाल-अधिनियम की धारा १७ के अनुसार "गृह

१ Detention Centres & Remand Homes

२. Sectional Conference of Probation Officers, Bombay, 1947

या पारिवारिक अदालतें" यह निर्णय करेगी कि विचाराधीन बाल-अपराधी परिवीक्षण अफसर या "अवरोधगृह" या "वर्गीकरणगृह" कहाँ रहेगा। स्याम देश की तरह जापान मे भी अवरोधगृह सरकारी प्रबध मे है। अवरोधगृह अथवा "वर्गीकरण" (किस श्रेणी मे रहने योग्य है) गृह मे केवल पूरी तरह से मनोवैज्ञानिक परीक्षा ही नही होती, डाक्टरी जाँच, पारिवारिक जाँच आदि सभी कुछ होता है।

बच्चे को ऐसे आश्रमो मे रखना जहाँ पर निकट से उसका "अध्ययन" किया जा सके, यह पता लगाया जा सके कि यदि वह नटखट है, दुष्ट है तो क्यो है—या क्यों उसकी प्रवृत्ति अपराधो की ओर जा रही है, इसकी जाँच की सहूलियत—अपराधी बनने के पूर्व की समीक्षा की सहूलियत भारत, पाकिस्तान, बर्मा, लका, थाईलैंड तथा फिल-प्पीन देशो मे नही है। भारत मे बम्बई मे ऐसा कुछ प्रबध है पर जिस प्रकार की ऐसी सस्थाएँ या गृह होना चाहिए वैसा प्रबध नही है। जापान मे अवश्य इसका बडा अच्छा सगठन है। ऐसे केन्द्र उस देश मे चारो ओर है जहाँ सजा के पहले या बाद मे लड़का या लडकी बारीक जाँच के लिए भेजा जाता है, रखा जाता है। वही पर यह निश्चय होता है कि उसकी व्यक्तिगत चिकित्सा किस प्रकार से हो, उसे किस श्रेणी मे रखा जाय—यानी किस प्रकार की शिक्षा उसे दी जाय। अदालत यह भी आदेश दे सकती है कि बच्चे की किस विषय मे छानबीन हो, जाँच हो, सूक्ष्म परीक्षण हो। धारा १६ के अनुसार बाल अपराधी के "स्वभाव" की जाँच कराना काफी ज़रूरी है। उसके बारे मे, उसके परिवार के बारे मे, उसके साथियो के बारे मे—हर प्रकार की जाँच की जाती है। तब यह निश्चय हो पाता है कि उसने अपराध क्यो किया और उसे स्वस्थ नागरिक किस प्रकार बनाया जाय। स्पष्ट है कि इतनी जाँच-पडताल के बाद उस लडके या लडकी के हृदय की तसवीर सरकार के सामने होती है और जहाँ पर गन्दगी हो, उसे दूर कर उसे स्वस्थ नागरिक बनाया जा सकता है।

अध्याय २२

बाल-अदालतें

बाल अपराधी को सुधारने या दड देने के लिए आजकल विशेष अदालते नियुक्त है जिन्हे 'बाल-अदालत' कहते है। सब एशियाई देशो मे ऐसा नही है। अधिकाश देशो मे साधारण अदालते ही उनका अभियोग सुनती है।

जापान—जापान मे वही साधारण फौजदारी की अदालते उनका मुकदमा सुन सकती है जिनको ऐसा अधिकार प्राप्त है तथा इनके अलावा (१) विशेष पारिवारिक अदालते तथा (२) बाल-कल्याण केन्द्र भी यही कार्य करते है। जापान की पारिवारिक अदालते सन् १९४७ के नियम ५९ तथा सन् १९४८ के बाल-अधिनियम स० १६८ के अनुसार सगठित हुई थी। ये पारिवारिक अदालते २० वर्ष के नीचे के लडके लडकियो के मुकदमे सुनती है। उन बालिग लोगो का मुकदमा भी यही होता है जिन पर बच्चो को बिगाडने का, भ्रष्ट करने का अभियोग होता है। पारिवारिक झगडे, माता-पिता की लडाई या अभिभावक की खराबी के कारण दूसरे अभिभावक की नियुक्ति आदि का काम भी इन्ही के द्वारा होता है। बाल-कल्याण अधिनियम के अनुसार संगठित बाल-कल्याण समितियो का अधिकार १४ वर्ष से नीचे के बच्चो पर है और ये गैर-अदालती सस्थाएँ हैं जिनमे प्रथम अपराधी छोटे-मोटे अपराध के आते है। इनके सामने घुमन्तू तथा आवारागर्दी के मामले, बच्चों के साथ निर्दयता, पारिवारिक मत-भेद आदि के मामले भी आते है। जापान मे पारिवारिक अदालतो तथा बाल-कल्याण केन्द्रो का ही बाल-अपराधो के सम्बन्ध मे अधिकतम उपयोग होता है। ऐसे केन्द्र के प्रधान को "तो" या "दो" कहते हैं।

भारत—स्याम की राजधानी बैंकाक, पाकिस्तान की राजधानी कराची तथा भारतवर्ष मे कलकत्ता, मद्रास और बम्बई मे विशेष बाल-अदालते है। पर आदर्श बाल-अदालत, भारतवर्ष मे, केवल बम्बई मे है जिसमे एक महिला विचारपति बैठती है, जिनका अन्य किसी न्यायालय से सम्बन्ध नही होता तथा जिनके इजलास मे पुलिस कर्मचारी बाल-अभियुक्तो के साथ अपनी वर्दी मे नही आ सकते, यानी उनको सादे लिबास मे आना पडता है ताकि बच्चे पर बुरा प्रभाव न पडे। बम्बई तथा मद्रास

प्रदेश में बाल-अपराधी के सम्बन्ध मे सभी गार्य सर्टिफाइड स्कूल्स, अवरोधगृह, सुरक्षागृह, सुधारगृह, परिवीक्षण विभाग आदि "चीफ इंस्पेक्टर सर्टिफाइड स्कूल्स" के अन्तर्गत है। उत्तर प्रदेश तथा बिहार मे परिवीक्षण-विभाग प्रधान कारागार-निरीक्षक के अधीन है। पर स्याम देश मे, जहाँ केवल बैंकाक मे एक बाल-अदालत है तथा अन्य नगरो के लिए अन्य अदालतो मे काम करनेवाले विचारपतियो को "बाल-अदालत" का अधिकार दे दिया गया है, सम्राट् द्वारा नियुक्त समस्त बाल-अदालतो का एक प्रधान न्यायाधीश होता है। बाल-अपराध तथा बाल-कल्याण का समस्त कार्य इस पदाधिकारी के अधीन है। बिना इस अधिकारी की अनुमति के गैर-सरकारी बाल-छात्रावास, [illegible] बाल-सदन या लडके-लडकियो के लिए स्कूल नही खोला जा सकता। जापान, भारत—एशिया के प्राय सभी देश अन्य अदालतो के जज लोगो को या मैजिस्ट्रेट को "बाल-अदालत" का अधिकार देकर काम चलाते है। उत्तर प्रदेश में हर जिले मे, जहाँ पर प्रोबेशन सेवा लागू है, एक प्रोबेशन मजिस्ट्रेट होता है। पर यह अधिकारी और भी काम करता है। बम्बई के बाल-अधिनियम १९४८ की धारा ३८ के अनुसार "परिवीक्षण अफसर" इस अधिनियम के अन्तर्गत अदालत का एक कर्मचारी होगा तथा बाल-अदालत के नियत्रण मे ही कार्य करेगा।" बगाल तथा मद्रास के बाल-अधिनियमो मे इस प्रकार की कोई स्पष्ट धारा नही है।

जापान मे, सन् १९४८ के बाल-अधिनियम के अनुसार, पारिवारिक अदालतो के अधीन जो विचारणीय बाल अपराधी आते है, उनकी व्याख्या कानून की धारा ३ के अनुसार निम्न प्रकार से है। बाल-अपराध मे रुचि रखनेवालो को यह व्याख्या रोचक प्रतीत होगी।

१ कोई बालक या बालिका जिसने कोई अपराध नही किया हो।

२ कोई बालक या बालिका जिसने किसी दडविधान या आर्डिनेन्स की अवज्ञा की हो।

३ नीचे लिखे कारणो से जिससे यह आशका हो कि अपने चरित्र या वातावरण के दोष से वह अपराधी बननेवाला है।

४ (क) अपने अभिभावको के साधारण नियत्रण मे भी नही रहता।
(ख) बिना किसी खास कारण के घर छोडकर भाग जाता है।
(ग) पहले से बदनाम और बदचलन लोगो का साथ करता है या ऐसे स्थान पर जाता है जहाँ नियम-विरुद्ध काम होता है।

(घ) वह आदतन ऐसा काम करता है जिससे उसके अथवा दूसरो के चरित्र की हानि होती है।

बम्बई, कराची, स्याम तथा जापान मे यह उपयोगी नियम है कि बाल-अपराधियो का नाम न तो जाहिर हो, न उसका विज्ञापन हो और न ऐसा कोई काम हो जिससे उनका भविष्य खराब हो जाय। बाल-अदालतो की कार्यवाही देखने की इजाजत नही है। अखबार वाले भी ऐसी अदालतो मे नही जा सकते।[1] मद्रास तथा बगाल के बाल-अधिनियम इस विषय मे मौन है पर व्यवहार मे बम्बई की प्रथा का ही वहाँ पर पालन होता है। थाईलैड मे बाल-अदालत कार्य-प्रणाली अधिनियम धारा ३९ के अनुसार—

बाल-अदालतो की कार्यवाही बन्द कमरे मे होगी और ऐसे मुकदमो के समय केवल निम्नलिखित लोग ही उपस्थित रह सकेंगे—

१ अभियुक्त, उसके कानूनी सलाहकार तथा वह व्यक्ति जो उसको (अभियुक्त को) अदालत की ओर से अपनी निगरानी मे रखे हो।

२ उसके माता-पिता, अभिभावक, या वह व्यक्ति जिनके साथ वह रहता हो।

३ अदालत अपने जिन अधिकारियो को वहाँ मौजूद रहने की इजाजत दे।

४ सरकारी वकील।

५ गवाह, विशेषज्ञ गवाह तथा दुभाषिया।

६. परिवीक्षण अधिकारी या बाल-कल्याण केन्द्र के अन्य अधिकारी या बाल-कल्याणसमिति के पदाधिकारी या सदस्य।

७ या अन्य कोई व्यक्ति जिसे उपस्थित रहने की अदालत अनुमति देती है।

बम्बई बाल-अधिनियम १९४८ की धारा १५ के अनुसार—

इस धारा मे निर्दिष्ट के अतिरिक्त बाल-अदालत की किसी बैठक मे वही व्यक्ति उपस्थित रहने पायेगा यदि वह—

(अ) अदालत का सदस्य या अधिकारी हो।

१. जापान का बाल अधिनियम, धारा ६२ और २२, थाईलैंड बाल-अदालत अधिनियम, धारा ५७, ६२ और ३९; बम्बई प्रदेश बाल-अधिनियम, धारा २३ और २४, पाकिस्तान में लागू बाल अधिनियम बम्बई, १९२४ धारा २७ बी०।

(आ) मुकदमे से उसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध हो, ऐसे लोगो मे पुलिस कर्मचारी भी शामिल है।

(इ) जिसे अदालत विशेष अनुमति दे।

भारतवर्ष मे, जहाँ भी बच्चो के मुकदमे होते है, आम तौर पर खुली अदालते नही होती और चेष्टा की जाती है कि बाल-अपराध का विज्ञापन न हो। बच्चो को कोडा मारने की सजा भारत मे एकदम बन्द कर दी गयी है। बच्चो को अर्थदंड भी नही दिया जाता। माता-पिता या अभिभावको पर उस दशा मे अर्थदड हो सकता है जब यह साबित हो जाय कि बाल-अपराधी के कसूर मे उनकी भी जिम्मेदारी थी। यह नियम १४ वर्ष के नीचे के बच्चो के लिए है। १४ से १६ वर्ष के बच्चो पर जुर्माना होता है, पर मद्रास तथा बगाल के कानून के अनुसार यह जुर्माना परिवार वालो को अदा करना पडता है या वे जुर्माना न देने पर जेल भी भेजे जा सकते है। जापान, थाईलैंड तथा पाकिस्तान मे बाल-अपराधी को दूसरे के प्रति की गयी हानि के लिए क्षतिपूर्ति नही करनी पडती। बर्मा, लका, फिलप्पीन द्वीपसमूह तथा भारत मे अदालत की अनुमति से क्षतिपूर्ति करनी पडती है। भारतीय दड-विधान की धारा ५४५ के अनुसार अपराधी पर लगाये गये अर्थदड मे से पीडित व्यक्ति की क्षतिपूर्ति की जा सकती है, पर नये बाल-अधिनियम मे इसका कोई जिक्र नही है। फिर भी हमारा कानून इस दृष्टि से दोषपूर्ण है कि उसमे स्पष्ट नही किया गया है कि अर्थदड कौन चुकायेगा, बाल अपराधी या उसका अभिभावक।

बाल-अपराधी अदालतो मे, भारत तथा कराची नगर मे, अभियुक्त की ओर से कानूनन कोई वकील रखने की जरूरत नही है। बम्बई मे तो नियम है कि यदि वकील रखना है तो बाल-अदालत से अनुमति लेनी पडेगी। जापान मे बाल अभियुक्त के लिए "पैरोकार" रखा जा सकता है। यदि वह पैरोकार वकील है तो अदालत से अनुमति लेने की ज़रूरत नही है, अन्यथा जरूरत पड़ेगी। पर स्याम देश मे नियम है कि यदि बाल अभियुक्त अपने व्यय से वकील नही रख सकता तो वह चाहे या न चाहे, सरकारी खर्च से उसके मुकदमे की पैरवी के लिए वकील रखना आवश्यक है।

कोड़े लगाना

भारतवर्ष मे बच्चो को कोडा लगाने की प्रथा एकदम बन्द कर दी गयी। केन्द्रीय तथा प्रादेशिक सरकारो का इस सम्बन्ध मे सन् १९५८ मे आदेश जारी हो चुका है। पर बर्मा, लका तथा पाकिस्तान मे लड़कियो को छोडकर, कोडे लगाने का दंड दिया

जा सकता है। स्याम देश मे मत्रिमडल के आदेश स० ७ के अनुसार कोडे लगाने के नियम निम्नलिखित है—

"किसी बच्चे या बाल अपराधी को कोडे की सजा देने के समय यह आवश्यक है कि बाल-कल्याण केन्द्र के सचालक नीचे लिखी बातो का ध्यान रखे—

१. बिना डाक्टरी जॉच तथा सर्टिफिकेट के कि अभियुक्त कोडा खाने के योग्य है, कोडे न लगाये जायँ।

२. कोडा लगाने की आज्ञा सचालक के सामने दी जाय।

३. गोल बॉस या रतन बेत की छडी हो जो एक सेटीमीटर से ज्यादा मोटी न हो तथा लम्बाई मे एक मीटर से बडी न हो।

४. बेत तब लगाया जाय जब अपराधी खडा रहे तथा पैर के पीछे यानी चूतडो पर लगे।

५ छ बार से अधिक बेत से प्रहार न किया जाय और उसके बीच मे भी यदि डाक्टर मना कर दे तो कोडा लगाना बन्द कर दे।

६. कोडा लगाने के बाद अपराधी की डाक्टरी परीक्षा होनी चाहिए।

प्रोबेशन (परिवीक्षण)

प्रोबेशन (भारत सरकार द्वारा स्वीकृत हिन्दी शब्द परिवीक्षण) का बडा महत्त्व है। इस प्रणाली द्वारा न केवल बाल-अपराधी का जीवन जेलो मे नष्ट होने से बचता है, बल्कि उसका सुधार भी हो जाता है। प्रोबेशन अफसर का कार्य बडा नाजुक तथा कठिन है। पर उसके द्वारा समाज का बड़ा कल्याण होता है। उदाहरण के लिए हम उत्तर प्रदेश मे, जहाँ १८ वर्ष तक केवल १२ जिलो मे ही प्रोबेशन अधिनियम लागू था, सन् १९३९ से १९५७ तक इस विभाग के द्वारा कितना कार्य हुआ है, यह नीचे की तालिका से स्पष्ट हो जायगा —

१ अक्टूबर १९३९ से ३१ दिसम्बर १९५७ तक उत्तर प्रदेश में नीचे लिखी संख्या में बाल-अपराधी प्रोबेशन अफसरो की देखरेख मे छोडे गये तथा उसका निम्नलिखित परिणाम हुआ। इन अपराधियो मे रेलवे ऐक्ट धारा १२२ के अन्तर्गत भी अपराधी हैं।

१. परिवीक्षण अधिकारियो के अधीन परिवीक्षणीय अपराधियो की संख्या—२३८०

२ परिवीक्षणीय अपराधियो की सख्या जो अपनी निगरानी तथा परिवीक्षण अवधि में असफल साबित हुए—१३५ यानी ५.६ प्रतिशत।

३ परिवीक्षणीय अपराधी जो अपने सुधार की अवधि मे सुधर गये, सफल हुए—१८४४ या ७७.४ प्रतिशत।

४. ३१ दिसम्बर १९५७ को परिवीक्षण अफसरो की निगरानी मे परिवीक्षणीय अपराधियो की सख्या ४०१ या १७ प्रतिशत।

२ अक्टूबर १९५४ से ३१ दिसम्बर १९५७ तक २४ वर्ष की उम्र के नीचे के वे प्रथम अपराधी जो परिवीक्षण में छूटने के अधिकारी थे तथा जिनको परिवीक्षण अफसर की निगरानी मे रखा जा सकता था। (जितने अपराधियो का चालान हुआ, वही सख्या उपलब्ध है)।

(१)	२-१०-१९५४ से ३१-१२-१९५४ तक	२६४
(२)	१९५५	१,०९५
(३)	१९५६	८२३
(४)	१९५७	६११[१]

उपरिलिखित अपराधियो के सम्बन्ध मे कितने अपराधियो के विषय मे (२४ वर्ष की उम्र से कम के प्रथम बाल अपराधी) परिवीक्षण अफसरो ने उनके चरित्र, परिवार, अपराध करने के पूर्व का जीवन, पारिवारिक वातावरण, शारीरिक तथा मानसिक स्थिति इत्यादि की जाँच कर अदालत को सूचना दी—

(१)	२-१०-१९५४ से ३१-१२-१९५४ तक—	१५८
(२)	१९५५	७०३
(३)	१९५६	५६१
(४)	१९५७	३९५

अब हम नीचे वह तालिका दे रहे है जो इस तालिका का सबसे रोचक अग है। २ अक्टूबर १९५४ से ३१ दिसम्बर, १९५७ तक परिवीक्षण के अतर्गत, २४ वर्ष से कम उम्र के जितने प्रथम अपराधी परिवीक्षण अफसर के अतर्गत रखे गये थे, उनका क्या परिणाम हुआ —

१. इन ऑकड़ों से यह भी स्पष्ट है कि उत्तर प्रदेश में बाल अपराव घटा है।

वर्ष	परिवीक्षणीय अपराधियो की सख्या जिनका मामला समाप्त हुआ	परिवीक्षणीय अपराधी जिनका परिवीक्षण काल सफलतापूर्वक समाप्त हुआ	परिवीक्षणीय अपराधी जिनको सुधारने मे सफलता नही मिल सकी
२-१०-५४ से ३१-१२-५४ तक	१७	१७ या १००%	एक भी नही
१९५५	११७	११५ या ९८ ३%	दो या १ ७%
१९५६	३८७	३८४ या ९९ २%	दो या ० ८%
१९५७	५७२	५६९ या ९९ ५%	तीन या ० ५%
योग चार वर्ष का	१०९३	१०८५ या ९९ २ प्रतिशत	आठ या ० ८ प्रतिशत

जेल मे न भेजकर, जीवन तथा चरित्र को नष्ट न कर, नये ढग से समाज तथा खुले वातावरण मे रखकर सुधार करने के तरीके की महत्ता को स्थापित करने के लिए ऊपर दिये गये ऑकडो से बढकर और क्या प्रमाण दिया जा सकता है ? उत्तर प्रदेश के १०९३ बाल अपराधियो को जेल मे रखकर सडाने के बजाय, उन पर करदाता का औसतन दो रुपया प्रति व्यक्ति के हिसाब से खर्च करने के बजाय तथा इतने ही "दुबारा अपराधी" बनाने के बजाय, हमारे-आपके इन बच्चो को सुधारने का यह कितना अच्छा उपाय है, यह पाठक स्वयं समझ जायँगे।

बर्मा मे परिवीक्षण प्रथा नही है, लका मे है। भारतवर्ष मे बम्बई, मद्रास, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बगाल के कुछ भाग मे, मध्य प्रदेश, आध्र तथा दिल्ली मे प्रोबेशन प्रणाली है। बिहार तथा राजस्थान मे भी शीघ्र चालू होनेवाली है। जापान मे "परिवीक्षण पर (१) पारिवारिक अदालतो तथा (२) अपराधी की पुनर्वास सस्था के द्वारा अपराधी को छोडा जाता है। पाकिस्तान मे असली प्रोबेशन प्रणाली केवल कराची नगर मे लागू है। फिलप्पीन मे अभी तक यह प्रथा राजधानी मनीला मे ही लागू हो सकी है। थाईलैड याने स्याम देश मे अभी तक केवल राजधानी बैंकाक की बाल-अदालत के अधीन, केवल एक नगर के लिए, प्रोबेशन सेवा आयोग है।

भारतवर्ष मे भिन्न-भिन्न प्रदेशो ने अपना अलग-अलग प्रोबेशन ऐक्ट बना रखा था। सब जगह इसका विभाग तथा सगठन भी भिन्न था। जैसे, पश्चिम बंगाल मे (कलकत्ता मे) प्रोबेशन का मुहकमा केन्द्रीय बाल-अदालत के अधीन

था। मई १९४६ मे मद्रास सरकार ने इसे प्रधान कारागार-निरीक्षक के अधीन कर दिया। उत्तर प्रदेश सरकार ने भी सन् १९५६ से यही कर दिया है। बम्बई मे प्रोबेशन सेवा बाल-सहायक समिति नामक नीम-सरकारी सस्था के अधीन है। जापान मे ८०३ प्रोबेशन अफसर हैं।[1] इतने समूचे भारतवर्ष मे नही है। हर प्रदेश मे इनके अधिकारो मे भी भेद है। कही २१ वर्ष तक के प्रथम अपराधी छोडे जाते है और कही २४ वर्ष तक के प्रथम अपराधी परिवीक्षण अफसर के अधीन होते है।

जार्डन—पश्चिमी एशिया के राज्यो मे केवल जार्डन मे प्रोबेशन सर्विस है और कही नही है—मिस्र या सीरिया मे भी नही है—वैसे ही भारत के बहुत से प्रदेशो मे इस नाम की कोई चीज नही है। जार्डन मे बाल-अधिनियम धारा १२—नियम स० ८३, ५१—के अनुसार १५ वर्ष की उम्र के नीचे के बच्चो को सरकारी प्रोबेशन अफसर या समाज-कल्याण अफसर बाल-अदालत के सामने पेश कर यह सूचित कर सकता है कि "उस बच्चे की रखवाली तथा सरक्षण" की आवश्यकता है। पर इस श्रेणी मे निम्न प्रकार के ही बच्चे आ सकते है—

१ वह बच्चा ऐसे परिवार या अभिभावको द्वारा पाला जा रहा है जो शराबी है तथा बच्चे की देखरेख करने मे असमर्थ है।

२ बालिका किसी ऐसे पिता की लडकी है, चाहे वह जायज या नाजायज हो, जो अपनी जायज या नाजायज किसी कन्या के साथ व्यभिचार करने के लिए दडित हो चुका है।

३ बालक या बालिका किसी प्रमाणित चोर या वेश्या का साथ देता या देती हो, बशर्त्ते कि वह वेश्या स्वय उसकी मातां न हो।

४ वह लडकी किसी वेश्या के मकान मे रहती हो या उसके एक कक्ष मे रहती हो, जिससे उसके बर्गलाये जाने का खतरा हो।

बाल-अदालत ऐसे बच्चो को प्रोबेशन अफसर की निगरानी मे रख सकती है। बाल अपराधियो को भी वह परिवीक्षक की निगरानी मे छोड सकती है।

भारत—भारत सरकार का "प्रोबेशन आव आफेंडर्स ऐक्ट, १९५८"[2] अपराधी

१. A Guide to the Japanese Family Court, Page 7—**१९५३ में यह नियुक्तियाँ हुई थीं।**

२. The Probation of Offenders Act, 1958, No 20 of 1958, The Gazette of India, Delhi, May, 19, 1958.

परिवीक्षण अधिनियम अब सारे देश मे लागू हो गया है। कई दृष्टियो से यह बड़ा व्यापक तथा महत्त्वपूर्ण नियम है। अभी तक के चालू नियमो मे काफी संशोधन तथा परिवर्त्तन हो गया है और अपराधी के लिए अधिक उदार नियम बन गया है। इस कानून मे दोष भी है पर हम यहाँ पर कानूनी विवेचन नहीं करना चाहते। इस नियम के अनुसार —

धारा ३—दफा ३७९, ३८०, ३८१, ४०४ या ४२० (चोरी-जालसाजी आदि) के अन्तर्गत अपराध करनेवाला या ऐसा कोई अपराध करनेवाला जिसमे दो वर्ष तक की कैद हो सकती है, या जुर्माना हो सकता है, या दोनो हो सकते हैं। यदि अदालत ने उसे दोषी पाया पर जिस परिस्थिति मे उसने अपराध किया है तथा उसके पूर्व के चरित्र का विचार कर अदालत उस अपराध के लिए लागू होनेवाली तत्कालीन दडविधान की धाराओ मे या इस अधिनियम की दफा ४ मे परिवीक्षण पर छोड़ने के स्थान पर केवल 'भर्त्सना' करके अपराधी को छोड सकती है।

धारा ४—यदि कोई व्यक्ति ऐसे अपराध के लिए अदालत द्वारा दोषी पाया गया है जिसमे प्राणदड या आजन्म कारावास की सजा न हो पर अपराध की परिस्थिति और उसके रूप को ध्यान मे रखते हुए उसे नेकचलनी के प्रोबेशन पर छोड देना उचित हो तो दड-विधान की इस अपराध सम्बधी धारा का बिना खयाल किये अदालत उसे तुरन्त कोई सजा न देकर यह आदेश दे सकती है कि उससे जामिन लेकर या बिना जामिन के यह इकरारनामा लेकर परिवीक्षण पर छोड सकती है कि जब कभी अदालत का आदेश होगा वह सजा प्राप्त करने के लिए तीन वर्ष के भीतर हाजिर हो जायगा और इस अवधि मे वह अमन और अमान (शान्ति और व्यवस्था) कायम रखेगा तथा अपना चालचलन ठीक रखेगा।

बशर्ते कि अदालत ऐसे किसी अपराधी को परिवीक्षण पर नही छोडेगी जिसमे उसे सतोषजनक प्रमाण न मिल जाय कि अपराधी या यदि उसका कोई जामिन है तो वह जामिन किसी निश्चित स्थान पर रहता है, उसका नियमित कोई [illegible] स्थान अदालत के नियत्रण के दायरे मे है और अपने इकरारनामे की मीयाद तक अपराधी उसी स्थान मे रहेगा।

धारा ६—यदि २१ वर्ष की उम्र से नीचे के किसी व्यक्ति ने कोई ऐसा अपराध किया है जिसमे आजन्म कारावास के अतिरिक्त अन्य मीयाद का कारा-

> वास मिलना चाहिए, (१) तो जब तक अदालत को यह विश्वास न हो जाय कि जिस परिस्थिति मे उसने अपराध किया है तथा जैसा उसका चरित्र रहा है उसे देखते हुए उसका कारागार के बाहर रहना ठीक नही है, वह अपराधी जेल न भेजकर परिवीक्षण पर छोड दिया जायगा।
> (२) अपने इस सन्तोष के लिए धारा ३ तथा ४ के अन्तर्गत उसे छोडना उचित है या नही, अदालत उस व्यक्ति के सम्बध मे प्रोबेशन अफसर से रिपोर्ट तलब करेगी जो उस व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक तथा चरित्र की स्थिति के सम्बध मे होगी ...

इस कानून मे कुल मिलाकर १९ धाराएँ है। पर तीन मुख्य धाराए इसलिए दी गयी है कि कानून की मशा समझ मे आ सके। नये नियम ने परिवीक्षण पर छोडने के लिए "अधिक से अधिक" २४ वर्ष की उम्र का बधन समाप्त कर दिया है। उसके द्वारा "जघन्य अपराध", जैसे हत्या या सशस्त्र डकैती को छोडकर प्राय सभी अपराधो मे अपराधी, चाहे वह किसी उम्र का हो, चाहे उसे दुबारा सजा भी क्यो न मिली हो, चाहे वह एक बार परिवीक्षण पर ही क्यो न छोड दिया गया हो, पुन परिवीक्षण पर छोडा जा सकता है तथा परिवीक्षण अफसर से कोई भी अदालत अपने लिए रिपोर्ट आदि प्राप्त करने का काम ले सकती है। दूसरे महत्त्व की बात यह है कि बहुत ही विकट बात यदि न हुई तो २१ वर्ष के नीचे हर एक अपराधी को, चाहे वह आदतन अपराधी क्यो न हो, परिवीक्षण पर छोडना अनिवार्य है। इस नियम का अपराधी-जगत् पर बडा व्यापक प्रभाव पडेगा। हमारा ऐसा विश्वास है कि यदि समुचित सख्या मे प्रोबेशन अफसर नियुक्त हो गये तो एक ओर जेलो की आबादी मे काफी कमी होगी, दूसरी ओर मनुष्य को अपना चरित्र सुधारने का अधिक अवसर प्राप्त होगा। युगो तक अपराधी को जेल मे सडाकर नष्ट करने के बाद अब समाज जेल के बाहर उसकी चिकित्सा कर, समाज का उपयोगी अग बनाने का प्रयत्न कर रहा है।

यूरोप मे प्रोबेशन सेवा

प्रोबेशन यूरोप की चीज़ नही है। अपराधी-जगत् के उद्धार के लिए सयुक्त राज्य अमेरिका की यह बहुत बडी देन है। इसका प्रारम्भ बडे रोचक ढग से हुआ। आज के प्रोबेशन अफसरो का गुरु जॉन आगस्टस नामक एक मोची था। सन् १८४९ मे, सयुक्त राज्य अमेरिका के मासाचुसेट नामक प्रदेश के बोस्टन नगर के रहनेवाले इस मोची ने पुलिस की अदालत से एक शराबी आदमी को जमानत पर छुडा लिया। वह शराबी कुछ ही दिनो में एकदम सुधर गया और शिष्ट नागरिक बन गया। इस

अनुभव से प्रोत्साहित होकर १८४९ से १८५६ तक, सात वर्ष मे १५,३२० डालर (एक डालर पाँच रुपये का) की जमानत देकर जान आगस्टस ने २५३ पुरुषो तथा १४९ स्त्रियो को जेल से छुडाया था और उसकी जमानत की एक पाई की भी हानि नही हुई। उसके छुडाये हुए सभी स्त्री-पुरुषो का पूरी तरह से सुधार हो गया। इस प्रकार अवैतनिक परिवीक्षण अफसर की श्रेणी तथा परम्परा का प्रारम्भ हुआ।[1] सरकारी तौर पर बोस्टन नगर तथा मासाचुसेट प्रदेश मे इस प्रथा का प्रारम्भ सन् १८७८ से हुआ। बोस्टन की अदालतो मे १८७२ से ही पादरी कुक बहुत जाया करते थे और उन्होने विचारपतियो का इतना विश्वास प्राप्त कर लिया था, कि जब वे यह देखते कि किसी अभियुक्त को सजा से अधिक एक सहानुभूनिपूर्ण मित्र की आवश्यकता है, तो वे उस अपराधी को पादरी कुक के सुपुर्द कर देते थे। सन् १८७८ मे सफक प्रान्त मे, जिसमे बोस्टन नगर था, इस प्रकार निगरानी पर छोडना कानूनी तौर पर जायज मान लिया गया। १८८० से यह नियम समूचे प्रदेश के लिए लागू हो गया है।[2]

सन् १८९९ मे रोड्स द्वीप ने तथा मिन्नेसोटा और इलनाय प्रदेशो ने "बाल तथा वयस्क" अपराधियो को प्रोबेशन पर छोडने का नियम बनाया। सन् १९२१ तक ३५ प्रदेशो मे यह नियम लागू हो गया था और अब तो समस्त सयुक्तराज्य मे लागू है। इग्लैड मे प्रोबेशन ऐक्ट सन् १९०७ मे पहली बार बना। सन् १९१४ के नियम ने अदालतो को आदेश दिया कि परिवीक्षण की अवधि मे बाल-अपराधी को सरकार द्वारा स्वीकृत, मान्यता-प्राप्त अथवा सहायता-प्राप्त सस्थाओ मे रखा जाय और वही उसका चरित्र सुधारा जाय। सामाजिक दृष्टि से परिवीक्षण का बडा महत्त्व है। एक प्रसिद्ध पुस्तक में लिखा है—

"सामाजिक दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि परिवीक्षण मैत्रीपूर्ण देखरेख मे शिक्षणीय निर्देशन तथा मार्गप्रदर्शन है। केवल निगरानी करना ही देखरेख करना नही हैं। परिवीक्षण मे बाल अपराधी के जीवन से इतनी घनिष्ठता प्राप्त कर ली जाती है, विशेषकर उसके पारिवारिक जीवन से बडी निकटता प्राप्त कर ली जाती है। परिवीक्षण का यह प्रधान कार्य है—निकटता तथा आत्मीयता प्राप्त करना तथा इसके

१ Sutherland—"Criminology"—Lippincott, London, 1924—Page 562

२. Robinson—Penology in the United States, The John Co, Winston Co., Philadelphia, 1923, Page 195

लिए आवश्यकता है बडे सुलझे हुए, शिक्षित, सहानुभूतिपूर्ण अनुभवी पुरुष—स्त्री प्रोबेशन अफसरो की।"[१]

सन् १९२५ मे इग्लैंड मे अतर्राष्ट्रीय दड सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन मे प्रोबेशन पर काफी गम्भीरता तथा गवेषणापूर्ण विचार हुआ। इग्लैंड के प्रधान न्यायाधीश लार्ड ह्विवर्ट ने इस प्रणाली का समर्थन करते हुए कहा था—

" समस्या यह है कि हमको एक ऐसा अधिक लाभदायक तथा सन्तोषजनक उपाय चाहिए जिससे हमारे समाज-कल्याणकारी राज्य का वह उद्देश्य पूरा हो सके जिसके लिए आज हम कारागार का दड देते है हमे समूचे समाज का कल्याण देखना है। हमे यह देखना है कि वैसी ही भूल और लोग न करे समाज वर्गो से नही, व्यक्तियो से बनता है, अतएव हर एक व्यक्ति का मामला अथवा गुण-दोष अलग-अलग देखना तथा समझना पडेगा। हम अक्सर लोगो को "निश्चित दंड" की बात करते सुनते है (यानी एक प्रकार के अपराध मे एक प्रकार का ही दड होना चाहिए) पर, इसका मतलब है विचारपति अपना काम ही, कर्त्तव्य ही छोड रहा है। मानव-जाति के लिए यह सौभाग्य की बात है कि न तो अपराधी एक प्रकार का होता है और न दड ही, और सार्वजनिक हित की उसी दृष्टि से जिससे हम किसी को दस बरस के लिए जेल भेजते है, दूसरे को एकदम जेल न भेजे आम तौर से लोग इस बात को नही समझते कि अपराधी बनाने का, तैयार करने का आसान तरीका है किसी बाल अपराधी को अनायास जेल भेज देना। जेलो मे उनको आशा से अधिक आराम से रहने को मिलता है। वहॉ पर वे ऐसे लोगो के सम्पर्क मे आते तथा ऐसे उपाय सीखते हैं जिनसे उनका जीवन नष्ट हो जाता है उन लोगो पर बडी भारी जिम्मेदारी है जो विशेष परिस्थिति को छोडकर किसी नवयुवक या नवयुवती को जेल भेज देते हैं।"

इंग्लैंड—सन् १९२५ मे ही क्रिमिनल जस्टिस ऐक्ट इग्लैंड मे पास हुआ जिसके अनुसार परिवीक्षण क्षेत्र बना दिये गये तथा गृहसचिव को इस सम्बध मे क्षेत्र-विभाजन का अधिकार दे दिया गया था। जिस नगर या कस्बे मे परिवीक्षण के मामले काफी कम हो, वहॉ पूरे समय के लिए प्रोबेशन अफसर नियुक्त करना जरूरी नही था। समाजसेवा करनेवाले किसी भी सम्भ्रान्त व्यक्ति को यह कार्य सौपा जा सकता था। आज ब्रिटेन मे प्रोबेशन सेवा बहुत ही सगठित तथा उन्नत दशा मे है। प्रोबेशन अफसर केवल

१. Flexner and Baldwin—"Juvenile Courts and Probation" The Century Co, New York, 1916, Page 79

सरकार या अदालतो द्वारा प्राप्त बच्चो की ही जिम्मेदारी नही लेते, वे गैर-सरकारी तौर पर भी, अपने मन से भी, अपराधी प्रवृत्ति के या सहायता के योग्य बच्चो की देख-रेख अपने जिम्मे ले लेते है। देश के कुछ भागो मे, जैसे डरहम मे, प्रोबेशन अफसर बच्चो को अपने से मिलने के लिए प्रोत्साहित करते रहते है, स्वय स्कूल तथा छात्रावासो मे जाकर उनसे सम्पर्क स्थापित करते है। यह उल्लेखनीय है कि सरकार के समाज-कल्याण विभाग के कर्मचारियो की तुलना मे केवल बाल अपराधियो से सम्पर्क रखनेवाले प्रोबेशन अफसरो का कार्यभार हल्का होता है। उन्हे साल मे ५० से ७० विषय सँभालने पडते है इसलिए वे एक-एक बच्चे पर अधिक ध्यान भी दे सकते है।

प्रोबेशन अफसर द्वारा निगरानी समाप्त होने पर बालक-बालिका को शिष्ट जीवन मे बसाने का बडा भारी काम होता है। ये लडके या लडकियाँ प्रोबेशन अफसर की अनुमति से ही मान्यताप्राप्त स्कूलो मे "दाखिल" किये जाते है। इन स्कूलो के प्रबधक से ही लैसेस प्राप्त होने पर वे स्कूल के बाहर आयेगे। वही प्रबधक निश्चय करेगा कि "छूटने के बाद" वे कितने समय तक किस क्षेत्र मे रहे। ऐसे अवसर पर उनकी निगरानी तथा देखरेख अवैतनिक सामाजिक कार्यकर्त्ताओ तथा गैर-सरकारी सस्थाओ के हाथ मे होती है। वे भी बडा काम कर सकती है और कर भी रही है। समाजसेवा की दृष्टि से इस दिशा मे काम करनेवाला स्वयसेवक भी बडा महत्त्व रखता है। गैर-सरकारी सामाजिक सस्थाओ का भी अपना बडा भारी स्थान है। समाज मे प्रत्येक व्यक्ति बच्चो के सुख-कल्याण के लिए जिम्मेदार है। यह कार्य परोपकार का नही आत्म-रक्षा का भी है। प्रोबेशन अफसर प्राय हर देश मे, सरकार तथा समाज-कल्याण करनेवाली सस्थाओ के बीच मे एक माध्यम, मध्यस्थ मात्र, है। सरकार इन सस्थाओ का उपयोग कर इनके द्वारा लडके-लडकियो का सुधार करा, देश के नागरिको की रक्षा कर रही है। सभ्य देशो मे प्रोबेशन अफसर की बडी प्रतिष्ठा है, बडा आदर है। हमारे देश मे हमने अभी इस पद का महत्त्व नही समझा है। अधिकाश देशो मे प्रोबेशन अफसर केवल बाल-अपराधियो के लिए नही होता। उसका काम—और ज्यादा मेहनत का काम—है अपराधी प्रवृत्तिवाले, जिनसे अपराधी होने का भय हो, जो खतरे मे हो, उनकी सेवा करना। ऐसो की रक्षा करना भी उनका धर्म है पर अपने कर्तव्य का वे तभी पालन कर सकेगे जब सामाजिक सस्थाएँ तथा गैर-सरकारी सस्थाएँ उनके साथ पूरा सहयोग करे।[१]

१. परिषद् की रिपोर्ट, अप्रैल १९५५, पृष्ठ ३८

स्विटजरलैंड—स्विटज़रलैण्ड में बालक-बालिकाओ की रक्षा के लिए एक अलग विभाग है[1], उसी के अन्तर्गत प्रोबेशन अफसर भी हैं। भिन्न भिन्न नगरो मे भिन्न प्रकार की प्रोबेशन प्रणाली है पर केन्द्रीय विभाग भी है। यह विभाग गुरुजनो, अभिभावको तथा माता-पिता को परामर्श भी देता रहता है तथा उनकी समस्याओ को हल करने का प्रयास करता है।

स्वीडन-नार्वे—स्वीडन तथा नार्वे मे सरकारी बाल-कल्याण समितियाँ हैं। ये समस्या-मय बच्चो को उचित मार्ग पर लाने के लिए तथा अपराधी बच्चो के सुधार के लिए "सुपरवाइजर" नियुक्त करती है। नार्वे मे ऐसे बच्चो के लिए विशेष पाठशालाएँ है। इनका एक अलग मुहकमा ही है। अपराधी बालक जब ऐसी पाठशालाओ मे से निकलता है, उसके छूटने के बाद की देखरेख की जिम्मेदारी बाल-कल्याण समिति की होती है। नार्वे मे "प्रोबेशन तथा पैरोल असोसियेशन" (संस्था) की सख्या ५५ है जो नीम-सरकारी सस्थाएँ है तथा १८ वर्ष के उन अपराधियो की देखरेख, रक्षा, नियत्रण तथा शिक्षा का काम करती है जिनकी सजा अदालत ने स्थगित कर दी है अथवा जिन्हे जेल से मीयाद के पहले छोड़ दिया गया है। इनका काम काफी महत्त्वपूर्ण है और इनके द्वारा बाल-जीवन मे बडा सुधार होता है।

स्वीडन मे भी ऐसी ही बाल-कल्याण समिति है। ये समितियाँ १५ वर्ष की उम्र तक के बच्चो की तथा १५ से १८ वर्ष तक की उम्र के बच्चो की निगरानी तथा देखरेख करती हैं। बाल अपराधियो की सज़ा स्थगित कर इनकी देखरेख मे भेज दिया जाता है। समिति अपने प्रोबेशन अफसर या समाज-कल्याण कार्यकर्त्ता नियुक्त करती है। इन प्रोबेशन अफसरो का काम वही तथा वैसा ही है जैसा इग्लैड मे। यह समिति ऐसे वैतनिक सामाजिक कार्यकर्त्ता भी नियुक्त करती है—आम तौर पर वे अध्यापक श्रेणी के होते है—जो निगरानी की अवधि समाप्त होने के बाद बच्चो की सुरक्षा, शिक्षा, पुनर्वास आदि की जिम्मेदारी लेते हैं। स्वीडन मे एक ऐसी सस्था भी है जो पैरोल पर छूटे हुए १५ वर्ष की उम्र के लडके-लडकी अपराधियो के लिए दस स्कूल चला रही है।[2] स्वीडन के प्रोबेशन अफसर यह भी तय करते है कि उनकी निगरानी मे रहनेवाले बच्चे कितना जेबखर्च करे। कैसे खर्च करे, यह भी निश्चय करना पडता है। स्वीडन, नार्वे तथा फिनलैंड तीनो देशो मे १५ वर्ष की उम्र तक के बाल

१. "Service de Protection des Mineurs".

२. Order of Good Templars.

अपराधी अदालत मे न जाकर बाल-कल्याण समिति तथा उसके नियुक्त परिवीक्षण अधिकारियो के जिम्मे होते है और १५ से १८ वर्ष की उम्र के बीच के बाल अपराधियो को बाल-अदालतो से दड तो मिलता है पर उनकी सजा स्थगित कर दी जाती है और वे बाल-कल्याण समिति के जिम्मे कर दिये जाते है जिसके प्रोबेशन अफसर या समाज-सेवक निगरानी, निरीक्षण, शिक्षण आदि का काम करते है।

फिनलैड—फिनलैड मे उन पर मुकदमा चलाना ही स्थगित कर दिया जाता है। डेनमार्क मे उनकी "सजा" इस शर्त पर होती है कि बाल-कल्याण-समिति उनका सुधार यदि न कर सकेगी तो वे सजा भुगतेगे। फिनलैड मे सन् १९१८ मे सरकारी बाल-कल्याण समिति की रचना हो गयी थी। स्वीडन तथा नार्वे मे, इसी प्रकार फिनलैड मे भी इस प्रकार की सरकारी समिति बने ५० वर्ष के लगभग हो चले, प्रोबेशन सेवा भी इन लोगो मे उतनी ही पुरानी है। नीदरलैण्ड मे प्रोबेशन अफसरो के जिम्मे अपराधी तथा "जिनसे अपराध होने की सम्भावना है"—दोनो प्रकार के बच्चे रहते है। पहले वर्ग को तो सँभालना कठिन है क्योकि वे अपराध करके अदालत के सामने हाजिर हो चुके है, पर जिन्होने कोई अपराध किया ही नही, जो कभी अदालत के सामने गये नही, उनकी विरोधी प्रवृत्ति तथा अपने ऊपर बधन से छुटकारा पाने का प्रयत्न करना सर्वथा स्वाभाविक है तथा ऐसे बच्चो को सँभालना प्रोबेशन अफसर के लिए बडा कठिन काम होता है।

इटली—इटली मे भी, देश मे चारो ओर प्रोबेशन अफसर है जिनको समाज-कल्याण अफसर कहते है। इटली मे प्रोबेशन सेवा इग्लैड के ही समान है।

आयरलैड—आयरलैड के गणतत्र मे भी प्रोबेशन अफसर है, सन् १९०८ से ही। यहाँ पर यह भी नियम है कि सरकारी सुधारगृह तथा सरकारी उद्योगगृह से न्यायमत्री की अनुमति से या स्कूल के प्रबधक की इच्छानुसार छ महीने तक अपराधी बालक-बालिका को रखने के बाद प्रोबेशन अफसर की निगरानी मे छोडा जा सकता है। छोडने के बाद अनुमतिपत्र मे प्रबधक "ऐसे विश्वासपात्र तथा सम्मानित व्यक्ति का नाम लिख देगा जिसके साथ, छूटने के बाद, उस अपराधी को ठहरना पडेगा। आयरलैड मे कई धार्मिक तथा समाज-कल्याण सस्थाएँ है जो ऐसे मुक्त बालक-बालिकाओ की देखरेख करती है।

यूनान—यूनान मे सन् १९५१ से ही परिवीक्षण विभाग खुला है। किन्तु वहाँ वैतनिक परिवीक्षण अफसर नही होते। बालसहायक समितियाँ तो नीम सरकारी हैं जिनके साथ यह कार्य सबद्ध है। पर इस कार्य की जिम्मेदारी यानी प्रोबेशन अफसर

का कार्य समाजसेवा मे रत, सम्भ्रान्त, सम्मानित नागरिको पर निर्भर करता है। ये अवैतनिक रूप से यह कार्य अपने ऊपर लेते है। किन्तु वैतनिक परिवीक्षण अधिकारी न होने से काम मे विशेष प्रगति नही प्रतीत होती। यूनान की सरकार वैतनिक कार्यकर्त्ताओ की नियुक्ति पर विचार कर रही है।

फ्रांस—फ्रास मे बाल अपराधियो के लिए नियुक्त मजिस्ट्रेट कुछ श्रेणी के बाल अपराधियो को "नियत्रित स्वाधीनता"[१] प्रदान करते है, पर वास्तविक अपराध करने के पूर्व, अपराधी प्रवृत्ति के बच्चो के लिए कोई प्रबध नही है। वैतनिक प्रोबेशन अफसर[२] "नियत्रित स्वाधीनता" मे छोडे गये बच्चो की देखरेख के लिए नियुक्त किये जाते है और उनको अधिकार है कि वे अपने कार्य मे सहयोग देने के लिए समाजसेवा सहकारी भी नियुक्त कर ले। प्रोबेशन अफसर केवल उन्ही मामलो को लेता है जो अदालत तक पहुँच जाते है। अतएव परिवारवालो को उसकी सेवाओ से, गैर-सरकारी तौर पर, कोई लाभ नही होता। ऐसे परामर्श के लिए स्वास्थ्य विभाग, शिक्षा विभाग आदि से परिवार के लोग सहायता ले सकते है। अवैतनिक रूप से सकटशील परिवार मे, अपेक्षित तथा तिरस्कृत बच्चो मे, नियत्रण मे न रहनेवाले बच्चो मे काम करने के लिए देश भर मे समाजसेवक तथा गैर-सरकारी सस्थाएँ भी हैं।

बेल्जियम—बेल्जियम मे भी फ्रास के समान "नियत्रित स्वाधीनता"[३] पर बाल अपराधी छोडे जाते है जिनके ऊपर प्रोबेशन अफसर[४] नियुक्त है। बेल्जियम मे परिवार वालो से बाल-सुधार के कार्य मे सहायता लेने का नियम अधिक अच्छे ढग से काम मे आता है। आस्ट्रिया मे प्रोबेशन उसी दशा मे अनिवार्य होगा जब अपराधी की उम्र १८ वर्ष से कम हो तथा अदालत से उसकी सजा स्थगित की गयी हो। हर जिले या म्युनिसिपैल्टी के लिए एक वैतनिक समाजसेवक (प्रोबेशन अफसर)[५] होता है। अभी इस देश मे प्रोबेशन प्रणाली प्रारम्भ हुए कुछ ही वर्ष वीते है।

१ Supervised Liberty
२ Delegues Parmanents
३ Liberate Surveilee
४. Delegues Retribues
५. Fursorgerin

प्रोबेशन की प्रथा तथा प्रणाली के सम्बध मे इतनी जानकारी से बाल अपराधी की चिकित्सा के सबध मे काफी सूचना हमने दे दी। अमेरिकन प्रथा का कुछ अधिक जिक्र हम आगे चलकर करेंगे। परिवीक्षण या प्रोबेशन मूलत अपराध-निरोध के लिए है। इस नियम के अन्तर्गत छोड़ने का मतलब ही यह है कि अदालत की राय मे अब उस अपराधी से और अधिक अपराध की आशका नही करनी चाहिए। जरा-सा ध्यान देने से वह पूर्णत सुधर जायगा।[1]

१. राष्ट्रसंघ की रिपोर्ट, अप्रैल १९५५, पृष्ठ ७०

अध्याय २३

तुर्की तथा अरब देशों में बाल अपराधी

तुर्किस्तान मे

तुर्किस्तान मे सन् १९१४ तक उसमानिया दडविधान चालू था। किसी रूप मे सन् १९२६ तक यही दडविधान लागू था। इसके अनुसार १३ वर्ष तक के बच्चे निर्दोष समझे जाते थे और यदि कोई अपराध करे तो इन्हे अधिक से अधिक यही दड मिलता था कि किसी शिक्षण-सस्था मे १८ वर्ष तक की उम्र के लिए पढने भेज दिये जाते थे। १५ वर्ष के ऊपर के बच्चे जेल भेजे जा सकते थे। सन् १९२६ मे इस कानून मे परिवर्त्तन हुआ—विशेष नही, साधारण। निर्दोष बच्चे की उम्र १३ से घटा कर ११ कर दी गयी। बाल अदालते स्थापित हुईं और इन अदालतो को अधिकार मिला कि वे बाल अपराधी को उसके परिवार की निगरानी मे सौप सकते हैं। बाल अपराधी पर जुर्माना हो सकता है और इसे अदा करना पडेगा अभिभावको को। दडविधान की धारा १०३ के अनुसार पीडित व्यक्ति की क्षतिपूर्ति करायी जायेगी। जो सम्पत्ति चोरी गयी हो, वह भी उसे मिल जायेगी जिसकी चोरी हुई है।

तुर्किस्तान के बाल-अपराधी-"सुधारगृहो" मे अथवा "बाल जेलो मे" तीन श्रेणी के अपराधी रखे जाते है—११ से १५ वर्ष, १५ से १८ वर्ष तथा १८ से २१ वर्ष तक। धारा ५४ से ५७ के अनुसार यदि ११ से १५ वर्ष के बीच का अपराधी बालक या बालिका जान-बूझकर अपराध करे तो उसे—

(१) प्राणदड के योग्य अपराध हो तो ८ वर्ष का कठोर कारावास का दंड मिलेगा।
(२) आजन्म कारागार के स्थान पर ६ से १५ वर्ष तक कठोर कारावास मिलेगा।
(३) यदि उस अपराध मे १२ वर्ष की सज़ा मिलने वाली है तो ३ से ६ वर्ष कठोर कारावास होगा।
(४) ६ से १२ वर्ष तक की सजा मे १ से ५ साल की कठोर कैद होगी।
(५) अन्य सब मामलो मे बालिगो को जितनी सजा मिलनी चाहिए उससे आधे से कम दी जायगी ।

(६) धारा ५५ के अनुसार १५ से १८ वर्ष तक के अपराधी को प्राणदंड के स्थान पर १० वर्ष; यही सज़ा आजन्म कारागार पर भी। १२ से अधिक वर्ष की सजा पर ६ से १० वर्ष, ६ से १० वर्ष की सज़ा पर तीन से छः वर्ष, सभी कठोर कारावास—तथा अन्य मामलों में ऊपर लिखी सज़ा मिलेगी। धारा ५६ के अनुसार १८-२१ वर्ष के अपराधी को प्राणदंड के बजाय २४ वर्ष, इत्यादि—कठोर कारावास। अन्य मामलों में दंडविधान में निहित सज़ा में १।६ की कमी हो जावेगी। धारा ५७ के अनुसार १५ वर्ष के नीचे बहरे-गूंगे को अपराधी नहीं मानते। यह हो सकता है कि उसको २१ वर्ष की उम्र तक किसी बाल सुधारगृह में रख दिया जाय। १५ वर्ष से ऊपर के बहरे-गूंगे अपराधी को, यदि यह साबित हो जाय कि उसने जानबूझकर अपराध किया है तो, वही सज़ा मिलेगी जो हम ऊपर १५ वर्ष से अधिक उम्रवाले अपराधियों के लिए लिख आये हैं।

तुर्किस्तान में यह नियम है कि जो माता-पिता या परिवार अपने बच्चों के साथ दुर्व्यवहार करते हैं वे अभिभावक बनने योग्य नहीं हैं। सिविल अदालत ऐसे बच्चों की उचित देखरेख के लिए आवश्यक उपाय करेगी। इसी प्रकार तलाक देनेवाले या पति-पत्नी को छोड़ देनेवाले परिवार के बच्चे की देखरेख का प्रबंध भी सिविल अदालत करेगी। तुर्की दंडविधान की धारा ४६७ के अनुसार किसी को ७ वर्ष से नीचे का बच्चा परित्यक्त मिले तो उसे तुरन्त सरकार को सूचना देनी चाहिए, अन्यथा उसे गहरा अर्थ-दंड देना होगा। धारा ४२०, ४३५ तथा ५७४ के अनुसार यदि कोई व्यक्ति १८ वर्ष से कम उम्र के लड़के या लड़की को शराब पिलाता है या १५ वर्ष से कम उम्र की लड़की से वेश्यावृत्ति करता या कराता है या किसी लड़के के साथ अप्राकृतिक प्रसंग करता है तो उसे कठोर दंड मिलेगा। धारा ५४५ के अनुसार यदि कोई व्यक्ति १५ वर्ष के कम उम्र के बच्चों को भीख माँगने के लिए इकट्ठा करता है तो उसे घोर आर्थिक दंड देना होगा। दीवानी धारा १५९३ तथा १५८० के अनुसार हर नगर-प्रशासन को परित्यक्त तथा लावारिस बच्चों को पालने का तथा ६ वर्ष तक उनकी देखरेख का प्रबंध करना होगा।

अरब संघ में

पर, बाल अपराधियों के सुधार के लिए तथा बिगड़ने वाले बच्चों को सही

मार्ग पर लाने के लिए यदि वास्तव मे थोडा बहुत ठोस काम हुआ है तो मिस्र देश मे तथा सीरिया (शाम) मे (मिस्र तथा सीरिया मिलकर अरब संघ बनता है)। मिस्र की सरकार ने सन् १८८३ मे ही, "बाल अपराधी" की अलग सत्ता स्वीकार कर ली थी। इस समय अरब-सघ मे सरकार की ओर से दो महिलाएं नियुक्त है जो समाज कल्याण विभाग के सचालक के रूप मे बाल अपराधी के सुधार तथा अपराधी मनोवृत्तिवाले वच्चो की रोकथाम का उपाय करती है। इस विभाग के अन्तर्गत केवल मिस्र मे ही छ अनाथालय है, जच्चा-बच्चा की रक्षा के लिए कई ईसाई अस्पताल है। राजधानी काहिरा तथा सिकन्दरिया मे दो बडे अच्छे जनाना अस्पताल इसी कार्य के लिए है, काम मे लगी हुई माताओ के बच्चो की रक्षा तथा पालन के लिए १७ "शिशु" (नर्सरी) पाठशालाए थी—जिनमे २,२७५ लडके तथा १,६६५ लडकिया थी। शिक्षा विभाग ने बच्चो, नवयुवक-नवयुवतियो के लिए मनोवैज्ञानिक तैयार करने के लिए छात्रवृत्ति देकर अच्छे अच्छे विद्यार्थी विदेश भेजे है तथा कई मनोवैज्ञानिक केन्द्र भी खोले है। इनकी निश्चित सख्या ज्ञात न हो सकी। सन् १९४७ मे काहिरा मे पहला मनोवैज्ञानिक केन्द्र खोला गया था। सन् १९४८ मे इसके द्वारा १,८७७ छात्रो का, जिनमे लड-कियॉ भी शामिल है, इलाज हो रहा था।

सीरिया (शाम) मे भी सन् १९५३ मे राष्ट्रीय कल्याण-समिति की स्थापना हो गयी है और उसने ऐसे केन्द्र खोले है जिनमे परित्यक्त, लावारिस या माता द्वारा उपेक्षित बच्चे का पालन-पोषण, सब सरकार के व्यय से होता है। सार्वजनिक संस्थाओ के अलावा सरकार की ओर से काफी कपडा और दूध मुफ्त मे गरीब बच्चो मे बाँटा जाता है। सरकार की ओर से स्वास्थ्य-केन्द्र भी खोले जा रहे है। सीरिया मे पहले बाल अपराधियो के लिए तुर्की दड-विधान ही लागू था। अब उसने अपना बाल अधिनियम बना लिया है जिसके अनुसार बाल अपराधी को जेल न भेजकर परिवार वालो को, रिश्तेदारो को या किसी योग्य व्यक्ति को उनके सुधार के लिए सौपा जा सकता है या उन्हे किसी विशिष्ट शिक्षा-सस्था के ज़िम्मे किया जा सकता है।

बालक-बालिका की रक्षा तथा सुधार के लिए सन् १९५० मे यहाँ एक "बाल सरक्षण सघ" स्थापित हुआ था, जिसका उद्देश्य है "बालको या नवयुवको, बालिकाओ या नवयुवतियो के नैतिक तथा चारित्रिक बल को ऊँचा करना तथा अपराध की ओर जाने से उन्हे रोकना।" सीरिया की बाल अदालतो को भी ये बाल अपराधी के हितो की रक्षा करने मे सहायता देते हैं। बाल समस्या के भिन्न भिन्न पहलुओ की जाँच करते कराते है, असाधारण बच्चो की परख, परीक्षा तथा जाँच के लिए निरीक्षण-केन्द्र स्थापित करते है।

मिस्र, सीरिया, लेबनान तथा ईराक मे "बाल अपराधी" उसे कहते है जो बाल या नवयुवक अपराध की श्रेणी मे आनेवाले अपराधो के दोषी होते है। सीरिया तथा लेबनान के दडविधान मे यह आदेश है कि १२ वर्ष की उम्र के ऊपर के उसी बाल अपराधी को बन्द करे जिसपर दुष्टता के कार्य करने का सबूत मिल गया हो। बाल अपराधियो के सम्बध मे लेबनान मे अक्टूबर, १९४४ मे नया कानून बना जिसके अनुसार बालक को जेल न भेजकर परिवार को, अभिभावक को या सुधारगृह को दे देने की गुजायश की गयी।

जार्डन मे

जार्डन ने अगस्त, १९५१ मे बाल अधिनियम बनाया और निस्सन्देह मध्यपूर्व एशिया मे उसका अधिनियम बहुत ही सुलझा हुआ, नये अपराध-विज्ञान के अनुसार तथा बडे बडे उन्नत पश्चिमीय देशो के मुकाबले का है। यह कई दृष्टियो से भारत मे प्रचलित बाल अधिनियम से अच्छा है। इसके द्वारा बाल अदालते, सुधारगृह, अवरोधगृह, निरीक्षणगृह, "सर्टिफाइड स्कूल" तथा प्रोबेशन यानी परिवीक्षण प्रणाली तथा मनोवैज्ञानिक केन्द्र, सभी चीजो की गुजायश है। पर मध्यपूर्व के सभी देशो मे लडको को हथकडी लगाकर अदालत ले आते है।

ईरान, ईराक आदि मे

ईरान मे कोडा लगाने का भी नियम है, यद्यपि ईरान का दडविधान बहुत कुछ तुर्की दडविधान से मिलता जुलता है। ईराक का दडविधान सन् १९१८ मे बना था। तब से अब तक उसे पॉच बार दुहराया जा चुका है। अब वहाँ की नयी हुकूमत उसे छठी बार दुहरा रही है। पुराने कानून का दसवॉ अध्याय बाल अपराधियो से सम्बध रखता है। सन् १९१८ का वह अध्याय आज तक ज्यो का त्यो है जिसमे बाल अपराधी की व्याख्या है। उसको जेल न भेजकर परिवार, उचित अभिभावक या शिक्षण सस्था को सौपा जा सकता है। सऊदी अरब तथा यमन मे अभी तक कुरान शरीफ के ही अनुसार बाल अपराधियो के साथ न्याय होता है और वहॉ अदालत स्वय निर्णय करती है कि अपराधी को "बाल" माने या नही। जार्डन मे नियम है कि गिरफ्तारी के बाद बाल अपराधी को अदालत छोड भी सकती है या नही, वह जैसा चाहे। यदि छोडा नही गया तो उसे ऐसे विशिष्ट स्थान मे बन्द किया जायेगा जो बाल अपराधियो के लिए ही निर्दिष्ट होगा। सीरिया, लेबनान, मिस्र तथा जार्डन मे बाल अपराधियो को कैद मे रखने के लिए विशेष स्थान बने हुए है। मिस्र मे ऐसा पहला स्थान सन् १९४५

मे स्थापित हुआ था। वहाँ पर राजधानी काहिरा से तीन मील दूर गिरजा घर मे एक बडा अच्छा केन्द्र है। सीरिया मे बाल अपराधियो के लिए दो निरीक्षण-केन्द्र हैं। मिस्र मे बाल-कल्याण-केन्द्र न्याय मत्रालय के अधीन है। सिकन्दरिया (मिस्र) मे जब बाल-कल्याण-केन्द्र खोला गया तो वहाँ के न्याय मत्री ने सन्देश भेजा था—

"बालको के हित मे यह नितान्त आवश्यक है कि सार्वजनिक जेलखानो के अपराधियो के साथ से उनको काफी दूर रखा जाय। सरकारी वकील तथा बाल अदालते और सामाजिक कार्यकर्त्ताओ का यह कर्त्तव्य है कि प्रत्येक बच्चे की परिस्थिति तथा वातावरण की परीक्षा और जाँच करते रहे और यह देखे कि अपराधियो तथा लफगो का उनके जीवन पर कितना प्रभाव पडा है।"

सिकन्दरिया का केन्द्र "निरीक्षण तथा समीक्षा" के लिए है। यह बच्चो के चरित्र, वातावरण, व्यवहार, हर एक चीज की परीक्षा करता है। सीरिया तथा जार्डन मे १८ वर्ष के नीचे की उम्र वालो का मुकद्दमा करनेवाली अदालत का नाम बाल अदालत है।[1] सीरिया, लेबनान, जार्डन तथा मिस्र मे उस प्रकार की बाल अदालते नही है जैसी बम्बई मे है। यह नियम हर देश मे है कि बाल अपराधियो के मुकद्दमे बन्द अदालत मे हो तथा समाचार पत्रो के प्रतिनिधियो को वहाँ जाने की अनुमति न हो। ईराक मे वही बाल अपराधी मैजिस्ट्रेट के सामने पेश होगे जिनकी उम्र १६ वर्ष से कम है। इससे अधिक उम्र वालो का मुकदमा बडी अदालत मे होता है।

१ सीरिया दंडविधान धारा १७३, लेबनान दडविधान धारा २३७.

अध्याय २४

यूरोपीय देशों में बाल-अपराध-निरोध

महिला पुलिस

बालिकाओ की रक्षा तथा देखरेख और उन्हे अपराध करने से रोकने के लिए बेल्जियम, यूनान, फ्रान्स, डेन्मार्क तथा ब्रिटेन (यूनाइटेड किगडम—इगलैड, स्काटलड और वेल्स) मे महिला पुलिस नियुक्त है। यूनाइटेड किगडम मे बाल-अधिनियम के अन्तर्गत महिला पुलिस द्वारा बड़ा काम होता है। नार्विच तथा अन्य कई नगरो मे यह युवक क्लब बना देती है, जिसमे बालक-बालिका सभी आते है। सन् १९४९ से लिवरपूल नामक ब्रिटिश नगर मे, जो बाल अपराध के लिए इंग्लैड मे सबसे ज्यादा बदनाम है, एक बाल-सम्पर्क अधिकारी होता है। जिस लडके या लडकी का चालचलन किसी भी रूप मे खराब होने की सम्भावना होती है, समाज-कल्याण का सस्थाए, अभिभावक, परिवार के लोग, अध्यापक, दूकानदार कोई भी इस अधिकारी को उस बच्चे के बारे मे चेतावनी दे देते है। यह अधिकारी उस बच्चे से मिलता है तथा उसे सुधारने मे परिवार अथवा अध्यापक की सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। वह सभी उपलब्ध साधनो से उस बच्चे का सुधार करने का प्रयत्न करता है। जो सस्था या व्यक्ति इस कार्य मे उसे सहायता देता है उसके साथ इस अधिकारी का पूरा सहयोग होता है। काफी समय तक उस बच्चे के साथ, धैर्यपूर्वक प्रयत्न किया जाता है। इस योजना से बडा लाभ होता है। तुरत कार्यवाही करने से गलत रास्ते पर चलने वाले बच्चो की रोकथाम हो जाती है। उनका जीवन नष्ट होने से बच जाता है।

इंग्लैंड—इग्लैड मे बाल अपराधियो का औसत अमूमन दस हज़ार की आबादी पीछे १७ है। लिवरपूल मे २६ ८ प्रति १०,००० है। ऊपर लिखी योजना तथा समाज-कल्याण सस्थाओ के प्रयत्न से यह औसत सन् १९५३ मे केवल ११ ही रह गया। इग्लैड, स्काटलैड तथा वेल्स के कई बडे नगरो मे अपराधी प्रवृत्ति वाले बच्चो को "सावधान" कर सुधारने की उपयोगी प्रथा चालू है। बर्केनहेड नगर मे सन् १९४५ से १९५५ के बीच मे ३०० बच्चो को "सावधान" कर सुधार दिया गया। इनमे से केवल ५ प्रतिशत ही न सुधर सके। स्काटलैड मे इस प्रकार की चेतावनी देने के

लिए हर जिले मे एक विशेष पुलिस अफसर नियुक्त होता है। इंग्लैड तथा स्काटलैड मे कुछ नगरो मे शनिवार को या हफ्ते मे तीन बार तक ऐसी पाठशालाएँ चलायी जाती है जिनमे अपराधी प्रवृत्ति वाले बालक-बालिकाओ को ऐसे घण्टो मे, जब और पाठशालाओ मे छुट्टी हो जाती है, अनिवार्यत पढना पडता है। उन्हे सरल व्याख्यानो द्वारा जीवन का कर्त्तव्य सिखलाया जाता है।[१] ऐसे क्लास का उद्देश्य होता है इन बच्चो को सडक पर घूमने, बुरी सोहबत मे पडने या अन्य लडको को खराब करने का अवसर पाने से बचाना।

नीदरलैंड—इग्लैंड की इस प्रथा से कुछ अधिक अच्छे ढग पर नीदरलैंड, मे शनिवार को सायकाल पाठशाला लगती है जिसे "दड-शाला" कहते हैं, जिसमे अपराधी ढग के बच्चो की हाजिरी अनिवार्य होती है।

नार्वे—नार्वे मे औसलो युवक समिति मे पुलिस स्कूल तथा परिवार के प्रतिनिधि होते है। बाल-अपराध रोकने के लिए इनका लम्बा-चौड़ा कार्यक्रम होता है। यहाँ की पुलिस का भी एक विशेष दल है[२] जो बच्चो को शराबी होने से बचाता है। स्वेडन मे पुलिस ही बच्चो के आमोद-प्रमोद, मनोरजन, खेल-कूद आदि कार्यक्रमो की व्यवस्था करती है क्योकि आज यह सभी मानते है कि बाल अपराध तथा अपराधी रोकने का सबसे अच्छा उपाय है बच्चो को उनकी चपलता, चचलता, क्रियात्मक शक्ति तथा उठते हुए यौवन को अच्छे काम मे लगाये रखना। जहाँ बच्चो को साधारण खेल-कूद का भी अवसर नही मिलता वहाँ बाल अपराध होना स्वाभाविक है।

पुलिस—इस दिशा मे सफलता और अधिक मिलती है जब पुलिस भी इसे अपना कर्तव्य समझती है कि उसका काम केवल अपराध का पता लगाना ही नही है, वरन् अपराध की रोकथाम करने के लिए समाज-कल्याण का काम करनेवालो के साथ मिलकर सहयोग भी देना है। बडे पुलिस अफसरो के अतर्राष्ट्रीय सघ[३] का इस सम्बंध मे स्पष्ट प्रस्ताव भी है—

"यह सत्य है कि अधिकाश देशो मे सामाजिक कार्यकर्ता पुलिस के प्रत्यक्ष सहयोग को अस्वीकार करते है। ऐसे प्रत्यक्ष सहयोग से अविश्वास पैदा होता है जिससे उनके उस कठिन कार्य मे बाधा पडती है जो निश्चयत अपराधी मे अपने प्रति विश्वास प्राप्त

१. राष्ट्र संघ की रिपोर्ट, अप्रैल, १९५५, पृष्ठ ८८
२. K. 2 Group
३. International Federation of Senior Police Officers.

करने के लिए बडे धैर्य तथा आग्रह के साथ करना पडता है। इसलिए, ऐसे व्यक्ति (समाज-कल्याण का काम करनेवाले) तथा सस्थाओ के साथ मिलजुल कर काम करने के लिए तथा उनकी सहायता प्राप्त करने के लिए यह जरूरी है कि ऐसी सस्थाओ से तथा उनकी कार्य-प्रणाली से पूर्ण परिचय प्राप्त किया जाय। बच्चो की पूर्ण रक्षा के लिए इनसे सूचना प्राप्त की जाय तथा इनको सूचनाएँ दी जायँ। ऐसा सरक्षण छिटपुट प्रयत्न से या एक के ही किये से न होगा। पूरे समाज को इसमे साथ देना होगा . स्कूल के प्रधानाध्यापको से परस्पर जानकारी का आदान-प्रदान होना चाहिए, जिससे बच्चो के मानसिक स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालनेवाली चीजो का असर रोका जा सके।"

जिन बडे देशो तथा नगरो मे पुलिस बालसुधार के कार्य मे बडी दिलचस्पी लेती है, उनमे न्यूयार्क की पुलिस का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। सामाजिक कार्यों मे दिलचस्पी रखनेवाले पुलिस अफसरो की देखरेख मे बालको के हितार्थ काफी काम होता है। उनके लिए (बच्चो के लिए) दगल तक कराया जाता है।

इटली—इटली मे २१ वर्ष तक की उम्र के बच्चो के साथ दुर्व्यवहार करनेवाले या उनके साथ उपेक्षा का व्यवहार करनेवाले परिवार को दड मिलता है। वहाँ पर इटालियन मजदूरो के अनाथ बच्चो के सरक्षण के लिए एक बोर्ड है[१] जो १२,००० बच्चो को शिक्षा दे रहा है। उनके रहने, भोजन, कपडे—सबका प्रबध करता है।

सिनेमा पर प्रतिबन्ध

यूरोप मे बाल अपराधी तथा अपराधी प्रवृत्तिवाले बच्चो के सम्बध में जितना कार्य हो रहा है, उसकी लम्बी सूची देने के लिए काफी स्थान चाहिए। यत्र-तत्र हम कुछ न कुछ जिक्र करते आये है। पर एक विषय पर थोडा प्रकाश और डालकर हम यह प्रकरण समाप्त करेंगे। यह अब सिद्ध हो चुका है कि बच्चो के चरित्र पर सिनेमा का बडा बुरा प्रभाव पडता है और आज बाल अपराध मे वृद्धि का बहुत बडा श्रेय चल चित्रों को है। इस सम्बध मे यूरोप के अनेक देशो मे काफी प्रतिबध लगा दिये गये हैं कि अमुक प्रकार के खेलो मे बच्चो को तमाशा देखने की अनुमति न दी जाय। नीचे हम उन

१. E N A. O. L. I —International Child Welfare Review Vol. III No. 3, 1953.

देशो के नाम दे रहे है जिनमे उनके सामने अकित उम्र के बच्चो के लिए सिनेमा देखने पर प्रतिबध है—

देश	उम्र की सीमा
आस्ट्रिया	१५
बेल्जियम	१६
डेन्मार्क	१६
फ्रान्स	१६
पश्चिमी जर्मनी	१७
यूनान	१५
आयरलैंड का प्रजातन्त्र	१४
इटली	१६
नीदरलैंड्स	१४ या १८
नार्वे	१६
स्वेडन	१५
स्विटजरलैंड	१६ या १८
तुर्किस्तान	१२
यूनाइटेड किंगडम	१६

इस सम्वन्ध मे बेल्जियम का कानून बडा व्यापक तथा आदर्श प्रतीत होता है। सन् १९३० मे एक कानून द्वारा यह आदेश हुआ था कि जिस फिल्म को सरकार द्वारा यह स्वीकृति प्राप्त हो जाय कि वह १६ वर्ष की उम्र से कम बच्चो के देखने योग्य है, उसी को वे देख सकते है। सन् १९५४ मे यह उम्र १६ से बढाकर १८ कर दी गयी। असल मे इस नियम की कल्पना सन् १९२० मे तत्कालीन न्याय मत्री ने की थी।[1]

बेल्जियम मे फिल्म नियत्रण बोर्ड है जो न्याय विभाग के अधीन है। इसमे दो विभाग है—प्रारम्भिक विभाग तथा अपील सुनने का विभाग। दोनो मे पॉच पॉच सदस्य होते है। एक प्रतिनिधि फिल्म व्यवसाय का, एक प्रतिनिधि बाल अदालत

१. La Loı bue I Septubre 1920.

मैजिस्ट्रेट सघ का, एक प्रतिनिधि शिक्षा-सस्थाओ का, एक परिवारवालो का तथा एक सरकारी। इस बोर्ड द्वारा बच्चो के लिए ऐसे सभी चित्रो का निषेध कर दिया जाता है जिनमे चोरी, डकैती, लूटपाट, हिंसा के कार्य, हत्या, फॉसी, राज्यक्राति, बर्ब्बरता-पूर्ण चित्र, पारिवारिक जीवन की खिल्ली उडाना, शासन के प्रति उपेक्षा की भावना पैदा करना, क्रूर रीति रिवाज आदि दिखलाये जाते है। बेल्जियम की यह नीति प्रशसनीय तथा अनुकरणीय है। इसका महत्त्व इस बात से और भी समझ मे आ जायेगा कि बेल्जियम उन देशो मे है जहॉ पर ससार के शायद सबसे अधिक सिनेमा देखने वाले रहते है। इस देश की आबादी केवल ८० लाख है पर हर साल यहा औसतन १० करोड टिकट सिनेमावाले बेचते है।[१] यदि ऐसे देश मे कठिन सावधानी न बरती जाय तो आबादी मे चरित्र पर काफी बुरा प्रभाव पडेगा।

फ्रेंच पुलिस

पुलिस बाल अपराधी के लिए कितना कार्य कर सकती है इसकी एक मिसाल फ्रेंच सरकार के एक परिपत्र से मिलती है। १८ मार्च, १९५५ को फ्रास के राष्ट्रीय सुरक्षा विभाग के डायरेक्टर जेनरल ने हर जिले के पुलिस अधिकारी तथा डिविजनल कमिश्नर, पुलिस के नाम एक आदेशपत्र भेजा था। उसमे लिखा था—[२]

"२ जुलाई, १९५३ को मैंने आपका ध्यान आकृष्ट किया था कि अपने वर्त्तमान साधनो से लाभ उठाकर बच्चो की हर प्रकार की सहायता करो। मैने कहा था कि जब भी अवसर मिले आप बाल अपराधियो से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्बन्धित मामलो मे विशेष अनुभव प्राप्त करने का अफसरो को अवसर प्रदान कीजिए। बच्चो की रक्षा के लिए आपने भिन्न दिशाओ मे जो प्रयत्न किये है उसके फलस्वरूप बडी रोचक तथा जरूरी बाते मालूम हो गयी है। मै इन परिणामो से और भी लाभ उठाना चाहता हूँ। आपके काम मे सहायक होने के लिए मै साथ मे एक पुस्तिका भेज रहा हूँ—'बच्चो के नैतिक कल्याण के लिए पुलिस का कार्य

१. राष्ट्रपरिषद् की रिपोर्ट, १९५५, पृष्ठ १३१.

२ Revue Moderne De La Police, No 14 Sept., Oct , 1955 Paris—Page 17, 18, 19—Order of the Directorate General of the Surete Nationale.

"जिन व्यक्तियो या सस्थाओ को बाल-कल्याण मे जरा भी रुचि हो, उनकी सूची बना लीजिए। इन सस्थाओ के प्रधान, समाज कल्याण कार्यकर्त्ता तथा अध्यापक वर्ग से सम्बन्ध स्थापित कीजिए, फैक्टरी इस्पेक्टर, बाल मज़दूरो को भर्ती करने वाले कल कारखाने, खेल कूद की सस्थाए—इन सभी मे सम्पर्क स्थापित कीजिए। बच्चो के उद्धार के लिए सभी सार्वजनिक स्थानो की, जैसे सिनेमा, नाचघर, मेला-तमाशा, रेलवे स्टेशन, उद्यान, जलपानगृह आदि की—बराबर गश्त होनी चाहिए।"

अध्याय २५

अमेरिका में बाल-अपराध-निरोध

यद्यपि संयुक्त राज्य अमेरिका में बाल-अपराध की समस्या काफ़ी गम्भीर है, पर निश्चयतः उसकी गम्भीरता तथा गुरुता कहीं अधिक होती यदि उसकी रोकथाम के लिए, बाल-सुधार के लिए तथा नवीनतम आधुनिक प्रयोगों के लिए यह देश संसार में सबसे आगे न बढ़ा हुआ होता। इस देश के अनेक प्रदेशों में बाल अपराधी को उसके विशेष अपराधों के लिए दंड नहीं देते बल्कि "अपराधी" होने के कारण उसकी "चिकित्सा" करते हैं। उनका उसूल है कि जिस प्रकार दीवानी के मामलों में नाबालिग़ क़ानूनन ज़िम्मेदार नहीं होता, उसी प्रकार जरायम के मामले में भी जब तक वह बालिग़ न हो जाय उस पर पूरी ज़िम्मेदारी नहीं लादी जा सकती।[१] इसी लिए १६ वर्ष के नीचे के बच्चों को "ट्रेनिंग स्कूल" या "औद्योगिक तथा कृषि स्कूल" में भेजा जाता है।

बोस्टन की संस्था

बाल-अपराधियों के लिए पहली संस्था सन् १८२३ में मासाचुसेट प्रदेश की राजधानी बोस्टन में खुली थी। इसे न्यूयार्क के टामस एडी द्वारा संस्थापित "कंगाली निरोधक समिति"[२] ने स्थापित किया था। कुछ समय बाद बोस्टन की संस्था को सरकार ने मान्यता प्रदान कर दी और यह पहली संस्था थी जिसमें अदालत बाल-अपराधियों को भेज देती थी। यह आगे चलकर बहुत बढ़ गयी, बहुत उन्नति कर गयी। इसमें यह नियम है कि जब तक लड़का स्वयं अपना अपराध दर्ज़ न कराना चाहे, कोई जान भी नहीं सकता कि किस लिए आया है। शारीरिक दंड एकदम मना है। यहाँ के निवासी बच्चे स्वयं अपना प्रबंध तथा शासन करते हैं। वे स्वयं निर्णय करते हैं कि संस्था का संचालन

१. Dr. Haikerwal

२. Society for Prevention of Pauperism.

किस ढग से हो। लडकियो के लिए भी "मेगदेलेन" गृह बने। पर ऐसे सुधार-गृहो की रचना एक प्रकार से जेल जैसी ही थी——ऊँची दीवाले, छड, ताला इत्यादि।

घरेलू वातावरण की आवश्यकता

इनका स्थान अब उन "कुटियाओं" ने ले लिया है जिनमे २०-२५ से ज्यादा लडके या लडकियाँ नही रखे जाते। छोटे बच्चो की कुटिया मे एक "माता" रहती है जो निरीक्षक का काम करती है। बडे लडके-लडकियो की कुटिया के मुखिया बुजुर्ग पति-पत्नी होते है। इस प्रकार एक छोटा परिवार बन जाता है, एक प्रकार का पारिवारिक जीवन हो जाता है। आज का अपराध-विज्ञान अब सुधार-गृह आदि मे भी रखने के विरुद्ध है। उसका कथन है कि बिना घरेलू वातावरण के असली उद्धार तथा सुधार नही होता। इसलिए आज चेष्टा यह की जाती है कि यदि अपराधी बालक बालिका का परिवार इस योग्य न हो तो किसी दूसरे परिवार मे उसे रख दिया जाय तथा उसी परिवार के स्वस्थ वातावरण मे उसका सुधार हो और किसी अन्य स्थान मे उसकी शिक्षा आदि का प्रबध हो।

सबसे अच्छी और बडी चीज़ जो इस देश मे है वह है बाल-अपराधी की "परीक्षा।" उसकी मनोवृत्ति, उसका स्वास्थ्य, उसका परिवार, उसका रहने का वातावरण, उसकी प्रेरणा, इच्छा, सकल्प, झुकाव, काम की ओर रुझान——इन सब विषयो मे बडी बारीक छानबीन करते हैं। सब छानबीन करके बाकायदा बोर्ड बैठता है। वह निश्चय करता है कि उसको कहाँ रखा जाय, क्या शिक्षा दी जाय। ऐसी ही एक बोर्ड की बैठक मे सयुक्त राज्य अमेरिका मे न्यूयार्क के निकट एक "बाल निरीक्षण" केन्द्र मे उपस्थित रहने का अवसर मुझे मिला। जिस लगन के साथ उस बोर्ड के सदस्य, जिनमे "निरीक्षण गृह" के प्रधान, डाक्टर, मनोवैज्ञानिक तथा जेल-निरीक्षक "विज़िटर" मौजूद थे, एक-एक बच्चे के अध्ययन की रिपोर्ट पढी जा रही थी तथा उस पर विचार हो रहा था और फिर उस बच्चे को बुलाकर उससे बाते की जाती थी। उसे देखकर विश्वास होता था कि वास्तव मे बच्चो के जीवन की कद्र करना ये लोग ही जानते हैं।

हमारे सामने वहाँ एक १४ वर्ष का लडका लाया गया। उसमे बडा दोष यह था कि वह उस "गृह" के किसी भी अधिकारी को देखकर उत्तेजित हो जाता था और उससे लडने तक पर आमादा हो जाता था। प्रबधक लोग उस बच्चे की इस उच्छृखलता से बडे परेशान थे। जब उसकी समस्या पर विचार हो रहा था, मैने यह सलाह दी——"उसे ही क्यो न अधिकारी बना दिया जाय? दस पाँच लडको पर उसे कप्तान बना दीजिए। स्वय अधिकारी बन जाने पर

उसके मन का अधिकारी के प्रति विद्रोह समाप्त हो जायगा।" मेरी यह सलाह बोर्ड को बहुत पसद आयी। बाद मे मुझे पता चला कि मेरी बात काम कर गयी।

तीन वर्गो के लिए सुधार-गृह

अस्तु, सयुक्त राज्य मे तीन वर्गों के लिए सुधारगृह है। पहला तो १६ वर्ष से कम उम्रवालो के लिए है। इसे "ट्रेनिग स्कूल" या "औद्योगिक तथा कृषि पाठशाला" कहते है। दूसरी श्रेणी १६ से २१ या ३० वर्ष तक की उम्रवालो के लिए है। इनमे 'कुटिया-परिवार-प्रणाली" की बडी अच्छी प्रथा है। बडे-बडे खेत (फार्म) भी इनके साथ नत्थी है। सन् १८५७ मे प्रथम "ओहियो राज्य सुधार फार्म" स्थापित हुआ था। यह १८ वर्ष से कम उम्रवालो के लिए था। बालिग कैदियो के लिए सुधारगृह खोलने का कानून १८६९ मे बना और १८७८ मे न्यूयार्क स्टेट रिफार्मेटरी या जिसे "एलमिरा रिफार्मेटरी" के नाम से बडी ख्याति प्राप्त हो चुकी है, खुली। अब तो देश भर मे बन्दी के सुधार के लिए, कल्याण के लिए, सरकारी, गैर सरकारी, निजी प्राइवेट तथा प्रोबेशन प्रणाली के अन्तर्गत कार्यो की भरमार है पर इन सब कार्यो की आधार-शिला यह एलमिरा सुधारगृह का मत्र है—

१ बन्दी का सुधार हो सकता है।

२. राज्य का कर्तव्य है तथा बन्दी का यह अधिकार है कि उसका सुधार हो।

३ प्रत्येक बन्दी का निजी तथा व्यक्तिगत रूप स्वीकार कर उसके लिए आवश्यक व्यक्तिगत चिकित्सा ही होनी चाहिए। उसकी जरूरत के अनुसार उसकी बौद्धिक, सास्कृतिक तथा नैतिक चिकित्सा होनी चाहिए।

४ बन्दी का सुधार उसी के सहयोग से अधिक सरल हो जाता है।

५ बन्दी-सुधार के लिए राज्य के पास एक बडा अधिकार तथा हथियार यह है कि उसके सुधार के अनुसार वह उसकी सजा की अवधि कम कर सकता है।

६ सबसे बडा काम है उसे शिक्षा के द्वारा सुधार देना। किसी भी बदी को जेल के बाहर ऐसी दशा मे नही भेजना चाहिए कि वह बुरी बातो मे फिर से फँसने के लालच मे पड जाय।

जो बात बालिग अपराधी के लिए है, वही बाल-अपराधी के लिए भी। आज सयुक्त राज्य अमेरिका मे बाल-विज्ञान की नवीनतम खोजो से जितना काम हो रहा है, उतना और किसी देश मे नही। फिर भी, वहाँ १६ करोड की आबादी मे दस लाख बाल-अपराधी प्रति वर्ष कैसे और क्यो पैदा होते रहते है? सम्भव है, आगे के पृष्ठो मे इसका उत्तर मिल सके।

अध्याय २६

बाल-अपराध की समस्या का निदान

बाल अपराधी की समस्या का रूप और उससे लडने के लिए भिन्न-भिन्न देशो ने जो तरीके अपनाये है, उनका वर्णन करने के बाद हम आम बातो की ओर वापस आते है। आखिर इस समस्या का हल क्या है? बच्चो की आबादी बराबर बढती जा रही है। अमीर देशो की बाते जाने दीजिए, अनुन्नत, पिछडे देशो मे इनकी जनसख्या ७५ करोड है। इसमे से ६० फीसदी ऐसे मुल्को के बच्चे है जहाँ पर लोगो की औसत आमदनी ४५० रुपये साल से कम है। १७ फीसदी बच्चे ऐसे अनुन्नत देशो के निवासी है जिनकी वार्षिक औसत आमदनी इसकी दुगुनी है। केवल २३ फीसदी ९०० रुपये वार्षिक की आमदनी से ऊपरवाले वर्ग के है।[१] अतएव ६० करोड बच्चो के लिए पेट और रोटी का भी सवाल है। यदि इनमे बाल अपराधियो की वृद्धि हो तो निष्कारण न होगी।

हम गरीबी को अपराध का प्रधान कारण नही मानते। पर वह गौण तथा दूसरे नम्बर का कारण तो है ही। इनमे भी लडको की समस्या भिन्न है तथा लडकियो की भिन्न है। लडको के लिए जितने उपाय सोचे जा सकते है, उतने लडकियो के लिए नही। सन् १९५७ के सितम्बर महीने मे संयुक्त राज्य अमेरिका के उपराष्ट्रपति श्री रिचार्ड एम० निक्सन ने न्यूयार्क मे बाल-अपराध की बढ़ती हुई समस्या पर चिन्ता प्रकट करते हुए कहा[२] था कि "लडको मे क्रिया-शक्ति की इतनी अधिकता होती है कि उस शक्ति के समुचित उपयोग का यदि साधन प्राप्त न हो तो वे अपराधी बन जाते है। अतएव इसके उपयोग का सबसे अच्छा साधन है शारीरिक व्यायाम तथा कवायद का अधिक से

१ Unicef Bulletin—United Nations, New York, Vol 7, No 2, March, 1959

२ New York Times, 9th Sept., 1957.

अधिक प्रबध करना। समूचे देश मे अधिक से अधिक व्यायामशालाएँ खोलनी चाहिए।"

न्यूयार्क के कारपोरेशन के चुनाव मे उसी वर्ष मेयर वैगनर के खिलाफ यही सबसे बडा अभियोग विरोधी पक्ष के उम्मीदवार राबर्ट क्रिश्चेनवेरी ने लगाया था कि उनके शासन-काल मे बाल-अपराध बहुत बढ गये थे। उन्ही दिनो रेडिओ से कोलम्बिया ब्राडकास्टिंग कारपोरेशन की तरफ से न्यूयार्क के चीफ मजिस्ट्रेट श्री जान मुर्त्तघ ने कुछ लोगो के इस प्रस्ताव की निन्दा की थी कि बच्चो मे अपराध रोकने के लिए उनको रात के समय घर से निकलने की मनाही कर दी जाय यानी उनके लिए रात को 'करफ्यू' आज्ञा जारी की जाय। मुर्त्तघ ने तो यहॉ तक कह डाला था कि पुलिस का जुआ पकड़नेवाला या मादक-द्रव्य की रोकथाम करनेवाला जत्था अपराध बढाने के लिए जिम्मेदार है।

लड़कियो की समस्या

पर लडकियो की समस्या लडको से कुछ भिन्न है। व्यायामशाला से उनका काम नही चलेगा। हमारे देश मे लडकियो के लिए बम्बई ऐसे उन्नत प्रदेश मे भी अपराध रोकने की दिशा मे काफी कम काम हुआ है। उनकी आवश्यकता समझने का प्रयास भी नही हुआ है। मद्रास मे अवश्य इस सम्बन्ध मे अच्छा काम हो रहा है। वहॉ पर मद्रास सरकार द्वारा एक ऐसा महिला आश्रम है जिसमे निगरानी के लिए वे लडकियॉ रखी जाती है जिनको चरित्रभ्रष्ट कहा जाता है तथा जिनकी उम्र १४ वर्ष से ज्यादा है। १ अगस्त १९५६ को इस आश्रम मे कुल २६५ लडकियॉ थी जिनमे १५ वर्ष से कम उम्र की १० थी, १५ से १८ वर्ष की १३४, १८ से २५ वर्ष की ७० तथा २५ वर्ष से ऊपर की ५१ स्त्रियॉ थी। इनमे २२४ हिन्दू थी, २५ मुसलमान तथा १६ ईसाई थी। हिन्दुओ मे १३ हरिजन, ८ ब्राह्मण तथा २०३ अब्राह्मण थी। १३१ लडकियॉ अविवाहित, १२१ विवाहित तथा १४ विधवाएँ थी।

इन ऑकड़ो से कई मार्के की बाते मालूम होती है। पहले तो यह कि सबसे कम दुराचारिणी कन्याएँ सबसे छोटी जाति की है—ऊँची जातियो मे भ्रष्टाओ की सख्या अधिक थी। दूसरे, यह सोचना भी भूल होगी कि विवाह हो जाने के बाद पतन की सम्भावना कम हो जाती है। विवाहित तथा अविवाहित लडकियो की सख्या बराबर सी है। मद्रास मे एक दूसरा सरकारी "उद्धार की गयी कन्या का आश्रम" है जिसे "स्त्री-सदन" कहते है। ३ दिसम्बर १९५५ को स्त्रीसदन मे ८९ लड़कियॉ थी जिन

सबकी उम्र २१ वर्ष से कम थी। उसी दिन पहले उल्लिखित महिला आश्रम मे २८६ लडकियाँ तथा १९ शिशु थे। उस समय तक उस आश्रम की १४२ लडकियो का सस्था की ओर से विवाह कराकर उन्हे सद्-गृहस्थ बनाया जा चुका था। इसी प्रकार स्त्री-सदन की ९७ लडकियो को कुछ ही वर्षो मे सुखी गृहस्थ बना दिया गया था। पर, स्त्रीसदन की २१ वर्ष से कम उम्रवाली लडकियो के नीचे लिखे वर्गीकरण मे स्पष्ट हो जायगा कि आज के समाज मे आचरण तथा अच्छाई, अपढ तथा "नीची" कही जानेवाली जातियो मे अधिक है तथा कच्ची उम्रवाली लडकियो मे अविवाहित ही अधिक होती है। अत भ्रष्टा लडकियो मे अविवाहिताओ की सख्या अधिक है। इस सदन की २० प्रतिशत लडकियो को "गर्मी" (आतशक) की बीमारी थी। १ अगस्त १९५४ को सदन मे भर्ती, २१ वर्ष की उम्र के नीचे की लडकियो की सख्या ९४ थी। उनका वर्गीकरण इस प्रकार हुआ —

१	विवाहित तथा पति द्वारा परित्यक्त	१८
२	अविवाहित	७६
३	विधवाएँ	५
४	एकदम दरिद्र	२८
५	निम्न मध्यम श्रेणी की	६५
६.	उच्च मध्यम श्रेणी की	१
७	अपढ	७
८	अच्छी तरह से पढी-लिखी	५९
९	कम पढी-लिखी	२८

इन ऑकडो से एक और नयी बात मालूम हुई। यह कहना कि दरिद्र की लडकी के पतन की अधिक सम्भावना है, भूल होगी। एक न एक नयी बात मालूम होती रहती है। कुछ समझ मे नही आता कि अपराध-निरोध का कार्य किस रूप मे किया जाय, समस्या की गुरुता को ही देखकर सयुक्त-राष्ट्रसघ ने यह निश्चय किया कि "बाल अपराधी की समस्या को बडी बुद्धिमत्ता तथा रचनात्मक रूप से सँभालना होगा, उसी प्रकार उपेक्षित तथा लापरवाही से पाले गये बच्चो मे अपराधी प्रवृत्ति उत्पन्न होने से रोक-थाम करने के लिए उनके साथ आरम्भ से ही बडी सावधानी का व्यवहार करना होगा।

आज लगभग ९ वर्षो से सयुक्त-राष्ट्रसघ इस दिशा मे दिलचस्पी ले रहा है और उसने दुनिया के कोने-कोने मे इस समस्या का अध्ययन कर अनेक उपाय ढूँढ निकाले

है और उन उपायो की ओर ससार का ध्यान आकृष्ट कर रहा है।[१] राष्ट्रसंघ अपराध के कारणो की ओर न जाकर यह जानना चाहता है कि अपराध रोकने के लिए क्या विशेष कार्य किये गये। उसके अनुसार, रोकथाम की तीन श्रेणियाँ है—

१ अपराधी बननेवाले बालक बालिकाओ का शुरू से ही पता लगाकर उनकी समस्या विकट होने के पहले ही उनकी चिकित्सा प्रारम्भ कर देना चाहिए।

२ जिन बच्चो का व्यक्तित्व "समस्यामय" प्रतीत हो, उनकी शुरू से ही छान-बीन करके उन्हे अपराध के मार्ग से हटा लेना चाहिए।

३ जो लडके-लडकियाँ एक बार अपराध कर चुके हो, उनको दुबारा अपराध करने से रोकने का उपाय करना चाहिए।

रोकथाम और चिकित्सा

रोकथाम और चिकित्सा, इन दोनो का मेल कैसे होगा ? इसके सम्बन्ध मे राष्ट्र-संघ के सचिवालय की रिपोर्ट है—

"रोकथाम भी किसी मात्रा मे चिकित्सा ही है। चिकित्सा भी रोकथाम है, जैसे दुबारा अपराधी बनने से रोकना। जैसा कि हम पहले ही कह आये है, समाज-कल्याण के आम कार्य, जैसे अच्छा घर, अच्छा स्वास्थ्य, आर्थिक सहायता आदि बाल-अपराध रोकने मे सहायक होते है। पर यही पर्याप्त नही है। सभी भौतिक सुख होने पर भी बच्चो मे अपराधी भावना पैदा होती ही है। इस भावना का जल्दी पता लगा लेना चाहिए। उसके कारण का पता लगाकर इलाज शुरू कर देना चाहिए, अन्यथा अनेक प्रकार की दुष्टताएँ पैदा हो जायँगी। इसलिए रोकथाम के किसी भी कार्यक्रम मे इलाज का अपना स्थान रहेगा ही। जैसा कि हम कई बार कह आये है, समुचित चिकित्सा तभी होगी जब कि इस विषय मे सुशिक्षित तथा अनुभवी लोग काम करते हो ...कम उन्नत देशो की आवश्यकता अधिक उन्नत देशो से भिन्न होगी। एक ही देश मे स्थान-स्थान की जरूरत मे फर्क होता है। इसलिए कोई कार्य-क्रम चालू करने के पहले वहाँ की हालत पूरी तरह से समझ लेनी चाहिए ... ।

१. राष्ट्रसंघ के कार्य तथा इस सम्बंध में उसका सकल्प जानने के लिए देखिए—"The work of the United Nations in the field of Prevention of Crime and the treatment of offenders in International Review of Criminal Policy, United Nations No. 1, January, 1952, Page, 3–27

"पर केवल रोकथाम के तरीको से ही बाल-अपराध नही रुकेगा। जो बच्चे अपराधी हो गये है उनका कुछ इलाज भले ही हो जाय—चाहे प्रोबेशन हो या किसी सस्था मे भर्त्ती कर देना हो—पर जब तक वे अपने समुदाय, परिवार, स्कूल तथा वातावरण के अनुकूल अपना जीवन नही बना लेते, जब तक अपनी "चिकित्सा" से वह ऐसी शिक्षा नही प्राप्त कर लेते, इस बात की पूरी सम्भावना है कि वे पुन अपराधी बन जायँगे। इसलिए चिकित्सा के साथ उत्तर-रक्षा[१] (बाद मे उनकी देखरेख) का काम भी निहायत ज़रूरी है। इस श्रेणी मे दो वर्ग है जो अपराध की ओर बढते है—एक तो वे बच्चे जो सामाजिक दोष के कारण अपराधी प्रवृत्ति के हो जाते है तथा दूसरे वे जो एक बार अपराध कर चुके है। अतएव बाल-अपराध रोकने के लिए ऐसा कार्य-क्रम होना चाहिए जो इन दोनो वर्गो की रक्षा कर सके।"[२]

अब बाल-अपराधी को दड देने की बात तो कोई नही सोचता। अंतर्राष्ट्रीय रूप से यह चीज स्वीकार की जा चुकी है कि प्रतिशोध या प्रायश्चित्त या "उपदेश", किसी भी दृष्टि से बच्चो को, नवयुवको तथा नवयुवतियो को दड देना अनुचित है, अवाछनीय है तथा हानिकारक है और बाल-अदालतो को तथा बाल-सुधार का कार्य करनेवाले सरकारी कर्मचारियो को यह सिद्धान्त याद रखना चाहिए।[३] बाल-अदालतो का तथा सरकारी कर्मचारियो का, परिवीक्षण अफसर का, हर एक का कर्त्तव्य है कि जो कुछ करे उसका उद्देश्य बच्चो का कल्याण हो, अन्यथा उनकी पुन शिक्षा हो।

जून १९५१ से न्यूयार्क के निकट कनान मे बर्कशायर अतर्राष्ट्रीय सभा हुई थी। इसने अपने बाल-अपराधी सम्बन्धी प्रस्ताव की भूमिका मे लिखा था—

"बाल-अपराधी से किसी प्रकार का सामाजिक बदला लेने की दार्शनिकता तथा दड के सिद्धान्त पर किसी प्रकार का भरोसा रखना—इन दोनो बातो की हम सर्वसम्मति से भर्त्सना करते है। बच्चे को सुधारने के लिए किसी प्रकार का शारीरिक दड या अपमानजनक उपाय करने की हम विशेष तौर पर भर्त्सना करते है।"

१. After Care

२. The Prevention of Juvenile Delinquency-Report by the Secretariat, United Nations–No 7-8 Geneva-1955–Page 43.

३. Berkshire International Forum, held in the Berkshire Industrial Farm, Canan, New York.

सितम्बर १९५३ मे रोम मे छठा अतर्राष्ट्रीय दड-नियम सम्मेलन हुआ था। इसके अनुसार—"१६ वर्ष से कम उम्रवालो के विषय मे हर प्रकार की प्रायश्चित्तात्मक दड-प्रणाली एकदम बद कर देनी चाहिए।" अपराध-निरोध तथा अपराधी की चिकित्सा के विषय पर एशियाई तथा सुदूरपूर्व सम्मेलन मे यह निश्चय हुआ था कि "हर प्रकार का शारीरिक दड समाप्त किया जाय।" इस प्रकार यह तो स्पष्ट है कि बाल अपराधी के प्रति उदारता तथा सहानुभूति के साथ ही साथ नर्मी का व्यवहार करने के सभी समर्थक है। कोडा लगाना, पीटना, जेलो मे बन्द रखना, इन सब पुरानी चीजो को बडा हानिकारक समझते है। इससे बच्चे की आत्मा मर जाती है। उसका विकास समाप्त हो जाता है। यह प्रश्न हो सकता है कि तब उसके साथ कैसा तथा क्या व्यवहार किया जाय? राष्ट्रसघ का कथन है कि जो लोग दड न देकर चिकित्सा के हामी है उनकी सम्मति मे—

(१) बाल अपराधी परिस्थितियो का शिकार है अतएव उसे दड देने के बजाय उसकी आवश्यकताओ के अनुसार उसे सरक्षण तथा देखरेख प्राप्त होनी चाहिए।

(२) दड देना या शिक्षा तथा कल्याणकारी चिकित्सा करना, इन दोनो बातो मे बडा अन्तर है। दड तब दिया जाता है जब अपराधी की व्यक्तिगत जिम्मेदारी मानी जाती है पर दूसरे प्रकार का उपाय उस व्यक्ति के व्यक्तित्व के अध्ययन पर तथा उन कारणो पर आधारित है जिनसे उसने असामाजिक कार्य किया है। जब दडविधान से ही उसका नाम—बाल अपराधी का नाम—इसलिए हटा दिया गया कि वह अपने कार्यों के लिए स्वय पूर्णत उत्तरदायी नही है, तो फिर बाल-अदालते या बाल अपराधी के विषय मे काम करनेवाले अफसर उसके साथ दूसरा व्यवहार कैसे कर सकते है?

(३) ऐसे कुछ बाल अपराधी हो सकते है जिन पर चिकित्सा, सुधार, निगरानी आदि किसी का प्रभाव न पडे। तब ऐसे बाल अपराधियो को बाल-अदालत के दायरे से ही बाहर कर अन्य अदालतो मे ले जाना चाहिए।[1]

दंड के हिमायती लोगो का कहना है कि यदि बच्चो को मालूम हो गया कि दंड नही मिलेगा तो वे डरेगें नही। बहुत से ऐसे लडके या लडकियॉ हैं जो दड की भाषा ही समझते हैं। ऐसे अनेक मामले हो सकते है जिनमे दड से ही उस अपराधी के आत्म-सम्मान की भावना जाग्रत हो जाती है, अन्यथा नही। सुधारगृहो मे भी किसी रूप मे दड तो वर्तमान है, अतएव दड को अस्वीकार नही करना चाहिए।

१. Prevention of Juvenile Delinquency, Pages 61-62

राष्ट्रसंघ का कथन है कि इन दोनो बातो को एक मे मिलाने का एक ही तरीका है—प्रायश्चित या प्रतिशोध के लिए दड देना तो नितान्त निकम्मी तथा गलत बात है, पर सुधार के लिए जहाँ पर शिक्षा का कार्यक्रम असफल रहा हो, किसी रूप मे दड दिया जा सकता है। कभी-कभी शिक्षा तथा दड को मिलाकर चलना होगा। दोनो को मिलाकर चलनेसे सुधार, शिक्षा, भय आदि हर एक उद्देश्य की पूर्ति हो जायगी[१] सन् १९५४ मे, सितम्बर के महीने मे आस्ट्रिया की राजधानी वियेना मे अपराध निरोध पर यूरोप के देशो की सभा हुई थी।[२] इस सभा मे यह तया हुआ था कि "यदि बाल-अपराध पर कानून कैदखाने की सजा देना ही चाहता हो तो थोडे दिनो के लिए सजा को स्थगित कर चिकित्सा का कार्य करना चाहिए। इस प्रकार सुधार का काम भी होता रहेगा, जेल का भय भी बना रहेगा तथा अपराधी को चिन्ता बनी रहेगी।

१. वही, पृष्ठ ६२।

२. World Federation for Mental Health—Federation Mondiale Pour La Sante Mentale Federacion Mundial Por La Salud Mental, 19, Manchester Street, London, W. I. May, 1955.

अध्याय २७

मानसिक स्वास्थ्य के सम्बंध में

सन् १९५५ के जेनेवा काग्रेस मे मन के, दिमाग के स्वास्थ्य की चिन्ता करने वाले विश्व सघ ने एक स्मृतिपत्र वितरित किया था। उसमे लिखा था—

"सामाजिक क्रिया तथा प्रतिक्रिया के कारण ही अपराध होता है। उसकी रोक-थाम उस समुदाय के सामाजिक ढाँचे के अनुकूल उपाय करने से ही हो सकती है. . . इसलिए अपराध निरोध के विषय मे हर समुदाय तथा वर्ग को स्वत. सोचना पडेगा। पर कुछ ऐसे भी सिद्धान्त है जो मानव जाति के लिए आमतौर पर लागू होते है। व्यावहारिक दृष्टि से बाल अपराध के कारणो को तीन श्रेणियो मे विभाजित कर सकते है। (१) व्यक्तिगत, (२) सामाजिक तथा (३) दोनो मिली-जुली। पहली श्रेणी मे वे कारण आते हैं जो व्यक्ति के निजी सम्बन्ध मे दोष के कारण पैदा होते है। सीधे सादे शब्दो मे मानव शिशु के लिए यह स्वाभाविक है कि वह पैतृक स्नेह करनेवालो के समान बनने का प्रयास करते है। उनके तद्रूप बन जाते है। इस सम्बध मे यदि कोई दोष पैदा हो तो वह स्वाभाविक स्नेह नही जाग्रत होता। यही नही, वह विरोध, विग्रह तथा घृणा का रूप धारण कर लेता है .सामाजिक कारण वह है जिनमे किसी प्रकार के सामाजिक तनाव के कारण अपराधी मनोवृत्ति पैदा होती है। जैसे असमानता, अन्याय, या अपने घर वालो के प्रति अपनी वफादारी तथा समाज की वफादारी मे सघर्ष, जैसे अपने माता-पिता को भूखो मरता देखकर कोई बच्चा रोटी चुरा लाये। मिलेजुले कारण वही है जिनके ऊपर आज अधिकाश बाल-अपराध की जिम्मेदारी है। एक तरफ सामाजिक तनाव है और दूसरी तरफ प्रेम के सम्बर्ध मे कमी है . . . यदि केवल सामाजिक चिकित्सा की जाती है तो केवल सामाजिक कारणो के अपराधों पर लाभ होगा . . यदि माता-पिता का जीवन सतुलित है, यदि उनके जीवन मे कोई बडा विग्रह नही है, यदि परस्पर के सम्बध मे तथा सामाजिक जीवन मे कोई तनाव नही है, तो बच्चे के जीवन मे कोई विक्षेप नही होता। उसकी इन्द्रियां ठीक से काम करती है। उसकी बुद्धि का स्तर ठीक रहता है। बच्चे के आरम्भ के जीवन मे, जहाँ माता या पिता से ठीक से सम्बन्ध नही स्थापित होता, जहॉ माता का स्नेह

ठीक से नही प्राप्त होता, उसके ऐसे स्नेह-हीन जीवन मे ऐसा मनोवैज्ञानिक विप्लव पैदा होता है कि उसके मानसिक स्वास्थ्य पर, दिमागी तन्दुरुस्ती पर, बहुत बुरा प्रभाव पडता है वालक-वालिकाओ के मुधार के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि माता-पिता भी परिपक्व हो, अधकचरे अनुभव से अपनी सन्तान का पालन न करे—उन्हे वह स्नेह तथा लगन प्रदान करे जिससे बच्चो का जीवन सुधरता है।"

जेनेवा काग्रेस मे बाल अपराधियो पर एक दूसरा महत्त्वपूर्ण परिपत्र विश्व स्वास्थ्य सगठन का था।[१] उसमे बाल अपराधी का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए लिखा है कि उनके निजी व्यवहार, कार्य तथा जीवन मे जो अव्यवस्था प्रतीत होती है उसका एक कारण नही होता। "कई कारण मिलकर वैसा व्यवहार बनता है। सामाजिक, शारीरिक तथा वातावरण सम्बधी—ये सब मिलकर कारण बन जाते है—चोरी, मारपीट, लडाई-झगडा इन सब आदतों के पीछे समाज या किसी व्यक्ति के विरुद्ध विद्रोह की भावना है। अपराध तो उसे ही कहते है जो जानबूझ कर किया जाय। किसी अपराध का मनोविश्लेषण करने के लिए उसे करने की नीयत का पता लगाना चाहिए। नियम तथा व्यवस्था के विरुद्ध जो भी कार्य हो, चाहे उसका पता चले या न चले, हर दशा मे वह अपराधी है . व्यवस्था, नियम, समाज या व्यक्ति के विरुद्ध विद्रोह परवार के वातावरण से या माता-पिता के व्यवहार के कारण तो नही प्रारम्भ हुआ है, यह बात पता लगाने की है।[२]"

हमने बाल-अपराध के विषय पर, अपनी पुस्तक के सकुचित आकार के दायरे मे, अधिक से अधिक बातो को सक्षेप मे देने का प्रयास किया है। इसे रोकने के लिए, इसके बढते हुए वेग को कम करने के लिए, इसके मूल-भूत कारणो को दूर करने के लिए जितने मुख्य सिद्धान्त तथा प्रणालियाँ थी, उनका भी कुछ न कुछ वर्णन किया ही गया है। पर जिस प्रकार हमे स्वय इस विषय पर लिखने पर सन्तोष नही है, जिस प्रकार हमको स्वयं इस समस्या के हल का मार्ग स्पष्ट नही दिखाई पड रहा है, उसी प्रकार पाठको को भी सतोष न हो तो कोई आश्चर्य की बात नही है। इसका कारण है। सिद्धान्त बनते और मिटते रहते है। एक नयी खोज होती है और कटती रहती है।

१. The Detection of the Pre-Delinquent Juvenile—World Health Organisation, 17th Aug, 1955

२. F. J. Shirley Murphy—"The Incidence of Hidden Delinquency" Vol. XVI—4, Pages 686-696.

पर बाल-अपराध की रोकथाम और वृद्धि को रोकने का सही उपाय समझ मे नही आ रहा है। काम-वासना या अन्य प्रकार के अपराध का निदान तो समझ मे आ सकता है। उसका व्यावहारिक रूप भी प्रत्यक्ष है। उन अपराधो मे कमी हुई है, पर जितना ही उपचार होता है, उतना ही बाल-अपराध बढता जा रहा है।

एक विषय मे सबकी सम्मति है। प्रत्येक दृष्टिकोण के अपराध-शास्त्री परिवार तथा माता-पिता का, पैतृक तथा पारिवारिक, अभिभावक तथा गुरुजनो का महत्त्व स्वीकार करते है, यदि हमारा पारिवारिक जीवन ठीक हो, यदि हमारा विचार तथा हमारी भावना अपने परिवार मे शुद्ध रहे तो बालको का सुधार बहुत कुछ सम्भव है तथा समाज का कल्याण इसी मे है कि हम अपने पारिवारिक जीवन की पुरानी मर्यादा को पुन अपनाएँ, पुन स्थापित करे तथा अपनी सन्तान की प्रगति, रक्षा, विकास और शिक्षा मे स्वय दिलचस्पी लेना सीखे। सुदृढ पारिवारिक जीवन से ही सुदृढ समाज की रचना होती है और सुदृढ समाज मे ही अपराध तथा अपराधी मनोवृत्ति मे काफी कमी होती है। समाज की रक्षा परिवार से प्रारम्भ होगी।

तृतीय भाग

वयस्क अपराधी और पुनर्वास

अध्याय २८

अपराध और वयस्क अपराधी

अपराधी का मनोभाव

वायुयान से परिचित लोग चार्ल्स लिडवर्ग के नाम से परिचित है। यह पहले साहसी व्यक्ति है जिन्होने सयुक्तराज्य अमेरिका से पेरिस तक एक छलाग मे वायुयान से यात्रा की थी। ससार मे उस समय इनकी जो ख्याति थी वह बिरले व्यक्ति के भाग्य मे होगी। सन् १९३२ मे उनके एकमात्र बच्चे को भगा ले जाने तथा उसकी हत्या करने का अभियोग ब्रुनो हाप्टमैन पर लगा और जब मुकद्मा शुरू हुआ, ऐसा प्रतीत होता था कि ससार मे और कही कुछ नही हो रहा है—केवल उस सनसनीदार घटना का ही जिक्र है। पर इस मुकद्मे के कई वर्ष पूर्व सयुक्त राज्य के न्यू जर्सी नगर मे एक भयकर हत्या हुई। उस हत्या का रोमाचकारी विवरण तथा तत्सबधी हॉल मिल्स का मुकद्मा २४ दिन तक चलता रहा। अदालत की दिलचस्प कार्यवाही १,२०,००,००० शब्दो मे समाचारपत्रो को तार से भेजी गयी। यदि इतने शब्द पुस्तकाकार छापे जाते तो किताबो की अलमारी का २२ फुट लम्बा एक खाना भर जाता।[१]

समाचारपत्र वही सवाद विस्तार से देते है जो जनता चाहती है, जिसकी जनता को भूख होती है। आखिर आज के समाज मे हत्याकाड या भयकर घटनाओ के प्रति इतना प्रेम क्यो है? ऐसी घटनाओ से भरी लाखो पुस्तको की इतनी मॉग क्यो है? क्या ऐसा तो नही है कि सभ्य तथा शिष्ट कहे जानेवालो के दिल और दिमाग मे, उसकी तह मे अपराधी भावनाएँ भरी हुई है? समाज या शासन के भय से "अनजाने" ही वह अपराधी नही बन गया है पर दूसरे अपराधी की कहानी सुनकर उसे आत्मिक सन्तोष होता है।

१. Charles Merz—"Bigger and Better Murders"—New York, Harper & Bros, 1928—Page 81

दूसरे, बहुत से लोग यह समझते हैं कि जिसे हम अपराधी कहते है, वह समाज का ऐसा शत्रु है जो "दूसरो को" पीडा पहुँचाया करता है। फिर भी वे खयाल करते है कि जिसको पीडा पहुँचती हो, वह जाने, हर एक को परेशान होने से लाभ ? ऐसा विचार रखनेवाले सोचते है कि हम तो अपराधी से कोसो दूर है, हमसे क्या मतलब ? पर यह कौन जानता है कि कल वे ही अपराध कर बैठे। किसे मालूम है कि कल वे ही न जाने किस हत्या मे, गबन मे, चोरी मे स्वय शिकार बन सकते है या वैसा बुरा काम स्वय कर सकते है। कारागार मे अपराधियो को बन्दी रखनेवाला या पुलिस-मैन के रूप मे उनको गिरफ्तार करनेवाला स्वय अपराधी बन सकता है। अपराध का कारण गरीबी होगा, अपराध का कारण बुद्धि के विकास मे कमी होगी या अपराध उन्माद है, पागलपन है—यह सब भी कहने की बाते है। अपराध का वास्तविक कारण, जितना ही हम उसका अध्ययन करते है, उतना ही "कुछ भी समझ मे नही आता।"

अपराध के कारण

यदि गरीबी के कारण आदमी अपराधी बनता तो आज सयुक्तराज्य अमेरिका ऐसा धनी देश इस परिणाम पर न पहुँचता कि "बहुत कम अपराध **आवश्यकता** के कारण होते है। अधिकाश अपराध लालच के कारण होते है, न कि जरूरत के कारण।"[१] मनोवैज्ञानिको ने काफी छानबीन करके यह पता लगाने की कोशिश की कि अपराधियो की बुद्धि का स्तर कैसा है। अनुमान नही, ठोस परीक्षण से पता चला कि उनमे तथा साधारण जनसमूह की बुद्धि मे बहुत कम अन्तर है।[२] एक प्रकार से यह स्वीकार कर लिया गया है कि उनमे से अधिकतर की बुद्धि साधारण व्यक्ति से अधिक तीव्र होती है। यदि यह कहा जाय कि अधिकतर अपराधी उन्माद के शिकार होते हैं तो यह भी भूल होगी, क्योकि पागलपन के ९९ फीसदी मरीज अपराधी होते ही नही। कामुक वासना होने से ही अपराध होता है, यह कहना भी भूल है, क्योकि वासना का सबसे गन्दा अपराध अप्राकृतिक सभोग समझा जाता है और इस लत का कारण आज शरीर के भीतर की बनावट का कुछ दोष समझा जाने लगा है

१. Harry Elmer Barnes and Negely K Teeters—"New Horizons In Criminology"—Prentice Hall, New Jersey, 1959—Page 7.

२. वही

और यह भी कहा जाता है—काफी छानबीन के बाद—कि इस प्रकार की लतवाले बहुत ज्यादा व्यक्ति अन्य सब बातो मे बडे सज्जन, शिष्ट तथा चरित्रवान् मिलेगे।[१] यह रोग—यानी स्त्री-स्त्रीका अथवा पुरुष-पुरुष का सम्बध न होने पर भी बहुत से जनाने मर्द तथा मर्दानी औरते मिलेगी। जिन औरतो मे मर्द की पोशाक की नकल करने की आदत होती है या मर्द औरतो की तरह से बाल सवारने, पाउडर लगाने, या जनानी आवाज़ मे बोलने के व्यसनी होते है, ये दोनो प्रकार के लोग क्रमश मर्दानी औरते या जनाने मर्द होते है।[२] किन्तु, इनमे अपराध की प्रवृत्ति होती है, यह बात नही है। कामवासना और अपराधो का कारण होती है पर स्वत यह अपराध नही है।[३] हम यह बात अपने पहले अध्याय मे साबित कर चुके है। केवल वासना-वश किये गये अपराधो की सख्या नगण्य है।[४] अमेरिका के प्रसिद्ध सिगसिग जेल मे वासना के १०२ अपराधियो की समीक्षा की गयी तो पता चला कि उनमे कुछ को मानसिक तथा भावुक व्यतिक्रम था और अधिकाश के बचपन मे पारिवारिक या सामाजिक कोई आघात, परेशानी या चोट पहुँची थी।[५] सभी व्यक्ति या सभी अपराधी मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से मानसिक रोगी नही सिद्ध किये जा सकते। आजकल हर एक बात को मनोविज्ञान से जोड देना भी ठीक नही है।[६] आजकल वेश्यावृत्ति को भी अपराध माना जाता है। कुछ लोगो का यह ख़याल है कि कम उम्र मे किसी कन्या के साथ बलात्कार या दुराचार करने के कारण वह आगे चलकर दुराचारी वेश्या बन जाती है पर, यदि ठीक से पता लगाया जाय तो अधिकाश वेश्याए कपडा, मकान या भोजन की कमी से अपना शरीर बेचने निकलती हैं। एक बार भ्रष्ट हो जाने वाली लडकी सदैव ऐसी रहेगी, यह भाव एकदम गलत है।

१. वही, पृष्ठ ९७

२. वही, पृष्ठ ९७

३. वही, पृष्ठ ९९.

४. वही, पृष्ठ ९९

५ "Study of 102 Sex Offences in Sing Sing"—*Federal Probation*—Vol. 14, No. 3, (September, 1950)—Pages 26-32

६ Dr Ben Karpman, "Psychopathy as a Form of Social Parasitism—Journal of Chemical Psychopathology"—Vol 10, No. 2–April, 1958.

जीवन भर, विवाह न कर, जीवन का सुख लेनेवाले "सदा कुमार" या "सदा कुमारी" आज ससार मे ऊँचे से ऊँचे पद पर मिलेगे। आज के ७० वर्ष पूर्व चार्ल्स लोरिंग ने साबित कर दिया था कि वेश्या और कामुक वासनावालो मे बहुत बडा अन्तर है।[१]

यदि मादक द्रव्य का सेवन अपराध का कारण समझा जाय तो इसे भी कोई खास कारण मान लेना कठिन है। सयुक्तराज्य अमेरिका मे १७,५०,००,००० व्यक्ति रोज शराब पीते है। इनमे से, वहा की गणना के अनुसार ३०,००,००० व्यक्ति "अति अधिक" शराब पीते है। येल नगर के डा० सेल्डन बेकन के कथनानुसार इनमे से एक चौथाई को मजबूरन ज्यादा पीना पडता है और बाकी लती शराबी है। ज्यादातर शराबी या तो ऐसी उलझनो के शिकार है जिनका व्यक्तित्व दूषित हो गया है, उसकी चिकित्सा होनी चाहिए।[२] पैतृक परिपाटी से शराबी बन गये है। शराबियो मे ८५ प्रतिशत पुरुष होते है—२० से ६५ वर्ष की उम्र के भीतर के। यदि इनका इलाज ठीक से हो तो ये सुधर सकते है, पर इनको जेल भेजना इनकी मिट्टी खराब करना है।

अपराध का आर्थिक कारण

सन् १८९४ मे इटली के विद्वान एतोरे फर्नासारी दि वर्सी[३] ने हिसाब लगाया था कि इटली की ६० प्रतिशत जनता बहुत गरीब है। जेल मे बद अपराधियो मे ८५ से ९० प्रतिशत तक दरिद्र थे। इस हिसाब से, वर्सी के अनुसार दरिद्र ही अपराध करता है। नीदरलैड के अपराधशास्त्री विलियम बौगर[४] के कथनानुसार समाज की पूजीवादी रचना के कारण ही दरिद्र समाज बनता है और यही दरिद्र समाज अपराध का घर है। अमेरिकन अपराधशास्त्री चार्ल्स लोरिंग ब्रेस, जैकबरिस आदि का भी यही मत है।

१. Charles Loring Brace—"Gesta Christi"—New York Armstrong 1882—Page 317

२. Barnes and Teeters—"New Horizon in Criminology"—Page 92.

३. Ettore Fornasari di Verce

४. W. A. Bonger.—"Criminology and Economic Conditions"—Boston—Little Brown—1916 Page 643.

पर आधुनिक समाज-विज्ञान से यह सिद्ध है कि केवल गरीबी बिरले ही अपराध का कारण होती है।[१] असली कारण बहुत से है—निश्चित रूप से है। पर ज्यो ज्यो इस विषय का अध्ययन बढता जा रहा है, मनोविश्लेषण करनेवाले तथा दण्डशास्त्री यानी दडविज्ञान के पडित का दृष्टिकोण भी एक-दूसरे से बहुत भिन्न प्रतीत होता है।[२] मनोवैज्ञानिक तो मानसिक परिस्थिति मे व्यतिक्रम की बात सोचकर उसी की बात सोचता है। ऐसे अनेक मामले भी सामने है जिनमे अपराधी को मार पीट कर, शरीर का दड देकर ठीक किया जा सकता है। बहुत से ऐसे अपराधी हैं जो बार-बार सजा पाते है और हर प्रकार का दड देने पर भी अदालतें उनको सज़ा देते देते थक जाती है।[३] उनका (अपराधियो का) मन तथा स्वभाव इतनी खराब हालत मे होता है कि उनकी रक्षा का कोई उपाय समझ मे नही आता। मनोविश्लेषण के हिमायती भी ऐसे लोगो से निराश हो जाते है। ऐसे अपराधियों की चिकित्सा का उपाय हम आगे चलकर सोचेंगे। यहाँ पर तो यही निश्चय करना है कि क्या दरिद्रता अपराध का कारण है। हम लोग तो यही समझते हैं कि जब किसी अपराधी को दड दिय जाता है, अपराध करनेवाले के कार्य का कारण, काम की नीयत समझने का प्रयास किया जाता है ताकि जिस सीमा तक उसकी नीयत का पता चले, उस सीमा तक दड दिया जा सके।[४]

दरिद्रता

इसीलिए नीयत की बात यदि प्रधान है तो स्वय दरिद्रता नही, दरिद्रता की नीयत अपराध का कारण हो सकती है। बार्नेस और टीटर्स का मत है कि वस्त्र के अभाव

१. बार्नेस, टीटर्स—पृष्ठ १४८

२. Edward Glover (London)—"Prognosis or Prediction"—A Psychiatric Examination of the Concept of Recidivism"—The British Journal of Delinquency—Vol. VI Number I, Sept. 1955—Page 117.

३. वही, पृष्ठ ११७

४. Frenz Alexander and Hugo Staub and Gregory Zilboorg—"The Criminal, the Judge and the Public"—The Free Press, Glencoe, Illinosis, U. S. A. Page VIII, 1957.

में कोई चोरी नहीं करता या कोई लड़की कपड़े की कमी के कारण अपना शरीर नहीं बेचती, बल्कि अधिक अच्छे वस्त्र के लालच में ऐसा करता या करती है। भूख से पीड़ित व्यक्ति चोरी बहुत कम करता है। यह सही है कि "अधिक अच्छी स्थिति" "अधिक अच्छा साधन", "अधिक अच्छी सामग्री" के लालच में चोरी की जा सकती है। अतएव गरीबी नहीं, पर "व्यापक दृष्टि से छोटे-मोटे परम्परागत अपराधों का कारण, विशेषकर छोटी चोरियाँ, आर्थिक कारणों से होती है।"[१] पर यह नहीं भूलना चाहिए कि ऐसे लाखों नितान्त दरिद्र परिवार हैं जहां खाने का भी ठिकाना नहीं है पर वे लोग नितांत ईमानदारी तथा सच्चाई से, अपनी परिस्थितियों का मुकावला करते हुए जीवन व्यतीत करते हैं।[२] ऐसा कौन-सा देश है जहाँ गरीबी नहीं है। संसार का सबसे धनी देश संयुक्त राज्य अमेरिका है। उसके विषय में भी लिखा है—"गरीबी बड़ी निराशा तथा चिन्ता की बात है, जीवन के साधारण स्तर से नीचे उतर कर रहने के लिए मजबूर होना बड़ा कष्टदायक है। फिर भी इस देश में ऐसे लाखों आदमी हैं जो ऐसा कष्टमय जीवन बिताते हैं। समृद्धि के कार्यों में भी करीब ३० लाख परिवारों की आमदनी साधारण औसतन आय से बहुत कम थी।"[३]

लन्दन के आँकड़े

भारतवर्ष ऐसे गरीब देश में, जहाँ करोड़ों व्यक्ति काफी गरीबी की हालत में रहते हैं, पश्चिम के धनी देशों की तुलना में अपराध बहुत कम होते हैं। पश्चिम के देशों में गरीब मुहल्लों में रहनेवालों के बच्चों में अपराधी भावना पैदा होती है पर उसके साथ रचनात्मक भाव भी कम नहीं होते। इन मुहल्लों की गिरफ्तारियां धनी मुहल्लों की तुलना में कहीं कम होती हैं। ब्रिटेन के डा० सिरिल बर्ट ने हिसाब लगाया है कि "लंदन के समूचे अपराधियों में से केवल १९ प्रतिशत गरीब मुहल्लों के हैं जबकि समूची आबादी का ८ प्रतिशत गरीब मुहल्लों में रहता है। संक्षेप में आधे अपराधी गरीब या "साधारणत:" दरिद्र परिवार के थे पर "साधारणत:" सम्पन्न परिवारों के अधिकांश अपराधी पुलिस की जाँच या कार्रवाइयों से अपने को बचा

१. Barnes & Teeters—पृष्ठ १४८

२. वही, १४८

३. वही, पृष्ठ १४९, इस विषय में Statistical Abstract of the United States में पृष्ठ ३०९ पर सन् १९५४ के बड़े रोचक आँकड़े दिये हैं।

लेते है। यदि अपराधियो मे अधिकाश व्यक्ति जरूरतमन्द लोग है तो अधिकाश जरूरतमन्द अपराधी नही है।"[1] डा० हीली का हम पिछले अध्यायो मे बार-बार जिक्र कर आये है। उनकी खोज के अनुसार जितने मामले उनके सामने आये उनमे केवल ० ५ प्रतिशत ऐसे थे जिनमे गरीबी ही अपराध का मुख्य कारण थी। ७ १ प्रतिशत मामलो मे गरीबी गौण कारण थी।[2] हीली की पुस्तक की आलोचना करते हुए डा० सिरिल बर्ट कहते है कि ८०० पन्ने की पुस्तक मे गरीबी पर केवल १७ लाइने (पक्तिया) लिखी गयी है।

डा० हीली की उपरिलिखित खोज के कई वर्षो बाद उन्होने तथा उनकी धर्मपत्नी डा० ब्रानर ने ६५६ अपराधियो की जॉच करके पता लगाया कि उनमे से २२ फीसदी दरिद्र परिवारो के थे, ५ फीसदी विस्थापित तथा निराश्रित थे, ३५ फीसदी "साधारण" परिवारो के, ३४ फीसदी सम्पन्न परिवारो के तथा ४ फीसदी अत्यधिक विलास मे रहनेवाले परिवारो के थे। इस प्रकार निराश्रित तथा अत्यधिक सम्पन्न—दोनो की परिस्थति बराबर है। सब हिसाब लगाकर डा० हीली तथा डा० ब्रानर का कहना है कि "७३ फीसदी साधारण खाते-पीते परिवार के थे अतएव आर्थिक परिस्थिति अपराधी भावनाओ के अध्ययन मे विशेष महत्त्व नही रखती।"[3]

द्वेप की बात

बार्नेस और टीटर्स लिखते है—

"भूख और शीत नही, द्वेष तथा महत्त्वाकाक्षा ही छोटे अपराधो के लिए प्रेरित करते है। यह उसी प्रकार से है जैसे लालच के कारण ही बडे-बड़े अपराधी बनते है .गरीबो को दूर कर देना आसान बात नही है आर्थिक अरक्षा, पुष्टिकारक भोजन मे कमी, आवश्यकता से कम वस्त्र, आवश्यक औषधिक तथा चिकित्सा-सम्बधी साधनो की कमी—ये ऐसी चीजे है जिनसे अपराधी या विद्रोही भावनाएँ पैदा हो

१ Dr Cyril Burt—"The Young Delinquent"—Ist Edition—London, University of London Press, 1938—Pages 68, 69, 92 etc.

२ Dr. William Healy—"The Young Delinquent"—Boston—Little Brown, 1915—Page 135.

३. William Healy and Augusta F. Bronner—Delinquents and Criminals—New York—Macmillan, 1926—Page 121.

सकती है। इसलिए इसमे क्या आश्चर्य है कि अपराध और गरीबी का प्राय सम्बध हो जाता है।"[१]

अपराधी धनी अमेरिका

बेकारी को अपराध का कारण समझना भी उचित नही समझा जाता। सिगसिग जेल मे ८०० कैदियो मे केवल ११ प्रतिशत ऐसे थे जो अपराध करने के समय बेकार थे।[२] सयुक्त राज्य अमेरिका ऐसे धनी देश मे, जहाँ पर साढे सत्रह करोड की आबादी मे औसतन फी व्यक्ति की आमदनी १५ से २० हजार रुपये साल है, केवल न्यूयार्क के बन्दरगाह से हर साल लगभग २ करोड मूल्य का माल चोरी जाता है।[३] सयुक्तराज्य के २२ प्रमुख नगरों मे फी हजार की आबादी पीछे नीचे लिखे औसतन व्यक्ति हत्या, चोरी, डकैती, सेध आदि अपराधो के दोषी थे।[४]

(फी १००० व्यक्ति पीछे)

लॉस ऐंजीलीज	५१ ७	इडियानापोलिस	२७ ५
ऐटलाटा	४४ ७	क्लेवलैड	२३. ०
सेट लूई	४३ ८	मिन्नेपोलिस	२१ २
डेनवर	३९ ३	बोस्टन	२१. ०
सियाटल	३९ ३	पिट्सबर्ग	२१ ७
नेवार्क	३७ ४	न्यूयार्क सिटी	१७ ७
हाउस्टन	३५ २	फिलाडेल्फिया	१६ ९
डालास	३५ २	सिसिनाटी	१६ ०
सान फ्रेसिस्को	३४ ८	कैंसस सिटी	१३ ३
न्यू आर्लियन्स	२९ २	शिकागो	१२ ९
डे टायट	२८ ०	बफालो	८ ५

१. Barnes and Teeters—Page 162

२. वही, पृष्ठ १५३

३. Journal of Commerce, New York, 13 Jan. 1956.

४. Time Magazine, New York, June 30, 1958—Page 18.

इन ऑकडो से स्पष्ट है कि पहले जो शिकागो नगर अत्यधिक अपराधी समझा जाता था, वैसा अब नही है। १९२९–३० के जमाने का शिकागो अब बदल गया है। उसी प्रकार अपराध की सूरत और श्रेणी भी बदल गयी है। "ऑख पर पट्टी बॉधे" जिन प्रसिद्ध अमेरिकन बदमाशो की कहानियॉ सुनी जाती है, उनका जमाना प्रथम महायुद्ध के समय गिरने लगा। सयुक्तराज्य मे मादक द्रव्य निषेध के जमाने मे कानून तोडकर मादक द्रव्य बनाने और बेचनेवालो की नयी श्रेणी तैयार हो गयी। कई वर्षो तक बदमाशो के लिए येही सबसे लाभदायक काम रह गया। द्वितीय महायुद्ध के जमाने मे अपराधियो के गिरोह-गुट बनने लगे। उनका नियमित तथा निश्चित सगठन था और वे समाज का गला काटते थे तथा आपस मे भी मारकाट करते थे।

द्वितीय महायुद्ध के बाद एक नयी श्रेणी का अपराधी पैदा हो गया है। वह है "सफेदपोश", सभ्य तथा सम्मानित समझा जानेवाला अपराधी, जो सरकार, व्यवसाय तथा व्यापार सभी क्षेत्रो मे फैला हुआ है।[1] सयुक्तराज्य अमेरिका के २०० जेलो के (सुधारगृह मिलाकर) २,००,००० के औसतन सालाना कैदियो मे इसकी अच्छी खासी सख्या है। सन् १८७७ मे रिचार्ड डगडेल ने जो मीमासा की थी, वह आज भी सत्य प्रतीत होती है। उन्होंने लिखा था कि तीन प्रकार के लोगो को अपराध करने मे लाभ है—

१ अपराध-विशेषज्ञ, इनके अपराध का पता लगाना कठिन है। यदि पता लग भी गया तो ये घूस देकर अपने को बचा सकते हैं।

२ अयोग्य व्यक्ति जो इतने आलसी है कि कुछ काम नही कर सकते, इतने घमण्डी है कि भीख नही मॉग सकते, इतनी कम उम्र के हैं कि किसी भिक्षुगृह मे नही रखे जाते सकते।

३ एकदम दरिद्र–जो इसलिए चोरी करते है कि जेल मे भिक्षु-गृह से अधिक आराम है।[2]

अस्तु, सयुक्त राज्य अमेरिका मे, केन्द्रीय पुलिस जॉच विभाग से सचालक एडगर हूवर की रिपोर्ट के अनुसार, अपराध की रोकथाम तथा दड पर १० अरब रुपया साल—प्रति परिवार पीछे २५०० रुपया वार्षिक—व्यय होता है।

१ Barnes and Teeters—Page 18-19.

२. Richard Dugdale—The Jukes—G. P. Putnam and Sons, New York, 1910, Page 199.

चोरी, डकैती, जुआ

इतना व्यय होगा ही। सन् १९५६ मे ५,६८,५६१ अपराधो की रिपोर्ट हुई। १,५१,५६१ व्यक्ति पकडे गये। १,०६,७०९ पर मुकद्दमा चला। इनमे केवल ६५,४११ अदालतो द्वारा अपराधी पाये गये। ९,३०८ ने मामूली अपराधो को "स्वीकार" कर लिया, यानी केवल ६९ १ प्रतिशत मुकद्दमे सफल हुए। पर सब आँकडा मिलाने पर पुलिस को जितने अपराधो का पता चला था उनमे से केवल १३ २ प्रतिशत साबित किये जा सके तथा गिरफ्तार लोगो मे से ५० प्रतिशत पर ही दोष सिद्ध हो सका।[1] सयुक्तराज्य के २,२०० नगरो मे सन् १९४७ से १९५१ के बीच मे १०,००,००० बडी चोरियाँ हुई, १,८४,३५८ डाके पड़े। दस लाख चोरियो मे आठ लाख का पता नही लगा। डकैतियो मे १,०८,१३४ का कोई पता नही चला। पुलिस के पास सब कुछ वैज्ञानिक साधन होते हुए भी वह दक्ष तथा पटु अपराधियो से हार खाती जाती है। उस देश मे जुआ खेलने पर लाखो रुपया खर्च होता है। दर्जनो प्रकार के जुए है। २ करोड ६० लाख व्यक्ति "बिगो" खेलते है, लाटरी खरीदते है, इत्यादि। २ करोड २० लाख व्यक्ति पाँसा या ताश का जुआ खेलते है। १ करोड ९० लाख व्यक्ति दगलो मे पहलवानो पर या फिर राजनीतिक घटनाओ पर सट्टेबाजी करते है। १ करोड ५० लाख "पचवोर्ड" है। १ करोड ४० लाख स्लाट मशीनो पर, ८० लाख घुडदौड मे तथा ८० लाख लाटरी आदि के जूए खेलते है।[2] इन जूओ मे जो लागत (धन) खर्च होता है यानी जितनी रकम का वारा-न्यारा होता है वह लगभग २६ करोड़ डालर है यानी १३० अरब रुपये का वारा-न्यारा हो गया। जूआ रोकने मे असमर्थ हो जाने के बाद अब उसे रोकने की एक ही तरकीब समझी जा रही है कि उसे कानूनी रूप देकर "सम्मानित" व्यवसाय क्यो न मान लिया जाय। क्या गरीब देश मे ऐसा हो सकता है?

१. Uniform Crime Reports, Vol. 28, No. I, (September, 1957) Table 20, Page 61.

२. Barnes and Teeters, Page 30-31. वही, पृष्ठ ३३

अध्याय २९

विकृतमना

जिसका मन विकृत हो, उसे विकृतमना[१] कहते है। रोजमर्रा की जिन्दगी मे हम स्वय अपने सम्बध मे देखते है कि मन विकृत होता रहता है। किन्तु बहुत से लोग ऐसे होते है जिनका मन स्थायी रूप से विकृत हो जाता है। ऐसे लोग प्राय छेड करके झगडा मोल लेते है। बिना इसके उनको चैन नही मिलती।[२] ऐसे लोगो की समाज मे ऐसी परिस्थिति हो जाती है कि कोई उन्हे पसन्द नही करता, कोई उनका साथ नही चाहता। ऐसी प्रवृत्ति के लोग अनायास या स्वभाववश ही अपराधी बन जाते हैं। अपराधी भी ऐसा जिससे दूसरो की हानि हो, दूसरो की वस्तु का अपहरण हो। समाज उनके प्रति उदासीन है तो वे समाज के प्रति उद्दड हो जाते है।

सन् १९५५ मे ब्रिटेन मे एक ऐसा ही विषय विचाराधीन था। साढे १८ वर्ष का एक लडका बहुत ही झगडालू प्रवृत्ति का था। उसे पाँच बार सजा मिल चुकी थी—जेल हो आया था। छठी बार वह हिंसात्मक डकैती तथा जेल अधिकारी को छुरा मारने के अपराध मे जेल आया था। इसके बाद उसे सन् १९४९ मे १८ महीने की सजा, १९५१ मे ६ महीने, फिर २१ महीने, १९५२ मे ६ महीने, १९५३ मे ६ महीने—ये सभी सजाएँ चोरी या मकान मे सेंध लगाने के सिलसिले मे मिली थी— तथा १९५४ मे वह प्रोबेशन अफसर की निगरानी मे इसलिए रखा गया था कि उसने एक व्यक्ति को, उसकी जान लेने की धमकी का पत्र लिखा था।[३] अब यह सोचने की बात है कि यह युवक स्वत अपराधी था या यह इसके मन का दोष था।

१. अंग्रेजी में इसे Psychopath—विकृतमना कहते है।

२. The British Journal of Delinquency, Vol. VI, Number II—September, 1958, Page 134.

३. वही पृष्ठ १३५ Follow-up Study of Criminal Psychopaths—Gibbons, Pond and Stafford Clark.

यदि विकृतमन का कोई इलाज हो सके तो ऐसे युवक की दुनिया ही दूसरी हो सकती है।

कई श्रेणियाँ

विकृतमना मे भी कई प्रकार के व्यक्ति होते है। एक श्रेणी "अपरिपक्व मोहक विकृतमना"[1] की होती है। प्रयत्न करने पर भी इनमे सुधार नही हो सकता पर ये लोग बडे विनम्र, शिष्ट तथा व्यवहार मे मन मोह लेनेवाले होते है। ये उद्दड प्रकार का अपराध नही करते, इसीलिए अपरिपक्व कहे जाते है। प्राय विकृतमना लोगो मे अपस्मार यानी मृगी की बीमारी का कोई न कोई रूप मिलता है। इनमे वह भी नही होता पर झूठा बहाना करके ठग लेना, जालसाजी या सभ्य ठगी मे ये लोग बड़े चतुर होते है। ऐसे लोग समाज मे काफी खतरनाक होते है। सन् १९४८ मे ६९ विकृतमना बन्दियो की लन्दन मे समीक्षा हुई तो पता चला कि इनमे अधिकाश काफी मँजे हुए तथा अनुभवी अपराधी थे। उनको और कुछ नही आता था—केवल अपराध की विद्या मे वे पण्डित थे। पर उनके अपराध की एक खासियत भी है। वे ज्यादातर, बहुत गम्भीर अपराध नही करते, चोरी, लूट-खसोट, मारपीट इत्यादि के दायरे मे ही वे रह जाते है।[2] उद्दड विकृतमना अपराधियो की छानबीन करके पता चला कि उन्होने पाँच वर्ष मे ७४ अपराध किये जिनमे १४ उद्दड अपराध थे। शेष साधारण केवल तीन अपराध गम्भीर थे। अतएव यह मानते हुए भी कि विकृतमना अपराधियो मे गम्भीर तथा महान अपराधी भी निकलते है—आमतौर पर उनको गम्भीर अपराधी कहना भूल है।[3]

विकृतमन की चिकित्सा बहुत कठिन है। सजा से या उपदेश से, दोनो से ही उनका सुधार बडी कठिनाई से होता है। उनकी साधारण प्रवृत्ति बचपन मे ही उनके चरित्र को स्पष्ट कर देती है। पिता से लड जाना, पिता से बगावत कर बैठना, माता से विरोध, किसी काम पर न टिकना, परिवार तथा कुटुम्बीजनो से

१ Charming inadequate psychopaths वही, पृष्ठ १३५

२. वही, पृष्ठ १३६.

३. इस सम्बंध में और अधिक अध्ययन के लिए देखिए—L. Landucci & D. A. Pond. Mineroa med (Yorino) 1954—1 x 18. 7.

झगड़ा, स्कूल से भाग जाना[१]—और फिर बार-बार जेल जाना, ऐसे लोगों को अपराध की गुरुता के अनुसार नहीं, व्यवहार के अनुसार दंड मिलता है। लम्बी सजाएं होती हैं। ऐसी लम्बी सजा इसलिए दी जाती है कि उनका सुधार हो जाय पर ऐसी आसानी से सुधार नहीं होता।[२] बार-बार जेल हो आना इनके लिए मामूली बात होती है। यह ध्यान रखना चाहिए कि लगभग ८० प्रतिशत प्रथम अपराधी फिर जेल वापस नहीं आते। वे सुधर जाते हैं। पर शेष २० प्रतिशत में ७० प्रतिशत ऐसे होते हैं जो तीन-चार बार जेल का चक्कर लगा ही लेते हैं। यही विकृतमना अपराधी हैं। जो नहीं सुधरते, उनकी बड़ी दुर्गति होती है। एक व्यक्ति अगस्त १९५३ में हत्या के अपराध में ७ वर्ष की सज़ा भोगकर बाहर आया। अक्टूबर, १९५३ में उसने आत्महत्या की चेष्टा की। उसके वाद से वह सुधर गया। इसके विपरीत एक शिष्ट तथा 'मोहक' विकृतमना अपराधी ३७ वर्ष की उम्र तक १४ वार जेल-यात्रा कर आया था और हर बार छोटी चोरी या जालसाज़ी में जेल गया। सन् १९५० में उसे हिंसात्मक डकैती के लिए दो वर्ष का कठोर कारावास मिला।

विकृतमना व्यक्ति के बारे में एक वात मार्के की यह है कि ज़्यादातर ऐसे अपराधियों के सर में कभी न कभी चोट ज़रूर लगी होती है, चाहे वचपन की ही चोट क्यों न हो।[३] दूसरे, इनमें बहुत कम ऐसे "रोगी" मिलेंगे जो आत्महत्या करने की चेष्टा करें। ऐसे अपराधियों को लम्बी सजा देने या कोड़े मारने से भी क्या कभी कुछ लाभ होगा? अपनी पुस्तक में बार्नेस और टीटर्स लिखते हैं कि लम्बी सज़ा या शारीरिक दंड से अपराधी भावना कम नहीं होती।[४] या अपराध करनेवाला सज़ा को सोचकर सहम नहीं जाता।

मनस्ताप

विकृतमन हो या किसी प्रकार की मानसिक उलझन हो, इसका सम्बंध मनोविज्ञान से ही है और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की सहायता से अपराधी की प्रवृत्ति

१. वही, पृष्ठ १२६

२. वही, पृष्ठ १२७

३. वही, पृष्ठ १३२-१३३

४. Barness & Teeters—New Horizons in Criminology—Page 6.

समझने का प्रयास किया जाता है। पर मनोविज्ञान स्वय अभी तक किसी निश्चित बात पर नही पहुँच पाया है। विकृतमन के अतिरिक्त मन का एक दूसरा रोग होता है—मनस्ताप।[१] कुछ लोग इसे उन्माद भी कहते है पर उन्माद तथा मनस्ताप मे बडा अन्तर है। जो लोग पुराने ढग पर मनस्ताप की समीक्षा करना चाहते है, वे भारी भूल कर रहे है। मनस्ताप मे कई बाते ऐसी उलझन की हैं कि उनको समझने के लिए दूर तक जाना पड़ता है। मानव-स्वभाव आज का नही बना है। आदि-काल का मानव जितना स्वतत्र था, उच्छृखल था, अपने मन की करता था, वैसा आज समाज तथा दड के भय से नही कर सकता। आदि-काल का मानव जो चाहता था, खाता था, जैसा चाहता था, रहता था, जिससे तथा जब चाहता था सभोग करता था। जिससे अप्रसन्न होता था, जिसे अपराधी समझता था, उसे अपने मन का दड देता था। आज यदि किसी मनुष्य मे से समाज तथा शासन का डर उठ जाय तो उसे वैसा ही मानव बनने मे कितनी देर लगती है। हम ऐसे मनुष्य को उन्मादी या मनस्तापी कहते है पर इसे प्राकृतिक, आदि-ऐतिहासिक क्यो न कहा जाय ? आज यदि नये विज्ञान के यन्त्रो से ऐसे मनस्तापी अपराधी की समीक्षा की जाने लगे तो एक से एक बढकर ऐसी बाते सामने आवेगी जिनको समझना कठिन होगा। शरीर की रचना समझ मे आ सकती है। अग-अग की बनावट की जानकारी हो सकती है पर सब कुछ समझ लेने के बाद विज्ञान-पडित को मानव मस्तिष्क का वह कमरा दिखाई पडेगा जहाँ सभ्यता की सब कुछ प्रगति होने पर भी आदिकाल की जडता, स्वच्छन्दता तथा केवल अपने मन की करने की प्रवृत्ति वर्तमान है। प्रत्येक मनुष्य के मनके पीछे ऐसी उन्मुक्त प्रवृत्ति अपना स्थान बनाये हुए है। प्रत्येक व्यक्ति इस अज्ञात, अस्पष्ट भाव से युक्त है पर समाज, सभ्यता, सस्कार, शिक्षा, इन सबके सामूहिक प्रयन्न से मन नियंत्रित रहता है। उसका विकार सम्हला रहता है, छिपा रहता है। यदि कोई व्यक्ति यह कहे कि उसके मन मे कभी चोरी करने की, किसी को अनायास ही पीट देने की या सभोग की कामना नही हुई, तो वह झूठ बोलता है। यह सही है कि उसकी सभी दुष्प्रवृत्तियो की रोकथाम है, नियत्रण हैं और उसका मार्ग भी प्रशस्त है। पर जो व्यक्ति इस नियत्रण या रोक-थाम से बच निकलता है, जिसका मनका सस्कार पूरी तरह से उन्नत नही हो पाता वह एक विचित्र पीडा या तपन मे जलने लगता है। एक ओर उसकी सहज तथा प्राकृतिक स्वतंत्र वासनाएं

१. मनस्ताप Neurosis

खीचती है। दूसरी ओर समाज खीचतान करता रहता है, उसे रोकता रहता है। जब सामाजिक बधन शिथिल या दुर्बल पड जाते है तब चचल प्रकृति तथा स्वच्छन्द मन उन्माद से भर जाता है। अतएव बचपन से ही उन्माद तथा मनस्ताप की नीव पडती है। जिसका बचपन नियत्रित होता है वही अधिकतर अपराधी नही होता है। मनस्ताप की नीव पड जाती है। जिसका बचपन अनियत्रित होता है, वही अधिकतर अपराधी होता है। मनस्ताप तथा उन्माद का रोगी भले-बुरे का विवेक नही कर पाता और जो यह विवेक नही कर सकता वही अपराधी होता है। इसीलिए ऐसे विकारी पुरुष की काफी परीक्षा की जा रही है और मनोवैज्ञानिक इस परिणाम पर पहुँचे है कि शरीर-रचना मे कुछ कमी, कुछ खराबियो तथा कुछ दोष के कारण मनस्ताप का रोग होता है या निरर्थक, सारहीन मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया से भी मनस्ताप हो जाता है और दड या जेल या मार पीट से उसका रोग अच्छा नही हो सकता।[१]

मनस्ताप के रोगियो की कई बीमारियाँ अब मालूम हो गयी है। शायद इन बीमारियो का शिकार होने के कारण ही मनस्ताप पैदा हुआ। जिसने मन का सस्कार धो डाला और जगली प्रवृत्ति को जगा दिया, अपराधी बना दिया। लगातार कब्ज रहने से, कै होने से, साँस लेने मे कठिनाई होने से, बदन मे मरोड़ होने से, लकवा की बीमारी से, दिल-दिमाग पर चोट लगने से, अंधापन या कम दृष्टि होने पर, बहरेपन से, बदन मे रोमाच अधिक होने के कारण, हिस्टीरिया यानी मूर्छा की बीमारी के कारण मनस्ताप का रोग पैदा होता है जिससे अपराधी प्रवृत्ति पैदा होती है। ये बीमारिया उन अचेतन मनोवैज्ञानिक क्रियाओ की अभिव्यक्ति है, जो मनस्तापी सभी लक्षणो के समान, जिन प्रेरणाओ की तृप्ति की मनाही समाज ने कर रखी है, उन्ही को पूरा करते हैं या फिर उनकी तृप्ति की कामना के लिए दडस्वरूप स्वयं अपने को चोट पहुँचाते है।[२] हिस्टीरिया के बहुत से रोगी का असली कारण जरा पता लगाए तो मार्के की बाते मालूम होगी—प्रेम की करुण कहानी, भोग की निन्दनीय गाथा, प्रेमी से मिलने का नाटक, मन के विचार से दुःखी होकर अपना ही सर पीट लेना, इस

१. Alexander, Staub and Zilboorg—The Criminal, the Judge and the Public—The Free Prison, Glencoe, Illenois, 1957–Page 48

२. वही, पृष्ठ ४९

प्रकार अपराधी के रोगो की छानबीन आसानी से हो जाती है और उनका असली कारण मालूम हो जाता है। किन्तु मानस विज्ञान[१] मन की प्रतिक्रिया का शरीर पर प्रभाव जानते हुए भी [illegible] नही समझ सका जब फ्रायड ने अपनी चमत्कारिक खोज के परिणाम समाज के सामने रखे तथा अचेतन, अन्तरतम, स्वत मानसिक क्रियाओ की पूरी तस्वीर हमारे सामने रख दी। थोडे ही समय मे एकदम नया मनोविज्ञान पैदा हो गया और आज हर एक के मन तथा बुद्धि की माप-तौल उसके द्वारा ही हो रही है। मनुष्य की बुद्धि की रचना का एक नया शास्त्र खडा हो गया। मध्य युग मे मनुष्य के शरीर के भीतर की रचना की जानकारी पाप समझा जाता था और चिकित्साशास्त्र को लोग हेय समझते थे। अब तो बुद्धि की, मस्तिष्क की तह तह को खोलकर सोचने तथा समझने का प्रयास किया जा रहा है। मन का तथा शरीर का बडा सम्बध है। वातावरण तथा वायुमण्डल का मन से बडा सम्बध है। इन सबके सम्मिलित परिणाम से मानव-स्वभाव विकसित होता है।[२] मनस्तापी या उन्मादी व्यक्ति आप से आप अपराधी नही हो जाता। बच्चा बचपन मे अपने पिता-माता या अभिभावक के प्रति विद्रोह की भावना ग्रहण करता है। इस विद्रोह की भावना को शिक्षा, सस्कार तथा प्रेम से यदि शान्त नही किया गया, ममता से उसकी स्वच्छद तथा "जैसा चाहे वैसा करे" प्रवृत्ति को नही जीत लिया गया तो आगे चलकर वह अपराधी निकलेगा ही। दूसरे, कामुकता यानी सभोग की सहज प्रवृत्ति को ठीक रास्ते पर लाना होगा। यदि ऐसा न किया गया तो वयस्क होने पर उसे कौन रोक सकता है?

बहुत से लोग ऐसे भी होते है जिनमे अपने को छोटा या हेय समझने, अपने को दलित, पतित, पीडित समझने की प्रवृत्ति होती है। उन्हे ऐसा समझने मे सुख मिलता है। उनका अहंभाव मर कर उसका उलटा रूप ग्रहण कर लेता है। इन लोगो को रोगी बनाकर या घोषित कर अस्पताल मे भर्ती कर देने से इनको सुख मिलता है लेकिन यदि इनसे कहा जाय कि "तुम अब अच्छे हो रहे हो" तो इनको दु ख होगा। आत्म-सहार, आत्म-विनाश, अपने को मिटा देने की भावना इनके मन मे इतना घर किये रहती है कि ये ऊचे उठ नही सकते। हर एक काम केवल अपने या दूसरे के सर्वनाश

१. Psychiatry **मानसविज्ञान**

२. **वही** The Criminal, the Judge and the Public **पुस्तक**, पृष्ठ ५१.

की दृष्टि से करेगे। ऐसे भी लोग होते है जो चाहते है कि वे जो कुछ चाहे सब उनको मिल जाय, जिस किसी वस्तु की उनको कामना हो, वह प्राप्त हो जाय, जिस स्त्री को, जिस भोजन को, जिस वस्त्र को चाहे, वह उनका हो। जब इनकी ऐसी इच्छा को ठोकर लगती है, ठेस पहुँचती है तो उसकी भयकर प्रतिक्रिया इनके मन पर होती है। एक तरफ उनकी वह इच्छा मर जाती है, दूसरी तरफ वे ससार के शत्रु बन जाते है और प्रत्येक वस्तु तथा प्रत्येक व्यक्ति के प्रति विद्रोही बन जाते है। उनके मन मे ऐसी उदासी छा जाती है कि वे दुनिया मे किसी काम के नही रह जाते। किसी का भी हँसना उनको खलता है, बुरा लगता है। अपनी घोर उदासी मे वे लोग आत्महत्या की सोचते है—और आत्महत्या की सोचते-सोचते दूसरे की हत्या कर डालते है।[१]

दड का बडा भय होता है। बच्चा अपने घर के बुजुर्गो से डरता है—उनसे दड मिलने के भय से। अपनी इच्छाओ की तृप्ति के लिए वयस्क—बालिग—व्यक्ति इच्छा की तृप्ति मे बाधक समाज तथा सरकार के दड से अपने मन की बात नही पूरी कर पाता। अपने को तथा अपने मनकी बात को महत्त्वपूर्ण समझने की उसकी भावना इतनी तीव्र हो उठती है कि वह घोर अहभाव का शिकार हो जाता है। जो कुछ है, जो कुछ हो, सब उसके लिए, उसके दृष्टिकोण के अनुकूल हो। परिणाम यह होता है कि वह घोर अहवादी और अपराधी बन जाता है। मनस्ताप के रोगी-अपराधी के विषय मे अलेक्जेण्डर, स्टाव तथा जिलवर्ग अपनी पुस्तक मे लिखते हैं—

"इस प्रकार यह स्पष्ट हो गया कि अपराधी और कानून दोनो ही सामाजिक दृष्टि से एक साथ मिल कर वही काम कर रहे हैं जो मनस्तापी अपनी मानसिक प्रतिक्रियाओ तथा लक्षणो से अकेले करता है। वह अपराध भी करता है, उसका प्रायश्चित्त भी स्वय करता चलता है। दोनो मे एक और समानता है। मनस्तापी अपनी पीडाओ यानी यातना या प्रायश्चित्त को मर्यादा-विरुद्ध कार्य करने का अनुमति-पत्र समझता है। अपराधी, जिसे हम मनस्ताप-अपराधी कहते है, बार-बार दड पाकर अपनी नैतिक भावना खोता जाता है ऐसे अपराधी को सही मार्ग पर लाने का एकमात्र उपाय यह होगा कि उसे अपराध के लिए दड न देकर, उसके साथ दयालुता का, प्रेम का व्यवहार किया जाय। किसी प्रकार के दड से यह कही अधिक लाभदायक तथा उपयोगी उपचार होगा। दड मे एक खास बात होती है। जिसे दड मिलता है, वह यह महसूस करता है कि उसने (अपराधी ने) अपने पाप का, अपने

१. वही, पृष्ठ ५३

दुर्गुणो का प्रायश्चित्त कर लिया है। पर दंड के बदले दयालुता तो उसे इस अनुभव से वंचित कर देगी। मनस्ताप के अपराधियो के दिव्य मानस मे, यदि अह की भावनाओ मे जो अत्यधिक नियत्रण भी वर्त्तमान रहता है, उसमे और वृद्धि हो जावेगी।"[१]

महात्मा गाधी ने प्रेम से हिसा को जीतने की सदैव शिक्षा दी थी। महात्मा जी के सिद्धान्तो की हँसी उडानेवाले पश्चिमी विद्वान् आज स्वय उनकी ही बातो को दुहरा रहे है।

मन की जिम्मेदारी

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक फ्रायड से यह प्रश्न पूछा गया था कि "सपना देखने की जिम्मेदारी किस पर है?" फ्रायड ने तुरत उत्तर दिया कि "सपना देखनेवाले पर।" यह हो सकता है कि उस जिम्मेदारी के हिस्सेदार कई लोग हो—दिन की घटना के पात्र, पेट भारी रखने योग्य खाना खिलानेवाला व्यक्ति, इत्यादि। पर प्रकटत तथा न्यायतः सपना जिसने देखा, वही उसके लिए जिम्मेदार है। किसी आदमी को रक्तचाप की बीमारी है। अब इस प्रश्न का उत्तर कौन दे कि उसकी बीमारी की ज़िम्मेदारी किस पर है? हो सकता है कि घर मे किसी कलह के कारण उसका रक्तचाप बढ गया हो। पर किसी भी कारण से बढा हो, जो बीमार है, वही अपनी बीमारी का ज़िम्मेदार है।

मन के सभी रोगो की जिम्मेदारी मन के स्वामी व्यक्ति की होती है। यह बात दूसरी है कि जिम्मेदारी की नीमा निर्धारित करनी पडे कि किस हद तक वह व्यक्ति जिम्मेदार है। किसी ने उन्माद मे हत्या कर डाली। पर हत्या का दोषी बनाने के पूर्व अदालत यह जरूर देखेगी कि उसे यानी कथित हत्यारे को किस सीमा तक उत्तेजित किया गया, भडकाया गया, ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी गयी कि वह बेबस हो गया। उसे हत्या करनी ही पडी। आत्मरक्षा मे हत्या को हत्या नही कहते, यद्यपि प्राण-हरण करने का दोष सदैव बराबर है।

मन की प्रेरणा से ही काम होता है, कार्य-सम्पादन होता है। अतएव मन तथा उसके स्वामी को दोषी मान लेने मे किसी को आपत्ति न होनी चाहिए, पर यह सोचने की बात है कि मन के विचार से किसका मन अच्छा और पक्का माना जाय। बच्चे का मन चचल होता है, पक्का नही होता। अधकचरे अनुभव से वह जो भी कुछ

१. वही, पृष्ठ ५७

काम करता है, उससे समाज की हानि भी हो सकती है। इसीलिए बच्चे को सुधारने का बडा ध्यान रखा जाना चाहिए। उसकी बुद्धि को विकसित कर देने में ही समाज का कल्याण है। पर जो बालिग हो गया है, वयस्क है, वह तो कच्चा व्यक्ति नहीं रहा। उसे जितना पकना था, पक चुका। यदि बाल अपराधी को सुधार के मार्ग पर चला दिया जाय तो वह जल्दी सुधरेगा। पर वयस्क अपराधी तो कच्चा है नही कि उसे नये साँचे मे ढाला जा सके। अतएव निचोड यही निकला कि वयस्क अपराधी को सुधारा नही जा सकता, चाहे दड दीजिए या उसके साथ सुधार का व्यवहार कीजिए। किन्तु बुढापे मे भी आदमी की बुद्धि बदल जाती है। बचपन के बडे-बडे अपराधी जवानी मे एकदम सुधर जाते है। बाल-बच्चो मे पडकर, नये वातावरण मे आकर, मन पर से पर्दा उठ जाने के कारण, उनका नया जीवन हो जाता है। इसलिए स्पष्ट हुआ कि मन की गति को मोडा जा सकता है। कैसे ?

एक उदाहरण लीजिए। मन का, चित्त का स्वभाव है आत्म-रक्षा करना। जरा सी विपत्ति पडने पर माता भी अपनी सन्तान को फेककर अपनी जान बचाने की चेष्टा करती है। पर जब पानी मे कोई जहाज डूबने लगता है, जहाज का कप्तान क्यो एक तरफ खडा हो जाता है और हर एक की रक्षा हो जाने के बाद या तो अपनी रक्षा कर पाता है या मर जाता है ? उसने ऐसा क्यो किया और उसके इस कार्य की ज़िम्मेदारी किस पर है ? कर्तव्य की इतनी महान् भावना उसमे कैसे आयी ? इस प्रश्न का एक ही उत्तर है। उसे जहाज पर काम करने की जब शिक्षा मिली थी तो उसके कर्तव्यो का ज्ञान उसे इतना गम्भीररूपेण करा दिया गया था कि अब वह कर्तव्य-भाव उसके स्वभाव का अग बन गया है और आत्मरक्षा की भावना से अधिक प्रबल हो गया है। उसी प्रकार अपराधी मन का भी सस्कार बडा महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। जैसा समाज होगा, वैसा मन का सस्कार होगा। सस्कार के विषय मे एक बात जरूर ध्यान मे रखनी चाहिए। हम जितना काम करते है, सभी सोच-विचार कर नही करते। एक अज्ञात शक्ति, एक अज्ञात प्रेरणा हमसे काम कराती चलती है। यह अज्ञात प्रेरणा ही वास्तव मे हमारे कार्यों के लिए जिम्मेदार है। पर यह अज्ञात प्रेरणा हमारे वातावरण, सस्कार, समाज, शिक्षा, पास-पडोस तथा सगति से बनती है। अतएव इसकी स्वत कोई महत्ता नही है। महत्ता तो हमारे चारो तरफ के वातावरण की है। अलेक्जेण्डर आदि का कहना है—

"समाज में जिम्मेदारी का नैतिक सिद्धान्त लागू होना अनिवार्य है। जिस व्यक्ति को ज़िम्मेदारी के उसूलो पर शिक्षित किया जावेगा वह अपने चित्त के भीतर उन नसीहतो को इतने ठिकाने से रख लेगा कि वह अपने तथा दूसरो के प्रति भी

अपनी जिम्मेदारी को महसूस करता रहेगा। जिम्मेदारी की इसी भावना से व्यक्ति सामाजिक प्राणी बनता है। केवल ऐसे समाज मे जहॉ निरकुश शासन है तथा एक व्यक्ति का ही राज्य है व्यक्तिगत जिम्मेदारी की भावना समाप्त हो जाती है। उस समाज के सदस्यो को विचार-विमर्श की भी स्वाधीनता नही रहती
अपने तथा समाज के प्रति जिम्मेदारी की भावना केवल स्वतत्र समाजो मे ही पैदा होती है।"[1]

विकृत अपराधी

चाहे मनस्तापी हो या विकृतमना, दोनो प्रकार के अपराधी "शोख" या विकृत अपराधी को जन्म देते है। यानी इनमे से ही शोख तथा विकृत अपराधी निकलते है। माता से वासना का सम्बध करनेवाला पुत्र, बेटी से सम्बध करनेवाला पिता, बहिन से प्रसग करने वाला भाई— ऐसे विकृत तथा पतित अपराधी का सबसे बडा अपराध क्या है। सभोग की इच्छा सर्वदा स्वाभाविक इच्छा है। मन मे ऐसी भावना पैदा होना कदापि बुरा नही समझा जा सकता। यदि बुरी बात है तो केवल इतनी कि इसके लिए समाज ने जो मर्यादा बना रखी है, उसे तोड दिया गया। यदि बात बुरी बात हो सकती है तो केवल इतनी ही कि सभ्यता तथा धर्म ने, सस्कार तथा सस्कृति ने पारिवारिक जीवन मे जिस सम्बध को स्थापित किया था, वह तोड दिया गया। पर, मूल अपराध यानी सभोग की वासना कोई बुरी बात नही है—बुरी बात है परिवार मे वैसा करना। अतएव विकृत अपराधी को जो रोग लगा है, उसका कोई खास कारण होगा। आमतौर पर यह साबित हो गया है कि ऊपर लिखे प्रकार का विकृत सभोग करनेवाले लोग उतने बडे अपराधी नही है जितना हम समझते है। यदि इनकी वासना की पूर्ति का, चाहे माता हो या पुत्र, बहिन हो या भाई, कोई भी अन्य साधन मिल जाता तो वे ऐसा भ्रष्ट सम्बध न करते। चूकि समाज ने उनको एक स्वाभाविक प्यास बुझाने का अवसर नही दिया, वे लोग भ्रष्ट हो गये। यदि विधवा माता को या नपुसक की पत्नी को अपनी वासना की शान्ति मे बाधा न मिलती तो काहे को अपने ही पुत्र से ससर्ग करती ? कहने तथा सोचने मे रोमाच हो जाता है पर बात जो है, वह तो है ही और उसका अपना महत्त्व है। अपराधशास्त्र का विद्यार्थी उससे नेत्र नही मूँद सकता। पुरुष-पुरुष का या स्त्री-स्त्री का सभोग, अप्राकृतिक प्रसग, ये

[1] The Criminal, the Judge and the Public, पृष्ठ १३१

सभी किसी कारण पैदा होते है। अतएव जब भी हम ऐसे विकृत अपराधी की बात सोचे, देखे, तो हमको उनके मन तथा चित्त पर पडे संस्कार तथा समाज के प्रहार का भी ध्यान रखना होगा। यदि समाज ने उसे ऐसा भ्रष्ट बनने दिया तो समाज उसे सही मार्ग पर ला भी सकता है, एक दो प्रतिशत का सुधार नही हो सकता। पर जब यह साबित हो गया कि विकृत अपराध पैतृक नही, खानदानी देन नही, समाज की देन है, तब फिर ऐसे अपराधी का सुधार हो सकता है। हमने इधर के पृष्ठो मे जिस पुस्तक का उद्धरण दिया है, उसके अनुसार ऐसे विकृत अपराध का कारण ढूढने के लिए पता लगाना होगा कि बचपन मे उस व्यक्ति के साथ कैसा व्यवहार हुआ? क्या उसके साथ बहुत ज्यादा सख्ती बरती गयी थी? क्या उसकी वासना की इच्छा को बहुत कुचल कर, दबा कर रखा गया था, क्या उसके लालन पालन मे सामाजिक पाखड तथा असत्यता का सहारा लिया गया था? यह सही है कि ऐसी परिस्थिति मे पाले गये सभी बच्चे खराब नही निकलते। पर इसमे उन बच्चो का श्रेय कम है, उनके वातावरण तथा उनके रहन-सहन का श्रेय अधिक है। अतएव विकृत अपराधी दड का पात्र नही है। दोष उसका नही है—दोष है उसके लालन-पालन के तरीके का।[1] इसलिए दड किसे दीजिएगा? इस सम्बध मे ध्यान रखना चाहिए कि—[2]

"वासना सम्बधी विकृत अपराधी को सहन करना पडेगा। जो बहुत ही गिरे अपराधी हो गये है, उनको अलग कर दीजिए, अलग रख दीजिए। पर असली काम है बचपन से ही उचित मनोवैज्ञानिक शिक्षा देना तथा उनकी साधारण कामुक भावना को एकदम दबा न देना।"

हमारे जीवन की कौन सी साधारण घटना कितना बडा तूफान खडा कर सकती है, इसे आसानी से समझना कठिन है। पर मनोवैज्ञानिक लोग जिसे "विकृतमना" या "मनस्ताप" का रोगी कह देते हैं, उसकी तह मे बहुत साधारण कारण छिपा है। अलेक्जेडर तथा स्टॉब ने २१ वर्ष के एक युवक का उदाहरण दिया है। वह असाधारण प्रतिभा का युवक था। उसका अपराध भी विचित्र था। वह कोई टैक्सी गाडी लेकर उस पर खूब घूमता-घूमता चक्कर लगाया करता और जब टैक्सी ड्राइवर तथा शराब का पैसा देने को नही रह जाता, वह गिरफ्तार हो जाता। इस विचित्र अपराध का कारण किसी ने न समझा। जब उसके पारिवारिक जीवन की खोज की गयी तो मालूम

१. वही पुस्तक, पृष्ठ ११३
२. वही पुस्तक, पृष्ठ ११८

हुआ कि कुछ वर्ष पहले, सन् १९२९ मे, उसने किस्त पर एक साइकिल खरीदी। एक किर्स्त चुका भी दी। उसकी माता की दूसरी शादी थी—यानी उसका पिता सौतेला था। पिता ने अपने असली लडके को साइकिल खरीदने की इजाजत दे दी पर इस सौतेले लडके की किस्त पर खरीदी गयी साइकिल जबर्दस्ती छीन कर वापस कर दी। इस घटना का इस लडके पर इतना बुरा असर हुआ कि वह मन ही मन अपने पिता को पीटने की सोचने लगा। पर उसे साहस नही हुआ। वह अपनी जीविका स्वय कमा लेता था। साइकिल उसने अपने जेब से खरीदी थी। होटल के वेटर का काम वह करता था। "तब उसकी साइकिल क्यो छिन गयी ?" वह एकदम उत्तेजित होकर घर से निकल गया और होटल चला आया। वहाँ पर, शाम को उसकी माता मिलने आयी। माता को देखते ही वह युवक आवेश मे काँपने लगा। बाहर निकलकर एक टैक्सी पर बैठकर अनिश्चित स्थान के लिए चल पडा। जब पैसा खत्म हो गया, पकडा गया। इसके बाद जब उसे आवेश आता, इसी प्रकार टैक्सी पर निकल जाता, पकडा जाता, जेल जाता। अब इस विकृतमना अपराधी का जीवन कितनी साधारण सी घटना से नष्ट हो गया ? साइकिल की बात ने कितना तूल पकड लिया। जीवन मे साधारण घटनाएं मनुष्य को इसी प्रकार अपराधी बना देती है।

त्याग और अपराध

आदि काल से मनुष्य ने एक बडा पाठ सीखा है कि बिना त्याग के सुख नही मिलता। पिता-माता यदि अपने परिवार को सुखी रखना चाहते है तो उनको कुछ न कुछ त्याग करना ही होगा। माता अपना पेट काटकर बच्चो को भरपेट खिलाकर मातृ-सुख का अनुभव करती है। मनुष्य समाज मे अपनी स्वच्छन्दता तथा स्वतन्त्रता का कुछ भाग सरकार को, राज्य को देकर निश्चिन्त जीवन का सुख उठाता है। ऐसा कौन मनुष्य है जिसे पीडा का भय न हो, कष्ट का भय न हो ? सुख की आशा की दो भावनाओ के बीच से ही वास्तविकता का, वास्तविक परिस्थिति का ज्ञान होता है। आम के वृक्ष का फल खाने मे सुख की आशा करनेवाले को इस बात का भय भी है कि कही उसके वृक्ष के फल लोग तोड न ले जायँ। इसलिए वह इस परिणाम पर पहुँचा कि आम के बाग का एक रखवाला होना चाहिए जिसके हाथ मे डंडा भी हो ताकि फल तोड़ने (चुराने) वाले को डर बना रहे कि चोरी करेगे तो मार खा जायँगे। चोरी करने पर पिटने के भय से राहचलतू लोग आम खाने का सुख उसी समय न उठा कर, उस सुख को तब तक के लिए स्थगित कर देते हैं जब तक वही आम बाजार

मे सबके सामने बिकने न आ जाय। अतएव पीडा के भय तथा सुख की आशा दोनो ने मिलकर ऐसी वास्तविक परिस्थिति उत्पन्न कर दी जिसमे आम खाने के इच्छुक लोगो ने आम तोड लेने की अपनी सहज इच्छा को दबा कर उस फल के खाने के सुख को तब तक के लिए स्थगित कर दिया जब तक वह फल बाजार मे पैसा देकर खरीदे जाने की स्थिति मे न पहुँच जाय। इस प्रकार परिस्थिति की वास्तविकता, आवश्यकता, और कुछ नही केवल सुख के सिद्धान्त का समुचित समन्वय है। मनुष्य सुख चाहता है, आनन्द चाहता है। इसमे उसे बाधाओ का सामना करना पड़ता है। इन बाधाओ का वैध रूप से निवारण करनेवाला ही अच्छा नागरिक कहा जाता है और अवैध तथा नाजायज तरीके से सुख को प्राप्त करने का प्रयत्न करनेवाला अपराधी कहलाता है। सुख-प्राप्ति को स्थगित कर देना, छोटे, साधारण सुख का त्याग करना तथा समाज के सुख के आगे अपने सुख को गौण समझना, यही असली नागरिक शिक्षा, नागरिक शास्त्र है। जो इसके विपरीत करता है, अपराधी समझा जाता है।

त्याग का सौदा भी आदि काल से होता चला आया है। मनुष्य त्याग करता है और उसके बदले मे प्रेम चाहता है। माता-पिता परिवार के भरण-पोषण के लिए अपने सुख का त्याग करते है पर उसके बदले मे वे अपनी सन्तान से प्रेम की, स्नेह की आशा भी करते है। प्रेम का सबसे प्रथम वरदान सतान को अपनी माता से प्राप्त होता है। वह उसे दूध पिलाती है, पुचकारतीहै, प्यार करती है, रक्षा करती है और इस प्रेमका उत्तर सतान भी प्रेम से ही देती है। किन्तु माता की ममता मे जहाँ लाड-प्यार है वहाँ दड देने की शक्ति भी है। वह स्नेह भी देती है, सुधारती भी है। बच्चे को फटकार भी देती है। पर उसकी एक पुचकार के बाद सब फटकार समाप्त हो जाती है। इसीलिए मातृसुख तथा माता का प्रेम बडी मधुर, बडी सरल वस्तु है। इसके विपरीत पिता का स्थान है। पिता का अपने सन्तान के जीवन से केवल अनुशासन का ही सम्बध रहता है। बच्चा अपनी मा से प्रेम करता है, बाप से डरता है। उसे इस भयावह वस्तु यानी पिता के सामने जी खोलकर बाते करना भी नही आता—माता से वह सब कुछ कह-सुन सकता है। माता का भी अनुशासन होता है पर वह अनुशासन तथा प्रेम को जिस प्रकार मिलाये रहती है, पिता वैसा नही कर सकता। इस प्रकार माता सुख तथा आनन्द का स्रोत है, पिता जीवन का कटु सत्य है, वास्तविकता है। जिस बच्चे के जीवन मे ऐसे कटु सत्य तथा प्रेम का सामजस्य बन गया, ठीक से जीवन चला, वह सुखी तथा सच्चरित्र होता है। बच्चा अपने बचपन मे हर बात के लिए माता पर निर्भर करता है, आश्रित रहता है। भोजन, निद्रा, सब कुछ मा से प्राप्त होती है। पिता कुछ नही देता—अनुशासन करता है। ज्यो-ज्यो बच्चा बडा होता जाता

है, अपने सुख के लिए माता पर आश्रित रहना समाप्त होता जाता है और एक दिन वह इतना बडा हो जाता है कि अपनी इच्छाओ को स्वय तृप्त कर ले। अपनी भूख प्यास स्वय शान्त कर ले—अपना जीवन बिना किसी के सहारे चला ले। उसके इसी जीवन के लिए माता ने और पिता ने भी उसे प्यार किया है। उनके त्याग, परिश्रम तथा देखरेख से आज वह दिन आया कि बालक या बालिका बालिग होकर अपना जीवन स्वत चलावेगे। इस दिन के लिए घर मे जितनी तथा जैसी शिक्षा मिली होगी, वैसा ही चरित्र बनेगा। इसीलिए मनुष्य के जीवन मे माता का स्थान सबसे बडा है। उसके बाद पिता का। जिस पिता ने अनुशासन के साथ वात्सल्य को भी मिला दिया है, वह अपनी सन्तान का विश्वास भी प्राप्त कर सकता है। तब उसके अनुशासन का महत्त्व भी होता है। जब बच्चा बडा हो गया, उसी समय दड की निषेधात्मक शक्ति, माता-पिता की शिक्षा तथा समाज के वातावरण का सामूहिक प्रभाव पडता है। अपने सुख की पूर्त्ति के लिए जब युवक का मन मचलता है, उसे दड का भय, समाज की निषेधात्मक आज्ञाएँ, परिवार की सीख सब एक साथ नियत्रण मे रखती है। जब इसमे शिथिलता हुई, बालक या युवक लडकी या नवयुवती, अपराधी बन जाते है।

भय का महत्त्व

मनुष्य के जीवन मे भय का बडा भारी महत्त्व है, भय से मनुष्य बहुत सी विपत्तियो तथा कुकृतियो से बचा रहता है। यदि चार आदमी के देख लेने का डर न हो तो लोग वेश्या के कोठे पर दिन मे या सामने के दरवाजे से चले जाये। वे चोर की तरह छिपकर जाते है या समाज के भय से जाते ही नही। यदि परिवार की परम्परा या परिपाटी का डर न हो तो लोग विवाह के सामाजिक बधन आसानी से तोड दे। माता-पिता के भय से घर का सामान चुराने मे बच्चे को हिचक होती है। जेल तथा पुलिस के डर से अपराध करने की हिम्मत नही होती। जेल जेल ही है, चाहे उसमे रहने की कितनी ही सुख-सुविधा क्यो न हो। हाथ जलने के डर के कारण हम आग मे हाथ नही डालते। बीमार पडने के भय के कारण स्वास्थ्य के नियमों का उल्लघन नही करते। नित्य प्रति के जीवन मे ऐसे अनगिनत काम है जिनको हम करना चाहते हैं पर केवल "भय" हमारे ऊपर रोक-थाम किये हुए है।

भय क्या है? आनेवाले खतरे का सकेत ही भय है।[1] अमुक कार्य करने से

१. The Criminal, the Judge and the Public, पृ० ८

यह खतरा पैदा होगा।—इसी भावना का नाम भय है। यदि मनुष्य मे ऐसी भावना न रहे तो उसकी कोई रोक-थाम नही हो सकती।

यह इसलिए कि शुरू से ही वह अपने को स्वतत्र तथा स्वच्छन्द बनाने का प्रयत्न करता रहा है, अपने अधिकार के लिए लडता रहा है। आदिकाल से मनुष्य का समाज के साथ अपने अधिकार के लिए, अपनी आजादी के लिए सघर्ष रहा है और उसी सघर्ष की भावना आज भी उसके मन मे वर्त्तमान है। जरा-सी बात ऐसी हुई जिसमे उसके अधिकार पर आघात पहुँचा कि उसके मन मे बेचैनी पैदा हो जाती है। वह कदापि यह नही चाहता कि वह जिस चीज को चाहता है, उसे प्राप्त करने मे समाज उसे रोके। किन्तु जब अपनी इच्छा पूरी करने के लिए वह आगे बढता है, उसका मन डर जाता है। वह सोचता है कि समाज ने अमुक सीमा तक ही उसे इच्छा की पूर्त्ति का अधिकार दिया है—उसके आगे बढने पर दड मिलेगा। जिसमे दड को समझने की बुद्धि होती है, वह डर कर मनमानी नही करता। जिसको दड से डर लगता है, वह हाथ-पैर सम्हाल कर चलता है। जिसकी बुद्धि जड है, जो कुछ समझता ही नही, वह बेधडक होकर समाज की मर्यादा तोडकर अपनी इच्छा पूरी करता है। जो समझता भी है पर निर्भय है, वह भी सामाजिक नियमो की अवज्ञा करता है। इस प्रकार समाज के नियमो को तोडनेवाले यानी अपराधी तीन प्रकार के हुए—

१ समाज के नियमो से अनभिज्ञ, अज्ञानी या मूढ।

२ समाज के नियमो से परिचित पर निर्भय।

३ स्वच्छन्द वृत्ति के मनुष्य जो बिना नियमो को तोडे नही रह सकते।

पागल कोई नियम नही जानता। वह हत्या भी कर सकता है। पर अपराधी नही कहा जा सकता। कानून का अज्ञान स्वत अपराध है पर अबोध बालक यदि दीपक उलट कर मकान मे आग लगा देता है तो वह अपराध नही है। असली अपराधी तो वही है जो समाज या शासन के नियमो को जानता है और फिर भी निडर होकर उन्हें तोडता रहता है—अपराध करता रहता है। ऐसे अपराधी की समस्या ही सबसे महत्त्वपूर्ण है और अपराध-शास्त्र ऐसे ही अपराधी से उलझना चाहता है। उसे सुधार कर सही मार्ग पर लाना चाहता है।

पर, आज अपराधी को समझने मे बडी भूल की जा रही है। असली भूल तो न्यायाधीश करता है। दड के आज अनेक प्रकार है पर उसकी, यानी दड की भावना, उसकी आधार-शिला ही गलत है। देखिए—

"साधारण आदमी के सामने उसकी जिम्मेदारियाँ है। उसे तो न्याय करना है पर यह न्याय अपराधी की मनोवैज्ञानिक रीति से समीक्षा के द्वारा ही हो सकता है।

उसे इस जिम्मेदारी का बडा भारी बोझ सम्हालने के समय यह ध्यान रखना होगा कि अपनी निजी प्रेरणा तथा मनोवृत्ति से किये गये फैसले का परिणाम भी भोगना होगा। उसे अपने काम मे सहायता मिलेगी, यदि वह ध्यान रखे कि (१) उसका फैसला एक व्यक्ति से नही, समूह मात्र से, समूह मात्र के हित से सम्बध रखता है। अधिकाश दड-विधान के नियम न्यायाधीश पर बहुत बडी जिम्मेदारी छोड देते है "[१] और यह जिम्मेदारी इतनी बडी है कि जरासी भूल से समाज की अपार हानि हो सकती है।

विक्षिप्त और प्रमादी

ऊपर हमने जिम्मेदारी की भावना का जिक्र किया है। साधारण मनुष्य की अपने जीवन के प्रति जिम्मेदारिया होती है। समाज तथा शासन के प्रति जिम्मेदारी होती है। अपने काम की, कर्त्तव्य की जिम्मेदारी को समझते हुए भी, उसके परिणाम को जानते हुए जो काम किया जाता है, उसका पाप-पुण्य उस व्यक्ति के जिम्मे होता है। किसी व्यक्ति को उसी समय अपराधी समझा जाता है जब वह अपना अपराध का कार्य करने के समय यह जानने या समझने [illegible] है कि वह काम बुरा है या कर्त्तव्य के विपरीत है—ऐसा कार्य है जो समाज के नियमो या उसकी व्यवस्था के प्रतिकूल है।[२] उस व्यक्ति का यह जानना जरूरी नही है कि वह कार्य समाज के तत्कालीन नियम या व्यवस्था के प्रतिकूल है। कानून की जानकारी न होना कोई दलील नही है। अपराध के निरूपण के लिए कानून की जानकारी का होना या न होना कोई तर्क नही माना जाता। हर समाज या देश मे यह बात मान ली जाती है कि नियमो की जानकारी हर एक को है। नैतिकता तथा उचित व्यवहार के आम सिद्धान्तो के विरुद्ध कार्य अपराध है, कानून तो ऐसे अपराधो की व्याख्या मात्र करता है।[३]

पर ऐसे लोग भी हो सकते है जिनको किसी अपराधी कार्य करने के समय उचित-अनुचित समझने की शक्ति ही नही रही हो। मन ही तो ठहरा। हो सकता है कि

१. वही, पृष्ठ १८.

२. "क्षिप्तं मूढं विक्षिप्तमेकाग्रं निरुद्धमिति चित्तभूमयः क्षिप्ताद् विशिष्ट विक्षिप्तमिति मणिप्रभा"—पातञ्जल भाष्य, ५५३.

३. P. K. Sen—Penology, Old and New–1943–Page 201.

नैतिकता की कल्पना करने की शक्ति ही उनमे समाप्त हो गयी हो या लुप्त हो गयी हो ? भले-बुरे की, अच्छे काम या बुरे काम मे भेद करने की शक्ति न रह गयी हो ? सन् १८३५ मे प्रिचार्ड ने ऐसे लोगो के लिए "नैतिक विक्षिप्त" शब्द गढा था, पर नैतिक विक्षिप्तता तथा "नैतिक दुर्बलता" मे अन्तर ही क्या है। जो नैतिकता को न समझ पावे, वही नैतिक दुर्बलता का रोगी होगा। ऐसे लोगो मे नैतिक भावना का अभाव माना जायेगा। पर "नैतिक भावना" नामक कोई चीज है भी ? डा० हैमब्लिन स्मिथ का कथन है कि "नैतिक बुद्धि" नामक कोई वस्तु है ही नही। नैतिक विवेक या नैतिक बुद्धि को हमने गढ लिया है। उचित और अनुचित के बारे मे हमारे विचार सामाजिक निर्णयो पर तथा सामाजिक सम्बध के क्रमागत विकास पर निर्भर करते है। यदि किसी का यह विश्वास हो कि हमारे हृदय मे आत्मा, चेतना, सकल्प नामक कोई वस्तु है जो हमारी इच्छाओ तथा कामनाओ के औचित्य तथा अनौचित्य का स्वत निर्णय करती चलती है तो उसे "नैतिक विवेक" तथा "नैतिक दुर्बलता" मे विश्वास करना चाहिए। किन्तु जिसे मानसिक निश्चय के सिद्धान्त पर विश्वास हो, वह इन चीजो को नही मानेगा।[१] किन्तु हम भारतीय आत्मा को, चेतना को, मन तथा बुद्धि और सकल्प सबको मानते है। हमारी इच्छाओ पर हमारी आत्मा तथा विवेक का अकुश सदैव रहता है। इस विवेक का विकास समाज के नियमो से ही होता है। पर एक ऐसी स्थिति आती है जब मन या शरीर के रोग से विवेक सो जाता है। ऐसी अवस्था को मूढावस्था या पागलपन की अवस्था कह सकते है। कुछ ऐसे भी व्यक्ति है जो बचपन से ही, जन्म से ही, विवेक-शून्य होते है। इन्हे मूढ[२] कहिए या बुद्धिहीन कहिए। बहरहाल, चाहे आन्तरिक प्रेरणा से हो या सामाजिक सस्कार से, मनुष्य मे विवेक का होना आवश्यक है। विवेक के रहते जो अपराध करता है, वही अपराधी है। ऐसे अपराधी को दड मिलता है अपने "विवेक से काम न लेने के लिए।" पर जिसके पास विवेक ही नही है, उसे किस लिए दंड दिया जायेगा ?

मूर[३] ने जिसे "अभागा मस्तिष्क" कहा है, जिसका मस्तिष्क काम नही करेगा, उसे पागल या प्रमादी कहेगे। विक्षिप्त वह है जो तर्क-शून्य है, जिसकी

१. Dr. M. Hamblin Smith—"Psychology of the Criminal"–Methuen & Co., London, 1922–Page 153-154

२ Idiots.

३. John H. Moore–Clergy.

बुद्धि मे तर्क करके, विचार करके उचित या अनुचित का निर्णय करने की शक्ति नही रहती। यह सही है, जैसा कि जॉन हॉलम ने कहा है, कि पागल व्यक्ति दूसरे की मूर्खता को बडी अच्छी तरह से पहचान लेता है, पर अपनी मूर्खता उसकी समझ मे नही आती। पागल की व्याख्या करते हुए ड्राइडन लिखते है—"वह बडबडाया करता है। बालू के ढेर के समान उसके शब्द भी ढीले होते है। वे (शब्द) बुद्धि से बहुत दूर, अस्त-व्यस्त बिखरे रहते है। वह अपने हवाई घोडे या गद्दी पर इतना ऊचे उडता रहता है कि उसके दिमाग पर पाल। पड जाता है।"[१] दार्शनिक लॉक[२] के अनुसार पागल तथा मूर्ख मे यह बडा अन्तर है कि मूर्ख सही सिद्धान्तो से गलत नतीजे निकालता है और पागल गलत सिद्धान्तो से सही नतीजे निकालता है। मूर्ख की मिसाल लीजिए। एक आदमी सो रहा है। मूर्ख ने उसका सिर काट लिया, सिर काट कर छिपा दिया। अब वही बैठकर वह यह तमाशा देखना चाहता है कि जब वह आदमी सोकर उठेगा और देखेगा कि उसका सिर ही नही है तो उसे कितना अधिक तथा कैसा विस्मय होगा। मूर्ख ने यह तो ठीक सोचा कि सिर के सहित सोने वाला जब जागेगा और अपने सिर को नही पायेगा तो उसे बडा अचम्भा जरूर होगा। उसने भूल यही की कि वह सोच रहा है कि बिना सिर का आदमी जाग भी सकता है? पागल आदमी विचार-शून्य नही होता। वह खूब बहस भी कर सकता है। उसकी भूल इतनी ही है कि वह जिस आधार पर, जिस भूमि पर अपने तर्क की दीवाल खडी कर रहा है, उसका वजूद (विद्यमानता, अस्तित्व) ही नही होता। वह स्वय अपना आधार बनाता है और फिर उसे बिगाडता रहता है।

इसलिए क्या विवेक-शून्य व्यक्ति का, क्या विक्षिप्त या मूढ या प्रमादी द्वारा किया गया कार्य दडनीय है? हमारे शास्त्रों ने भी स्पष्ट आदेश दिया है कि अपराध, देश, काल, अवस्था, कर्म, धन—इन सबको जानकर, इनके अनुसार ही दड देने योग्यो को दड दे। "दड देने योग्यो को ही दड दे"—

ज्ञात्वापराधं देशं च कालं बलमथापि वा।
वयः कर्म च वित्तं च दंडं दंड्येषु पातयेत्॥

—याज्ञवल्क्य, ३६८.

१. The New Dictionary of Thoughts—Universal Text Books—London Page 363

२. John Locke, Philosopher.

म-नाटेन का मामला

"योग्य को ही दड देने का सिद्धान्त" हमारे देश मे हजारो वर्ष पहले से था पर इग्लैड तथा अमेरिका ऐसे सभ्य देशो मे इसकी कल्पना बहुत बाद मे आयी। सयुक्त-राज्य अमेरिका मे सन् १६७० तक कानून की जानकारी बहुत कम थी। "लोगो मे कानूनी शिक्षा बहुत कम थी।"[1] पर, मानसिक रोगी को दड दिया जाय या न दिया जाय, यह सवाल सबसे पहले इग्लैड मे १८४३ मे उठा। डेनियल म-नाटेन[2] नामक व्यक्ति ने ब्रिटेन के विदेश मत्री सर राबर्टपाल के निजी सहायक एडवर्ड ड्रमड को २० जनवरी, १८४३ को ४ बजे तीसरे प्रहर गोली मार दी। गोली मारने का कारण यह था कि उस व्यक्ति को यह प्रेरणा हुई कि अमुक मत्री राज्य के लिए अहितकर है। मारना था मत्री को। मारे गये निजी सहायक। मुकद्दमा चला। म-नाटेन की ओर से सफाई दी गयी कि जिस समय उसने गोली चलायी, उसकी बुद्धि ठिकाने नही थी। स्वस्थ मस्तिष्क वाले के मन मे भी अस्वस्थ विकल्प उत्पन्न हो सकते है। उसकी "सही और गलत" समझने की ताकत नष्ट हो सकती है। उसके मनमे एक ऐसा भय समा गया जिसने आत्म-नियत्रण की शक्ति को भी समाप्त कर दिया था। इस प्रकार के रोग ने उसका सब कुछ विवेक भी समाप्त कर दिया था। अभि-योग पक्ष के सरकारी वकील सर विलियम फोलेट ने इस तर्क का घोर विरोध किया।

न्यायाधीश टिडल ने जूरी लोगो को मामला समझाते हुए कहा था—

"हमे यह तय करना है कि जिस समय विचाराधीन कार्य (गोली मारना) हो रहा था, अभियुक्त अपनी समझदारी से काम ले रहा था या नही ताकि हम यह जान सके कि वह एक गलत और दुष्ट कार्य कर रहा था। यदि जूरी (पच) लोग इस विचार के हैं कि जिस समय बदी अपराध कर रहा था, मनुष्य तथा ईश्वर के नियमो के विरुद्ध कार्य कर रहा था, वह अपने होश मे नही था, उसका दिमाग सही नही था, तो निर्णय उसके पक्ष मे होगा। यदि इसके विपरीत यह प्रकट हो कि अभियोग के समय उसकी बुद्धि बिलकुल ठीक थी तो उसे दड मिलना चाहिए।"

१ The American Review, New Delhi, July, 1959, Page 43.

२. यह प्रसिद्ध मामला ब्रिटेन के सर्वोच्च न्यायालय हाउस आव लार्ड्स तक पहुँचा। ६ और १२ मार्च १८४३ को उस सरदार सभा में इस पर बहस हुई, देखिए Hansard's Debates, Vol LXVII–Page 288, 714.

न्यायाधीश टिंडल ने बौद्धिक विवेक पर जोर दिया था। पंचो की—जूरी की राय मे म-नाटेन "निर्दोष" था। नैतिक उन्माद मे आदमी की ज़िम्मेदारी बनी रहती है। किसी दूसरे धर्म वाले की हत्या करना भी नैतिक उन्माद है। इस प्रकार धार्मिक दंगो मे सभी हत्याए अदण्डनीय हो जावेगी। पर, वही उन्माद अदडनीय होता है जिसमे यह सिद्ध हो जाय कि बुद्धि के ऊपर ऐसा पर्दा पड जाय कि यह विवेक ही न रह जाय कि क्या भला है, क्या बुरा है। कानून की दृष्टि मे वही कार्य "जान बूझकर किया गया" नही समझा जाता जिसे करने के समय मनुष्य मे सही या गलत समझने की शक्ति नही रह जाती।[१]

किन्तु, म-नाटेन मामले मे विचारपति के आदेश से अनेक तर्क उत्पन्न होते है। उस प्रसिद्ध निर्णय मे यह भी था कि—

"मानसिक रूप से रोगी होते हुए भी कोई व्यक्ति अपने अपराधी कार्य के लिए जिम्मेदार होगा यदि उसे अपने कार्य की "प्रकृति और गुण" मालूम है तथा उसे इतनी समझ है कि वह उसे गलत समझता है।"

पागल, प्रमादी या विक्षिप्त मे 'उचित तथा अनुचित" की पहचान रहती है या नही, यह बडा कठिन सवाल है और आज सैकडो वर्ष से इस पर बडे-बडे विचारवान् तर्क करते चले आ रहे है। उस मुकद्दमे के सिलसिले मे जो सिद्धान्त प्रतिपादित हुआ उसमे यह कहा गया है कि—

"पागलपन के नाम पर अभियुक्त की पैरवी करते समय यह स्पष्टत. साबित करना चाहिए कि उक्त "अपराध" करने के समय अभियुक्त का मन इतना रोगी था कि उसका विवेक लुप्त हो गया था और वह जो कार्य कर रहा था उसकी सीमा, उसका रूप, उसका प्रकार—यह कुछ नही समझ रहा था। यदि यह उसे पता भी रहा हो तो वह यह नही समझ रहा था कि वह सब अनुचित है।"

किन्तु, "अनुचित" का क्या अर्थ है? इस शब्द की व्याख्या कैसी होगी? कोई चीज़ कही पर उचित है, कही पर अनुचित है। कोई मूर्त्ति की पूजा करता है, कोई उसे तोड़ता है। अतएव, यह कौन निर्णय करेगा कि क्या उचित है, क्या अनुचित है? बहुत से लोगो मे एक ही प्रकार के अवगुण हो सकते है। एक ही प्रकार की समस्याएं हो सकती है। पर वे अपनी समस्याओ को अलग-अलग सुलझाते है। यदि भिन्न

१. Penology–Old & New, पृष्ठ २०२

श्रेणी के, पर एक ही प्रकार की समस्यावाले लोग आपस मे मिलें[१] तो एक सामूहिक बात भी निकल सकती है। पर उचित-अनुचित का निर्णय. मर्यादा के अनुसार, सामाजिक पद के अनुसार भी होता है। अक्सर काफी बडे तथा धनी लोगो मे आदत होती है कि दूकान पर सामान खरीदने गये, और दो-एक चीजे उठा कर जेब मे डाल ली। जानबूझ कर नही, आदतन वे ऐसा करते थे। ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री स्वर्गीय श्री बाल्डविन ने कभी किसी की दियासलाई लेकर वापस नही की। सिगरेट जलायी और सलाई जेब मे रख ली। यदि छोटा आदमी किसी दूकान से एक चम्मच भी अपनी जेब मे डाल ले तो उसे "चोर" कहा जायेगा। उसे चोर की सजा मिलेगी। मनोविज्ञान अपराधी की यह कहकर समीक्षा करता है कि समाज मे वह अपने को ठीक तरह से मिला न सका, सामाजिक नियमो मे अपने को अभ्यस्त न कर सका। किन्तु इतना ही कह देने से काम नही चलेगा। हर एक के जीवन की सास्कृतिक समस्याएँ होती है।[२] हर एक जीवन की निजी आवश्यकताएँ तथा पहेलियाँ होती है। इन बातो को भी न देखने से मनुष्य की वास्तविकता का पता नही चल सकता। एक ही सिद्धान्त हर एक के लिए लागू नही हो सकता। स्त्री या पुरुष के लिए भी भिन्न सिद्धान्त बन जाते है। उदाहरण के लिए ज्यादातर स्त्री अपराधिने "कामवासना" तथा तत्सम्बधी अपराधो की शिकार होती है। ज्यादातर पुरुष अपराधी चोरी, सम्पत्ति सम्बधी तथा हत्या, डकैती आदि के दोषी हो सकते है।[३] स्पष्ट है कि दोनो के अपराधो तथा कार्यों के औचित्य मे अन्तर है, भेद है। तो फिर सामाजिक रोग की दवा क्या है ? कोहन अपनी पुस्तक मे, बाल अपराध के सम्बंध मे लिखते है—[४]

"अपराध की मलेरिया ज्वर से तुलना कीजिए। हम मलेरिया का कारण जानते है कि किस कीटाणु से यह उत्पन्न होता है। जिस मच्छड से यह रोग फैलता

१ Albert K Cohen—"Delinquent Boys" (The Culture of the Gang) Routledge & Kegan Paul Ltd, London 1956, Page 71.

२. वही, पृष्ठ १५६

३. वही, पृष्ठ ४५–४६

४. वही, पृष्ठ १७५

है, हम उससे तथा उसकी आदतो से परिचित है। हम जानते है कि किस दशा मे मच्छड पैदा होते है। इस जानकारी के सहारे हम मलेरिया से बचने का उपाय ढूढ निकालते है .हम उन परिस्थितियो को बदल सकते है जिनमे मच्छड पैदा होते है, हम मच्छडो का सहार भी कर सकते है। हम मच्छड तथा उसके शिकार के बीच मे दीवार खडी कर सकते है, मच्छड से बचने की औषधिया बना सकते है। पर इन सब सम्भावनाओ के साथ नये-नये सवाल भी उठते जाते है। क्या यह सब सम्भव है? किस प्रकार? कैसे? हर उपाय मे काफी समय तथा द्रव्य की आवश्यकता है तथा जिसे नष्ट करने का उपाय किया जायगा वह अपने बचाव का भी उपाय करेगा। यह आवश्यक हो सकता है कि समूचे समुदाय तथा समाज के साधन और प्रयत्न, त्याग तथा सहयोग की आवश्यकता हो। "श्रेष्ठ उपाय" आबादी के भिन्न वर्गो के दृष्टिकोण से अपनी श्रेष्ठता मे भी भिन्न हो सकता है।"

इसी प्रकार उचित या अनुचित की सर्वमान्य व्याख्या भी भिन्न भिन्न वर्गो के दृष्टिकोण पर निर्भर करेगी। म-नाटेन मामले मे हाउस आव लार्ड्स मे जब बहस होने लगी तो लार्ड ब्राउघम ने कहा था—"उचित तथा अनुचित की केवल एक ही व्याख्या है। उचित वह है जब तुम कानून के अनुसार काम करते हो।" सन् १८४७ मे, जून के महीने मे पार्लमिन्ट की एक कमेटी के सामने गवाही देते हुए लार्ड ब्रामवेल ने कहा था—"आज का कानून जिस प्रकार पागलपन की व्याख्या करता है, उसके अनुसार शायद ही कोई पागल मिले।" सही भी है—जब कानून के विरुद्ध हर एक कार्य अनुचित है तो पागल को उसके काम का दड तो मिलना ही चाहिए। पागल वह है जो अनुचित को समझ न सके। लेकिन जब अनुचित को समझना जरूरी नही है तो हर एक व्यक्ति दडनीय है। पर लार्ड ब्रामवेल की बात अधिक व्यापक रूप मे विचारपति स्टेफन ने सन् १८८८ मे, डैविट डेवीज के मुकद्दमे मे, जूरी लोगो को समझाते हुए कही थी—

"कहा जाता है कि कानून के अनुसार अपने कार्यो के लिए वही व्यक्ति जिम्मेदार है जो यह जानता हो कि वह काम गलत है, अनुचित है। यह बात सही है। पर डाक्टरो की राय है कि बहुत से लोग, जो वास्तव मे पूरे पागल है, यह जानते है कि अमुक काम अनुचित है। इसलिए यदि आप अपने विचार से काम लेगे तो आपको स्यात् यह प्रतीत होगा कि काम का औचित्य या अनौचित्य जानना इससे अधिक और कोई मानी नही रखता कि सही बुद्धिवाले मनुष्य की तरह उसके बारे मे सोचने

की शक्ति है, हत्या करने के भयकर काम को पूरी तरह से सोचकर करने की शक्ति है; यह समझने की शक्ति है कि तुम जो काम करने जा रहे हो, उससे किसी का जीवन नष्ट होगा, तुम्हारी आत्मा नष्ट होगी, उससे लोगो को पीडा होगी, आतक पैदा होगा और उसके अनेक अनर्थकारी परिणाम हो सकते है। यही सब सोचने की शक्ति एक साधारण विवेकशील पुरुष मे भी होती है। जितना मै समझ सका हूँ, कानून यही कहता है। उसके अनुसार दोषारोपण तब होगा जब जिम्मेदारी की पहचान हो जाय यानी गलत और सही मे भेद करने की क्षमता का पता चल जाय।

आपने इस बेचारे की परिस्थिति के बारे मे सुन लिया। उसे कैसे मालूम होता कि वह जो कर रहा है, अनुचित है? अपस्मार (मृगी) के दौरे मे वह यह सब नही सोच सकता था। उसे जानकारी नही थी कि वह क्या कर रहा है। वह तो यह कार्य वैसे ही साधारण ढग पर कर रहा था जैसे शरीर मे कही दर्द होने पर आदमी करता है।"

इसी विचारपति ने इस निर्णय के पूर्व, ९ नवम्बर १८८५ को विलियम बर्ट के मुकद्दमे मे कहा था—

"रोगी होने के कारण यदि उत्तेजना उत्पन्न हो और उसी उत्तेजना मे अत्यधिक क्रोध आ जाय तो आदमी मे भले बुरे की सोचने की शक्ति नही रह जाती और वह अपने हिसात्मक कार्य के लिए उत्तरदायी नही होता।"[१]

स्टेफन का कथन था कि यह देखना ज़रूरी नही है कि वह अपराधी रोगी है या नही। इतना ही देखना पर्य्याप्त है कि उसमे विवेक था या नही। क्या काम करने जा रहे है और उसका क्या परिणाम होगा, यह लोगो को मालूम हो सकता है, फिर भी वे दोषी नही हो सकते। उदासी की बीमारी वाली महिला को मालूम हो सकता है कि अपना बच्चा मार कर वह बुरा काम कर रही है पर उसे मारने के समय यदि उसके मन मे यह भाव है कि उसका प्राण लेकर वह उसे एक भयानक विपत्ति या भविष्य से बचाने जा रही है तो उसके मन मे ऐसी हत्या का सर्वथा उचित आधार है। आत्महत्या करनेवाला व्यक्ति यह भली प्रकार समझता है कि अपनी जान लेना बडी भारी भूल है, अपराध है। फिर भी वह इस भ्रम मे है

१. Edited by L Radzinowicz and J W C Turner—"Mental Abnormality and Crime"–Macmillan & Co, London—1949–Page 54-55.

कि अपना प्राण देकर वह अपना छुटकारा कर रहा है, अपना उद्धार कर रहा है—अपनी रक्षा कर रहा है। कौन कहेगा कि उसके मन में पूर्ण औचित्य का भाव नहीं है। पर वह उदास स्त्री, वह भ्रमित आत्मघाती, दोनों ही उन्मादी हैं, विक्षिप्त हैं, मानसिक रोगी हैं। हम उनको वास्तव में अपराधी नहीं कह सकते।"

सन् १९२४ में ब्रिटेन में "पागलपन और अपराध" पर एक जाँच कमेटी बैठी। उसमें ब्रिटिश चिकित्सकीय—मनोवैज्ञानिक संघ ने[१] एक स्मृतिपत्र दिया था। उसके अनुसार—

(१) "म-नाटेन नियमों में अपराध की जो क़ानूनी ज़िम्मेदारी निर्धारित की गयी है, उसे समाप्त कर देना चाहिए और बन्दी की ज़िम्मेदारी का निर्णय जूरी (पंच) लोगों को उस मामले की घटनाओं की छानबीन करके करना चाहिए।

(२) जिस किसी मामले में अपराधी के मन की स्थिति का निर्णय करना हो विचारपति को जूरी से निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करने का आदेश देना चाहिए–

(क) क्या बन्दी ने अभियोग वाला कार्य किया है?

(ख) यदि हाँ, तो क्या उस समय वह पागल था?

(ग) यदि हाँ तो क्या यह साबित हो गया है कि उसका अपराध उसके मानसिक व्यतिक्रम से सम्बंधित नहीं है?

तात्पर्य यह कि सबसे बड़ा निर्णय यह करना है कि क्या उसका अपराध उसके मानसिक रोग का परिणाम है? किन्तु, कुछ लोगों का यह कहना भी ग़लत नहीं है कि ऐसा कौन सा असामाजिक कार्य है जो मानसिक रोग का परिणाम नहीं है। स्काटलैंड के विचारपति क्लार्कने १८६३ में कहा था कि "शुद्ध क़ानूनी दृष्टि से कोई पागल अपराधी नहीं हो सकता। पागलपन के दायरे में हर एक हत्या का अपराध आ सकता है।" इसीलिए पागलपन या विक्षिप्तता की ठीक से व्याख्या नहीं हो सकती। प्रत्येक चिकित्सक की इसकी भिन्न व्याख्या होती है।[२] हम इसका निर्णय भी नहीं कर सकते। हम तो इतना ही मान कर चलते हैं कि पागल का अर्थ है पागल।

१. Royal Medico-Psychological Association of Great Britain.

२. Mental Abnormality & Crime—Page 60.

इससे ज्यादा और क्या व्याख्या करें? प्राय हम ऐसे लोगो को देखते हैं जो अनियंत्रित भावावेश मे ऐसा कार्य कर बैठते है जिससे उन्हे रोकने के लिए शारीरिक शक्ति का उपयोग करना पडता है। अगर कोई यकायक अपना मुँह पीटना शुरू करे तो सिवा उसका हाथ बाँध देने के दूसरा क्या उपाय है? किसी के मन पर यकायक भूत चढ बैठे तो उसकी रोकथाम करना बडा कठिन होता है। ऐसा भूत चढने पर आदमी को अपनी स्थिति, अपनी शक्ति, अपने चारो ओर के वातावरण, किसी का ध्यान नही रहता। ऐसे व्यक्ति को, उसका मन शान्त होने पर दड देने से कोई लाभ नही। जिस प्रवृत्ति मे अपराध हुआ था, जब वही नही रही तो दड से क्या लाभ? मन की ऐसी बहुत सी बीमारियाँ है जिनका आजतक उपाय नही हो सका है। इसीलिए अपराध की जिम्मेदारी लादने के लिए कानून ने जो सिद्धान्त बना रखे हैं, वे दोष-पूर्ण हैं। फिर भी, विचारपति लोग उसी कानून का ऐसी मानवता के साथ उपयोग करते हैं कि किसी के साथ उनकी जानकारी मे अन्याय न हो।[१]

हमने अपनी पुस्तक मे चार्ल्स गोरिंग का उल्लेख किया है। लोम्ब्रोज़ो नामक इटालियन अपराधशास्त्री का साधिकार खंडन गोरिंग ने सन् १९१३ मे लदन मे प्रकाशित किया था। लोम्ब्रोज़ो ने प्रतिपादित किया था कि अपराधी प्रवृत्तिवाले का विशेष प्रकार का नाक-नक्शा होता है। गोरिंग लोम्ब्रोज़ो को "विज्ञान का राजद्रोही"[२] मानते थे। पर, एक प्रकार से गोरिंग भी लोम्ब्रोज़ो के सिद्धान्त के शिकार बन गये। वे अपराधी को सर्वसाधारण की "मनोवृत्ति" से भिन्न मानते थे। उसके मन की स्थिति को साधारण से भिन्न स्वीकार करते थे। यदि ऐसी बात मान ली जाय तो हर एक अपराधी "असाधारण मानसिक स्थिति" का माना जायेगा। अतएव मानसिक दुर्बलता के नाम पर किसी के साथ रियायत नही की जा सकती। किन्तु मानसिक दुर्बलता को बिना माने मनुष्य की ठीक से पहचान भी नही हो सकती।

दुर्बल मस्तिष्क

बीसवी शताब्दी के शुरू मे इंग्लैंड मे दुर्बल मस्तिष्कवालों पर विचार करने के लिए एक शाही कमीशन बैठा था। सन् १९१३ मे वहाँ दुर्बल मस्तिष्कवालो के लिए

१. वही, पृष्ठ ७०

२. "Traitor to Science".—वही, पृष्ठ १४७

एक कानून[1] बना जिसके अनुसार ऐसे "अपराधियो को अलग रखने तथा उनकी पृथक् देखरेख का आदेश दिया गया था। इसके अनुसार चार प्रकार के व्यक्ति दुर्बल मस्तिष्क के माने गये थे—(१) बुद्धू या मूढ—जन्म से ही इतने बेवकूफ कि वे मामूली खतरे से भी अपनी रक्षा नही कर सकते थे, (२) निरर्थक—ऐसे व्यक्ति या बच्चे जो एकदम बुद्धू नही है, फिर भी जिनका दिमाग इतना खराब है कि वे अपने को जरा भी सम्भाल नही पाते, (३) दुर्बल मस्तिष्क—जिनकी बुद्धि इतनी दोषपूर्ण है कि सदैव इनकी रक्षा की, हिफाजत की जरूरत पडती है, (४) नैतिक दुर्बल—जो बचपन से ही इतने विकृत स्वभाव के है तथा दुष्ट और अपराधी स्वभाव के है कि दड तथा अनुशासन का उन पर कोई प्रभाव नही पडता। इस कानून के दायरे मे परिवार, अनाथालय या आश्रम, जेल, स्कूल—कही से भी प्राप्त दुर्बल मस्तिष्क-वालो की रक्षा, सेवा तथा चिकित्सा का प्रबध था। और सन् १९१३ के बाद १९१९ मे, फिर १९२५ मे, फिर १९२७, १९३८, ४८ मे —इस प्रकार कई बार इस कानून मे सशोधन होते रहे। फलत दुर्बल मस्तिष्कवालो की चिकित्सा, उनके उपचार तथा उनकी रक्षा का समुचित प्रबध है। भारतवर्ष मे हमारी गुलामी के दिनो मे इस ओर कुछ भी ध्यान नही दिया गया। सन् १९१९-२० मे जेल जॉच कमेटी ने दुर्बल मस्तिष्कवालो के लिए जेल से पृथक् स्थान रखने की सिफारिश की थी।[2] फलत कुछ अलग पागलखाने बने। पर दुर्बल मस्तिष्क वालो के लिए हमारे देश मे अभी एक प्रकार से कुछ नही हुआ है और लाखो पागल या उन्मादी बच्चे-बडे बूढे अरक्षित तथा चिकित्सा के अभाव से अपना अमूल्य जीवन नष्ट रहे हैं।

जिस म-नाटेन नियम का युगो तक इतना प्राधान्य था, उसे अब वह मर्यादा तथा स्थान नही प्राप्त है। नवीन मनोवैज्ञानिक खोजो ने उसे बहुत पीछे छोड दिया है। आधुनिक मानसिक विकृतियो के विशेषज्ञो तथा वैज्ञानिको ने "उचित तथा अनुचित" की उसकी नाप तौल को "अमानवी" घोषित कर दिया है। आजकल सयुक्त राज्य अमेरिका की एक अदालत का निर्णय बडा ही महत्त्वपूर्ण माना जाता है। सन् १९५४ मे डरहम बनाम सयुक्तराज्य अमेरिका के मुकद्दमे मे, कोलम्बिया प्रदेश मे जो फैसला हुआ है उसने बडी सरल भाषा मे पागलपन की दशा मे किये गये अपराध

१ Mental Deficiency Act, 1913 (3 & 4, Geo, V. C. 23)

२. Penology—Old & New—पृष्ठ २०८

की जिम्मेदारी स्पष्ट कर दी है। उसके अनुसार—"यदि अभियुक्त ने मानसिक रोग या दोष के कारण गैर कानूनी कार्य किया है तो वह उस अपराधी कार्य के लिए जिम्मेदार नही है।" इस निर्णय पर ससार के सभी अपराध-शास्त्रियो ने काफी लम्बी बहसे की है। इस पर लेख पर लेख लिखे गये है और रेडियो व्याख्यान भी प्रसारित हुआ है।[१]

म-नाटेन तथा इस फैसले को, इनके अन्तर को, समझने के लिए हमे मन का रोग तथा अपराध की ज़िम्मेदारी के सवाल पर एक बार फिर सरसरी तौर पर विचार करना पडेगा।

१ Sheldon Glueck, Ph D., LL. D , Roscoe Pound Professor of Law, Harvard Law School—"Mental Illness and Criminial Responsibility"—The Journal of Social Therapy—3rd Quarter—1956. Vol 2. No 3.

अध्याय ३०

क्या मानसिक रोगी अपराधी है ?

सन् १८३५ मे लार्ड हेल ने अपने एक प्रसिद्ध लेख में[१] लिखा था—"ऐसे व्यक्ति मे, जिसके मन मे उदासीनता या अन्य प्रकार की बीमारी हो, अपने कार्यो को समझने की उतनी शक्ति होती है जितना १४ वर्ष के एक बच्चे मे।" पर लार्ड हेल के इस तर्क को काटते हुए सन् १८३८ मे अमेरिका के न्याय पडित डा० इजाक रे ने एक लेख लिखा। वे लिखते है—"पागलो के बारे मे जो कानून बने है उनके काफी बाद मे चिकित्सको को मन की बीमारी का सही पता लग पाया है। इसलिए कानून के पवित्र नाम पर काफी भूले की जा चुकी है।"[२] सन् १८४३ मे प्रसिद्ध म-नाटेन मामला आ गया। म-नाटेन के वकील काकबर्न ने लार्ड हेल तथा लार्ड कोक की प्राचीन दलीलो की धज्जिया उडा दी। उन्होने कहा कि डा० इजाक रे ने उन लोगो को काफी अच्छा जवाब दे दिया है। उनका (लार्ड हेल का) तर्क तो पागलखाने के कुछ अभागो को देखकर उसी अनुभव के आधार पर बना था। सवाल तो यह है कि वास्तव मे पागलपन क्या है? और, काकबर्न ने कहा—

"यह नही भूलना चाहिए कि इसके बारे मे, इस रोग के बारे मे, हमारी जानकारी बहुत नयी है। सरकारी वकील ने कहा है कि यदि अभियुक्त एकदम पागल है तो उसे छोडा जा सकता है पर इस सम्बध मे मैं उनका ध्यान हैडफील्ड नामक एक पागल के मामले की ओर दिलाना चाहता हूँ जिसने सम्राट् जार्ज तृतीय को गोली मारने का प्रयास किया था। उसकी सफाई मे बोलते हुए लार्ड अर्स्काइन ने कहा था—यदि यह कहा जाय कि किसी व्यक्ति को पागलपन के नाम पर दड से बचाने के लिए यह साबित करना होगा कि उसकी बुद्धि तथा होशोहवास इतना लुप्त हो गया रहेगा कि

१. Lord Hale—Pleas of the Crown

२. Dr. Isaac Ray of Boston—"A Treatise on Medical Jurisprudence of Insanity."

उसे अपना नाम भी याद न रहे, अपनी दशा का ध्यान न रहे, वह अपने रिश्तेदारो को भी पहचान न सके—तो इस प्रकार का पागलपन कभी नही रहा है और न रहेगा।"

प्रधान विचारपति टिंडल ने जूरी से उनकी राय पूछी। सबने एकमत होकर म-नाटेन को "पागलपन के कारण निर्दोष" घोषित किया था। महारानी विक्टोरिया के शासनकाल मे म-नाटेन का निर्दोष घोषित होना एक बडी महत्वपूर्ण घटना है। कानून तथा अपराध-शास्त्र के लिए इसका अत्यधिक महत्त्व है। हाउस आव लार्ड्स (सरदार सभा) मे प्रधान न्यायाधीश ने इस सम्बन्ध मे कानून का स्पष्टीकरण किया।

"आपका पहला सवाल है कि यदि कोई व्यक्ति साधारण तौर पर पागल न हो पर उसके मन मे किसी एक या दो व्यक्ति के प्रति उन्माद तथा प्रमाद हो और वह अपराध करे तो कानून क्या कहता है। महारानी के न्यायाधीशो का उत्तर है कि वह व्यक्ति उसी समय दडनीय है जब वह अपना अपराध करते समय यह जानता हो, समझता हो कि देश के नियम के विरुद्ध कार्य कर रहा है। आपका अन्तिम प्रश्न है कि जूरी लोगो पर पागलपन की व्याख्या करने का काम किस सीमा तक छोडा जा सकता है। हमारा उत्तर है कि जूरी लोगो से यह बतला देना चाहिए कि वे हर एक व्यक्ति को विवेकशील समझे। उसमे इतनी समझ मान ले कि वह अपने अपराध की जिम्मेदारी समझता है—जबतक कि उनके सन्तोष के अनकूल यह साबित न हो जाय कि ऐसा नही था। पागलपन की दलील देनेवालो को यह साबित करना पडेगा कि अभियुक्त को अपराध करने के समय इतनी बुद्धि नही थी कि उसे अनुमान हो सके कि वह क्या करने जा रहा है तथा उसके कार्य का क्या परिणाम होगा और इसकी जानकारी हो भी तो वह यह न समझता हो कि जो कर रहा है वह अनुचित है।"

विचारपति टिडल का बयान कमसे कम ५० वर्ष तक न्यायालयो के सामने आदर्श रूप मे था। पर धीरे-धीरे यह प्रकट होने लगा कि मन की उपरिलिखित समीक्षा मे कई दोष है। मौलिक दोष तो यही है कि इस प्रकार के प्रयोग मे मानसिक रोगो तथा मन की गति से आतरिक एकता नही स्वीकार की गयी है। तीस वर्ष पूर्व ग्लूक शेल्डन[१] ने एक साधिकार पुस्तक लिखी थी। उसमे उन्होने टिंडल के दोषपूर्ण

१ Sheldon Glueck—"Mental Disorders and Criminal Law"—Harvard, U. S. A.

"मानसिक प्रयोग" का बडे अच्छे ढग से खडन किया था। शेल्डन का कहना था कि इस प्रयोग के द्वारा "काम के गुण, स्वभाव तथा अनौचित्य" तीनो की सही ढग से जॉच नही हो सकती। शेल्डन ने डा० इजाक रे के इस सिद्धान्त का समर्थन किया है कि "उचित-अनुचित" का नियम काफी दोषपूर्ण है। मनुष्य के मानसिक जीवन मे ज्ञान का, जानकारी का 'भी बडा भारी स्थान है। ज्ञान हमारी क्रियाओ तथा कार्यो को प्रोत्साहित करता रहता है। इसलिए बुद्धि को उचित तथा अनुचित की जानकारी होते हुए भी वह असतुलित, रोगी तथा विकृत हो सकती है। शेल्डन उन अमेरिकन कानून पडितो के घोर विरोधी है जो कहते है कि चूँकि अपराधी को उचित-अनुचित का ज्ञान है, अतएव उसे जरूर दड मिलना चाहिए। लेकिन एक प्रत्यक्ष उदाहरण से इस भ्रम का खडन हो जायेगा। पागलखाने मे कुछ थोडे से नौकर या रखवारे होते है पर पागलो की सख्या रक्षको से कही अधिक होती है। केवल दड के भय से, दड के आतक से पागल व्यवस्था मे, अनुशासन मे रहता है। अतएव उसे उचित-अनुचित का भास रहता है किन्तु फिर भी वह पागल है। इग्लैंड मे, क्रायडन के निकट एक पागलखाना है। उसके मेडिकल सुपरिन्टेन्डेन्ट ने हाल मे अपने एक बयान मे कहा है कि "वास्तव मे सब मानसिक रोगो का एक मात्र कारण है एकाकी-पन। चूकि ये व्यक्ति अपने साथी पुरुष-स्त्रियो के साथ, समाज, मे परिवार मे सन्तोष जनक रूप से नही रह सकते अतएव वे अपने को अपने भीतर खीच लेते है जिसका परिणाम होता है उनका अत्यधिक एकाकीपन—और फिर वे पागल हो जाते है। इन सब बातो से विचारपति टिडल का मानसिक प्रयोग सदोष प्रकट हो जाता है।

पर डरहम के मामले ने, जिसका हम ऊपर उल्लेख कर आये है, कानूनी दृष्टि-कोण को और भी स्पष्ट कर दिया। डरहम को इस बिना पर छोड दिया गया कि वह पागल था अतएव अपने कार्यो के प्रति उत्तरदायी नही हो सकता। कोलम्बिया ज़िले की अपील की अदालत के विचारपति बाजेलॉन ने अपना फैसला सुनाते हुए कहा—"पश्चिमी जगत की यह नैतिक तथा वैध परिपाटी रही है कि जो अपनी स्व-तत्र इच्छा से, बुरी नीयत से गैरकानूनी काम करता है वह दडनीय होगा। हमारी परिपाटी भी यही रही है कि जो कार्य मानसिक दोष या रोग के कारण किया जाय उसकी अपराधी पर जिम्मेदारी नही हो सकती। जिन नियमो का हम जिक्र कर रहे हैं, वे इसी उद्देश्य से बनाये गये है।"

यह कहा गया था कि पागलखाने मे अभियुक्त तब तक रहेगा ही जब तक वह एकदम अच्छा न हो जाय अतएव सार्वजनिक रक्षा, जनता की हिफाजत तो बराबर होती रहेंगी। राज्य को अपराधी के प्रति इससे अधिक और क्या चाहिए? विचार-

पति बैजोलॉन के फैसले की शेल्डन ग्लूक ने बडी प्रशसा लिखी है। उन्होने कहा कि "मन के सम्बध मे जो नवीनतम ज्ञान प्राप्त हो चुके है उनसे यह सिद्ध हो चुका है कि यदि यह साबित हो भी जाय कि मानसिक रोगी का अपराध एकमात्र मानसिक रोग के कारण नही था, फिर भी अपराधी को मानसिक रोगी जानते हुए भी दड देना अनुचित है।"

पर, डरहम के फैसले का महत्त्व एक दूसरी अमेरिकन अदालत के फैसले ने कम कर दिया। विचारपति लेमन ने, न्यू हैम्पशायर की अदालत मे, अपना फैसला देते हुए कहा था कि "हमको कोलम्बिया की अदालत से अपने को नत्थी करके म-नाटेन सिद्धान्त के विरुद्ध विद्रोह नही करना है।" पर, इस भिन्न निर्णय से कोई चिन्ता की बात नही है। कानून के मामले मे इस प्रकार के मतभेद तो होते ही रहते है। सन् १८१० मे उस युग मे बन्दियो के सबसे बडे रक्षक, सर एस० रोमिली ने लन्दन से लिखा था कि "यह प्राय होता है कि एक ही प्रकार की घटना, एक ही प्रकार के वातावरण मे घटित होकर एक विचारपति द्वारा क्षमा का कारण बन जाती हे और दूसरी अदालत से उसके लिए दड मिलता है।" सर हेनरी हाकिंग्स, ब्रिटिश जज ने भी इस बात पर खेद प्रकट किया था कि "एक ही प्रकार की घटना, एक ही प्रकार का कारण, एक ही प्रकार का मामला और फिर भी भिन्न प्रकार का दड होना बडे खेद की बात है। हमको एक ही दृष्टिकोण से एक प्रकार के मामले को देखना-समझना चाहिए। एक ही प्रकार का दड-विधान बनाने की नीयत से प्रो० एरिक फेरी ने इटली मे एक ऐसा दडविधान तैयार किया था कि जिसमे सभी दृष्टिकोण का ध्यान रखा गया था। फेरी ने उस समय कहा था कि अपराधी का यह अधिकार है कि एक ही प्रकार के अपराध के लिए एक ही प्रकार का दड मिले।" सयुक्तराज्य अमेरिका मे एक ऐसा आदर्श दड-विधान तैयार हो रहा है जिसमे अपराधी के भिन्न प्रकार के अपराध तथा व्यवहार मे समानता के उसूल पर दड देने का नियम होगा।

शेल्डन ग्लूक ने अपनी पत्नी एलीनर ग्लूक के साथ मिलकर सन् १९३० मे, ५०० अपराधियो पर पुस्तिका प्रकाशित की थी।[1] इसमे उनके अपराधी जीवन की पूरी समीक्षा करके उनमे जो सामाजिक तथा सास्कृतिक, वैयक्तिक

१. Sheldon Glueck & Eleanor Glueck—"500 Criminal Careers".

एव सामूहिक एकता, एक भावना, समानता प्राप्त हो सकी, वह प्रकट मे व्यक्त कर दी गयी है, ताकि समाज यह भी समझ जाय कि उनमे तथा हमारे मे (अपराध न करनेवालो मे) कितनी समानता है। जब इतनी अधिक समानता हो तो दड मे भी समानता होनी चाहिए। अत्यधिक कठोर तथा अत्यधिक उदार विचारपति दोनो ही किसी प्रकार की दोषपूर्ण धारणा बनाकर काम करने के दोषी है। कानून तब तक कठोर नही हो सकता जब तक उसकी व्याख्या करनेवाला स्वय कठोर न हो। इन सब बातो को ग्लूक पति-पत्नी ने अच्छे ढग से प्रतिपादित किया है। यह सही है कि ५०० अपराधियो मे उन्होने मानसिक विकृति पर ही अधिक ध्यान दिया है। उनकी छानबीन के अनुसार कारागार मे भेजे जाने के समय ७५ फीसदी बदियो मे कोई मानसिक रोग नही मिला। पर जेल के भीतर की बदी-सख्या की परीक्षा करने पर ८७ फीसदी बदी मनस्ताप के रोगी या विकृतमना मिले। इससे तो यही सिद्ध होता है कि कारागार मे मन का रोग पैदा भी होता है, और बढता भी है।

कौन अपराधी है और कौन नही, यह कहना बडा कठिन है, ऋासी की राय मे हर एक बालक अपराधी होता है। क्लिनार्ड ने तो यहाँ तक कह दिया है कि "यह पूछा जा सकता है कि अमुक व्यक्ति अपराध की ओर बढा तथा दूसरा क्यो नही बढा ? दोनो मे अन्तर क्यो हो गया ? जीवन के सघर्ष मे, जीवन के तनाव मे, कोई व्यक्ति घटनावश अपराध की ओर खिच आता है और कोई उससे दूर बह जाता है। पर यह नही भूलना चाहिए कि अपराध का काम मनुष्य ही करता है।" इसी लिए मानव के व्यवहार के गम्भीर परीक्षण के बाद, रोरशाश[1] प्रयोग से यह सिद्ध हो गया है कि मानसिक विकृतियो के परीक्षण से जो लोग आदतन जिद्दी मालूम पडे उनमे ८५ प्रतिशत अपराधी निकले। जो लोग जिद्दी स्वभाव के नही थे, उनमे केवल ३९ प्रतिशत अपराधी प्रवृत्ति के निकले।

इन सब बातो से यह साबित हो जाता है कि किसी न किसी अश तक हर एक व्यक्ति मे कोई असाधारण बात जरूर मौजूद है। मानसिक रोगी मे यह असाधारणता बढ जाती है, उसमे उत्तेजना अधिक होती है। उसका व्यक्तित्व ही उत्तेजित तथा उग्र प्रकट होता है। इसलिए ऐसी दशा मे उसके मन का विचार किये बिना उसके कार्यो के लिए उसे दोषी ठहरा देना अनुचित होगा।

१. Rorchach Test

विश्व स्वास्थ्य सघ की चेष्टा

आज सभ्यता इतनी तीव्र गति से आगे बढ रही है कि मनुष्य के पास अपने को समझने के लिए अवकाश नही है। जीवन मे इतना सघर्ष है तथा तनाव है कि मन तथा शरीर की इन्द्रियाँ जल्दी थक जाती है। उनका धैर्य, उनका सम्बल टूट जाता है। ऐसी दशा मे उन्माद, प्रमाद या विक्षिप्तता का होना एक प्राकृतिक क्रम प्रतीत होता है। सभ्य तथा धनी यूरोप मे लगभग २० लाख व्यक्ति अस्पतालो मे मानसिक रोग से पीडित पडे हुए है। यूरोप के कल-कारखानो मे सबसे ज्यादा गैर-हाजिरी जुकाम की बीमारी के कारण होती है। उसके बाद दूसरा नम्बर मानसिक रोग, विशेष कर मनस्ताप का है। यूरोप के अस्पतालो मे लगभग १० लाख मरीज मनस्ताप तथा उसी प्रकार की बीमारी[1] के शिकार है। ऐसे भयकर वेग से मानसिक रोग मे वृद्धि को रोकने के लिए विश्व स्वास्थ्य सघ ने फिनलैंड की राजधानी हेलसिकी मे इसी वर्ष, १९५९ मे २४ जून से ३ जुलाई तक एक सम्मेलन किया था। इसमे मनोवैज्ञानिक, मनोविश्लेषक, चिकित्सक, महिलाएँ, सभी उपस्थित थे। सम्मेलन मे उन सभी उपायो पर विचार किया गया जिन्हे भिन्न देश मानसिक स्वास्थ्य की रक्षा के लिए अपनाये हुए हैं। किस प्रकार कही घर घर जाकर बच्चो के दिल और दिमाग की परीक्षा की जाती है, उन्हे औषधि दी जाती है। कही पर इनके अस्पताल खुले ढग के है, कही पर बद है। सम्मेलन का सर्व-सम्मत निर्णय था—

१ मानसिक रोगियो के साथ जितना अच्छा व्यवहार अस्पताल मे या घर पर होगा, उतना ही शीघ्र वे स्वस्थ हो जायँगे।

२ दोषी बच्चो की शिक्षा का अधिक उत्तम प्रबध होना चाहिए, अन्यथा उनको अस्पताल आदि मे रखने का प्रबध करना होगा।

३ चिकित्सको का ऐसा प्रबध रहे कि मन के रोग की प्रारम्भिक दशा मे ही उसका पता चल जाय, जितनी जल्दी इस रोग का पता चलेगा, उतनी अच्छी चिकित्सा होगी।

४ बच्चो तथा बूढो के लिए जो "अस्पताल" या पागलखाने है उनमे जितना कम बधन होगा उतना ही लाभ होगा।

५ जनता को, अधिकारियो को तथा स्वास्थ्य-अधिकारियो को मानसिक रोग की समस्या को अधिक सहानुभूति से देखना चाहिए।

१. Schizophrenia, Neurosis. Neurosis—मनस्ताप

इस सम्मेलन ने स्कूलो मे, परिवारो मे तथा कारखानो मे जाकर ऐसे रोगियो का पता लगाने तथा उनकी सेवा का निश्चय किया था। इसने यह भी राय दी है कि भयकर अपराध वाली पुस्तके, चित्र तथा नाटक आदि से भी मनुष्य के—बच्चे से लेकर बूढे तक के—स्वभाव पर काफी तनाव पैदा होता है, जिससे मानसिक रोग तथा अपराध की प्रवृत्ति पैदा होती है। सम्मेलन ने निश्चय किया है कि मन के रोगो की चिकित्सा के लिए विशेषत शिक्षित तथा दीक्षित लोग तैयार किये जायँ।

अपराधी की बुद्धि

ऊपर लिखी बातो से पाठक यह निष्कर्ष न निकाल ले कि अपराध करनेवाला रोगी-मस्तिष्क का ही होता है या उसकी बुद्धि साधारण मनुष्य की तुलना मे कमज़ोर होती है। अपराधी तथा अपराधी प्रवृत्तिवाले की बुद्धि की परीक्षा कुछ समय से की जाने लगी है। ज्यो-ज्यो परीक्षण का ढग सही रास्ते पर आता जा रहा है, इस सम्बध मे मत-वैभिन्न्य काफी हो रहा है। पहले जो परीक्षाएँ होती थी उनमे मानसिक दोष और नैतिक दोष को मिला देते थे। दोनो को मिला देने से यह निचोड निकलता था कि गैर [illegible] मे अपराधी की बुद्धि दुर्बल होती थी। किन्तु बात ऐसी नही है। इग्लैड के वेकफील्ड नामक स्थान के प्रसिद्ध कारागार के बदियो की परीक्षा हुई। उन पर प्रयोग किया गया। इस प्रयोग के परिणाम को पूरा नही कहा जा सकता, क्योकि बदियो के बीच ही प्रयोग हुआ और साधारण व्यक्ति की कोई परीक्षा नही हुई थी। अतएव तुलनात्मक जॉच तो हुई नही। पर, अगर यह साधारण विश्वास हो कि बन्दी या अपराधी व्यक्ति की बुद्धि साधारण नागरिक की बुद्धि से दुर्बल होती है, तो वेकफील्ड जेल की जॉच से यह पता चलता है कि अपराधियो मे जिसके कारनामे जितने काले होगे वह अन्य अपराधियों की तुलना मे बुद्धि मे उतना ही कमजोर होगा। यह प्रयोग १९५२ - ५३ मे हुए थे। ९५५ अपराधियो को तीन श्रेणी मे बाँट दिया गया था। ३४४ वासना के अपराधी थे, १४३ हिंसा के अपराधी थे और ४६८ चोरी आदि छोटे अपराधो के दोषी थे। प्रयोग से पता चला कि इन सब अपराधियो मे सबसे अधिक बुद्धिमान् चोरी तथा छोटे-मोटे अपराधों के दोषी थे। बुद्धि का औसत सबसे कम—तुलनात्मक रूप मे वासना के तथा कभी घोर हिंसा के अपराधियो मे मिला। पर, यह तो हम सिद्ध कर चुके है कि वासना का अथवा घोर हिसात्मक कार्यों का अपराधी उतना बुरा व्यक्ति नही होता तथा उसकी वैसी अपराधी वृत्ति नही होती जितनी कि चोर, बदमाश तथा लुच्चे की। तो फिर, यह क्यो न कहा जाय कि जो जितना पक्का बदमाश होगा उसकी बुद्धि उतनी ही प्रखर

होगी। अपराध की गुरुता अपराधी की नीचता नही सिद्ध कर सकती। आवेश तथा उन्माद मे किसी का गला काट लेनेवाला कम बुद्धि का, नादान, व्यक्ति भी हो सकता है। पर, जो जितना ही चतुर तथा शरीफ ढग से वदमाशी करनेवाला होगा उसका अपराध भी हल्का मालूम होगा किन्तु वह नम्बरी शातिर बुद्धिमान् भी होगा। और भी बहुत सी परीक्षाएँ की गयी। सवका निष्कर्ष यह निकला कि "वुद्धिमत्ता तथा जीवन की दुर्बलताओ" का कोई सम्वध नही है।[१] यह कहना भी भूल है कि वार-बार अपराध करनेवाला बुद्धि मे किसी से कम है। इस निरूपण की पुष्टि मे काफी प्रमाण है। उदाहरणार्थ श्री रोपर ने वेकफील्ड जेल के ८०० मुक्त वदियो की परीक्षा की और उनका भी यही कथन था कि "बुद्धिमत्ता तथा अपराधी भावना मे कोई सम्बन्ध नही है।"[२]

इसलिए बुद्धि तथा अपराध का सम्वध जोड कर कोई गलत तर्क या सिद्धान्त बना लेना वास्तविकता का अनादर करना होगा।

१. The British Journal of Delinquency—Vol VI—Number 2, September, 1955—Page 149-150

२. W F Roper—"A Comparative Survey of the Wakefield Prison Population in 1948."—The British Journal of Delinquency, Vol. I, No. 1, July, 1950.

अध्याय ३१

दण्ड का सिद्धान्त

अपराधी या अपराध की जिम्मेदारी निर्धारित किये बिना दड कैसे दिया जा सकता है। किन्तु जिम्मेदारी का प्रश्न आज का है। पुराने जमाने मे "जिम्मेदारी" की कल्पना भी नही की जाती थी। जिसने अपराध किया, व्यक्ति या समाज को हानि पहुँचायी, वह दडनीय था। बचपन, पागलपन, रोगी, उन्माद, उत्तेजना, वातावरण, परिस्थिति—इन सबमे से किसी भी बात का विचार नही किया जाता था।

पहले लोग स्वय अपनी शक्ति के अनुसार दड दे देते थे। यदि अपराधी शक्तिशाली हुआ तो वह निर्भय भी रह सकता था। पर जब समाज मे दड की प्रथा चली तो दड देनेवाले निर्धारित किये गये। उनका काम था दंड देना—दड की कोई सीमा नही थी। विचारपति के मन मे जो और जैसा आया, काज़ी जी के मन मे जैसी भी भावना उठी, वैसा दड सुना दिया। "कम से कम" या "अधिक से अधिक" दड का कोई विधान नही था। ढाई हजार वर्ष पूर्व चीन ऐसे सभ्य देश मे या मिस्र मे भी राजा या विचारपति जैसा मन हो सजा देते थे। जेलखाने का नियम ही नही था। बन्दीगृह बनते ही नही थे। प्राण-दण्ड मिलता था। या फिर शारीरिक दड, जैसे हाथ, कान, नाक काट लेना या कोडे मारना आदि।

इंग्लैंड मे एलिजबेथ के ज़माने से प्रथा चल निकली थी कि जो अपने प्राण बचाना चाहे, वह देश छोड दे—या फिर इग्लैण्ड के नये उपनिवेशो मे बस जाय। जार्ज प्रथम के शासनकाल मे सन् १७१८ मे एक कानून द्वारा ऐसे अपराधियो को उत्तर अमेरिका मे जाकर बसने का अवसर दिया गया था, पर हम बात कर रहे है हजारो वर्ष पहले की प्रथा की। चीन में दड के सम्बध मे कुछ परम्पराएँ चल पडी थी पर उनका सम्बध धर्म से अधिक था, जैसे, चीन मे कब्र मे सोनेवाले मुर्दे को छेड़ना, उसकी आत्मा को अपार कष्ट पहुँचाना तथा उसकी सद्गति को समाप्त कर देना समझा जाता था। अतएव यदि किसी जज को किसी मुकदमे के सिलसिले मे कब्र मे से मुर्दे को निकाल कर पुन. परीक्षा करानी पडती

थी और यह कार्य निरर्थक साबित होता था तो जज को ही प्राणदड हो सकता था। वहाँ पर सम्राट् द्वारा "निरीक्षक" नियुक्त थे जो हर जिले का दौरा करते थे और सम्राट् के "विचारपतियो" का काम देखते थे।

दड का अर्थ

दड के सम्बन्ध मे प्रतिशोध भावना बिल्कुल स्पष्ट है। जिसने दूसरे को हानि पहुँचायी उसे उस हानि को चुकाना पडेगा, भुगतान करना होगा। हो सकता है कि इस भुगतान मे जिसकी हानि हुई हो, मुआवजा केवल उसी व्यक्ति के लिए नही चुकाना है, समाज के लिए भी चुकाना है। अतएव उस व्यक्ति की यातना को ही भुगतान मान लेना चाहिए। किन्तु क्षति-पूर्ति की इस भावना के पीछे उस ज़माने मे जो भाव था, वही आज भी किसी न किसी रूप मे वर्तमान है। वह भाव था प्रायश्चित्त का। जिससे अपराध हुआ है, उसने नियम के उल्लघन का पाप किया है। इस पाप का प्रायश्चित्त करना ही होगा। प्रायश्चित्त अर्थ-दड के रूप मे या शारीरिक दड के रूप मे—किसी भी रूप मे हो सकता है। पश्चिमी पडितो मे अरस्तू शायद पहले व्यक्ति थे जिन्होने व्यक्तिगत प्रतिशोध के विरुद्ध लिखा था। अरस्तू ने कहा था कि व्यक्तिगत प्रतिशोध की बात नही सोचनी चाहिए—समाज की जो हानि हुई है, उसका निराकरण होना चाहिए। प्लेटो ने इससे भी आगे बढकर कहा कि "यह अनुचित बात है कि यदि किसी ने पीडा पहुँचायी है तो दूसरे को इतनी पीडा देने से ही प्रतिशोध होगा। वास्तव मे प्लेटो ने "पीडा का प्रतिशोध पीडा नही है" यानी "हिसा का उत्तर हिसा नही है" का महान् सिद्धान्त प्रतिपादित किया था।

सामाजिक सतुलन

पर, क्रमागत सभ्यता की ओर विकसित होते हुए समाज के सामने सामाजिक सतुलन की भावना अस्पष्ट रूप मे उपस्थित थी। अपराध हुआ, दड दिया, सामाजिक सतुलन स्थापित हो गया। इस प्रकार समाज दड देकर अपने न्याय का सतुलन करता चलता था। इसी के साथ धीरे-धीरे "सभी अपराधी समान रूप से दण्डनीय है" की बात भी पैदा हो गयी। आज हम यही बात कानूनी भाषा मे इन शब्दो मे कहते है—

"न्याय के सामने सब बराबर है"

यदि न्याय के सामने सब बरावर है तो वडे-बूढे, पागल, रोगी आदि किन्ही बातो

का विचार नही किया जा सकता—सबको सामान रूप से दड मिलना चाहिए। इस प्रकार "न्याय की दृष्टि मे सब बराबर" के सिद्धान्त का अनर्थकारी फल भी हुआ। धीरे-धीरे जो दड-विधान बना भी, उसमे भयकर त्रुटि यह थी कि केवल अपराध की परख होती थी। चाहे किसी भी दशा मे अपराध किया गया हो, उस पर निश्चित दड देना ही होगा। "न्याय के सामने तो सब बराबर है।" "स्वाधीनता, बधुत्व तथा समानता" के महान् मत्र को ससार के सामने रखनेवाले फ्रेंच राज्य-क्रान्तिकारियो ने भी न्याय के नाम पर वही भूल की। सन् १७९१ मे फ्रास का जो दड-विधान बना तथा १८१० मे उसका जो सशोधित रूप बना—यूरोप का यह प्रथम सुव्यवस्थित दड-विधान था—उसमे न्यायाधीश को ऐसा जकड दिया गया था कि वह अपनी बुद्धि का उपयोग ही नही कर सकता था। यदि किसी अपराध मे कालकोठरी की • जा देनी है तो उसे सपरिश्रम कारागार की सजा मे नही बदला जा सकता था। अपराधी पर अपराध की पूरी-पूरी जिम्मेदारी मान ली जाती थी, शुद्ध निजी, व्यक्तिगत जिम्मेदारी का प्रश्न था। और कुछ नही हो सकता था। न तो सजा घट सकती थी, न बढ सकती थी। किन्तु यह स्थिति उससे तो अच्छी ही थी जिसमे मनमानी सजा देने की रीति थी तथा जिस रीति के विरुद्ध प्रथम विद्रोही थे सीजारे बक्कारिया (सन् १७३५ से १७९४)। इस इटालियन अपराधशास्त्री ने यूरोप मे सबसे पहले मनमानी सजा के विरुद्ध आवाज उठायी थी और सन् १७६४ मे इन्होने बडे जोरदार शब्दो मे मनमानी सजा देने का विरोध किया था। उन्होने दड देने के सम्बध मे कम से कम ८० प्रस्ताव या तरीके बतलाये थे जिनमे से शारीरिक यातना को समाप्त करना, प्राणदड समाप्त करना आदि भी था। आज के दडविधान ने उनकी बतलायी प्राय ७० बातो को मान लिया है।[१] किन्तु बक्कारिया ने भी "निजी जिम्मेदारी" को मान लिया था। उनके सामने ऐसा कोई सवाल नही था कि अपराध करते हुए भी मनुष्य घटना या परिस्थिति के कारण उसके प्रति जिम्मेदार नही हो सकता। अपराधी का "व्यक्तित्व" भी विचारणीय है। केवल अपराध ही नही, अपराधी भी विचार का विषय है। ऐसी बात तो पहले पहल लोम्ब्रोजो ने उठायी, जिनका जिक्र हम पिछले अध्यायो मे कई बार कर चुके है। जिस प्रकार मनुष्य ने गलत काम करनेवाले को जिसके प्रति गलत काम किया गया है, उसी के प्रति जिम्मेदार न समझकर समाज

१. C. Bernaldo de Qurros—"The Modern Theories of Criminality'—Little, Brown & Co, London—1912–Page 125.

के प्रति भी जिम्मेदार समझना शुरू किया, उसी प्रकार दड भी व्यक्ति-विशेष का प्रतिशोध या अपराधी का प्रायश्चित्त न रहकर समाज की "रक्षा" का साधन बन गया, उसकी रक्षा का "यत्र" या "अस्त्र" बन गया। आज भी जेल विभाग को "सामाजिक सुरक्षा विभाग" कहते है। अपराधी समाज के लिए एक खतरे की वस्तु है। इस खतरे से बचाने का उपाय दड है। दड देने की क्रिया को सम्पादित करनेवाला विभाग सामाजिक सुरक्षा विभाग हुआ।

पीड़ा का महत्त्व

किन्तु, इस सुरक्षा की भावना का प्रारम्भ प्राचीन भावना से ही हुआ। प्राचीन भावना थी कि यदि किसी की हानि की जाय तो उसका मुआवजा चुकाना और यदि किसी से लाभ हो तो उसका भी किसी न किसी रूप मे मूल्य देना होगा। यानी, यदि राजा समाज के जीवन को सुरक्षित करता है तो वह कर के रूप मे, टैक्स के रूप मे हमसे भी कुछ लेने का हकदार है। यही प्रकार दड के सम्बध मे है, जैसा कि सिजविक ने लिखा[१] है—"ऐसा प्रतीत होता है कि आज भी यही धारणा है कि न्याय का तकाजा है कि जिससे भूल हुई है, उसे पीडा पहुँचायी जाय, उसे पीडा पहुँचाने से उसको तथा किसी अन्य को कोई लाभ न भी पहुँचे तो कोई आपत्ति नही है लेकिन मेरा ऐसा खयाल है कि सभ्य समाज मे पढे लिखे लोग अब इस बात को नैतिकता की दृष्टि से अच्छा नही समझते।"

पीडा देकर मनुष्य को सुधारने के अनेक उदाहरण भरे पडे है। ब्रिटिश जेलों मे अपराधी को इतनी यातना देते थे कि उसे निरर्थक काम दिया जाता था। लोहे के एक बडे पहिये को निश्चित घटो तक, निश्चित रफ्तार से घुमाते रहना पडता था। ऐसी बाते उस समय के समाज की मनोवृत्ति का भी परिचय देती है। समाज की रचना उस समय के "कार्य के लिए एक विश्वसनीय पथप्रदर्शक" होती है। जब परिवर्तन का सवाल उठता है, उस रचना मे परिवर्तन की बात उठती है तो वह रचना ही, उस समय का•उसका ढाँचा ही एक ओर परिवर्तन के लिए दबाव डालता है, दूसरी ओर उससे "रक्षा" का भी उपाय करता है।[२]

१ Sidgwick—"Methods of Ethics"—Macmillan & Co, London—Fifth Edition 1893, Page 281.

२. S. F. Nadel—The Theory of Social Structure—Cambridge University, 1956—Page 147-148

समाज की रचना मे भी क्रमश परिवर्तन हुआ और समाज ने अपनी ही रक्षा के लिए दड का रूप भी बदलना शुरू किया। आधुनिक अपराध-शास्त्र तथा दड-शास्त्र के सबसे प्रथम नेता तथा समाज-विज्ञान और सामाजिक अपराध-शास्त्र के अग्रणी क्वेटलेट का जन्म हुआ। इस पडित ने[१] वह दीक्षा दी जो हम आज अपने विषय का सबसे महान् मत्र समझते है। उन्होने कहा था—"समाज अपराध तैयार करता है। अपराधी उसे कार्यरूप मे परिणत करता है।" क्वेटलेट ने काट और हीगल ऐसे विद्वान् दार्शनिको के भ्रम का निवारण कर दिया। हीगल ने अपनी पुस्तक 'फिलासफी आफ राइट्स' मे हिसा को हिसा से ही नष्ट करने का उसूल साबित किया था। वे तो कहते थे कि "यह उचित ही नही है, आवश्यक भी है कि शक्ति के प्रथम आक्रमण को शक्ति के द्वितीय आक्रमण से समाप्त किया जाय समाज की व्यवस्था पर अपराधी एक आक्रमण है। इस आक्रमण का मुकाबला दड से करना चाहिए।" काट ने भी कहा था कि "राजा को नियमो के तोडनेवाले को दड देने का दु.खद अधिकार है।" ऐसे सिद्धान्तो के विपरीत क्वेटलेट का यह कहना कि "समाज अपराध तैयार करता है"—अपराधी व्यक्ति की जिम्मेदारी को बहुत कम कर देता है।

भारतीय दड-प्रथा

पिछले अध्यायो मे हम भारत की दडनीति की व्याख्या कर चुके है। उसे दुह-राने की जरूरत नही है। पर क्वेटलेट ने १८६९ मे समाज की अपराध के प्रति जिम्मेदारी की जो बात लिखी थी, उसको ५००० वर्ष पूर्व महाभारत मे अधिक अच्छे ढग से समझाया गया है। धर्म-प्राण भारत मे "पाप" तथा "पुण्य" की भावना प्रत्येक कर्तव्य के साथ निहित है। इसी लिए "प्रायश्चित्त" का भाव भी अपराध के साथ है। किन्तु, समाज का रक्षक, माता, सेवक—सब कुछ राजा ही होता था। अतएव समाज मे व्यवस्था को कायम रखना भी उसका कर्तव्य था। इसी से राजा "दड की मूर्ति" भी था। किन्तु दड की कल्पना प्रतिशोध के रूप मे नही प्रायश्चित्त तथा समाज की रक्षा के रूप मे ही है। महाभारत, शातिपर्व मे "कारागार" का वर्णन है। हजारो वर्ष पहले, जब दुनिया के लोग बन्दीगृह की कल्पना भी नही करते थे, हमारे देश मे कारागार थे। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र मे निर्देश किया है कि

१. क्वेटलेट—"Social Physics" १८६९

अवहार्यो भवेच्चैव सान्वयः षट्शतं दमम् ।
निरन्वयोऽनपसरः प्राप्तः स्याच्चौरकिल्विषम् ।। अ० ८, श्लो० १९८

पराये का धन बेचनेवाला, धन के स्वामी का सम्बधी हो तो राजा उसे ६०० पण दड दे। यदि उस धन के स्वामी से इस व्यक्ति का कोई सम्बध न हो, न उससे किसी प्रकार का उस धन से सम्बध हो, तो पराये का धन वेचनेवाला चोर के समान अपराधी है, इसलिए उसे चोर का दड मिलना चाहिए।

पुरुषाणां कुलीनानां नारीणां च विशेषतः।
मुख्यानां चैव रत्नानां हरणे वधमर्हति।। अ० ८, श्लो० ३२३

कुलीन पुरुषो को, विशेष कर कुलीन स्त्रियो को (अपराध करने पर) तथा बहुमूल्य रत्न चुरानेवाले को राजा प्राण-दड दे।

कार्षापणं भवेद्दण्ड्यो यत्रान्यः प्राकृतो जनः।
तत्र राजा भवेद्दण्ड्यः सहस्रमिति धारणा।। अ० ८, श्लो० ३३६

जिस अपराध मे साधारण मनुष्य को एक कार्षापण दण्ड होता है उसी अपराध मे राजा को एक हजार पण दंड होना चाहिए। यह शास्त्र का सिद्धान्त है।

राजा को दड की सीमा मे केवल भारतीय धर्म—धर्मशास्त्र ने बाँधा है। ब्रिटिश सिद्धान्त तो है कि "राजा कोई भूल कर ही नही सकता।" पर भारतीय ऐसा नही मानता। हमारे यहाँ सभी के लिए पाप या अपराध के लिए प्रायश्चित्त का भी निर्देश है। मनु कहते है—

एतैर्द्विजातयः शोध्या व्रतैराविष्कृतैनसः।
अन[illegible]स्तु मन्त्रैर्होमैश्च शोधयेत्।। अ० ११, श्लो० २२६

प्रकट पाप की शान्ति के लिए, द्विजो को पूर्वोक्त चान्द्रायण आदि व्रत करना चाहिए और गुप्त पाप की शान्ति के लिए मन्त्रो का जप और होम करे।

अपराध से बचने की बात कितने अच्छे ढग से की गयी है—

लोभः स्वप्नोऽधृतिः क्रौर्यं नास्तिक्यं भिन्नवृत्तिता।
याचिष्णुता प्रमादश्च तामसं गुणलक्षणम्।। अ० १२, श्लो० ३३

अधिकाधिक धन की लालसा, निद्रालुता, कातरता, क्रूरता, नास्तिक्ता, अनाचार, याचनशीलता, धर्माचरण मे प्रमाद, ये सब तमोगुण के लक्षण है।

याज्ञवल्क्य का मत

मनुस्मृति ईसा से ४०० वर्ष पूर्व यानी २३५० वर्ष पूर्व की रचना है। याज्ञवल्क्य की स्मृति ईसा से १०० वर्ष पूर्व यानी २१०० वर्ष पूर्व की रचना है। याज्ञवंल्क्य ने राजा को तथा प्रजा को समान रूप से कर्तव्य शास्त्र मे बॉध दिया है। राजा के लिए तो वे यहॉ तक लिखते है—[1]

अन्यायेन नृपो राष्ट्रात्स्वकोशं योऽभिवर्धयेत्।
सोऽचिराद्विगतश्रीको नाशमेति सबांधवः॥ याज्ञ०, ३४०

अन्याय से अपने कोष को बढानेवाला राजा थोडे ही समय मे लक्ष्मी-हीन होकर बाधवो सहित नष्ट हो जाता है।

अधर्मदंडनं स्वर्गं कीर्त्ति लोकांश्च नाशयेत्।
सम्यक्तु दंडनं राज्ञः स्वर्गकीर्त्तिजयावहम्॥ –३५७.

अधर्म से दिये हुए दड का पाप राजा के स्वर्ग, कीर्ति और इस लोक के जीवन को नष्ट कर देता है। शास्त्रोक्त रीति से भली प्रकार दिया गया दंड राजा के लिए स्वर्ग, कीर्ति और जय का देनेवाला है।

वशिष्ठ का मत है कि यदि राजा दड नही देता तो उसे पाप लगता है और फिर पाप का प्रायश्चित्त करना पडता है। शास्त्रीय विधान है कि दडनीय को छोड़ देने पर राजा एक रात्रि तथा पुरोहित तीन रात्रि उपवास करे। यदि अदडनीय को दंड दे दिया तो राजा और पुरोहित दोनो तीन रात्रि उपवास करे। याज्ञवल्क्य लिखते है कि "जो राजा दड के योग्य लोगो को दड देता है और मार डालने योग्य लोगो को मार डालता है वह अधिक दक्षिणा वाले यज्ञों का फल प्राप्त करता है।"

यो दंड्यान् दंडयेद्राजा सम्यग्वध्यांश्च घातयेत्।
इष्टं स्यात्क्रतुभिस्तेन समाप्तवरदक्षिणैः॥ याज्ञ०, ३५९
ज्ञात्वापराधं देशं च कालं बलमथापि वा।
वयः कर्म च वित्तं च दंडं दंड्येषु पातयेत्॥ –३६८

देश, काल, अवस्था, कर्म, धन इन सबको जानकर अपराध के लिए, इनके अनुसार ही दड देने योग्य को दड देना चाहिए।

१. याज्ञवल्क्य—आचाराध्याय, राजधर्मप्रकरण

इस श्लोक मे याज्ञवल्क्य ने आज के दडशास्त्र का मत्र कह दिया है। हम आजकल यही कहते है कि अपराधी की अवस्था, परिस्थिति आदि सब देखकर दड देना चाहिए। याज्ञवल्क्य ने उसी बात को बडे सुन्दर रूप मे स्पष्ट कर दिया है। अपनी स्मृति मे याज्ञवल्क्य ने दड के चार प्रकार बतलाये है। आज हमने प्रोबेशन (परिवीक्षण), अर्थ-दड, कारागार आदि की जो प्रणाली बनाकर अपराधी को सुधार का कई प्रकार का मौका दिया है, याज्ञवल्क्य ने भी उसी का अपने समय के अनुसार बडा अच्छा क्रम रखा है। पहले धिक्कार का दड दे। धिक्-धिक् कहकर बुरे काम की निन्दा करे। फिर भी न माने तो कठोर वचन कहकर दड दे। यह बेकार जाय तो अर्थदड दे। फिर भी न सुधरा तो वध कर दे—शरीर ही समाप्त कर दे। वे लिखते है—

धिग्दंडस्त्वथ वाग्दंडो धनदंडो वधस्तथा।
योज्या व्यस्ता समस्ता वा ह्यपराधवशादिमे॥

अर्थ यह है कि धिक् दड, वाक् दड, धन दड या वध दड राजा अपराध के अनुसार दे। अस्तु, ऊपर जितने श्लोक दिये गये है वे राजधर्म प्रकरण के थे। व्यवहार-अध्याय मे[1] दडविधान का बडा अच्छा रूप दिया गया है। अपराध की साधारण सी बातो की भी व्याख्या कर दी गयी है। जैसे, यदि दो आदमी आपस मे गाली-गलौज करे, झगडा करे तो दोष किसका है। नारदस्मृति मे लिखा है कि जो पहले अपराध करे वही नियमत दोषी है। यानी पहले गाली देनेवाला अपराधी है। पर याज्ञवल्क्य के अनुसार कलह और साहस मे अभियोग के साथ प्रत्यभियोग को भी सुने और वादी तथा प्रतिवादी से कहे कि किसी को मध्यस्थ बनाकर अपने झगडे का निर्णय करा ले। यदि कोई निर्णय न हो तो राजा को निर्णय करना होगा। यदि वादी के लगाये गये अभियोग को प्रतिवादी स्वीकार न करे और गवाही आदि देकर वादी अपना अभियोग सिद्ध कर दे, तो प्रतिवादी को झगडे के धन की रकम वादी को तथा उतनी ही रकम राजा को देनी पड़ेगी। ऐसे मामले ऋण आदि के सम्बध मे हो सकते है। जो कर्जदार ऋणदाता के अभियोग को अस्वीकार कर दे और यह न माने कि उसने ऋण लिया है और इस ऋण को ऋणदाता सिद्ध कर दे तथा जो अभियुक्त राजसभा मे बुलाये जाने पर कुछ न कह सके, उसे साबित की हुई रकम देनी होगी और दड का भागी भी बनना पड़ेगा। इन बातो को नीचे के तीन श्लोको मे दिया गया है। अर्थ हम ऊपर की पंक्तियो में दे चुके है—

१. व्यवहाराध्याय—असाधारण व्यवहारमातृकाप्रकरण

कुर्यात् प्रत्यभियोगं च कलहे साहसेषु च।
उभयोः प्रतिभूर्ग्राह्यः समर्थः कार्यनिर्णये ॥१०॥
निह्नवे भावितो दद्याद्धनं राज्ञे च तत्समम्।
मिथ्याभियोगी द्विगुणमभियोगाच्छादनं वहेत् ॥११॥
सदिग्धार्थस्वतंत्रो यः साधयेद्यश्च निष्पतेत्।
न चाहूतो वदेत्किचिद्धीनो दंडयश्च स स्मृतः ॥१६॥

वधदड के विषय में

प्राणदड के विषय मे हमारे शास्त्रकारो ने बहुत कुछ कहा है। ब्राह्मण को वध का दड नही है पर उसे वध के स्थान पर देश-निकाला है। आपस्तम्ब ने लिखा है कि ब्राह्मण को देश से निकालते समय उसके नेत्र बन्द कर दे। अर्थात् न तो वह लोगो को देखे और न लोग उसे देखे। ब्राह्मण को अक्षत यानी शरीर पर बिना घाव हुए देश से निकालना चाहिए। नारद ने ब्राह्मण का "वध" "उसका सब कुछ हरण कर देश से निकालना, उसके शरीर को दागकर निकालना" भी लिखा है। उसका सिर मूडकर नगर से निकाल दे, गधे पर चढाकर नगर के बाहर कर दे। यदि उसने गुरुपत्नी से या गुरु की शय्या पर प्रसग किया हो तो उसके मस्तक पर भग का चिह्न बना दे। मदिरा पीने का दोषी हो तो मदिरा की ध्वजा बना दे। चोरी मे कुत्ते के पैर का, ब्रह्महत्या मे सिर से हीन पुरुष का चिह्न बना दे—दाग दे।

अन्य जातिवालो के लिए वधदड दस प्रकार का है। लिंग, उदर, जिह्वा, हाथ, नेत्र, नाक—जिससे अपराध हुआ हो उसको काटकर अलग भी कर सकते है। यह भी वधदड हुआ।

वधदंड, प्राणदड तथा दड के साधारण स्वरूप के सम्बध मे महाभारत के शान्तिपर्व, २६७वे अध्याय मे युधिष्ठिर के प्रश्न पर भीष्म पितामह ने सत्यवान् तथा उनके पिता द्युमत्सेन का बहुत ही महत्त्वपूर्ण सवाद दिया है। पाठको को उसे ध्यान से पढनेपर अपने देश की विचारधारा का पता चलेगा। महाभारत मनु आदि की स्मृतियो से कही प्राचीन ग्रथ है। सवाद इस प्रकार है—

युधिष्ठिर:—

कथं राजा प्रजा रक्षेन्न च किंचित् प्रघातयेत्।
पृच्छामि त्वां सतां श्रेष्ठ तन्मे ब्रूहि पितामह॥१॥

युधिष्ठिर ने पूछा—सत्पुरुषो मे श्रेष्ठ पितामह, मैं आपसे यह पूछ रहा हूँ

कि राजा किस प्रकार प्रजा की रक्षा करे, जिससे उसको किसी की हिसा न करनी पडे। मुझे बताने की कृपा करे।

भीष्मः—

अव्याहृतं व्याजहार सत्यवानिति नः श्रुतम्।
वधायोन्नीयमानेषु पितुरेवानुशासनात् ॥३॥

हमने सुना है कि एक दिन सत्यवान् ने देखा कि पिता की आज्ञा से बहुत से अपराधी शूली पर चढा देने के लिए ले जाये जा रहे है। उस समय उन्होने पिता के पास जाकर उनसे ऐसी बात कही, जो पहले किसी ने नही कही थी।

अधर्मतां याति धर्मो यात्यधर्मश्च धर्मताम्।
वधो नाम भवेद् धर्मो नैतद् भवितुमर्हति ॥४॥

पिताजी, यह सत्य है कि कभी ऊपर से धर्म सा दिखाई देनेवाला कार्य अधर्म रूप हो जाता है और अधर्म भी धर्म के रूप मे परिणत हो जाता है, तथापि किसी प्राणी का वध करना भी धर्म हो—ऐसा कदापि नही हो सकता।

द्युमत्सेनः—

अथ चेदवधो धर्मोऽधर्मः को जातुचिद् भवेत्।
दस्यवश्चेन्न हन्येरन् सत्यवन् संकरो भवेत् ॥५॥

पुत्र सत्यवान्! यदि अपराधी का वध न करना भी कभी धर्म हो तो अधर्म क्या हो सकता है। यदि चोर वा डाकू मारे न जायँ तो प्रजा मे वर्णसकरता और धर्मसकरता फैल जाय।

सत्यवान्—

दस्यून् निहन्ति वै राजा भूयसो वाप्यनागसः।
भार्या माता पिता पुत्रो हन्यन्ते पुरुषेण ते ॥
परेणापकृते राजा तस्मात् सम्यक् प्रधारयेत् ॥१०॥

राजा डाकुओ अथवा दूसरे बहुत से निरपराध मनुष्यो को मार डालता है और इस प्रकार उसके द्वारा मारे गये पुरुष के पिता-माता-स्त्री और पुत्र आदि भी जीविका का कोई उपाय न रह जाने के कारण मानो मार दिये जाते है। अत किसी दूसरे के अपकार करने पर राजा को भली-भाँति विचार करना चाहिए, जल्दबाजी करके किसी को प्राणदंड नही देना चाहिए।

असाधुश्चैव पुरुषो लभते शीलमेकदा।
साधोश्चापि ह्यसाधुभ्यः शोभना जायते प्रजा॥११॥

दुष्ट पुरुष भी कभी साधु-सग से सुधरकर सुशील बन जाता है तथा बहुत से दुष्ट पुरुषो की सतान भी अच्छी निकल आती है।

न मूलघातः कर्त्तव्यो नैष धर्मः सनातनः।
अपि स्वल्पवधेनैव प्रायश्चित्तं विधीयते॥१२॥

इसीलिए अपराधी को प्राणदड देकर उसका मूलोच्छेद नही करना चाहिए। किसी की जड उखाडना सनातन धर्म नही है। अपराध के अनुरूप साधारण दंड देना चाहिए। उसी से अपराधी के पापो का प्रायश्चित्त हो जाता है।

उद्वेजनेन बन्धेन विरूपकरणेन च।
वधदंडेन ते क्लिश्या न पुरोहितसंसदि॥१३॥

अपराधी को उसका सर्वस्व छीन लेने का भय दिखाया जाय अथवा उसे कैद कर लिया जाय या उसके किसी अग को भग करके उसे कुरूप बना दिया जाय। परन्तु प्राणदड देकर उसके कुटुम्बियो को क्लेश पहुँचाना उचित नही है। इसी तरह यदि वे पुरोहित ब्राह्मण की शरण मे जा चुके हो तो भी राजा उन्हे दड न दे।

द्युमत्सेनः—

अहन्यमानेषु पुनः सर्वमेव पराभवेत्।
पूर्वे पूर्वतरे चैव सुशास्या ह्यभवन् जनाः॥१८॥
मृदवः सत्यभूयिष्ठा अल्पद्रोहाल्पमन्यवः।
पुरा धिग्दंड एवासीद् वाग्दण्डस्तदनन्तरम्॥१९॥

यदि धर्म का उल्लघन करने पर भी लुटेरो का वध न किया जाय तो उनसे हमारी सारी प्रजा को कष्ट पहुँच सकता है। पहले और बहुत पहले के लोगो पर शासन करना सुगम था। क्योकि उनका स्वभाव कोमल था। सत्य मे उनकी विशेष रुचि थी। और द्रोह तथा क्रोध की मात्रा उनमे बहुत कम थी। पहले, अपराधी को धिक्कार देना ही बडा भारी दड समझा जाता था। तदनन्तर अपराध की मात्रा बढने पर वाग्दड का प्रचार हुआ। अपराधी को कटु वचन सुनाकर छोड दिया जाने लगा।

आसीदादानदंडोऽपि वधदंडोऽद्य वर्तते।
वधेनापि न शक्यन्ते नियन्तुमपरे जनाः ॥२०॥

इसके बाद आवश्यकता समझकर अर्थदड भी चालू किया गया और आजकल तो वध का दड भी प्रचलित हो गया है। बहुत से दुष्टात्मा मनुष्यो को तो प्राणदड के द्वारा भी काबू मे लाना या मर्यादा के भीतर रखना असम्भव सा हो रहा है।

इस सवाद मे सबसे मार्के की बात यह है कि महाभारतकाल मे, हजारो वर्ष पहले उस जमाने को लोग बहुत बुरा समझते थे और अपने से पहले के लोगो को अधिक पवित्र तथा कर्तव्यशील समझते थे। आज हम भी वही कहते है--पहले के लोगो को अच्छा और अपने को बुरा समझते है। इसलिए क्या ऐसा नही है कि बुरा भला कोई नही, केवल समझ का फेर है।

अध्याय ३२

कारागार का विकास

अस्तु, यह मानकर हम अपने विषय पर और अधिक विचार करने के लिए आगे बढ़ें कि समाज के नियम, व्यवस्था तथा अनुशासन के विरुद्ध काम करनेवाला अपराधी कहलाता है। उस अपराधी को किस प्रकार दंड दिया जाय, कहाँ रखा जाय, यह सवाल रहा। ऐसा प्रतीत होता है कि भारत में कारागार की प्रथा सबसे पहले शुरू हुई। बन्दीगृह में निश्चित या अनिश्चित काल के लिए रखना भी दंड था। यूरोप में, विशेष कर सभ्यता की ओर कदम उठानेवाले इंग्लैण्ड ऐसे देशों में, १५वीं १६वीं सदी में जो बन्दीगृह थे, वे आज के समान या प्राचीन भारतीय कारागार के समान नहीं थे। किसी भी सुरक्षित मकान या किले में वे लोग बंद कर दिये जाते थे। जो राजद्रोही, शरारती, बदमाश या लफंगे होते थे, सजा होने के बाद उनको जेल में रखने का सवाल ही नहीं उठता था, क्योंकि प्राणदंड या पिटाई के अलावा दूसरी कोई सजा नहीं थी।

बन्दीगृह केवल "क़ैद" कर रखने का स्थान था और सरदार, रईस या निरंकुश शासकों ने इसे यातना का भीषण साधन बना रखा था। अदालती कार्यवाही के पहले क़ैद रखने के स्थान मात्र के बजाय वे पीड़ा, आतंक तथा ज़ोर-ज़बर्दस्ती के नरकगृह बन गये थे।[१] इंग्लैंड तथा फ्रान्स के कारागार हमेशा भरे रहते थे पर एक बार जेल में पहुँच जाने के बाद छूटने में काफ़ी समय लगता था। प्रायः बेचारे २०-२५-४० वर्ष तक जेलों में पड़े रहते थे। भारत में देशी नरेशों के जमाने में, ब्रिटिश शासनकाल में, आज के बीस वर्ष पूर्व ३०-४० वर्ष पुराने क़ैदी वर्तमान थे। इन जेलों में हर एक के, चाहे किसी प्रकार का अपराध हो, हथकड़ी-बेड़ी लगी रहती थी। इनके कमरों को काल-कोठरी कहना उचित होगा, न उनमें प्रकाश था न शुद्ध वायु आने के लिए कोई प्रबंध। कमरे की सफ़ाई, झाड़ू आदि का प्रबंध बहुत दूर की बात थी। भोजन क्या था, गन्दगी का घर था। जेलर को घूस देकर या पादरियों या धनी-मानी सज्जनों की उदारता

१. Sen's Penology—Old and New—Page 30.

से कभी कुछ मिल जाय तो बडी गनीमत थी। यूरोप के प्राय सभी देशो मे, एशिया के अधिकाश देशो मे, कारागार की यही स्थिति थी।

बदियो के उद्धार के लिए जान हावर्ड ने १८वी सदी मे अवतार लिया था। इग्लैंड तथा यूरोप के जेलो की यात्रा तथा निरीक्षण कर इन्होने अपनी पुस्तक[१] ससार के सामने जब रखी, तब अभागे बन्दियो के प्रति ससार का ध्यान आकृष्ट हो गया और उनके प्रति सहानुभूति का स्रोत उमड पडा।

बन्दी वर्ग के लिए फ्रान्स की राज्यक्रान्ति ने भी बडा भारी काम किया। सन् १७८९ मे यह राज्यक्रान्ति हुई थी। इसके पूर्व फ्रान्स मे सम्राट् लुई १४वे का सन् १६७० का दडविधान लागू था। इस विधान के अनुसार जेलखाना कोई कानूनी सजा नही था। दड के तीन ही प्रकार थे—प्राणदड, यातना या कुछ समय या जन्म भर के लिए जहाज पर गुलाम की तरह से सेवा करना। दड का रूप जेल भेजना ऐसी कोई बात नही थी। सन् १७९१ मे फ्रास की पार्लमेन्ट ने जो दड-विधान पास किया, उसमे बहुत कुछ त्रुटियाँ अवश्य रही हो पर मार्के की बात भी थी। उसने यह निश्चित कर दिया कि किसी व्यक्ति को जीवन भरके लिए जेल मे नही रखा जा सकता। जेल भेजना भी दड का एक प्रकार होगा तथा जेल की यातना केवल निश्चित काल के लिए होगी। आज यह बात हमारे लिए विशेष महत्त्व न रखे पर फ्रान्स ही नही, यूरोप भर के बदीगृहो के जीवन मे इसने एक क्रान्तिकारी सुधार का श्रीगणेश कर दिया। सन् १८१० मे सन् १७९१ के कानून का सशोधन हुआ और उसके अनुसार विचारपति को, मजिस्ट्रेट को यह अधिकार दिया गया कि "कम से कम या अधिक से अधिक" के बीच मे, यथोचित दड दे।

बन्दी सुधार की बात

किन्तु कारागार का काम दड देना ही नही है, मनुष्य का जीवन सुधारना भी है, यह बात उस समय तक भी लोगो के दिमाग मे नही आयी थी। यह तो तब ध्यान मे आता जब अपराधी मे "व्यक्तित्व" की सत्ता भी स्वीकार की जाती। जिसने अपराध किया, वह केवल "अपराधी" समझा जाता था, मनुष्य भी नही। पर,

१ John Howard—"The State of Prisons in England and Wales, with Preliminary Observations, and an Account of some Foreign Prisons"—1777.

धीरे-धीरे जेल-सुधार के काम आप से आप समाज में होने लगे। पहले लोग स्त्री तथा पुरुष बंदी को अलग रखने की बात भी नहीं सोचते थे। पर पश्चिमी देशों में स्त्रियों के लिए पहला पृथक् जेल सन् १५९३ में डच राजधानी ऐम्सटर्डम में बना। वाइन्स ने अपनी पुस्तक में जेल सुधार के आन्दोलन पर बड़ा अच्छा प्रकाश डाला है।[१] उन्होंने उसमें लुई चौदहवें के जमाने में अपनी अधार्मिकता के लिए प्रायश्चित्त करने वालों को प्रधान फ्रेंच पादरी द्वारा दिये गये दंड का उल्लेख किया है। इसके अनुसार—

"पश्चात्ताप करनेवालों को अलग कोठरियों में बन्द कर दिया जाय और इनको तरह-तरह का परिश्रम का कार्य दिया जाय। इनकी कोठरी के सामने छोटा-सा बाग हो जिसमें निश्चित समय पर ये हवाखोरी कर सकें तथा जमीन को गोड़ने, बोने का काम करें....बाहरी दुनिया से कोई आदमी इनसे मिलने न पाये......"

उस समय प्राणदंड देना मामूली बात थी। धार्मिक अदालतों के जमाने में[२] स्पेन, फ्रान्स, जर्मनी आदि में, मध्ययुग में घोर अत्याचार हो रहे थे और इन अत्याचारों के प्रणेता थे ईसाई पादरी। इनकी धर्म-बुद्धि इतनी भ्रष्ट हो गयी थी कि ये अपने महान् धार्मिक मंत्रों का अनर्थकारी अर्थ लगाते थे। ईसाई धर्म में रक्तपात का निषेध है, अतः किसी को गला काटकर, या गोली से मारने में रक्तपात का दोष होता था। इसलिए अभागे दंडित व्यक्ति को ऐसी कालकोठरी में डाल देते थे कि वह दम घुट-घुटकर मर जाय और इसे "शान्ति के साथ प्रयाण"[३] कहते थे। ऐसी ही काल-कोठरियों की दशा को देखकर एडवर्ड लिविंग्स्टन ने लिखा था कि हर कोठरी पर यह लिखकर टाँग देना चाहिए कि—

"इस कोठरी में श्री क श्री ख की हत्या के दंड में जन्म भर के लिए अपना जीवन एकान्त तथा दुःख में बिताने के लिए बन्द हैं। सबसे मोटे प्रकार की रोटी इनका भोजन है, आँसुओं से मिला पानी पीने को है, दुनिया के लिए वह मर गया है। यह कोठरी उसकी कब्र है। उसे दुनिया में इसलिए जीवित रखा गया है कि वह अपने अपराध को याद रखे और उसके लिए पछताता रहे। उसके दंड को देखकर और लोग

१. Dr. Frederick Howard Wines—"Punishment and Reformation"—Thomas Y. Crowell Co., New York—Page 148-152.

२. Inquisition

३. Vade in Pace–Depart in Peace.

घृणा, लोभ, वासना तथा उत्तेजना के उन भावो से बचना सीखे जिनके वशीभूत होकर इस अभागे ने अपराध किया है।"

इस दर्दनाक वर्णन का लेखक लिविग्स्टन प्राणदड की प्रथा के ही विरुद्ध था। दड के साथ यातना तथा प्राणदड—दोनो के विरोधी बक्कारिया (१७३५-१७९४) भी थे। इनका जिक्र हम ऊपर कर आये है। जेल मे यातना के विरोध मे जेल को बन्दी के सुधार का साधन बनाने के पक्ष मे जान हावर्ड, श्रीमती एलिजबेथ फ्राई, सर टामस बक्सटन ऐसे अग्रेज तथा जे० ए० दी ब्यूमौट और ए० दी तेक्केविले लोगो ने मार्ग-प्रदर्शन का बड़ा भारी कार्य किया है।

पर, आदर्श जेल की रचना तथा उसे "जेल" न कहकर "अस्पताल" कहने का कार्य सन् १७०४ मे पोप क्लिमेट ग्यारहवे ने किया था। रोम मे उनका "साधु मिकायल का अस्पताल" स्थापित हुआ था। पर आधुनिक कारागार की नवीन भावना तथा जेल-सुधार के साथ जेलखानो को बन्दी के सुधार का स्थान बनाने के हिमायतियो के नेता तथा पथप्रदर्शक, आज के दो सौ वर्ष पूर्व पोप विलेन चौदहवे थे। दंड-शास्त्र के पडित उनको आज उसी आदर से देखते है जैसे होम्योपैथी के चिकित्सक प्रो० हैन्नमान को। घेट मे उन्होने अलग-अलग कोठरीवाला जेल बनवाया। उन्होने जेलो मे चुने हुए उद्योगधधे जारी कराये। कैदियो को छूटने के बाद ईमानदारी से जीविकोपार्जन के लिए कुछ काम, दस्तकारी आदि की शिक्षा देनी शुरू की। जेल में बनाये हुए सामान की बिक्री की आमदनी से कुछ पैसा कैदी को अपने पास रखने की अनुमति दी। कैदियो का वर्गीकरण होने लगा। उनकी चिकित्सा का तथा धार्मिक शिक्षा का प्रबध हुआ। सबसे बडी बात यह कि जेल के अधिकारियो को यह अधिकार मिला कि जिस कैदी के चालचलन मे काफी सुधार इत्यादि देखे, उसको सजा की अवधि से पहले छोडे जाने की सिफारिश कर सकते है। इस प्रकार विलेन ने उस समय के लिए कल्पना से भी परे तथा आज भी जो बाते सब जगह, सब जेलो मे लागू नही हो सकी है—ऐसी अत्यत महत्त्व की तथा बन्दी और साधारण समाज के लाभ की बाते कही थी। उन्होने "चरित्र सुधारने पर कैदी को छोड दिये जाने की" बात कहकर, आज हम जिसे "अनिश्चित काल के लिए सजा" कहते है, उस महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था।

बन्दी-सुधार की पुरानी ब्रिटिश योजनाएँ

१८वी सदी मे बन्दी के सुधार पर भी ध्यान दिया जाने लगा, यह हम ऊपर लिख आये है। १८वी सदी के मध्य मे इग्लैड मे बडे पादरी यानी बिशप बटलर

ने आवाज उठायी कि कैदी को अलग-अलग कमरे मे रखकर उसका सुधार किया जाय, क्योकि "मृत्यु के लिए तैयारी करने से अधिक आवश्यक है जीवन की तैयारी करना।" जेरेमी बेथम का कहना था कि कैदियो को अलग-अलग रखकर उन पर कडी निगरानी रखी जाय। जेलसम्बधी एक समिति के अध्यक्ष टामस ब्रे की राय थी कि—१८वी सदी के प्रारम्भ मे—कैदियो को अलग अलग रखा जाय। जान हावर्ड भी इसी विचार के थे। हावर्ड ऐसे चतुर विचारक का भी खयाल था कि "यदि दिन मे एक साथ मिल भी जायॅ तो रात मे उनको अलग अलग जरूर सोना चाहिए।" इन विचारको के आन्दोलन का परिणाम यह हुआ कि [illegible] ने सन् १७७९ मे कानून बनाकर अलग-अलग कोठरीवाले जेलो की रचना का आदेश दिया। जेल से छूटने पर जीविकोपार्जन की योग्यता प्राप्त करने के लिए कैदियो को कुछ काम सिखाने का आदेश भी १७७९ के कानून ने दिया। सन् १८१६ मे इंग्लैण्ड का मिलबैंक का प्रसिद्ध कारागार बना जिसका प्रबध एक समिति के हाथो मे था। इस समिति के अध्यक्ष थे ब्रिटिश पार्लमिन्ट के अध्यक्ष। इस कारागार को भी "अलग कोठरी" के आधार पर बनाया गया था पर इसमे काम सिखाने तथा धार्मिक शिक्षा पर पार्लमिन्ट की साधारण सभा की एक विशेष समिति की रिपोर्ट प्रकाशित हुई। इसने भी अलग कोठरी की प्रथा की सिफारिश की। सन् १८४२ मे १००० कैदियो को रखने योग्य पेटोनबिले का "आदर्श" जेल इग्लैड मे बना। ऐसी कोठरियाॅ बनी जिनमे हर एक बन्दी एकान्त मे रहकर अपने पाप के लिए पश्चात्ताप करे तथा भूतकाल की घटना के लिए प्रायश्चित करे। पेटोनबिले यूरोप तथा भारत ऐसे देशो के लिए आदर्श जेल बन गया। पर धीरे धीरे लोग किसी व्यक्ति को अकेले बन्द रखने की भूल महसूस करने लगे। एकान्त कोठरी की प्रथा मे परिवर्तन भी हुआ। पहले यह सशोधन हुआ कि १८ महीने से अधिक किसी को एकान्त कोठरी में न रखा जाय। फिर, एकान्त कोठरी ९ महीने, ६ महीने, ३ महीने, तीन हफ्ते तक घटते-घटते अब विशेष दड के रूप मे सप्ताह दो सप्ताह से अधिक नही प्राप्त होती। इस प्रकार की कोठरी का नाम एकान्त कोठरी से बदलकर काल कोठरी हो गया। पेटोनबिले का "आदर्श जेल" भी ब्रिटेन के सन् १९३८ के नवीन दडविधान के पास होने के बाद गिरा दिया गया और उसके स्थान पर एक नये प्रकार का जेल बना।

बन्दीगृह का विरोध

बन्दीगृह मे सुधार की चर्चा एक ओर समाज पर असर करती जा रही थी, दूसरी ओर बन्दीगृह का तथा बन्दी रखने का ही विरोध हो रहा था। जेल मे जाने

पर मनुष्य सुधरने के बजाय बुरा भी बन जाता है। सन् १८८८ मे इमिले जाटियर नामक एक फ्रेन्च ने बडे गहरे अध्ययन के बाद बन्दी के मस्तिष्क पर जेलजीवन के प्रभाव की छानबीन की थी और उनके अनुसार मनुष्य जेल मे जाकर बहुत बदल जाता है। आर्थर होम्स ने सन् १९१२ मे अपनी पुस्तक मे[१] लिखा था—"जेल मे ज्यादा दिन तक रहने पर मनुष्य की आकृति क्यो बदल जाती है? उसकी आवाज कठोर तथा अप्राकृतिक क्यो हो जाती है? उसके नेत्र चचल, मक्कार और जगली क्यो बन जाते है? यह सब इसलिए नही होता कि उसे कठोर परिश्रम करना पडता है...यह सब उस प्रणाली का दोष है जिसके कारण आत्मा तथा बुद्धि दोनो का हनन हो जाता है।" डेवन अपने कथन मे होम्स से भी आगे बढ गये। वे लिखते है कि "मेरी राय मे, इसमे कोई सदेह नही है कि हमारी वर्तमान प्रणाली अपराधी बनाती है। अधिकाश मामलो मे कैद से कोई लाभ ही नही होता—निश्चित रूप से गम्भीर हानि होती है।"[२] गेब्रील तार्दे ने क्रोध से कहा है—"कुछ तो अपने अपराध के कारण तथा कुछ अपराधी न्याय के कारण अपराधी व्यक्ति का निर्माण होता है।"[३] प्रसिद्ध अपराधशास्त्री लोम्ब्रोजो ने (मृत्यु सन् १९०९) यहाँ तक कह डाला था कि "अपराध के सबसे प्रमुख कारणों मे कारागार भी है।" "जेल अपराध की पाठशाला है. .बहुत से लोग जेलो मे ही जाकर जेबकटी, गिरहकटी सीख कर लौटते है।"[४]

यह विवाद आज तक जारी है। जेल मे रखा जाय या न रखा जाय? जेलजीवन हितकर है या अहितकर? यदि जेल मे रखना ही है तो किस प्रकार के जेल हो? ऐसे विषयो पर विचार करने के समय भिन्न प्रकार के दृष्टिकोण होते है समाजशास्त्र का मनोवैज्ञानिक पडित मानसिक विकृतियो के विशेषज्ञ की तुलना मे

१. Arthur Homes—"Conservation of the Child"—Philadelphia—Lippincolt—1912—Page 342.

२. J Devon—"The Criminal and the Community"–Lane, London, 1912–Page 348.

३. Gabriel Tarde—"Penal Philosophy"–Little, Brown & Co, Boston–1912–Page 581

४. Cesare Lombrose—"Crime, Its Causes and Remedies"—(Translation) Little, Brown & Co.,

अधिक व्यापक तथा साहसपूर्ण दृष्टिकोण से इस विषय पर विचार करता है। समाज-शास्त्र के पडित को अपराधी की विकृतियो का व्यक्तिगत निजी ज्ञान नही होता। "मानसिक विकृतियो का जानकार कहता है कि मानसिक या शारीरिक व्यतिक्रम से अपराधी प्रवृत्ति पैदा होती है, अतएव दड के स्थान पर इन रोगो की चिकित्सा करनी चाहिए। पर समाजशास्त्री अपने सिद्धान्तो तथा आदर्शो के बल पर बाते करता है। इसी लिए समाज के रोगो का समाजशास्त्री द्वारा वर्णित निदान साधारण बुद्धिवालो के समान ही होता है। समाजशास्त्री के सामने चिकित्साविज्ञान की बाधा नही है कि वह मानसिक रोग की नाप जोख करे। वह प्रत्येक बात को समाज की आवश्यकता को सामने रखकर देखता है और इसी लिए मानसिक विकृतियो के विशेषज्ञ तथा समाजशास्त्री के अपराध सम्बधी दृष्टिकोण मे बडा अन्तर होता है। समूह या वर्ग के हितो का चिन्तन करनेवाला चाहे व्यक्ति के निजी कल्याण की बात कितनी भी सोचे, उसकी समूची विचारधारा व्यक्ति के स्थान पर समूह के लाभ को सोचने मे लगी है। इसीलिए अपराधी के व्यक्तित्व की बात को वह "सद्भावना-सहित" भूल सकता है। इसी लिए "आदतन अपराधी" भी बार-बार अपराध करके जेल जानेवाले यानी विराराधी[1] की समस्या समाजशास्त्री के लिए उतनी चिता का कारण नही है, जितनी मानसिक विकृति के विशेषज्ञ के लिए, क्योकि उसे तो शारीरिक तथा मानसिक कारण ढूढ निकालने है। इसलिए हो सकता है कि बहुत छानबीन करने के कारण बन्दीगृह-सुधार के मामले मे भी मानसिक-विकृति-विशेषज्ञ साहस के साथ कदम न बढाये। समाजशास्त्री से इस दिशा मे अधिक साहसिक उपयोगो तथा कार्यो की आशा है।[2]"

पुलिस और जेल

जेल के जीवन के सम्बध मे आज के युग मे भी व्यापक भ्रान्तियाँ है। आज भी ऐसे लोग अधिकार के स्थान पर है जो पुलिस तथा जेल के मुहकमे को एक-दूसरे

१. राध् = "अप-राध्" शब्द से, बार-बार अपराध करनेवाले यानी Habitual Offender या Recidivist के लिए संस्कृत व्याकरण से शुद्ध शब्द होगा "विराराधी", हम इसी शब्द का उपयोग करेगे।

२. The British Journal of Delinquency—Sept., 1955—Page 118-119

से एकदम पृथक् तथा विरोधी सा भी मानते है। ऐसे लोग कम नही है जो समझते है कि पुलिस का जेल से क्या सम्बध है ? यदि पुलिस का काम समाज की रक्षा है तो जेल का काम समाज की हानि करनेवालो को समाज की रक्षा करनेवाला बनाकर वापस भेजना है। यदि दोनो विभागो मे सहानुभूति न होगी तो समाज का बडा अकल्याण होगा। इस पर विश्व-प्रसिद्ध पुस्तक के लेखक रिचार्ड हैरिसन लिखते है —[१]

"ज्यो ही कैद की सजा सुना दी जाती है, कैदी को अपना दड भुगतने के लिए जेल भेज देते है। वहाँ पर उसके साथ क्या होता है, उससे इस पुस्तक से कोई मतलब नही है। पुलिस का जेल से कोई सम्बध नही है .जेल तथा उसके उद्देश्य के बारे मे १५० वर्षो मे विचार बिलकुल बदल गये है बहुत शुरू जमाने मे कैद-खाने दड के स्थान नही थे। अपराधियो को सजा सुनाये जाने तक कही भाग जाने से रोक रखने के लिए उन्हे बनाया गया था। उस समय आम तौर पर (मै मिस्र, बैबीलोन, रोम तथा यूनान के दिनो की बात कह रहा हूँ) दड का अर्थ होता था प्राणदड, देश-निकाला, यातना या अर्थ-दड। आजकल की तरह से उस समय यह नियम नही था कि जनता के पैसे से अपराधी को पाला जाय। धीरे-धीरे अपराधी की स्वाधीनता का अपहरण कर उसे बन्द कर रखना भी दड का रूप बन गया। दो सौ वर्ष से कम हुए कि इग्लैड मे अपराधियो के साथ बडा जगली व्यवहार होता था। दो चार रुपये मूल्य का सामान चुराने के अभियोग मे छोटे-छोटे बच्चे फाँसी पर लटका दिये जाते थे। जब एक भेड चुराने पर किसी आदमी को फाँसी हो सकती थी तो अपने को गिरफ्तार करने आनेवाले की जान लेने की चेष्टा वह क्यो न करे? आखिर फाँसी तो एक ही बार होगी

"क्या आपने कभी यह सोचने का प्रयास किया है कि लोग जेल क्यो भेजे जाते है ? जेल भेजे जाने के बहुत से कारणो मे सबसे छोटा कारण है बदला लेना। समाज की हानि हुई है। वह बदला ले रहा है। पिछली सदी के प्रारम्भ तक जेलो के विषय मे यही धारणा थी। आज जेल भेजने के कारण या किसी प्रकार के कानूनी दड मे केवल प्रतिशोध की भावना नही रहती, जनता को उस अपराधी के अन्य कुकार्यों से बचाने का भी विचार रहता है, अन्य भावी अपराधियो के सामने उदाहरण उपस्थित करना रहता है तथा स्वय अपराधी के मन मे यह भाव उत्पन्न करना होता है कि अप-

१. Richard Harrison—The World's Police–Phoenix House, London, 1954—Page 111.

राध करने से कोई लाभ नही—सक्षेप मे, अपराधी का सुधार करना ही मूल उद्देश्य है। आजकल कम उम्र के लोगो को तभी जेल भेजते है जब सब उपाय विफल हो जाते है। लेकिन क्या जेल मे नर्मी का व्यवहार करने से महाशय "क" मे सुधार हो गया, क्या उनकी आदत छूट गयी? कम-से-कम उसे जेल मे रखने से यह तो निश्चित है कि जितने दिनो तक भीतर बद रहेगा, कोई चोरी नही कर सकेगा। इसी लिए पुलिस उसे वहाँ पहुँचाकर उसके "शरीर की सुपुर्दगी" की रसीद प्राप्त कर लेती है जेल की सजा मे इस बात की चिंता नही की जाती कि कैदी के बीबी बच्चो का क्या होगा।"

अमेरिका तथा ब्रिटिश जेलो का जीवन

ब्रिटिश जेल-जीवन का वर्णन करते हुए श्री हैरिसन लिखते है—[1]

"जो आदमी पहली बार जेल जाता है उसे "स्टार" बन्दी कहते है। उसे यही श्रेणी प्राप्त रहेगी जबतक उसके आचरण मे कोई खराबी नही आ जाती। पहले महीने के बाद वह कुछ आना कमाकर उसे अपनी सिगरेट-तम्बाकू आदि पर खर्च कर सकता है बन्दीगृह का दिन आम तौर से ६-३० बजे सबेरे प्रारम्भ होता है। "स्टार" बन्दी अपने कमरे मे ९-३० बजे रात तक पुस्तके पढ सकता है। साढे छ बजे उठकर हर एक कैदी को अपनी कोठरी साफ करनी पडती है। इसके बाद उसके पास जलपान आ जाता है। बन्द कमरे मे ही वह जलपान कर लेता है। ८ बजे सुबह खुले स्थान मे कैदी व्यायाम कर सकते है तथा एक दूसरे से बाते कर सकते है, इसके बाद दोपहर तक कारखाने मे काम करना पडता है। वे अपने कमरे मे ही भोजन के लिए भेज दिये जाते है। उस समय फिर उनके कमरे का ताला बन्द हो जाता है। डेढ बजे दोपहर को उन्हे आध घंटा फिर व्यायाम का अवसर मिलता है। फिर साढे पाँच बजे तक काम होता है। उसके बाद वे अपने कमरे मे १३ घटे के लिए बन्द कर दिये जाते है। कैदियो के लिए इतने लम्बे समय के लिए एकान्त सेवन तथा सोचने के लिए छोड देना सबसे कठोर दड हो जाता है .बावजूद इसके कि आजकल जेलखानो के बारे मे बडे प्रगतिशील विचार है। अधिकाश कारागारो की इमारते उदास, नीरस, ठडी तथा मानव के प्रति कम उदार भावना के जमानो की बनी हुई है। सबसे बदनाम जेल डार्टमूर का है। सन् १८०६

१. वही पुस्तक—११३

में इसका बनना शुरू हुआ था और १८०९ मे समाप्त हुआ। पहले इसमे फ्रास के साथ युद्ध मे पकडे गये बदी रखे जाते थे। सन् १८१२-१८१५ तक अमेरिका के साथ युद्ध मे पकडे गये १००० अमेरिकन बन्दी रखे गये थे। यहाँ आपस मे कैदियो मे प्राय लडाई-झगडा हुआ करता था। एक झगडे मे अमेरिकनो ने फ्रेंच कैदियो को खूब पीटा। इसमे ५० कैदी मारे गये। अमेरिकन तथा फ्रेच युद्ध की समाप्ति पर इस जेलखाने का उपयोग समाप्त हो गया। १८५० तक यह बेमरम्मत पडा रहा पर, उस साल इसमे मरम्मत करायी गयी और यह फिर चालू हुआ—इसलिए नही कि अपराध बढ गया था, पर इसलिए कि ब्रिटिश उपनिवेशो ने आजन्म कैदियो को अपने यहाँ लेना अस्वीकार कर दिया अधिकाश अग्रेजी जेल १०० वर्ष या इससे अधिक पुराने है, ये कैदियो को बन्द रखने के लिए बने है—उनके ठीक से रहने के लिए नही ..

". मैने न्यूयार्क प्रदेश का प्रसिद्ध सिगसिग जेल देखा है। मेरे विचार से अमेरिकन कैदियो का जीवन ब्रिटिश कैदियो से अधिक अच्छा है। सिगसिग हडसन नदी के किनारे पर बना है। इसके "निवासी" (उनको बन्दी नही कहते) कभी-कभी नदीतट का सुन्दर दृश्य देखने का अवसर पा जाते है—कोई भाग नही सकता। काफी पहरा है और थोडी-थोडी दूरी पर पहरेदारो के लिए मीनारे बनी हुई है . यहाँ के गवर्नर[1] से मेरी बाते हुई। उन्होने कहा कि उनके कैदियो को शिक्षा दी जाती है कि "उनका काम समय काटना नही है बल्कि समय से अपनी सेवा कराना है।" इस बन्दीगृह मे बडे अच्छे-अच्छे कारखाने है तथा सुन्दर पुस्तकालय है। आमोद-प्रमोद का कमरा है। जेल की अपनी दूकान भी है। कोठ-रियाँ अग्रेजी जेलो के बराबर है पर उनकी तरह तग नही है। यहाँ के कैदियो को अपने कमरो को चित्रो से सजाने की अनुमति है। वे मछली या चिडियाँ भी पाल सकते है। लेकिन सब कुछ होते हुए भी सिंगसिग कारागार ही है। गवर्नर ने मुझसे कहा—"अगर वे (कैदी) कठोर अनुशासन के योग्य होगे तो हम उसमे भी चूकनेवाले नही है। बिना अपनी सजा पूरी किये आप जेल के फाटक के बाहर नही निकल सकते।

".. आप प्राणदड के बारे मे भी मुझसे जानना चाहेगे। इग्लैड मे जब जूरी लोग अपराधी घोषित कर देते है तो जज को प्राणदड सुनाना पडता ही है . गृहसचिव सम्राज्ञी से "दयालुता" की सिफारिश कर सकता है। ऐसी दशा मे फाँसी के बजाय आजन्म कारावास यानी १५ वर्ष की सजा होती है। ऐसा भी होता है कि

१. जेल सुपरिन्टेन्डेन्ट

जूरी लोग अपराधी घोषित करते हुए भी दया की सिफारिश कर सकते है। पर इस सिफारिश का कोई कानूनी महत्त्व नही है, क्योकि ब्रिटिश कानून मे हत्या के लिए जो दड निर्धारित है, उसमे परिवर्त्तन नही हो सकता . पर, क्या प्राणदड से, उसके भय से और लोगो द्वारा हत्याओ मे रोकथाम होती है ? किसी दिन आपको यह सवाल सोचना होगा अन्ततोगत्वा फॉसी एक भयकर दर्दनाक काम है। फॉसी देने का मतलब ही यह है कि समाज ने, हमने, आपने यह स्वीकार कर लिया कि हम उस मनुष्य के जीवन का उपयोग करने मे असफल रहे .

" . मुझे एक चीज साफ मालूम पडी। जेल से छूटने के बाद इग्लैंड के मुकाबले मे सयुक्त राज्य अमेरिका मे मुक्त बन्दी के कही अधिक सहायक मिलेगे। हमारे यहॉ तो उस बेचारे के साथ जेल-जीवन का कलक सदैव बना रहेगा। अमेरिका मे यदि वह अपने जीवन का नया अध्याय प्रारम्भ करना चाहे तो आसानी से कर सकता है। इससे अपराध मे कमी होती है, क्योकि प्राय मुक्त बदी अपने जीवन का और कोई उपयोग न पाकर निराशावश अपराधी जीवन दुहरा देता है।"

पुलिस विभाग के एक प्रसिद्ध व्यक्ति का कैदी तथा जेल के प्रति दृष्टिकोण हमने कुछ विस्तार से दिया है ताकि पाठको को यह भी मालूम हो जाय कि बदी के प्रति जिनके मन मे प्राय सहानुभूति नही होती—यानी पुलिसमैन—वह भी आज बन्दी के सुधार तथा उसके प्रति मानवोचित व्यवहार की हिमायत कर रहा है।

कैदी भी मनुष्य है

अमेरिकन कैदी तथा कारागार के विषय मे "खुले ढग के जेल" के विश्व-विख्यात अमेरिकन हिमायती केनियन जे० स्कडर ने एक बडी महत्त्वपूर्ण पुस्तक लिखी है। वे स्वय बन्दी-गृह शासन विभाग से कर्मचारी के रूप मे, घनिष्ठ रूप से सम्बधित हैं और इस विभाग की हर ऊँची-नीची बात से परिचित है। वे लिखते है—

"मनुष्य का उद्धार स्वाधीन वातावरण मे ही हो सकता है। मनुष्य का पुनर्वास उसके हृदय के भीतर से प्रारम्भ होना चाहिए, जोर जबर्दस्ती से नही।"[१]

"हमको धीरे धीरे प्रयोग, परीक्षण तथा भूलचूक की परवाह न कर आगे बढ़ना होगा, बन्दी-सुधार के कार्य मे हमको स्मरण रखना होगा कि कैदी भी आदमी है .

१ Kenyon J Scudder—"Prisoners are People"—Doubleday & Co., Inc. Garden City, N Y 1952—Page 50.

और इसके साथ ठिकाने का, शिष्टता का व्यवहार किया जायेगा तो वह उसका लाभ उठायेगा।"[१]

"साधारणत जेलो मे बन्दी के साथ ऐसा व्यवहार होता है कि उसका व्यक्तित्व ही उससे छिन जाता है। उसके मन मे ऐसी प्रणाली के प्रति इतनी भर्त्सना उत्पन्न हो जाती है कि उसका दिल ही टूट जाता है।"[२]

"अमेरिका अपनी अपराध की समस्या को कुछ लोगो को जेल भेजकर हल नही कर सकता। सन् १९३९ की पुलिस रिपोर्ट से पता चलता है कि १,३०,००,००० की आबादी के ७८ नगरो मे प्रति १०० बडे अपराधो मे, जिनका कि पुलिस को पता चला था, केवल २७ मामलो मे गिरफ्तारियाँ की जा सकी। इनमे से केवल १९ पर मुकदमा चलाया जा सका और केवल १४ को सजा मिली। लास ऐंजीलीज नगर मे पुलिस को यदि १०० अपराधों का पता चलता था तो उनमे से केवल १२ मे गिरफ्तारियाँ की जा सकती थी—यह सन् १९४६ का औसत है। सानफ्रासिस्को मे जहाँ सयुक्त राष्ट्र सघ का सम्मेलन-भवन है, प्रति १०० अपराध पीछे सन् १९४६ की रिपोर्ट के अनुसार, ११ मे ही गिरफ्तारी हो सकती थी।"[३]

श्री स्कडर फिर लिखते हैं—

"हम छोटे और साधारण लोगो को पकड लेते है पर हजारो अपराधी पुलिस की गिरफ्त मे नही आते। वे हमारे अमेरिकन समाज मे बडे भोग-विलास के साथ सुरक्षित जीवन बिताते है। हम, आप और पुलिस जानती भी नही कि ये कौन है, इनके विषय मे किसी को कोई जानकारी नही होती। इतना होते हुए भी हमारे अमेरिकन जेल तथा सुधारगृह भरे पड़े है। हम जितना अधिक जेल बनाते जा रहे है, उतना ही उनको भरते भी चले जा रहे हैं।"[४]

अपराध और अपराधी प्रवृत्ति के विषय मे स्कडर लिखते है कि—"अपराध या अपराधी मनोवृत्ति तब तक कम न होगी जब तक समाज स्वयं इस विषय मे ध्यान न देगा। केवल लोगो को जेलो मे बन्द कर देने से काम नही चलेगा। हमको ठोस अपराधी के पास जल्दी पहुँचना चाहिए, विपत्ति मे पड जाने के पहले उसका

१. वही, पृष्ठ ५२
२. वही, पृष्ठ ५७
३. वही, पृष्ठ २७२
४. वही, पृष्ठ २७४

उद्धार कर लेना चाहिए। उसमे नैतिक भावना, नैतिक विचार को उत्पन्न करना चाहिए।"[१]

स्कडर की इन पक्तियो से यह स्पष्ट है कि दण्ड का पात्र केवल बन्दी ही नही है, हम भी है। समाज भी अपराधी के प्रति, उसके अपराध के लिए जिम्मेदार है। यदि अपराधी मनोवृत्ति का उदय होते ही समाज चौकन्ना होता और उसे बचा लेने का प्रयत्न करता तो उसका पतन, उसका अपराधी जीवन बच जाता, रुक जाता।

वह युग चला गया जब हमारा ऐसा विश्वास था कि तीन प्रकार के मनुष्य होते है, (१) प्रतिभाशाली, (२) साधारण, (३) साधारण से नीचे की श्रेणी की बुद्धि-वाले। इस तीसरी श्रेणी के लोगो मे अपराधी रखे जाते थे। अब तो यह विदित हो गया है कि चाहे प्रतिभाशाली व्यक्ति हो, चाहे अपराधी ही प्रतिभाशाली हो, उसके व्यवहार मे कोई असाधारणता जो दिखाई पडती है वह साधारण जीवन के व्यवहार से भिन्न नही है, उसका स्वरूप भले ही भिन्न प्रतीत हो। मनुष्य का हर एक कार्य निश्चयत उसके शरीर, मन तथा समाज की रचना पर निर्भर करता है। अपराधी किसी विशेष वर्ग या समुदाय की उपज नही है। उसके व्यवहार मे औरो से विभिन्नता कतिपय कारणो से आ गयी है। उसके चरित्र तथा व्यवहार मे जो भीतर छिपा हुआ अन्तर है, उसे भी ढूँढकर निकाला जा सकता है। अच्छे से अच्छा चरित्रवान् व्यक्ति भी व्यवहार मे उसी चरित्र के विरुद्ध काम करने के लिए विवश हो सकता है। अतएव दोष व्यक्ति का नही उसकी विवशता का है। श्री हॉलकाम्ब लिखते है[२]—

"यह भली प्रकार से विदित है कि बालिग हो जाने के बाद हमारे जीवन के बहुत से अनुभव उन्ही अनुभवो के आधार पर होते है जिन्हे हमने अपने बचपन मे प्राप्त किया है। वैज्ञानिक अनुसधान ने यह साबित कर दिया है कि बडी उम्र मे हमारे अधिकाश आचरण की जड मे बचपन मे हमारे जीवन की वे छोटी छोटी घटनाएँ है जिनको हम कोई महत्त्व नही देते। इस बात को ध्यान मे रखने के बाद हमारी यह बात सही मालूम होगी कि पुलिस के लिए बच्चो से सम्पर्क रखना कितना जरूरी है। बच्चो को उचित बाते समझा देना बडा आसान है। कम उम्र मे उनके चरित्र

१. वही, पृष्ठ २८१

२ Richard L Holcomb—The Police and the Public—Charles C Thomas Springfield, Illinois–1954—Page 13.

को आसानी से सही ढग से ढाला जा सकता है। यदि पुलिस अफसर बच्चो के सुधार मे रुचि ले तो बच्चो का बडा कल्याण हो।"

सामाजिक परिस्थितियाँ

उत्तर प्रदेश के मुख्य मत्री डा० सम्पूर्णानन्द ने लखनऊ मे हुए प्रथम अपराधी तथा मुक्तबन्दी सम्मेलन मे (१२-१४ नव०,१९५७) अपने उद्घाटन भाषण मे कहा था[१]—

"अपराधशास्त्र उन विषयो मे से है जो सभ्य समाज के लिए बडा महत्त्व रखते है। उसके द्वारा मनुष्य का उन परिस्थितियो मे अध्ययन किया जाता है जिनमे वह साधारण व्यक्ति के समान नही किन्तु असाधारण व्यक्तित्व से काम करता है। ऐसे अध्ययन के परिणामो का समाज तथा साधारण व्यक्ति के जीवन पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पडता है। सब आदमी पैदायशी एक दूसरे के समान नही है। उनके शारीरिक तथा बौद्धिक अन्तरतम मे विभिन्नता है । यो देखने मे एक दूसरे के समान प्रतीत होता हुआ मनुष्य समान सासारिक तथा आध्यात्मिक परिस्थितियो मे भिन्न रूप से आचरण करता है। यदि समाज का सगठन ऐसा हो कि उसमे मानव-स्वभाव को भली प्रकार से समझ लिया गया है और उनकी विभिन्नताओं के प्रति पूरी सहानुभूति बरती गयी है, तो "एक ही प्रकार का" सामाजिक ढाँचा बनाने के मसले पर जोर देने की जरूरत ही नही रह जायगी। दुर्भाग्यवश समाज की रचना दार्शनिक दृष्टिकोण से नही हुई है। यदि कोई व्यक्ति उसके आदेशो तथा निषेधो को हर तरह से नही अपना सकता तो उसका जीवन एक प्रकार से उच्छृङ्खल हो जाता है और यदि उसे कुछ करना है तो उसका कार्य अ-सामाजिक बन जाता है, समाज-विरोधी बन जाता है। इसके अलावा, प्रकृति ने तो हमारे स्वभाव मे असमानता बरती ही है। फिर आदमी ने स्वयं सामाजिक तथा आर्थिक बधन बना रखे है। बच्चे ऐसे समाज तथा परिस्थितियो मे पैदा हुए तथा पलते है जिनमे बचपन से ही यह शिक्षा मिलती है कि यदि उनको अपनी अत्यन्त आवश्यक तथा प्रारम्भिक आवश्यकताओ की भी पूर्त्ति करनी है तो उनको समाज के विरुद्ध अनवरत सघर्ष करते रहना चाहिए

१. Dr. Sampurnanand—Inaugural Address at First Convicts and Ex-Convicts Conference, Lucknow Nov., 12-14—1957—Information Deptt., U. P. Govt., Pages 1-5-6.

इस प्रकार हमने प्राय ऐसे व्यक्ति को, जो अच्छा नागरिक बन सकता था, समाज का विद्रोही बना दिया है। तब हम उसे जेल मे रख देते है और हम उसके साथ ऐसा व्यवहार करते है मानो हम केवल उसके कुकार्यों के प्रति प्रतिशोध नही चाहते बल्कि उन हजारो के कुकार्यो का भी बदला ले रहे है जो हमारी पकड मे नही आ सकते है।"

अधिकतर अपराधी पकड मे नही आते, यह भी सत्य है। हॉलकोम्ब अपनी पुस्तक मे लिखते है[1]—

"पक्षपात से बचना बडा कठिन है। हम सभी मनुष्य है और मनुष्य होने के नाते हमारे मन मे, जन्म से ही, वर्षो से घोषित निश्चित धारणाएँ बन जाती है। पर पुलिस अफसर होने के नाते आपको इन पूर्व धारणाओ से ऊपर उठना होगा . . . धनी लोगो को गिरफ्त मे लाना पुलिस के लिए कठिन होता है। वे लोग प्रभावशाली होते है। उनमे से कुछ लोग अपने प्रभाव के द्वारा पुलिस की कार्यवाही से बचने का उपाय करते है। वे औरो की तुलना मे अधिक रियायत की आशा करते है। पर यह न भूलना चाहिए कि कानून की दृष्टि मे धनी तथा निर्धन दोनो ही बराबर है। उनके साथ बराबर का व्यवहार होना चाहिए। आप यह भी जानते है कि पैसेवाला आदमी बढिया से बढिया वकील नियुक्त कर सकता है।"

अपराध मे वृद्धि तथा अपराधी-सख्या मे वृद्धि के बहुत से कारण हो सकते है। एक कारण यह भी है कि नियम तथा व्यवस्था मे रहनेवाले लोग अपराध की रोकथाम मे सहयोग नही देते। पुलिस के लिए यह कहा जाता है कि "सद्भावना कही से इनाम मे नही मिलती। इसे प्राप्त किया जाता है, कमाया जाता है। पुलिस को यह सद्भावना जनता से प्राप्त करनी चाहिए . सार्वजनिक सहयोग सार्वजनिक भावना पर निर्भर करता है। जब लोग पुलिसमैन को पसद नही करते तो उसके साथ सहयोग क्या करेगे। बहुत से नगरो मे पुलिस ने जनता का सहयोग तथा उसकी सद्भावना कमा ली है, प्राप्त कर ली है। . . यो साधारणत पुलिस से कोई प्रेम नही करता . पर वास्तविक बात यह है कि पुलिस अपराध के हर एक मामले का पता लगा सकती है, यदि कानून के दायरे मे रहनेवाले लोग ही उससे वाकयात छिपाये नही, उससे सब कुछ बतला दिया करे।"[2]

१ R L. Holcomb—The Police and the Public—Page 18.

२. वही, पृष्ठ ५ तथा ७

अपराध तथा अपराधी दोनो के प्रति जनता की उदासीनता प्रकट है। पर, उसके साथ ही अपराध मे वृद्धि के बहुत से कारण है। स्विट्जरलैण्ड की राजधानी बर्न मे १० से १५ अक्टूबर १९४९ को अतर्राष्ट्रीय अपराधी पुलिस कमीशन का १८वाँ महाधिवेशन हुआ था। इस अवसर पर स्विस पुलिस विभाग के प्रधान स्टीगर ने अपने भाषण मे कहा था—[1]

"क्या गत महायुद्ध के कारण अपराधो मे चारो ओर वृद्धि हुई है? क्या इस वृद्धि मे अधिकता होती ही जायगी? क्या युद्ध के पूर्व जैसी आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति हो जाने पर अपराध मे कमी होगी? ये ऐसे प्रश्न है जिन पर प्रत्येक सरकार बराबर विचार कर रही है। अपराधी वर्ग आज की वैज्ञानिक प्रगति से लाभ उठाना अच्छी तरह जानता है।"

पुलिस सम्बधी वैज्ञानिक तथा यत्रीय उपायो से, जिन्हे हम पुलिस-कला कहते है तथा अपराधी के मनोविज्ञान से परिचित होने के कारण हमे वे सब उपाय मालूम है, जिनसे उलझी से उलझी अपराध की समस्या हमारे द्वारा हल हो सकती है।[2]"

पुलिस के पास नये से नये औजार कितनी भी मात्रा मे आ जायँ, उसके पास सब कुछ साधन तथा जनसहयोग का भी प्रबध हो जाय, पर अपराध की प्रगति जिन सामाजिक कारणो से हो रही है, वह रुकती नजर नही आती। इसमे अपराधी का दोष भी है और समाज का भी। सार्वजनिक मत अथवा विचार के अनुसार ही अपराध पैदा होते है। सामाजिक विचारधारा मे निरतर परिवर्तन होता रहता है। उसी प्रकार अपराध भी बढते-घटते रहते है। आज से ढाई सौ वर्ष पूर्व इग्लैंड मे सनातनी ईसाइयो के विरुद्ध बडे कठोर नियम थे। इन रोमन कैथोलिक ईसाइयो के विरुद्ध कानून की कठोरता बहुत धीरे धीरे कम हुई। सन् १७७८ तथा १७९१ मे उन कानूनो मे थोडा परिवर्त्तन हुआ। पर सन् १८२९ तक[3] सभी धर्मवालो को राजनीतिक तथा नागरिक समानता नही मिली थी। ब्रिटिश जनता ने सिद्धान्तत यह बहुत पहले स्वीकार कर लिया था कि धार्मिक विश्वास के कारण राजनीतिक

१. International Criminal Police Commissioner's Official Organ "I C. P Review"—Number 33, Dec, 1949—Page 6

२. वही, पृष्ठ १५

३. Catholic Relief Act of 1829—(इसके पहले 18 Geo III C 60—1778 and 31, Geo III C—32—1791)

तथा सामाजिक अधिकारो मे कोई अन्तर नही होना चाहिए। पर १६६८ के कानून के बाद से[१] सन् १८८८ तक पार्लमेन्ट कानून बनाती रही, तब जाकर धार्मिक विचार-स्वातन्त्र्य इग्लैंड को प्राप्त हुआ। "आज का मजदूर कानून १९वी सदी के ४० कानूनो का परिणाम है।" इग्लैंड मे पुराने जमाने से अपराधियो के लिए एक भयकर दड-प्रथा थी—एक बडे चौखटे मे अपराधी का गला जकड देते थे और दोनो हाथो की कलाइयाँ कसकर बाँध देते थे।[२] फिर उसे सार्वजनिक स्थान पर खडा कर देते थे ताकि राहचलतू लोग उसे गाली दे, उस पर थूँके, उसका घोर से घोर अपमान करे। इतना निन्दनीय तथा बर्बर दड भी अपराधियो के प्रति अन्य क्रूर दडो के समान युगो तक जारी था। जनता का मत इनके विपरीत बहुत धीरे-धीरे हुआ। सन् १८१६ मे कुछ अपराधो के लिए यह दड कायम रह गया।[३] सन् १८३७ मे यह कानून एकदम समाप्त हुआ। "यदि १६० अपराधो के स्थान पर केवल दो अपराधो मे प्राणदड की सजा बची रह गयी है, तो कानून मे ऐसी मानवोचित उदारता की ओर आने मे १९ वी सदी के प्रारम्भ से ही कानून पर कानून बनते चले गये और अधिकाश सशोधन सन् १८२७ तथा १८६१ के बीच मे हुए।[४]

कानून की पहुँच

स्पष्ट है कि "अपराध" बने रहे, उनकी व्याख्या बदल गयी। सनातनी ईसाई बने रहे, उनका सनातनी होना अपराध नही रहा। बाल अपराधी बाज़ार मे चोरी करते रहे पर ऐसी चोरी प्राणदड के योग्य अपराध न रही। ऐसे समाज की रचना की कल्पना जिसे "समाजवादी" कह सके, अपराधी भावना का प्रतीक थी किन्तु जैसा कि जनवरी १८४८ मे तोकेविले ने कहा था—[५] "एक ऐसा दिन भी आयेगा कि आज जिस समाजवाद का लोग मजाक उडा रहे है वही एक वास्तविकता होकर रहेगा।" बात असल मे जनता की विचारधारा की है। जनता ही कानून बनाती है,

१. Toleration Act, 1688

२ Pillory

३. 56 Geo III C 138

४ A V Dicey—"Law and Public Opinion in England"—Macmillan & Co, London, 1952—Page 29-30

५. वही, पृष्ठ २५५

उसकी पीठ पर रहती है और जब वह अपना विचार बदल देती है, उसका कानून भी बदल जाता है। ह्यूम ने लिखा था—[१]

"शक्ति सदैव शासित के हाथो मे है अतएव शासक को अपने समर्थन मे सार्वजनिक मत-समर्थन प्राप्त करना होता है। इसलिए हर एक सरकार जनता के मत पर निर्भर रहती है। यह बात एकदम निरकुश तथा सैनिक शासन के लिए भी लागू होती है।"

यह सत्य है कि यदि जनता पक्ष मे न हो तो कानून का पालन कराना सम्भव नही है। निरकुश तथा एकतन्त्र शासन मे भी कानून की अवज्ञा कम नही है। पर जब हम यह कहते है कि कानून बनानेवाले यानी व्यवस्थापक सभी वास्तव मे जनता के मत के द्योतक है, प्रतिनिधित्व कर रहे है, यह बात कुछ स्पष्ट, कुछ एकदम ठीक नही है। जनमत का विकास भी सभ्यता के विकास के समान शनै. शनै तथा मन्द गति से होता है, बहुत से ऐसे देश हैं जहाँ जनमत जाग्रत भी नही हो पाया है या उसे सुलाये रखने का हर प्रकार का प्रयत्न होता रहता है। ऐसे पिछडे समाज मे जो काम होते है वे विचार-जन्य नही होते, सोच-समझकर नही होते बल्कि आदतन होते है। उनका जीवन परम्परा तथा प्राचीन विधियो के द्वारा सचालित होता है। प्राचीन परिपाटी मे ऐसी आदत बन जाती है कि किसी प्रकार का परिवर्तन बुरा लगता है। जब सभ्यता का विकास होने लगता है, प्रजातत्र की भावना मन में बैठ जाती है, जनमत सचेत होने लगता है, तभी वह व्यवस्थापको, विधायको को प्रभावित करने लगता है। इग्लेंड मे १९वी सदी से वास्तविक जनमत ने विधायको को प्रभावित करना प्रारम्भ किया था। फ्रान्स मे १७८९ की राज्यक्रान्ति के बाद जनमत की मर्यादा बढी। आज के प्रजातत्रीय युग मे जनमत ही असली शासक है। १९वी सदी से ही जनमत ने कानून पर अपना प्रतिबध लगाना शुरू कर दिया था। जब कलेण्डर मे सुधार का सवाल उठा, अज्ञानी जनता मे यह विचार भर दिया गया कि उनके साल के ग्यारह दिन छिने जा रहे है। बड़ी कठिनाई से लोगों को समझाया गया। सन् १७७८ मे जब रोमन कैथोलिक लोगों पर से प्रतिबध उठाने की चर्चा चली, १७८० मे इग्लैड मे घोर साम्प्रदायिक दगा हो गया था। अमेरिकन राष्ट्रपति अब्राहम लिकन ने दासता की प्रथा दूर करने का सकल्प लिया था। उत्तरी भाग दास-प्रथा

१. Hume, Essays, Vol. I, Essay IV—Green & Gross—Page, 110.

के विरुद्ध था, दक्षिणी भाग दास-प्रथा रखना चाहता था। संयुक्त राज्य अमेरिका मे इसी प्रश्न पर गृह-युद्ध छिड गया था।

"दास-प्रथा मे विश्वास महज भ्रम था। पर चाहे निजी स्वार्थ के परिणाम-स्वरूप ही भ्रम क्यो न हो, बौद्धिक भूल तो है ही और ऐसी भूल कठोर स्वार्थी भावना से भिन्न वस्तु है। हर दशा मे ऐसी भावना भी "विचार" तथा "मत" ही कही जायगी। इसीलिए दक्षिणी अमेरिकनो के लिए भी, जो दास-प्रथा को निर्मूल करने के विरुद्ध लड रहे थे (उसी प्रकार अन्य मामलो मे भी) यही बात है कि हर एक कानून की तह मे जनता का मत ही प्रधान है।"[१]

फासिस्त विचार

इसी लिए आज का अपराध-शास्त्री जनता के सामने अपराध तथा अपराधी की समस्या का वास्तविक रूप उपस्थित करना चाहता है, ताकि उसका समर्थन प्राप्त होने से अपराधी कहे जानेवाले मानव को मानव बनाने मे बडी आसानी हो। चाहे निरकुश शासन ही क्यो न हो, अपराधी के प्रति जनमत को सचेत करने का सभी प्रयत्न करते है। हमारे एक मित्र ने फासिस्त शासन काल मे, जब इटली मे मुसोलिनी का शासन था, अपराध करनेवालो के प्रति उस देश की भावना की जानकारी के लिए अग्रेजी मे अनुवाद करके एक कटिग भेजी है। लेख का शीर्षक है—"फासिस्त शासन मे दडसुधार।" उसमे लिखा है—[२]

"मै अब समाज की रक्षा के उस पहलू पर विचार करना चाहता हूँ जिसमे कतिपय निश्चित अपराधी वर्ग से समाज को बचाना है। वे है—बाल अपराधी, ऐसे लोग जिनको गहरा तथा खतरनाक मानसिक रोग है, तथा जो किसी प्रकार का काम नही करना चाहते, विराराधी (आदतन अपराधी)। इनमे से बाल अपराधियो के सम्बध मे मेरी राय है कि उनको बडी उम्र के अपराधियो से अलग रखा जाय। इनमे यह भी देखना होगा कि कौन बालक प्रथम अपराधी है और कौन एक बार से अधिक अपराध करने का दोषी है। यह कहना बडा कठिन है कि कौन पहला अपराधी है।

१. Dicey—Law and Public Opinion in England—Page 20

२. La Reforms Penale Fasciste-Extrait de la "Revue Penitentiare de Pologn—Vol IV—NR 3/1 July, October, 1929—Page 12-15.

"जो लोग भयानक मानसिक रोग से पीड़ित हैं, जो पागल हैं तथा जिन्हें उनके पागलपन के कारण सज़ा नहीं मिली है, उनको पागलख़ाने में, ऐसे विशेष स्थान में जहाँ मानसिक रोगी रखे जाते हों, रखना चाहिए।

"एक ऐसा भी वर्ग है जो न तो एकदम पागल है और न एकदम होश में है। कुछ लोगों का कहना है कि ऐसी बीच की कोई अवस्था नहीं हो सकती—ऐसी बात नहीं है। विज्ञान भी ऐसी बीच की अवस्था मानता है। ऐसा आदमी भी अपने कार्य के लिए उत्तरदायी नहीं हो सकता। हिस्टीरिया, मृगी, अपस्मार आदि के मरीज़ इसी श्रेणी में आते हैं। मेरे विचार से ऐसे रोगी अपराधियों को विशेष संस्थाओं में, अस्पताल या चिकित्सा-गृहों में रख देना चाहिए . . . . . .

"जो लोग आदतन शराबी हैं तथा नशे की दशा में अपराध करते हैं उनके विषय में मेरी एक धारणा है। 'नशे की हालत' सज़ा से छुटकारा पाने के लिए बहाना मानने के मैं विरुद्ध हूँ . . . जो लोग स्वभावत: कोई काम नहीं कर सकते, जो बचपन से ही इतने मूढ़ हैं कि उनसे कुछ नहीं हो सकता, ऐसे लोगों के लिए भी एक विशेष संस्था या आश्रम खोलना चाहिए. . . . .पर इन सब सुधारकार्यों में एक बड़ी कठिनाई है—इनमें ख़र्च अधिक पड़ता है—नयी-नयी संस्था या आश्रम बनाने में बहुत अधिक धन की आवश्यकता होती है. . . .सान स्टेफानो में हम ऐसी संस्था की स्थापना कर रहे हैं जिसमें ऐसे विराराधी रखे जायेंगे जो मन की प्रेरणा से बार-बार अपराध करते रहते हैं। ऐसे ख़तरनाक क़ैदी भी हैं जिनकी विशेष देखरेख करनी पड़ती है। ऐसे भी अपराधी हैं जो किसी भी दशा में सुधर नहीं सकते. . . समाज में जो ख़तरनाक अपराधी हैं, जिनका कभी सुधार नहीं हो सकता, उनको समाज से सदा के लिए अलग कर देना चाहिए, वे फिर कभी भी समाज के बीच में न आने पायें और अगर आयें भी तो काफ़ी लम्बी अवधि के बाद। विराराधी (आदतन अपराधी) के साथ क्या किया जाय, यह एक गम्भीर समस्या ज़रूर है।"

फ़ासिस्त विचारधारा भी अपराध-निरोधक तथा अपराधी-सुधार के कार्य में काफ़ी प्रगतिशील थी, यह तो ऊपर के वाक्यों से स्पष्ट है। उनका तथा हमारा मत-भेद केवल विराराधी के सम्बंध में है। उनके विचार से उसे सदा के लिए समाज से पृथक् कर देना चाहिए।

अध्याय ३३

प्राणदण्ड

दुष्ट अपराधी को, विराराधी को तथा दूसरे का प्राण लेनेवाले को समाज से सदा के लिए पृथक् करने का एक उपाय प्राणदड है। इस सम्बध मे इस पुस्तक मे पूरी तरह से प्रकाश डालने का स्थान नही है। प्राणदड पर, उसके इतिहास तथा वर्तमान रूप पर मैं एक स्वतंत्र पुस्तक लिख चुका हूँ।[1] इस पुस्तक मे भी स्थान-स्थान पर प्राणदड का जिक्र किया गया है। यह प्रश्न सदा से हर एक राज्य के सामने है कि दूसरे का प्राण लेनेवाला, बलात्कार करनेवाला, राजद्रोह करनेवाला क्या इस ससार मे जीवित रहने का अधिकारी है?

यूनाइटेड किगडम

इग्लैंड, वेल्स तथा स्काटलैंड मे—जिसे यूनाइटेड किगडम कहते है, सन् १९०० से लेकर १९४९ तक १२१० व्यक्तियो को फासी लगायी गयी। इनमे से ८३६ व्यक्ति वासना-जन्य हत्या के अपराधी थे। सन् १९४० से १९४९ के बीच मे १६६० हत्याएँ हुई जिनके लिए केवल १२७ व्यक्तियो को प्राणदड मिला। यूनाइटेड किगडम मे प्रति वर्ष औसतन १७० हत्याएँ होती है। प्रति वर्ष लगभग २३ व्यक्तियो को फॉसी होती है। घटते-घटते आजकल १३ प्रतिवर्ष का ही औसत रह गया है। हर फॉसी मे कुल मिलाकर सरकार का लगभग १५० रुपया खर्च होता है। प्राणदंड समाप्त करने के हिमायती लोगो की एक जबर्दस्त दलील यह भी है कि यदि इन १३ व्यक्तियो की जान न ली गयी तो हरसाल क्या विपत्ति आ जायगी? जेल मे कैदी काम करता है तब सरकार खिलाती है। अतएव यदि उसे आजन्म कारावास यानी वास्तव मे १४ वर्ष की सजा दे दी गयी तो समाज की रक्षा भी होगी, एक मूल्यवान जीवन भी

१. परिपूर्णानन्द वर्म्मा, "प्राणदण्ड"—मयूर प्रकाशन, मानिक चौक, झांसी, सन् १९५३

बच जायगा। फाँसी का तख्ता मनुष्यता का सबसे नग्न तथा निन्दनीय अभिशाप है। ब्रिटिश जनमत कुछ इसी प्रकार के विचार का होता जा रहा है। पाँच वर्ष के लिए प्राणदड की प्रथा को स्थगित करने का निर्णय सन् १९५६ मे हो चुका था, पर हाउस आव लार्डस् तथा मैकमिलन प्रधान मत्री की सरकार ने उसे उलट-पुलट कर दिया था। किन्तु ब्रिटिश जनता इस सम्बध मे प्राणदड की प्रथा के पक्ष या विपक्ष मे है, इसका एकदम सही उत्तर देना कठिन है। सन् १९३८ मे जनमत-सग्रह किया गया तो ५० प्रतिशत जनता ने प्रथा समाप्त करने के पक्ष मे मत दिया था। शेष मे से बहुतो ने "मै नही कह सकता" उत्तर दिया था। सन् १९४८ मे पुन मत सग्रह किया गया (गैलप-मत-संग्रह प्रणाली द्वारा), तो ६८ प्रतिशत ने प्राणदड के पक्ष मे मत दिया। पर १९५५ मे, जुलाई के महीने मे पुन मतगणना करने पर ६८ प्रतिशत प्राणदड के विरुद्ध निकले। यह गणना लदन के "डेली मिरर" नामक प्रसिद्ध दैनिक पत्र ने करायी थी।

प्राणदड के स्थान पर आजन्म कारावास की बात प्राय कही जाने लगी है। इस सबध मे दो तीन बाते ध्यान मे रखने की है। आजन्म कैद का अर्थ होता है बीस वर्ष। इसमे रविवार की छुट्टी आदि सब काट लेने पर, यदि कैदी का व्यवहार दुरुस्त रहा, तो १४ वर्ष मे ही छोड दिया जाता है। इग्लैड मे सन् १९२८ से १९४८ के बीच मे १७४ व्यक्तियो को आजन्म कारावास मिला था। उनमे से ११२ छूटकर बाहर आ गये। उनमे से सिर्फ एक ही व्यक्ति वाल्टर ग्राहम रोलैड को दुबारा हत्या के अपराध मे पकडा गया। इस अभागे का मामला ससार मे प्राणदड की प्रथा के विरुद्ध सबसे बडा तथा सबसे ताज़ा प्रमाण है। जब रोलैड को फाँसी हो गयी तथा बेचारा सदा के लिए विदा हो गया, यह साबित हो गया कि वह निर्दोष था। प्राणदड मे सबसे बडा अवगुण यही है। कथित अपराधी निर्दोष होने पर भी इस ससार से विदा हो जाता है। उस भूल का कोई प्रायश्चित्त नही है। रोलैड के मर जाने के बाद जिस व्यक्ति ने अपना अपराध स्वीकार कर लिया था, उसे पागलखाने भेज दिया गया है। वहाँ आजन्म कारावास से छूटे एक भी "अपराधी" ने समाज का कोई अकल्याण नही किया है।

सन् १९३४-४८ के बीच मे, इग्लैड तथा वेल्स मे, हत्या के अपराध मे आजन्म कारागार भोगनेवाले १२९ बन्दी सजा पूरी करके जेल से छूटे। इनमे से ११२ छूटने के बाद ही स्वस्थ सामाजिक जीवन बिताने लगे। २७ औरते छूटी थी। उनमे से १९ स्वस्थ सामाजिक जीवन बिताने लगी। चार स्त्रियाँ काफी सुखी जीवन व्यतीत करने लगी। केवल चार का पता नही है।

सर जॉन मैकडोनेल, सुप्रीम कोर्ट के "मास्टर" ने १८८६ से १९०५ के हत्या सम्बधी ऑकडे एकत्रित किये थे। उनकी जॉच के अनुसार ९० प्रतिशत हत्याएँ पुरुषो ने की थी। लगभग दो-तिहाई हत्याएँ अपनी पत्नियो, प्रेयसियो या रखेलियो की की गयी थी। ३० प्रतिशत हत्याएँ नशे की दशा मे, विवाद मे या अत्यधिक क्रोध मे की गयी थी। ४० प्रतिशत हत्याएँ द्वेष, ईर्ष्या या कामवासना-वश की गयी थी। केवल दस प्रतिशत हत्याएँ आर्थिक कारणो से हुई थी। आज भी उस देश मे हत्या के लिए सबसे "व्यस्त" दिन शनिवार है और शनिवार को भी सबसे ज्यादा हत्याएँ रात को ८ बजे से २ बजे तक के बीच मे होती है। कामवासना का यही समय होता है। अतएव ज्यादातर हत्याएँ वासना-वश ही होती है।

वासना के अपराधो की अधिकता से ही प्रकट है कि प्राणदड के भय से अपराध कम नही हो सकते। वासना अधी होती है। भय से मनुष्य ने अपनी वासना को दबाना नही सीखा है। ब्रिस्टल के जेल के पादरी ने सन् १८६६ मे शाही कमीशन के सामने गवाही देते हुए कहा था कि वहाँ के जेलो मे प्राणदड की सजा पाये हुए १६७ अपराधियो मे १६४ ऐसे थे जो दूसरो को फाँसी पर लटकते हुए देख चुके थे। ब्रिटिश जेलो मे पहले खुले आम फॉसी दी जाती थी ताकि दूसरे नसीहत ले सके। प्राणदडवाले अपराधो से जनता मे क्षोभ के स्थान पर उत्तेजना तथा वासना की भावना पैदा होती है। वह बडे चाव से ऐसी हत्याओ के समाचार पढती है। सन् १९२८ मे अग्रेजी साहित्य के धुरधर लेखक टॉमस हार्डी की मृत्यु हुई थी। उन्ही दिनों अमेरिका मे श्रीमती स्नाइडर पर अपने पति की हत्या का मुकदमा चल रहा था। वे सिगसिग (न्यूयार्क के निकट) जेल मे कैद थी। टॉमस हार्डी की मृत्यु का समाचार एक प्रसिद्ध अमेरिकन दैनिक मे ५ कालम इच मे छपा—उनकी जीवनी सहित। पर उसी अखबार ने श्रीमती स्नाइडर तथा श्री ग्रे के प्रेमकाड पर ११६ कालम इच मे सवाद प्रकाशित किया। एक दूसरे दैनिक ने हार्डी पर २ कालम इच तथा श्रीमती स्नाइडर पर २८९ कालम इच छापे।[1]

प्राणदड से हत्या के अपराध कम होते है, यह भूल है। सन् १८२८ से १८८९ तक सिगसिग जेल मे हत्या के अपराध मे २००० व्यक्ति आये थे जिनको अन्य जेलो मे ले जाकर फॉसी दी गयी।[2] पर, हत्यारो की सख्या बढती ही गयी। गले मे रस्सा

१. Warden Lewis E. Lawes—"Meet the Murderer"—Harper & Brother, New York—1940—Page 45.

२ वही

लगाकर भारत या इग्लैड मे जिस प्रकार फाँसी दी जाती है, उसमे यदि जल्लाद भूल न करे तो सबसे जल्दी मौत होती है। अमेरिका मे प्राणदड के साथ ही "दया" की भावना से प्रेरित होकर "बिजली की कुर्सी" ईजाद हुई। सन् १८८९ मे यह कुर्सी पहली बार सिगसिग जेल मे आयी। सन् १८९० मे आवर्न जेल मे पहली बार इस कुर्सी से प्राण लिया गया। पहले प्रयोग मे प्राण लेने मे ३० मिनट लगे। सन् १९२० तक कुर्सी मे सुधार होते-होते ८ से १२ मिनट लगते थे। आज भी कमसे कम ३ मिनट लगते है। क्या इस प्रकार प्राण लेना मनुष्यता है ?

फिर, प्राणदड मे निर्दोष व्यक्ति के भी प्राण चले जाते है, जैसा कि हम ३९२ पृष्ठ पर कह चुके है। उसे फिर वापस नही बुलाया जा सकता। लिविस ने अपनी पुस्तक मे ऐसे अनेक निर्दोष व्यक्तियो का उदाहरण दिया है जो जान से हाथ धोने के बाद बेकसूर पाये गये। वे लिखते है—

प्राणदंड से हानि

"यदि आदमी जीवित है, वह कैद मे चाहे एक, पाँच, दस, बीस, पचास वर्ष तक ही क्यो न पडा रहे, उसका दृष्टिकोण एकदम निराशापूर्ण नही रहता। यदि कभी आगे चलकर उसका निर्दोष होना सिद्ध हो गया तो चाहे क्षतिपूर्ति कितनी भी कम हो, कुछ तो हो ही सकती है। वह, कम से कम, बधन-मुक्त हो सकता है, उसे कुछ ठोस प्राप्ति भी हानि के एवज मे हो सकती है, और कम से कम वह एक वरदान के लिए सदा कृतज्ञ रहेगा—विचारा जीवित तो है।"[1]

दड के सम्बध मे लिविस की सबसे मार्के की बात हमे कभी न भूलनी चाहिए; जैसे उनको भी कभी नही भूलती है। वे लिखते है—

"मुझे अपने जेल के पादरी की एक बात कभी नही भूलेगी—अपने हाथ के बेत को अपने अधिकार की निशानी समझो, दड का प्रतीक नही।"[2]

राज्य को दंड देने का अधिकार है। समाज को दड देने का अधिकार है, पर उनका दड केवल अधिकार की निशानी रहे—प्रतीक न बन जाय। "खून के लिए खून तथा जान के लिए जान"—यह हजारो वर्ष पुराना इजरायली कानून आज लागू

१. वही, पृष्ठ ३३९
२. वही, पृष्ठ ५

होने योग्य नही है। रोमन सम्राट् ईसाई आगस्टीन ने अपने मित्र मार्सेलेनस से कहा था कि जो लोग ईसाइयो की हत्या करने के अपराध मे प्राणदड पा चुके है उनको इसलिए फॉसी पर न लटकाया जाय कि "हम ईश्वर के सेवको को हत्या करने का प्रतिशोध वैसी ही पीडा पहुँचाकर नही लेना चाहिए।" सन् १८०० मे ब्रिटिश सम्राट् जार्ज तृतीय का प्राण लेने की चेष्टा जेम्स हैटफील्ड ने की। उसे यह सनक सवार हो गयी थी कि "यदि जार्ज तृतीय मार डाले जायँ तो मानव जाति का उद्धार हो जायगा।' उसे "भ्रमित" व्यक्ति कहकर छोड दिया गया। आज के अधिकाश हत्यारे इसी प्रकार किसी न किसी भ्रम के, वासना के शिकार है।

सन् १९०० तक इंग्लैंड मे २२० से ३०० तक ऐसे अपराध थे जिन पर प्राणदंड होता था। सन् १८०७ मे सैमुयेल रोमिली ने इस पशुता के विरुद्ध आवाज़ उठायी। उस समय उसे लोग खब्ती समझते थे। ब्रिटेन के प्रधान न्यायाधीश लार्ड एलेनबोरो उसके कट्टर विरोधी थे। अपने कार्य मे असफल रोमिली ने सन् १८३२ मे आत्म-हत्या कर ली। उसकी मृत्यु के एक महीने बाद लार्ड एलेनबोरो भी मर गये। पर, १८३४ मे मरकर भी रोमिली विजयी हुए। जिनकी रक्षा के लिए प्राणदड का नियम था, उन्ही ने सरकार से अनुरोध किया कि "दड की कठोरता से कोई लाभ नही हो रहा है।" उन दिनो बैंक को धोखा देने पर प्राणदड होता था। डा० डॉड पर ऐसा ही धोखा देने का मुकदमा चला। एक जूरी (पचो मे एक) बडे उग्र शब्दो मे डॉड की भर्त्सना कर रहा था। पर वही स्वय धोखा देने के अपराध मे पकडा गया और उसे फॉसी हुई।

फॉसी का पर्व

इंग्लैंड मे किसी का फॉसी पर लटकना एक पूरा त्यौहार बन जाता था। मेला लग जाता था। लोग खूब नाचते, गाते, लडते, झगडते थे। जिस जेल मे फॉसी होती थी वहाँ के सुपरिन्टेन्डेन्ट को अपने खर्च से उन पचासो प्रमुख व्यक्तियो को दावत देनी पडती थी जो फॉसी का तमाशा देखने आते थे। सन् १८०७ मे इग्लैंड मे एक फासी के अवसर पर आनन्दोन्मत्त भीड मे गहरा दगा हो गया और फासी के बाद लगभग १०० लाशे सडक पर मिली। लन्दन के "टाइम्स" पत्र ने १८६४ मे श्रूसबेरी के एक जेल मे फाँसी होने का सवाद छापा था—"लोग इस अवसर पर बढिया से बढिया कपडा पहनकर आये थे। दूर-दूर के लोग तमाशा देखने आये थे। हर फॉसी के बाद सुपरिन्टेन्डेन्ट जेल को दावत देने मे बडा पैसा खर्च करना पडता था। इसी लिए न्यूगेट के गवर्नर अपने जेब के दुख से फॉसी से भी घृणा करते थे।" फॉसी

देने से क्या लाभ है जब कि फाँसी देनेवाला जल्लाद भी, जान प्राइस एक अपराध मे अभियुक्त को फाँसी देने के बाद स्वयं उसी अपराध मे पकडा गया और अपने "प्रिय" तख्ते पर झूल गया।

इसी लिए लोग इस दड के विरुद्ध होते जा रहे है। चार्ल्स डिकेस नामक प्रसिद्ध उपन्यासकार ने लिखा था—"काम की ओर मत देखो। नीयत की ओर देखो।" प्रसिद्ध कवि यीट्स ने भी इसी कथन को दुहराया है। पैली ने भी यही कहा है कि अपराध की गुरुता महत्त्व नही रखती। इसलिए राज्य द्वारा हत्या करने से क्या लाभ होता है। जिन देशों ने प्राणदड समाप्त कर दिया है, उनका अनुभव है कि इससे हत्या आदि के अपराध कदापि नही बढ़े है। निश्चयत. घटे है। जब राज्य स्वयं हत्या करना बन्द कर देगा, उसका नैतिक प्रभाव तो पड़ेगा ही। जिन देशो ने प्राणदंड समाप्त कर दिया है, उनकी सूची तथा दड समाप्त करने का वर्ष नीचे दिया जा रहा है—

	देश	प्राणदड-समाप्ति का वर्ष	विशेष बात
	यूरोप		
१	आस्ट्रिया	१९१९—फिर १९५० मे	हिटलर ने अपने शासन मे पुन चालू कर दिया था।
२	डेनमार्क	१८९२-१९३३ से एकदम समाप्त	
३	बेल्जियम	१८६३	
४	फिनलैंड	१९२६	
५	आइसलैंड	१९४४	
६	इटली	१८९०-१९४४	मुसोलिनी ने पुन चालू किया था।
७	नीदरलैंड्स	१८७०	
८	नार्वे	१९०५	
९	पुर्तगाल	१८६७	
१०.	स्वीडन	१९२१	
११.	स्विट्ज़रलैंड	१८७४—फिर १९४२	
१२.	तुर्किस्तान	१९५०	
१३.	पश्चिमी जर्मनी	१९४९	

	देश	प्राणदड-समाप्ति का वर्ष	विशेष बात
	दक्षिणी अमेरिका		
१४	अर्जेंटाइना	१९२२	
१५	कोलम्बिया	१९१०	
१६	कोस्टारिका	१८८०	
१७	डोमिनिका	१९२४	
१८.	इक्वाडार	१८९५	
१९	मेक्सिको	१९२९	
२०	निकारागुए	१८९३	
२१	पनामा	१९०३	
२२.	पेरू	१८९८	
२३	न्यूगिनी	१८०७	
२४	वेनेजुएला	१८७३	
	उत्तरी अमेरिका (संयुक्त राज्य)		
२५	मिचिगन प्रदेश	१८४७	
२६	रोड द्वीपसमूह	१८५२	
२७.	विसकौसिन	१९५३	
२८	मिनिसोता	१९११	
२९	नार्थ ैजोना	१९१५	
३०.	क्वीसलैड, आस्ट्रेलिया	१९१३	

इनके अतिरिक्त नेपाल मे भी सन् १९३१ से प्राणदड समाप्त कर दिया गया है।

भारतवर्ष मे प्राणदड

यह सूची पूरी नही है। किन्तु इससे कुछ जानकारी तो हो ही जाती है। सन् १९५६ मे, जून के अन्तिम सप्ताह मे ब्रिटिश पार्लमेंट की लोकसभा मे मजदूर दल के सदस्य सिडनी सिलवरमान का प्राणदड समाप्त करनेवाला बिल १९ के बहुमत से पास हुआ था। १५८ सदस्य पक्ष मे तथा १३३ विपक्ष मे थे। उस समय भी

प्रथा के पक्ष मे वही दलीलें दी गयी थी, जिनका हम ऊपर उल्लेख कर आये है। हमारे देश मे भी इसे समाप्त करने का सवाल उठा हुआ है। पर हमारी विचारधारा भी इस प्रथा के ह्मिायतियों से बहुत कुछ मिलती-जुलती है। ब्रिटिश पार्लमेन्ट के निर्णय पर टीका करते हुए इलाहाबाद के दैनिक "लीडर" ने ३ जुलाई १९५६ के अपने अक मे लिखा था —

"डा० सप्रू (सर तेज बहादुर सप्रू) प्राणदड समाप्त करने के विरुद्ध थे। इस प्रथा के पक्ष या विपक्ष मे कुछ कहते समय देश मे अपराध की स्थिति का भी ध्यान रखना होगा। हमारे देश मे काफी हिंसात्मक कार्य हो रहे है जिनका परिणाम हत्याएँ भी है, पर पहले से सोच विचार कर की गयी हत्याओ की सख्या अनुपातत काफी कम है . हमारे देश की वर्तमान परिस्थिति मे इस प्रथा को समाप्त करना उचित होगा तथा नियम एवं व्यवस्था मे रहनेवाले वर्ग के हित मे होगा, यह बात सोचने की है।"

हमारी राज्यसभा मे प्राणदड समाप्त करने के पक्ष मे गैर-सरकारी विधेयक पेश हुआ था। वह अस्वीकार हो गया। वर्तमान प्रथा के पक्ष मे भाषण करते हुए केन्द्रीय सरकार के गृह मत्री प० गोविन्द वल्लभ जी पत ने २५ अप्रैल, १९५८ को राज्य सभा मे कहा था —

"मेरे विचार से हम सभी चाहते है कि देश मे ऐसी परिस्थिति हो कि न तो कोई मारा जाय, न किसी की हत्या हो और न कोई फॉसी पर लटकाया जाय किन्तु, हमको इस प्रश्न पर व्यावहारिक रूप से विचार करना चाहिए हत्याएँ होती है, कुछ तो बहुत पाशविक ढग से होती है। यदि हम प्राणदड बन्द कर दें तो क्या हत्याएँ बढ जायँगी या उनकी सख्या कम हो जायगी मै समझता हूँ कि प्राणदड समाप्त कर देने से आपका उद्देश्य पूरा न होगा।"

प० पन्तजी ने कुछ रोचक ऑकडे पेश किये थे। उन्होने बतलाया था कि जहॉ कही भी यह प्रथा समाप्त की गयी है, उन देशो मे दस लाख आबादी पीछे केवल चार हत्या का प्रति वर्ष औसत था, जब कि भारतवर्ष मे इससे ७०० प्रतिशत अधिक यानी प्रति दस लाख व्यक्ति पीछे २६ हत्याएँ होती हैं। उन्होने कहा कि सोवियत रूस ऐसे देशो मे भी हत्या के अलावा ऐसे बहुत से अपराध है जिनके लिए प्राणदड होता है। पर भारत मे ऐसा नही है। यह बात सही है कि अन्य देशो की तुलना में, जहॉ प्राणदड है, भारत मे बहुत कम—केवल हत्या—के अपराध के लिए प्राणदड होता है। अमेरिकन कानून या ब्रिटिश कानून के अनुसार जिन अनेक अपराधों के लिए प्राण-दड है, उनमे बलात्कार भी हैं। हमारे देश मे सन् १९५३ से १९५७ तक

हत्या के अपराध मे दडित तथा फॉसी पर लटकाये गये लोगो की सख्या निम्नलिखित थी[1]—

प्रदेश	प्राणदड प्राप्त	फॉसी दी गयी
आध्र	३८७	२३
आसाम	५	२
बगाल	४५	६
बम्बई	२४१	४९
केरल	११५	२५
मद्रास	७६९	१८७
मैसूर	१६३	२२
मध्यप्रदेश	२१५	३७
उडीसा	१३	९
पजाब	२२८	१२८
राजस्थान	६०	१२
	२,१३१	५००

सन् १९५७ के लिए दो प्रदेशो के आँकडे प्राप्त नही किये जा सके। पर यह स्पष्ट है कि सन् १९५३ से १९५७ के बीच मे २,१३१ व्यक्ति प्राणदड के योग्य समझे गये—पर ५०० को फॉसी हुई, यानी औसतन २३ प्रतिशत व्यक्ति जान से हाथ धो बैठे। पिछले वर्ष की फॉसी चालू साल मे होती है—पर औसत निकालने के लिए २३ प्रतिशत कहना गलत न होगा। शेष व्यक्ति या तो आजन्म कारावास भोग रहे है, या अन्य कारणो से मुक्ति पा गये है। सरदार पटेल ने सन् १९४९ मे लोकसभा मे, गृहमत्री की हैसियत से कहा था कि ४० प्रतिशत दडित व्यक्ति फॉसी पाते है। सन् १९४९ मे ४१९ व्यक्तियो को फॉसी लगी थी।

१. अखिल भारतीय अपराध निरोधक समिति के सौजन्य से प्राप्त आँकड़े।

प्राप्त आँकडो से पता चलता है कि सबसे अधिक फाँसी पजाब मे हुई—प्राणदड की सजा सुनाये गये लोगो मे से ५६ प्रतिशत को फाँसी के तख्ते पर झूलना पडा।

मद्रास का दूसरा नम्बर था यानी २४ प्रतिशत। केरल तीसरा था—२१ प्रतिशत। बम्बई का २० प्रतिशत, मध्यप्रदेश का १७ प्रतिशत, बिहार का ११ प्रतिशत और आध्र का ७ प्रतिशत। फाँसी की सजा पानेवालो की सख्या सबसे अधिक उत्तर प्रदेश की थी—यह प्रदेश सबसे बडा है भी। किन्तु भारत के अन्य बडे प्रदेशो की तुलना मे उत्तर प्रदेश मे वास्तविक फाँसी कम हुई। इस सम्बध मे नीचे दी गयी तालिका से वास्तविक परिस्थिति की अच्छी जानकारी हो सकती है—

	वर्ष मे जितने बदियो को फाँसी की सजा सुनायी गयी					वर्ष मे जितने बन्दियो को फाँसी हुई				
	१९५३	५४	५५	५६	५७	१९५३	५४	५५	५६	५७
आसाम	२	—	—	२	१	—	—	—	१	१
उडीसा	४	६	—	३	०	४	१	३	१	०
उत्तर प्रदेश	३१६	३९८	३६९	३५५	४५९	४८	३२	४५	३३	३७
मैसूर	२१	२०	६६	४२	१४	७	१	१२	१	१
बम्बई	४३	२९	६५	७५	२९	१९	२	१७	८	३
बंगाल	३	७	२	१८	१५	—	१	२	१	०
बिहार	३३	२५	४५	२४	१७	५	४	५	२	०
मध्यप्रदेश	३३	५१	४१	३३	५७	४	४	९	२	२
पजाब	७६	३९	३४	५८	२१	४७	३३	१९	२५	४
राजस्थान	१८	१३	६	१२	११	२	४	४	—	२
मद्रास	१९७	१२४	१३५	१९२	१२१	४६	४४	३७	३२	२८
आन्ध्र	५८	६५	१३०	९९	३५	४	१	५	८	५
केरल	३२	२३	२२	२०	१८	४	९	९	३	०

जहाँ पर शून्य बना है, उसका अर्थ केवल इतना ही है कि कोई सूचना प्राप्त नही है। जहाँ केवल — ऐसा चिन्ह है, उसका अर्थ है कि एक भी सजा या फाँसी नही हुई।

अस्तु, भारतवर्ष मे प्राणदड की प्रथा रहे अथवा नही, इस सम्बध मे हम यहाँ पर विचार नही करना चाहते। ऊपर मैंने अपनी पुस्तक "प्राणदड" का जिक्र किया है, जिसमे इस सम्बध मे काफ़ी विचार किया गया है। मैं इस प्रथा का, इस दंड-प्रणाली का विरोधी हूँ, यह बात मैंने छिपायी भी नही। मेरा विश्वास है कि अधिकाश विचार-

शील व्यक्ति मुझसे सहमत हैं। मनुष्य का प्राण ले लेना आसान है पर जिस वस्तु को हम वापस दे नहीं सकते, उसे छीनने का हमें अधिकार भी नहीं है। और सबसे बड़ी बात है "दया"। जिस समाज में दया नहीं है, वह समाज पशुवत् है।

क्लैरेंस डैरो का मत

शिकागो में क्लैरेंस डैरो नामक एक प्रसिद्ध वकील थे। १३ मार्च १९३८ को ८१ वर्ष की उम्र में इनकी मृत्यु हुई थी। अपराध के सम्बंध में उनका कहना था[१] —

"अपराध का कारण होता है। आज वैज्ञानिक इसी कारण का अध्ययन कर रहे हैं। अपराध-शास्त्री इस विषय में अनुसंधान कर रहे हैं। पर हम वकील लोग, हम कानूनदाँ लोग इनको दंड देते हुए, इनको फाँसी देते हुए चले जा रहे हैं। हम सोचते हैं कि लोगों में आतंक पैदा करके हम अपराध को समाप्त कर सकते हैं। यदि मानव-हृदय की कठोरता को कोमल बनाने का कोई उपाय है, यदि बुराई और घृणा तथा उनसे सम्बंधित खराबियों के हनन का कोई उपाय है, तो वह घृणा या निर्दयता द्वारा नहीं बल्कि दानशीलता, प्रेम और समझदारी से काम लेना है। ऐसा कोई दार्शनिक नहीं पैदा हुआ, ऐसा कोई धार्मिक नेता नहीं हुआ और ऐसा कोई धर्म नहीं है जो इस बात को न सिखलाता हो. . . .मैं उस भविष्य के नाम पर आपसे अनुरोध करूँगा, जिस युग में मनुष्य तर्क, न्याय, समझदारी और विश्वास से काम लेगा और यह मानेगा कि हर एक का जीवन बचाने के योग्य है और मनुष्य का सबसे बड़ा गुण है 'दया'।"

क्लैरेंस डैरो ने ये शब्द हत्या के एक अपराधी की ओर से बहस करते हुए शिकागो की अदालत में कहे थे। जब उन्होंने अपनी दलील समाप्त की, विचारपति कैवरली के नेत्रों से आँसू बह रहे थे। समूची अदालत स्तब्ध थी। डैरो ने केवल अपने उपरि-लिखित तर्कों से रिचार्ड लोब तथा नथान लियोपोल्ड के प्राण बचा लिये थे। वे सफल हुए क्योंकि विचारपति ने क़ानून की सही व्याख्या समझ ली। क़ानून की पंक्तियों से ही सब कुछ अर्थ नहीं निकलता। उसकी भावना को भी समझना होगा। मानव के इतिहास के अन्य क्षेत्रों के समान क़ानून में भी अतीत की बातें ऐसा अर्थ ग्रहण कर लेती हैं जिनका वर्तमान तथा भविष्य के साथ सामंजस्य नहीं हो सकता। "बीती बातों का बखान करना आसान है पर भविष्य के बारे में कुछ कहना बड़ा

१. Readers' Digest—July, 1959. पृष्ठ ४३

कठिन हैं यह तो पता नही है कि नवीन तर्को से ताजे मामलो मे जज के मन तथा बुद्धि पर क्या प्रभाव पडेगा। अदालत मे न्यायाधीश के व्यक्तित्व की हम पर जो छाप पडी है, उससे हमे यह जानकारी कदापि नही हो सकती कि अमुक मामले मे उनका फैसला क्या होगा। सयुक्त राज्य अमेरिका की केन्द्रीय अदालतो मे जो जज नियुक्त होते है वे जीवन भर के लिए होते है। उन्होने तटस्थ रहने का सकल्प लिया है। वे तर्क-बुद्धि से ही किसी निर्णय पर पहुँचते है। इन बातो को ध्यान मे रखते हुए अधिक ठोस तथा उचित कानून की रचना ही उचित प्रतीत होती है।"[१]

जुआ की मिसाल

इसलिए, आज की नयी दुनिया मे, सभ्यता तथा समाज की नवीन गति मे, हमको अपने कानूनो को भी दुहराना, सुधारना पडेगा। अपराध से अधिक महत्त्वपूर्ण अपराध की व्याख्या है। इस सम्बध मे हम जुआ की मिसाल पेश करना चाहते है। आदि-काल से जुआ की, जुआ खेलने की, निन्दा होती चली आ रही है। हार-जीत की बाजी लगाना बुरा समझा जाता है। किन्तु "जिन्दगी एक जुआ है"—यह कहना हम बुरा नही समझते। जिस काम के परिणाम का निश्चय न हो, उसे जुआ समझना चाहिए। आज जुआ की व्याख्या करना इसलिए कठिन हो रहा है कि नये-नये खेल ऐसे बन गये है जिनको जुआ कहना चाहिए, पर वे ऐसा कहे नही जाते। बहुत सी सरकारे ऐसी है जो जुआ खेलने को सरकारी प्रोत्साहन देती है, जिनकी बहुत बडी आमदनी जुए के द्वारा है। भारतीय सभ्यता मे जुआ सब विपत्तियो तथा पापो की जड समझा गया है पर पश्चिमी सभ्यता मे ऐसा नही है। वर्षो तक इग्लैंड मे इस बात पर खूब बहस चलती रही कि जुआ अपराध है भी या नही। सन् १९५६ मे इस विवाद ने काफी ज़ोर पकड लिया था। जो लोग जुआ को जायज व्यसन मानने के पक्ष मे थे उन्होने तर्क पेश किया कि उसी साल, वित्तमत्री हैरल्ड मैकमिलन (वर्तमान प्रधान मत्री) ने स्वय एक सरकारी जुआ शुरू किया। राष्ट्रीय बचत योजना के नाम पर एक पौड (चौदह रुपये) के टिकट चालू किये गये। लाटरी डालकर जिसका नाम निकलता उसे १००० पौड (चौदह हजार रुपये) तक इनाम मिलता है। सरकार की ओर से कहा गया कि चूँकि एक पौड के टिकट वाले को भी अपने रुपये का भुगतान तो मिलता

१ Challenge, New York, Vol. II No. 6, August, 1959—Page 28.

ही है अतएव यह लाटरी जुआ नही कही जा सकती। जुआ केवल उसे कहते है जिसमे कुछ खोने की सम्भावना हो।

इग्लैड मे, फुटबाल के खेल मे, हार-जीत पर पहले से ही सट्टा होता है। ऐसे सट्टे के टिकट बिकते है। सही भविष्यवाणी करनेवाले को ७५,००० पौड तक प्राप्ति हो सकती है। सरकार को भी ऐसे सट्टे से लाभ होता है। उसे कर के रूप मे काफी रकम प्राप्त हो जाती है। किन्तु जुआ के विरुद्ध जो सबसे बडी दलील है उसका उत्तर देना कठिन है। २६ अप्रैल १९५६ को ब्रिटिश पार्लमेट की सरदार सभा मे ब्रिटेन के सबसे बडे पादरी डा० जियाफ्रे फिशर ने बडा जोरदार भाषण किया था। उन्होने कहा था कि जुआ सबसे बडा अवगुण है—मनुष्य को हैसियत से कही ज्यादा खर्चीला बना देना। आकाश से फट पडनेवाली आमदनी की आशा मे वह खर्च करता चलता है। कर्जदार हो जाता है। फिर वह चोरी, डाका, सभी कुछ कर सकता है।

आज की सभ्यता मे आवश्यकताओ के बेतहाशा बढ जाने से हर एक व्यक्ति "ऊपर की आमदनी", बिना कमायी आमदनी की तलाश मे है। इसी लिए जनमत जुआ के पक्ष मे अधिक होता जा रहा है। एक ब्रिटिश पत्र ने लिखा है[१]—

"इसमे कोई सन्देह नही कि जुए के प्रति जनसमूह का दृष्टिकोण इधर काफी बदल गया है एक समय था जब अधिकाश जनता जुए को सबसे भयकर पाप समझती थी। अब वैसी बात नही है। अब उस भावना मे परिवर्तन हो गया है।"

जब समाज का विचार इसी प्रकार बदल सकता है कि कल का "सबसे बडा पाप" जुआ आज यदि 'उतना पाप" नही रह गया तो आज के "सबसे बडे अपराध"—हत्या के विषय मे भी भावना बदल सकती है। अपराध के विषय मे समाज की मौलिक तथा प्रारम्भिक भावना बदल गयी है। शेल्डन ग्लूक ऐसे प्रसिद्ध अपराधशास्त्री का कथन है[२]—

"सन् १८९७ मे, जबसे लोम्ब्रोज़ो ने 'जन्म-जात अपराधी' के सिद्धान्त को प्रकाशित किया था, अपराध के लिए किसी एक कारण की तलाश हो रही है। . . .

१ Guy Eden's Letter from London—May, 1956—Page Six.

२ Sheldon Glueck in the British Journal of Delinquency, Vol VII, No. 2, Oct, 1956—Article—"Theory and Fact in Criminology"—Page 92-94

आज क्या कोई इस बात मे विश्वास करता है कि अपराधी प्रवृत्ति पैतृक सम्पत्ति है ? क्या लोम्ब्रोजो भी इसमे विश्वास करते थे. अब तो कोई भी अपराध-शास्त्री यह नही कहता कि अपराध पारिवारिक देन, विशिष्टता है। अब वे सिर्फ यही कहते है कि सामाजिक रूप से इस बात पर विशेष ध्यान नही दिया जा रहा है कि जन्तु-शास्त्र की दृष्टि से ससार मे प्रकृति ने हर एक मनुष्य को समान नही पैदा किया है और कुछ लोगो मे अपराधी प्रवृत्ति के ऐसे लक्षण मौजूद होते है जो किसी मे अन्य लोगो की तुलना मे अधिक बलवती अपराधी प्रेरणा पैदा करते रहते है... कुछ लोग कहते है कि अपराध करने की शिक्षा प्राप्त किये बिना कोई व्यक्ति अपने मन से अपराधी काम नही करने लगता। आश्चर्य है कि कोई आजकल ऐसी दलील कैसे पेश कर सकता है। ऐसे लोगो का मतलब तो यह हुआ कि हर एक अपराधी कार्य या तो अन्य अपराधियो द्वारा सिखाया जाता है या उनकी छूत है। पर ऐसे लोग यह भूल जाते है कि मनुष्य मे आज भी वे आदिकालीन उत्तेजनाएँ तथा प्रेरणाएँ वर्तमान है जिन्हे हम किसी दूसरे पर प्रहार करना, प्रेम करना, प्राप्त करना, ग्रहण करना, कामवासना आदि कहते है और इन बातो को दूसरों से सीखने के पहले ही बच्चे आपसे आप ग्रहण कर लेते है और इनके कारण वे समाज-विरोधी कार्य करने लगते है। अशिष्ट, अनियन्त्रित तथा समुचित शिक्षा के अभाव मे बच्चा भूठ बोलना, बहाने बनाना, क्रोध करना, घृणा करना, मक्कारी, चोरी, लडाई-झगडा, सभी कुछ करने लगता है। सीधा-सादा झूठ बोलने के लिए, दूसरे का सामान चुरा लेने के लिए या परस्पर कुकर्म करने के लिए कुछ सिखाने की जरूरत नही पडती। बच्चे को शुरू से ही बालिगो के वातावरण मे अपने निजत्व को प्राप्त• करने के लिए, अपने लिए प्रेम प्राप्त करने के लिए, अपनी सुरक्षा के लिए, अहभाव या अपराध के द्वारा नही, बल्कि अपराध-विहीन तथा कल्याणकारी कार्यों को लेकर सघर्ष करना पडता है . ..पर कानून के दायरे मे रहनेवाला चरित्र बडी कठिनाई से क्रमश. प्राप्त होता है।"

समाज की ऐसी परिस्थिति मे अपराधी की सहज-सिद्ध मानव-भावनाओ का अनादर करके कौन समाजशास्त्री केवल कठोर दंड तथा प्राण ले लेने के दड से ही समाज के सुधार की कल्पना करेगा? हमने दड का सीधा-सादा रास्ता कैदखाना बना रखा है—पर उसमे मनुष्य रहते है, यह नही भूलना चाहिए।

अध्याय ३४

बन्दी की समस्या

बदी के सम्बध मे ट्रेवर फिलपॉट ने एक समाचारपत्र मे बडा महत्त्वपूर्ण लेख लिखा था। उस लेख की भूमिका मे [illegible] ने लिखा था—

"ज्यो-ज्यो अपराधो की सख्या बढती जा रही है, जनता को यह जानने की चिन्ता हो गयी है कि हमारे जेलो मे क्या हो रहा है। क्या जेलो मे रहने से आदमी का सुधार होता है, वह भ्रष्ट हो जाता है, या बर्बर हो जाता है?"

फिलपॉट लिखते है—[१]

"बन्दीगृह मे रहनेवाला प्रत्येक व्यक्ति भिन्न तथा पृथक् समस्या है। हर एक बन्दीगृह का लक्ष्य होता है आदमी को समाज मे पहले से अच्छा बनाकर वापस भेजना, ताकि जिस दिन वह बन्द हुआ था, उस समय के समान अपराध करने की सम्भावना छूटने के समय काफी कम हो जाय . सुधारक तो यह रोते है कि हमारे जेलो मे से कैदी पहले की तुलना मे अधिक बर्बर तथा अपराध से अधिक परिचित बनाकर भेजे जाते है। और दूसरी ओर, छूटे हुए कैदी द्वारा कोई बडा अपराध होने पर जनता चिल्लाती है कि जेलो को "अवकाश-गृह" बना दिया गया है। वहाँ कैदियो को बडा आराम दिया जा रहा है। जब तक अधिक सख्ती से काम न लिया जायगा, अपराधी सुधर नही सकता।"

इतना लिखने के बाद श्री फिलपॉट ने ब्रिटेन के जेलो की—जिनमे से बहुत से कारागार संसार मे आदर्श बन्दीगृह समझे जाते है—बन्डी निन्दा की है। उन्होने छोटी छोटी बातो की ओर ध्यान आकृष्ट किया है, जैसे ३४ स्नानागार १३०० आदमियो के लिए है, रहने का स्थान बहुत कम है, कमरे ठीक नही है, इत्यादि। श्री फिलपॉट का मन है कि कैदखानो मे और अधिक सुधार किया जाय। मनुष्य को मनुष्य समझकर

१ Trevor Philpott—"Men in Prison"—Sunday Times, London, Sept. 30, 1958.

रखा जाय। जेल मे बन्द आदमी का मनुष्य समझा जाना जितना आवश्यक है, उतना ही जरूरी है बाल अपराधियो को वास्तव मे बाल समझना। बाल अपराधियो की देखरेख करनेवालों को ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिए कि अपराधी बालको के लिए वे माता-पिता या अभिभावक का स्थान ले सके।[१] तभी वे वास्तव मे बाल अपराधी का सुधार कर सकेंगे। इसी प्रकार जेल के कर्मचारियो को अपराधियो का मित्र, सहायक, शिक्षक बनकर रहना सीखना चाहिए, तभी वे उनकी समस्याओ को भली प्रकार समझेंगे। तभी वे बन्दियो के साथी बनकर उनको सन्मार्ग पर ले जा सकेंगे। कैदखाने मे बन्द रखने का उद्देश्य केवल सन्मार्ग पर ले जाने योग्य बना देना है। यूगोस्लाविया ऐसे कम्यूनिस्ट विचारधारा के देश भी यही कहते है कि "दड का उद्देश्य अपराध से समाज की रक्षा करना है।" यूगोस्लाविया के जेल सम्बधी नियमो मे स्पष्ट लिखा हुआ है कि "जेल मे कुछ समय के लिए दडस्वरूप भेजने का मुख्य उद्देश्य समाज की अपराध से रक्षा करना है, बालिग अपराधी से रक्षा करना भी है तथा बच्चो को पुन शिक्षित कर जीवन मे पुन स्थापित कर देना है।

"किन्तु हमारी सम्मति मे आदमी को दीवार के भीतर दडस्वरूप बद कर देने का मतलब यह नही है कि बच्चे और बडे अपराधियो मे बडा भेदभाव किया जाय। बडे के लिए तो यह सोचा जाय कि उसके अपराध का बदला लेना है तथा छोटे को पुन शिक्षित कर जीवन मे पुन स्थापित करना है। प्रत्येक दड का एक ही उद्देश्य होना चाहिए और वह यह कि हर मामले मे, दड मूलत जीवन की पुन शिक्षा देने के लिए है। इस विषय मे उम्र का कोई भेदभाव नही करना चाहिए। यह जरूर है कि बडो के जेल मे तथा बाल-सुधार गृह के भीतरी प्रबध मे विभिन्नता होगी, क्योकि जीवन मे पुन शिक्षित करने का काम दोनो के लिए भिन्न रूप से होगा।[२]"

१ Substitute for Parents **वाक्य का प्रयोग** First Congress of the United Nations on the Prevention of Crime and the Treatment of Offenders, Geneva, 1955 **के अवसर पर** The Training of Specialized Education for Maladjusted Children—International Catholic Child Bureau **के लेख में किया गया था।**

२. Regional Consultative Groups in the Field of the Prevention of Crime and Treatment of Offenders—Standard Minimum Rules for the Treatment of Prisoners—Approved by the International

फिलप्पीन मे

फिलप्पीन मे प्रत्येक बन्दी के मन तथा बुद्धि का अध्ययन किया जाता है। उसके आचरण की प्रत्येक बात की छानबीन की जाती है। यह सब इसलिए कि प्रत्येक व्यक्ति के मन-बुद्धि-शरीर के वास्तविक रोग का पता लग जाय तो उसकी वैसी चिकित्सा की जाय। किन्तु, आम तौर पर जेलखाने मे अपराधी को बन्द कर देने का औचित्य यही कहकर समझाया जाता है कि "समाज की अपराध से रक्षा करनी है।"[१] ऐसी सजा का मूलत मतलब ही यह है कि उस व्यक्ति की स्वतत्रता छीन ली गयी। उसे समाज से अलग कर दिया गया। जेल का धर्म है कि जब उस बन्दी को समाज मे वापस करे, उसे ऐसा बना दे कि वह समाज मे व्यवस्थित तथा उचित जीवन व्यतीत करने लगे।[२] यदि ऐसा नही होता तो जेल-जीवन को निरर्थक ही मानना चाहिए। ज्यादातर लोग जेल को दड का स्थान मानते है, सुधार का नही। हमने फिलप्पीन के जेलो मे मानव के मन-बुद्धि-स्वभाव का अध्ययन करने की बडी अच्छी प्रणाली का ऊपर उल्लेख किया है। पर उसी देश के अधिकाश नागरिको का यही मत है, या यही धारणा है कि "अदालत किसी व्यक्ति को जेल इसलिए नही भेजती कि उसका सुधार करना है, बल्कि उसे दड देना है। अदालतो के इस वाक्य से कि "दड भोगने के लिए—" ऐसी ही धारणा होती है वह दुर्भाग्य की बात है कि मानव के पुनर्वास के लिए, उसका सुधार करने के लिए, उसको ठीक मार्ग पर लाने के लिए जो कुछ काम होता है वह जेलो के भीतर ही होता है। यदि बाहर हो तो अधिक लाभकर हो। अपराधियो के सम्बध मे सेवाकार्य करनेवाली सस्थाओ मे भी आपस मे कोई सम्पर्क या सहयोग नही है पुलिस-कर्मचारी की शिक्षा ऐसी हुई है कि वह सोचता है कि चाहे जिस तरीके से हो, अपराधी को पकडकर जेल मे बन्द करा देना ही उसका कर्तव्य है। पुलिस-अधिकारी उस अभागे अपराधी के प्रति ऐसा व्यवहार करता है कि अपराधी के मन मे भय, ग्लानि आदि की ऐसी भावना भर जाती है जिससे अपराधी के प्रति अश्रद्धा की मनोवृत्ति का उदय होता है जेलो में इस बात की ओर ध्यान नही दिया जाता कि जो व्यक्ति बन्द है, उस व्यक्ति से

and Penitentiary Commission on July 6, 1951—United Nations Secretariat Publication, Page 19

१ वही, पृष्ठ १८

२. वही, पृष्ठ १८

ज्यादा समाज के हित मे है कि जिस समाज मे उस बदी को छूटकर पुन वापस जाना है, उसमे उसे उचित, न्यायसगत तथा सभ्य जीवन बिताने योग्य बना दिया जाय अपराधी को दड देने के लिए जो कानून बने है उनका वास्तविक उद्देश्य है आदमी की नयी जिन्दगी, नयी सुधरी जिन्दगी शुरू करा देना अदालत के रूप मे, सरकारी अधिकार से मुक्त जो लोग न्याय करने बैठते है उनकी बुद्धि मे स्वय उलझन है। इसलिए वे अपराधी को ठीक से समझ नही सकते सजा काटकर छूटे हुए अपराधी के प्रति समाज भी अपना कर्तव्य नही पहचानता। यह समाज का कर्तव्य है कि उसे जीवन के सही मार्ग पर लगा दे।"[१]

केवल पुलिस के द्वारा अपराध नही रुक सकता। पुलिस अपराधी का सुधार नही कर सकती। लेफ्टिनेन्ट कर्नल तिजेरो का मत है कि—

पुलिस की आलोचना

"यह कहना भूल है कि असतुलित व्यवहार करनेवाले, दुष्ट प्रकृति के या जिन्हे हम पतित कहते है, ऐसे लोग समाज मे अधिक सख्या मे है और अधिक शक्तिशाली है, जनसमूह को दुष्ट और दुश्चरित्र बनाते रहते है यह दुर्भाग्य की बात है कि ज्यादातर लोग पुलिस के काम मे जिस त्याग तथा योग्यता की आवश्यकता होती है, उससे अनभिज्ञ है पुलिस की अनुचित आलोचना करने की एक आम आदत सी पडती जा रही है। बडी आसानी से यह कह दिया जाता है कि पुलिस क्या कर रही है पेरू मे हमने जनता के सामने इतने आँकडे और इतनी सूचनाएँ प्रस्तुत की है जिससे उसे मालूम हो जाय कि पुलिस उसकी कितनी सेवा कर रही है।"[२]

१. Comments on the Minimum Rules for the Treatment of Offenders—adopted by the Latin American Seminar, Rio De Janeiro, Brazil, April 6 to 19, 1953—By Dr Alfredo M Bunye, Director of Prisons, Republic of the Philippines, Oct., 1954—Pages 1-6.

२. Revue Moderne De La Police—**अँग्रेजी संस्करण** Published by the International Federation of Senior Police Officers—Paris—September, October, 1959—Pages 12-13.

समाज को पुलिस को दोष न देकर स्वयं अपने से सवाल करना चाहिए कि दुश्चरित्रो के सुधार के लिए वह क्या कर रहा है। पुलिस को केवल दो बातो का ध्यान रखकर अपराधी के सम्बध मे अपना कर्तव्य निभाना चाहिए। ३ से ५ जून, १९५४ मे, पेरिस मे राष्ट्रसघ द्वारा "मानव अधिकार सम्मेलन" हुआ था। यह १२वॉ अधिवेशन था। इसमे जो निर्णय हुए थे उनमे धारा १७ बडे महत्त्व की है। इसके अनुसार[१]—

१ किसी के निजी जीवन मे, पारिवारिक जीवन मे, पत्र-व्यवहार मे, उसके सम्मान या प्रतिष्ठा मे मनमाना या गैर-कानूनी हस्तक्षेप कदापि न होगा।

२ प्रत्येक व्यक्ति को इस प्रकार गैर-कानूनी हस्तक्षेप से अपनी रक्षा का अधिकार है।

जेल मे अनुचित दण्ड

अतएव पुलिस किसी भी व्यक्ति की स्वाधीनता का अपहरण करने के पहले भली प्रकार से सोच विचार ले कि क्या वह उचित काम कर रही है। यदि उसे अपने कार्य के औचित्य पर विश्वास जम जाय, तभी किसी को गिरफ्तार किया जाय। यदि इस भाव से काम किया गया तो पुलिस की अनावश्यक आलोचना भी समाप्त हो जायगी। जेल की आलोचना भी तभी समाप्त होगी जब जेलखाने मनुष्य को मनुष्य समझकर, बन्दी को समाज की अमानत समझकर उसके साथ व्यवहार करेगे। सन् १९५० से ही सयुक्त राष्ट्रसघ इस बात की ओर सभी देशो का ध्यान दिला रहा है कि ऐसा "कम से कम सर्वमान्य नियम" बना दिया जाय जो हर एक देश के जेलो मे मान्य हो तथा जिसके द्वारा हर एक देश के जेलो का शासन हो। बहुत सोच-समझकर ऐसे नियम बनेगे तो मनुष्य के मौलिक अधिकारो की रक्षा होगी। उसके जीवन मे असली सुधार की गुजायश होगी। इसी कार्य के लिए यूरोपीय देशो का एक सम्मेलन सयुक्त राष्ट्रसघ के तत्त्वावधान मे ८-१६ दिसम्बर, १९५२ मे जेनेवा मे हुआ था। सन् १९५५ मे प्रथम अपराध-निरोधक काग्रेस, जेनेवा, मे भी यही कार्य हुआ था। उसके बाद तीन भिन्न-भिन्न सम्मेलन राष्ट्रसघ द्वारा और हो चुके है। सन् १९५२ के सम्मेलन मे जेल मे जो साधारणत सजाएँ दी जाती है, उनकी निन्दा की गयी थी तथा उनके सम्बन्ध मे नियम बनाये गये थे। उदाहरण के लिए नियम

१. वही, पृष्ठ १५, Commission on Human Rights.

२६ (४३) है[१]। क़ैदियों को ज़रा से कसूर पर कालकोठरी में बन्द कर दिया जाता है या उनकी खूराक में कमी कर दी जाती है। नियम २६ (४३) द्वारा आदेश दिया गया है कि जब तक जेल का डाक्टर लिखित प्रमाणपत्र न दे दे कि ऐसी सज़ा से क़ैदी के मन तथा शरीर के स्वास्थ्य पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ेगा, यह सज़ा न दी जाय। नियम ३० (४७) द्वारा क़ैदियों को यह अधिकार दिया गया है कि जब जेल-निरीक्षक लोग मुआयना करने आयें, उनके सामने वे निर्भय होकर अपनी शिकायतें कह सकते हैं। उन्हें कोई दंड नहीं दिया जा सकता कि उन्होंने ऐसा क्यों किया। नियम ३२ (४९) ने जेल-अधिकारियों को हिदायत दी है कि क़ैदी को बाहरी दुनिया से सम्पर्क बनाये रखने में सहायता दें। वे पत्र-व्यवहार कर सकें। उनसे लोग मिलने आ सकें। नियम ३९ (५६) में हिदायत की गयी है कि क़ैदियों को एक स्थान से दूसरे स्थान भेजने में खराब, गन्दी सवारियाँ न दी जायें और उन्हें अनावश्यक कष्ट न दिया जाय।

इस सम्मेलन ने सभी देशों के मानने योग्य नियम बनाने की चिंता में कई उपयोगी सुझाव अस्वीकार भी कर दिये—जैसे नियम ५८ (७५) कि जिन देशों में ग़ैर-सरकारी संस्थाओं को भाड़े पर क़ैदी से मज़दूरी लेने का नियम है, वह समाप्त किया जाय या नियम ६० (७७) कि कैदियों से ८ घंटे से ज़्यादा काम न लिया जाय। पर, शुरू से लेकर अन्त तक हर नियम में इस बात पर ज़ोर दिया गया है कि बन्दी के साथ अनावश्यक सख्ती न बरती जाय तथा उसके साथ उदारतापूर्वक व्यवहार हो। जेल के काम से अनभिज्ञ लोगों को जेल का अधिकारी न बनाने के विषय में प्रायः सभी एकमत थे और यह कि जेल-अधिकारियों को विशेष शिक्षा[२] देना ज़रूरी है। क़ैदियों के लिए "खुले जेल" स्थापित करने का प्रस्ताव अगस्त १९५० में पास हो चुका था।[३] सन् १९५२ में इस सम्बंध में एक प्रश्नावली बनाकर हर एक देश को भेजी गयी थी। १६ से १८ अक्टूबर, १९५२ को लंदन में उन उत्तरों पर विचार किया गया और उनसे पता चला कि हर एक देश में "खुला जेल" किसी न किसी रूप में है, पर

१. Conference of the European Regional Consultative Group—U. N. Report, Geneva, 8-16 Dec., 1952—Page 18.

२. वही—The Recruitment, Training and Status of the Staff of Penal and Correctional Institutions—**पृष्ठ २२, एजेन्डा का ६वां विषय**

३. वही, एजेन्डा का ७वां विषय—पृष्ठ २९

"खुले" की हर एक की अपनी परिभाषा है, अपनी व्याख्या है, अपना तरीका है तथा भिन्न प्रकार के बदी इनमे रखे जाते है। इस विषय पर हम आगे विचार करेगे।

जेलो के प्रबधक

जेलो के लिए अधिकारी नियुक्त करने के पहले उन्हे समुचित शिक्षा देने का प्रबध बहुत कम देशो मे है। हमारे उत्तर प्रदेश मे, लखनऊ मे जेल ट्रेनिंग स्कूल जैसी सस्था है, वैसी भारतवर्ष मे केवल एक-दो और है। हमने ऊपर फिलप्पीन देश मे जेल-सुधार के बारे मे कई बार उल्लेख किया है, पर वहाँ भी जेल के अधिकारियो की "ट्रेनिग" के लिए कोई प्रबध नही है।[1] वर्तमान जेल-अधिकारियो मे से "बहुत कम ऐसे है जिनको इस कार्य के लिए समुचित शिक्षा मिली है।[2] सयुक्त राज्य अमेरिका मे इसका कुछ प्रबध है पर इग्लैड मे काफी दोषपूर्ण प्रबध है। भारत के पडोसी बर्मा मे १ अगस्त १९५४ को ८७०२ कैदी जेलो मे थे जिनमे ५,९६७ सजा-याफ्ता, २,३८२ विचाराधीन, ३४८ नजरकैद तथा ३ ऋण न चुकाने के लिए कैदी थे। बडी उम्रवालो के लिए ३३ जेल थे, एक बाल अपराधियो के लिए तथा केवल एक बोर्स्टल संस्था थी। वहाँ हाई स्कूल पास व्यक्ति भी जेलर हो सकता है। उसके लिए छ महीने की ट्रेनिग होती है। बडे अफसरो के लिए, जो जेल की नीति के प्रति जिम्मेदार है, कोई ट्रेनिग आवश्यक नही है।[3] जेलो के प्रबध मे बहुत कुछ खराबी केवल इसलिए है कि उनके कर्मचारी यह जानते ही नही कि उनकी नियुक्ति का क्या उद्देश्य है, उन्हे वास्तव मे क्या करना है।

क़ैदियों से काम लेना चाहिए या नही

जेल के भीतर बहुत सी ऐसी बाते है जिनके बारे मे सभ्य जगत् को अपनी नीति निर्धारित करनी है। उदाहरण के लिए, कैदियो से काम लेने का सवाल है। बहुत से देशो मे कैदियो से जानवरो की तरह काम लिया जाता है। कुछ देशो मे गैर-सरकारी लोग, जैसे ठेकेदार आदि अपने काम के लिए, चाहे सडक पीटना ही क्यों न

१-२ Selection and Training of Personnel—Alfred M Bunye, U. N. O. Publication—1955—Pages 3 and 5

३. वही—बर्मा के लिए लेखक Ba Thein—U. N O 1955 – Pages 1 and 9.

हो, जेल के कैदी ले लेते हैं। इन कैदियो का उपयोग कराकर सरकार स्वय अपनी आमदनी कर लेती है। जेल मे कैदी से "उपयोगी काम" लेना आर्थिक कारणो से शुरू हुआ। सरकार का खर्च होता था उन्हे खिलाने तथा पालने मे। उसे उनसे उपयोगी काम भी लेना था।

१९वी सदी के प्रारम्भ से कैदियो को अलग-अलग कोठरी मे बन्द करने से वास्तव मे उनके काम की, परिश्रम की विभिन्नता शुरू हुई—जैसे दर्जी का काम इत्यादि। तबसे उपयोगी काम सिखाने का महत्त्व बढता ही गया है। खुली हवा मे काम करने के प्रस्ताव ने ऐसे विकास मे और भी योगदान किया, यद्यपि इसमे एक खराबी भी पैदा हुई है। खुली हवा मे कैदी से काम लेने को ही अपराधी की चिकित्सा की एकमात्र औषधि समझ लिया गया है। नागरिक वातावरण मे काम करनेवाले मजदूरो (कैदियो) को सही ढग की शिक्षा नही प्राप्त हो पाती है। सामाजिक आर्थिक आवश्यकताओ के कारण साम्पत्तिक लक्ष्य दोषपूर्ण है—उनसे ऐसे काम लिये जाते हैं जैसे अनुत्पादक क्षेत्रो मे खेती कराना। किन्तु उनकी "चिकित्सा" की ओर विशेष ध्यान नही दिया गया है। सही ढग से जेल के उद्योग-धधे चलाने का काम नही हो रहा है, कुछ तो इसलिए कि कारखानो के मालिक विरोध करते है तथा व्यवसाय संघ भी जेल के मजदूरो की प्रतिस्पर्द्धा के भयवश विरोध करते है। इसके अलावा जिन अधिकारियो के हाथ मे कारोबार खोलने के लिए आर्थिक मजूरी देना है, वे पैसा देने मे हिचकते है। जेल के कैदियो से काम लेने के बारे मे आज सभी की राय है कि काम ऐसा हो—

(१) जिससे बन्दी को ऐसी शिक्षा मिले कि वह बाहर निकलकर उचित जीविका चला सके, ऐसा काम हो जो उसके शरीर के अनुकूल हो और उसे मनोवैज्ञानिक सन्तोष प्रदान करे।

(२) ऐसा काम हो जिससे जेल के वातावरण मे और अधिक स्वास्थ्यवर्द्धक वातावरण उत्पन्न हो जिससे बन्दी के मन को स्थिर करने मे सहायता मिले।

... यह कहना जरा कठिन है कि जेल मे मजदूरी का ऐसा क्या प्रबध किया जाय कि ऊपर लिखी बाते पूरी हो सके ..डेनमार्क के जेलो मे जो आबादी है उसका उम्र तथा निवास के हिसाब से विभाजन इस प्रकार किया गया था[१]—

१. Carl and Hansen—Director of Prison Labour Administration, Denmark—Report on Prison Labour—1955.

३० वर्ष से कम उम्र के	—	४५	प्रतिशत
३० से ४० वर्ष तक	—	३०	"
४० से ५० वर्ष तक	—	१६	"
५० से ऊपर	—	९	"
नगर के रहनेवाले	—	३०	"
कसबो के रहनेवाले	—	२२	"
देहात के रहनेवाले	—	१७	"
अनिश्चित वासस्थान	—	२१	"

इस प्रकार अधिकतर निवासी कसबो के हुए। इनको काम देने के सम्बध मे सबसे जरूरी बात यह जाननी चाहिए कि कितने समय तक जेल मे रहेंगे। अभी तो स्थिति यह है कि खुले जेलो मे कम अवधि के ही कैदी ज्यादा है—

सजा की अवधि	खुले जेल प्रतिशत	बन्द जेल प्रतिशत	कुल प्रतिशत
६ महीने या कम	३०	१५	२३
६ से १२ महीने तक	५२	२७	४१
१ से २ वर्ष	१७	२५	२०
२ वर्ष से अधिक	१	३३	१६
	१००	१००	१००

कैदी से काम लेने का अधिकार

जेल मे स्वास्थ्यवर्द्धक वातावरण के लिए यदि काम लेना आवश्यक है तो कैदी के मन के संतोष के अनुकूल भी काम होना चाहिए। कुछ लोगो को यह भी शंका होती है कि क्या राज्य को बन्दी से काम लेने का अधिकार है? क्या उसकी स्वतत्रता का अपहरण कर लेना ही पर्य्याप्त नही है? पर इसका उत्तर यही दिया जा सकता है कि यदि उसे यों ही जेल मे निरुद्यमी रहने दिया जाय तो न तो उसका सुधार होगा और न उद्धार होगा। समाज की रक्षा के लिए दोनों ही चीजें जरूरी है। अपराध की समस्या गुरुतर होती जा रही है। अपराध की सख्या मे, संयुक्त-राष्ट्रसघ के

शब्दो मे "भयास्पद" वृद्धि हुई है। और यह वृद्धि खास कर बाल अपराधियो मे हुई है। ससार के अनेक भागो मे यह वृद्धि बहुत स्पष्ट है और इसलिए सयुक्त-राष्ट्रसघ को चुनौती है कि वह इस दिशा मे अपने प्रयत्न को अधिक दृढ तथा ठोस करे[१]।

२२ अगस्त से ३ सितम्बर तक, सयुक्त राष्ट्र सघ की ओर से जेनेवा मे प्रथम अपराध निरोधक सम्मेलन हुआ था। १२ से १८ सितम्बर तक लन्दन में तृतीय अतर्राष्ट्रीय अपराध-शास्त्री-सम्मेलन हुआ था। इन दोनो सम्मेलनो मे जेल के भीतर बन्दियो के सुधार की समस्या पर विचार हुआ था[२]। सयुक्त-राष्ट्रसघ काग्रेस ने निम्नलिखित विषयो पर विचार किया था—

(१) कैदियो की चिकित्सा के लिए कम से कम निश्चित नियम।

(२) खुले या बद कारागारो के अधिकारियो का चुनाव, उनकी शिक्षा।

(३) खुले जेल तथा सुधारगृह।

(४) जेल मे बदी से परिश्रम।

(५) बाल-अपराध निरोध।

कारागार मे बदियो के साथ किस प्रकार का व्यवहार हो तथा उनसे कैसा काम लिया जाय, इस विषय मे आलोचना करते हुए शेल्डन ग्लूक लिखते है—

"अमानवीय अपमानजनक दड तथा अनुचित प्रतिबध, इन सब की मनाही कर दी गयी है। बन्दियो को यह अधिकार दिया गया है कि वे जेल-अधिकारियो के पास, न्याय-अधिकारियो के पास अपनी शिकायतें भेजें तथा जेल-अधिकारी इन शिकायतो को बाहर जाने से रोके नही। परिवार से, परिवार के या अपने मित्र से, धार्मिक अधिकारियो से या कानूनी सलाहकार से सम्पर्क की अनुमति है. . काग्रेस ने स्पष्ट आदेश दिया है कि जहाँ तक हो सके जेल के प्रबधको मे मनोविश्लेषक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक कार्यकर्त्ता, अध्यापक तथा व्यवसाय सिखानेवाला अध्यापक अवश्य हो. . .

"यदि दड का उद्देश्य समाज की अपराध से रक्षा करना है तो इस लक्ष्य की प्राप्ति तभी हो सकती है जब यह सम्भव हो कि जेल से लौटने पर समाज मे अपराधी नियम

१. Report of the Ad Hoc Advisory Committee of Experts on Prevention of Crime & Treatment of Offenders—2-5 May, 1959—Page 18

२. लेखक इन दोनों सम्मेलनों में उपस्थित था।

तथा व्यवस्था के अतर्गत स्वस्थ जीवन बिताने की केवल इच्छा ही न करे वह इसके योग्य भी हो। वह इस योग्य हो कि अपना भरण-पोषण कर सके। इसके लिए यह जरूरी है कि जेल मे हर प्रकार की नैतिक, आध्यात्मिक, शिक्षणीय तथा अन्य प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त हो जिनका बन्दी की निजी आवश्यकतानुसार उपयोग हो सके . जहॉ तक हो सके जेल के जीवन मे और स्वतत्र समाज के जीवन मे कम से कम अतर होना चाहिए सजा पूरी होने के पहले कैदी स्वस्थ सामाजिक जीवन के योग्य बना दिया जाय खुले जेलो का सबसे बडा लाभ यही है कि वे दड को व्यक्तिगत चीज बना देते है और व्यक्ति को उसकी आवश्यकता के अनुसार चिकित्सा कर समाज के योग्य बनाते है।"[१]

इस भावना से यदि जेल मे बन्दी से काम लिया जा रहा है कि उसको समाज का स्वस्थ नागरिक बनाना है, तो उसे भी आपत्ति नही होनी चाहिए। फिर भी, अभी सब देशो मे इस सम्बध मे एक समान नियम नही है। कुछ देश ऐसे है जहाँ कैदी से काम लेना दड के कानून मे शामिल है, जैसे—अर्जेन्टाइना, आस्ट्रिया, बेल्जियम, कनाडा (कुछ विशेष वर्ग के कैदियो के लिए), चाइल, कोस्टारिका, क्यूबा, फिनलैण्ड, यूनान, हैती, इटली, आयरलैड, भारतवर्ष, जापान, लिबेनान, लक्जेमबर्ग, न्यूजीलैण्ड, क्वीसलैड (आस्ट्रेलिया), सीरिया, तुर्किस्तान, दक्षिण अफ्रीका, उरुगुए तथा यूगोस्लाविया।

कुछ देशो मे कैदी से काम लेने का नियम बनाने का अधिकार जेल विभाग पर छोड दिया गया है, जैसे आस्ट्रेलिया महाद्वीप के टसमानिया प्रदेश मे, इग्लैड—वेल्स—स्कॉटलैड यानी यूनाइटेड किगडम मे तथा केन्द्रीय कानून के अन्तर्गत बदियो के लिए सयुक्तराज्य अमेरिका मे, वहॉ १३ प्रदेश या राज्य ऐसे है जहॉ पर न्याय विभाग या जेल विभाग जैसा उचित समझे, नियम बना ले। इनमे से ९ तो कनाडा के सूबे है, आस्ट्रेलिया के न्यू साउथ वेल्स, विक्टोरिया तथा पश्चिमी आस्ट्रेलिया नामक प्रदेश है तथा इजरायल का राज्य है। कुछ राज्य ऐसे है जो कतिपय श्रेणी के कैदियो से परिश्रम नही लेते। आस्ट्रिया, नार्वे, लक्जेमबर्ग, मध्य तथा पूर्वी यूरोप, एशिया मे लेबनान, सीरिया, भारत तथा बर्मा ऐसे देश छोटी मियाद की सजा वालो से काम नही लेते।

१ Sheldon Glueck—Two International Criminologie Congress A Panorame—The National Association of Mental Health, 10 Columbus Circle, New York–1956–Pages 388-390.

बेल्जियम, फ्रास और क्यूबा मे राजनीतिक बदियो से काम नही लिया जाता। अर्जेन्टाइना मे सादी कैद वालो से भी काम लेते है पर उन्हे सार्वजनिक निर्माण के कार्यो मे बाध्य नही किया जा सकता। सार्वजनिक कार्यो मे गम्भीर अपराध के दोषी लोगो से सार्वजनिक निर्माण का काम लेने का नियम वास्तव मे नैपोलियन विधान १८१० से चालू हुआ है। उस समय उन कैदियो को जेल की दीवार से बाहर काम करना पडता था। इसे खुले-जेलो की शुरुआत भी कह सकते है पर उस समय तो यह नियम इसीलिए बनाया गया था कि कैदियो को कठोर से कठोर परिश्रम का काम करना पडे और वह काम उपयोगी भी हो।

कुछ देश ऐसे है जहाँ पर बन्दी से जेल मे काम लेना सरकार का "अधिकार" नही समझा जाता—वे है हिन्द एशिया तथा मेक्सिको। पर वे जेलो मे कार्य करने को उचित तथा "कर्तव्य" अवश्य समझते है। मेक्सिको के शासनविधान मे है कि बन्दी को अधिकार है कि वह जेल मे काम करे या न करे। ससार के अन्य किसी देश के विधान मे ऐसी बात नही है। जेलो मे काम लेने के सम्बध मे १८वी तथा १९वी सदी मे बहुत से नियम बने। इसके पहले इंग्लैड के ब्रिडवेल ऐसे जेलो मे तथा अन्य जेलो मे एक प्रकार से बन्दी को सुधार के लिए भेजा जाता था। पर १८वी तथा १९वी सदी के जेलो के नियम विशेष कर इसलिए कठोर बनाये गये कि बन्दी को यातना मिले, दड मिले, पीडा मिले, कैदी को इसलिए नही काम करना पडता था कि उसको सयम की शिक्षा मिले, मेहनत करना सीखे तथा परिश्रम के प्रति उसकी आस्था हो, बल्कि इसलिए भी काम दिया जाता था कि वह उससे कष्ट भी भोगे, दड भी हो। आजकल एक प्रकार से दड की भावना छोड दी गयी है।[१]

बन्दियों द्वारा परिश्रम

आजकल कैदियों के द्वारा बड़े-बडे उपयोगी कार्य हो रहे है। इटली मे सन् १९५३ मे ३०,००० बन्दी जेलो मे थे। उनमे से ३,००० भूमि की उत्पादन शक्ति बढाने मे, खेती के योग्य नयी भूमि तैयार करने मे बडा काम कर रहे थे। स्वीडन मे सरकारी सडकें बनाने, जगलात मे काम करने मे बन्दी बडा उपयोगी होता है।[२] इग्लैड (यूनाइटेड किंगडम) मे सरकार जेलो से कैदियो को म्युनिसिपल बोर्ड

१. Prison Labour, United Nations, 1955-Pages 1 and 2.

२. वही, पृष्ठ ३१

आदि को—स्वशासन विभाग को—दे देती है जिनसे नगरो के विकास के कार्य मे बडी सहायता मिलती है। तुर्किस्तान मे जेल के बाहर सार्वजनिक निर्माण विभाग की ओर से कैदियो से काम लिया जाता है। चिराग जलते ही वे जेलो को वापस कर दिये जाते है और उसी काम पर साधारण मजदूर को जितनी मजदूरी मिलती है उसका दो-तिहाई उनको मिलता है। जापान मे, सन् १९५३ के ऑकड़े के अनुसार जेल मे काम करने योग्य लोगो की समूची आबादी का ९ प्रतिशत यानी ३६०० बन्दी १४९ कैम्पो मे खेती, मछली मारना, सडक बनाना, लकडी का कोयला बनाना आदि काम करते थे। सन् १९४० से वहाँ पर हौक्केपेडो नगर मे इतना बडा कारखाना खोला गया कि उसमे ३००० बन्दी मजदूर काम करते थे।[१] भारतवर्ष के उत्तर प्रदेश मे लगभग ८००० बन्दी—प्रदेश के जेलो की जनसख्या का लगभग १५ प्रतिशत, सावजनिक निर्माण या विकास का कार्य कर रहे है, जिनमे से लगभग ६०० तो प्रसिद्ध चुर्क सीमेन्ट फैक्टरी मे काम करते है। इनको वही मजदूरी मिलती है जो साधारण मजदूरो को प्राप्त होती है। इसके अलावा जितने दिन वे फैक्टरी मे काम करते है, उनको अपनी सजा मे उतने दिन की छूट मिलती है। सन् १९५३ मे पहली बार 'सम्पूर्णानन्द शिविर' के नाम से चन्द्रप्रभा नदी पर बाँध बनाने का काम शुरू हुआ। ऐसे दो बॉध केवल बन्दी गण बना चुके है। बर्मा मे औसतन ५,०९१ बन्दी रोज़ जेल विभाग का ही कुछ न कुछ काम करते है। कुछ देशो मे बन्दियो के उपयोग के ऑकडे इस प्रकार है[२]—

राज्य	काम मे लगे कुल बन्दी	रचनात्मक तथा निर्माण के काम मे	प्रतिशत
डेनमार्क	२९०४	२८०	९·६
फिनलैंड	५६४८	१०६९	१८ ९
फ्रास	११,१४५	४१०	८ ९
यूनान	२४७५	१२३	५ ०
आयरलैंड	४११	३०	७ ३

१. वही, पृष्ठ ३४
२. वही, पृष्ठ ३५–३६

राज्य	काम मे लगे कुल बन्दी	रचनात्मक तथा निर्माण के काम में	प्रतिशत
इटली	१४,०२१	६४६	४ ६
लक्जेमबर्ग	१४०	७	५ ०
नीदरलैंड्स	२८९०	०	० ०
नार्वे	१००८	७५	७ ४
स्वीडन	२४०९	४६४	१९ ३
यूनाइटेड किंगडम	२१,७५३	२,५९०	११ ९
कनाडा	४४१२	७४४	१६ ९
सयुक्त राज्य अमेरिका	१३,६५९	११७०	८ ६
दक्षिण अफ्रीका	२४,२१८	२३९५	९·९
बर्मा	४९८५	०	० ०
हिन्देशिया	१७,३४३	०	०·०
जापान	५९,९०७	३५९९	६ ०
न्यूजीलैंड	९९७	१४८	१४·८
आस्ट्रेलिया	३९१३	२५८	६·४

ऊपर की तालिका से स्पष्ट है कि ससार मे १६ ऐसे प्रमुख देश है जो सार्वजनिक निर्माण के कार्य मे बदियो का उपयोग करते है, पर उनमे से १० ही ऐसे है जिनके यहाँ वास्तविक रचनात्मक उपयोग होता है। इसलिए यह स्पष्ट है कि ससार के अधिकाश देश बन्दी का ऐसा उपयोग पसन्द नही करते, उनसे कारागार से सम्बधित कारागार का ही काम लेना उचित समझते है।

बन्दी का प्रतिद्वन्द्वी

मजदूर बन्दी का सबसे बडा विरोधी स्वतत्र मजदूर होता है। उसे यह शिकायत हो सकती है कि जेल मे मजदूरी सस्ती है। उत्पादन का साधन सरकारी है अतएव

जेल का माल सस्ता पडता है। यूरोप के देशो मे ऐसा विरोध सबसे पहले सन् १५९९ मे[1] हुआ था। ऐम्सटर्डम के कारागारो को निकट के जगलो की लकडी छीलने का ठेका मिल गया है। दूसरा विरोध सन् १८९५ मे दो तीन यूरोपीय देशो मे हुआ।[2] १९वी सदी के मध्य मे न्यूयार्क तथा पेनसिलवानिया प्रदेशो के मिकानिक मजदूर-सघ ने जेलो मे कपडा, टोपी तथा जूता बनाकर बाज़ार मे बेचने का घोर विरोध किया था। इस प्रकार का विरोध बराबर बढता ही गया। विरोधियो का कहना था कि जेलों मे उत्पादन का सामान सस्ते दामो पर मिलता है। भूमि, किराया, मकान आदि की कोई लागत नही होती और मजदूरी बहुत कम होती है। इसलिए जेल का माल सस्ता पडता है । सयुक्त राज्य अमेरिका मे इस विरोध ने काफी उग्र रूप धारण कर लिया था। फलत. प्राय सभी देशो मे जेल से बननेवाले सामान की बिक्री या उत्पादन पर रोक-थाम की गयी। उदाहरण के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका के ३८ प्रदेशो मे जेल का बना सामान बाहर, बाजार मे नही बिक सकता। पन्द्रह प्रदेशो मे जेल की बनी रस्सी या खेती के सामान बाजार मे बिक सकते है। २३ प्रदेशो मे, सन् १९५० में यह आदेश था कि जेल का बना सामान सरकारी कामो मे जरूर लगाया जाय।

यूरोप मे आस्ट्रिया मे यह विरोध अब भी जारी है। स्वतत्र मजदूर जेल के उत्पादन के बडा विरुद्ध है। अब वहाँ नियम बन गया है कि जेल का उत्पादन ज्यादातर जेल के या न्याय-विभाग के काम मे लाया जाय। जेल के कर्मचारी भी यथाशक्य जेल का बना सामान खरीदें। बेल्जियम तथा डेनमार्क के छोटे कल-कारखानो के मालिक भी जेल के उत्पादन के विरुद्ध है। यूनान, आयरलैंड आदि देशो मे जेल का उत्पादन जेल के काम मे ही खर्च होता है। नीदरलैंड्स मे नियम है कि जेल का बना माल बाजार मे बाज़ार-भाव पर ही बिके। यूगोस्लाविया मे जेल के मज़दूरो को बाहर के मजदूरो के बराबर पारिश्रमिक मिलता है।[3]

१. वही, पृष्ठ ३८

२. Nurullah Kunter—Le Travail Penal, Paris—1940—Page 137.

३. Prison Labour—Pages 32-39-40-41.

अध्याय ३५

खुली संस्थाएँ

जेल मे बन्दी से काम लेना और उसे मजदूरी देना दड की भावना से बनाया गया नियम नही है। इस प्रणाली का आधार है मानवता। जब यह मान लिया गया कि अधिकाश अपराध क्षणिक आवेग या आवेश का परिणाम है तो अपराधी को जीवन मे पुन स्थापित करने का प्रयत्न करना राज्य का कर्तव्य है। "गत कई पीढियो से अपराधी के उद्धार मे रुचि उत्पन्न हो जाने के कारण उसके सुधार, उसकी पुर्नशिक्षा प्रोबेशन पर या पेरोल पर उसे छोडकर जल्दी स्थिर जीवन विताने मे सहायता तथा अन्य औपचारिक उपायो की ओर भी जनता की रुचि उत्पन्न हो गयी है।"[१] बन्दी-जीवन मे सुधार के लिए सबसे बडी चीज—आज का सबसे सफल प्रयोग खुला जेल है।

खुला जेल काफी समय से प्रयोग मे आ रहा है। यूरोप, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड तथा अफ्रीका और एशिया के कतिपय देशो मे इसका सफलतापूर्वक उपयोग हो रहा है। पिछले महायुद्ध के बाद से इस प्रकार की जेल-प्रणाली मे अंतर्राष्ट्रीय रुचि उत्पन्न हो गयी है। किन्तु हर एक देश मे "खुले" जेल की अपनी अलग-अलग व्याख्या है। कुछ देश कैदियों से दिन मे खेतो पर काम लेना और रात को उन्हे सीखचों के पीछे बन्द कर देना भी "खुला जेल" समझते हैं। इसी लिए सन् १९५० मे हेग सम्मेलन मे खुले जेल की व्याख्या भी कर दी गयी थी।[२] आजकल सही माने मे खुला जेल (अब हम इसे खुली सस्था कहेगे) उसे कहते है जिसमे कैदियो को आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार, आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय विचारधारा के अनुसार चिकित्सा के सभी साधन तथा सहूलियते उपलब्ध हो। इस प्रकार की सस्था के दो उद्देश्य होते हैं—हर एक अप-

१. Walter Reckless—The Crime Problem—Page 3.

२. Twelfth International Penal & Penitentiary Congress, The Hague.

राधी की अलग अलग चिकित्सा करना तथा उसे समाज मे पुन स्थापित कर देना। इस प्रकार की चिकित्सा का प्रबध जेलविभाग को ही करना होगा। कानून मे केवल सजा का आदेश है। अमुक अपराध पर अमुक अवधि के लिए दड देना होगा। अदालत अपराधी को जेल भेज देती है। उसका वर्गीकरण या उसे किस प्रकार के बन्दी जीवन की आवश्यकता है, इससे अदालत का कोई सम्बध नही है। इसलिए जिन देशो मे ऐसी सस्थाएँ है, वे स्वय अपना-अपना मापदंड बन कर बन्दी चुन लेते है तथा उन्हे खुली सस्थाओ मे रखते है।

उत्तर प्रदेश मे

भारतवर्ष के उत्तर प्रदेश राज्य मे सबसे पहले असली खुली सस्था की नीव पड़ी। १ अक्टूबर १९५२ से ३ अक्टूबर १९५३ तक चन्द्रप्रभा नदी पर बाँध बनाने के लिए सम्पूर्णानन्द शिविर नाम से पहली खुली सस्था की स्थापना तत्कालीन मुख्यमत्री—प० गोविंदवल्लभ पन्त के द्वारा हुई। डा० सम्पूर्णानन्द उस समय गृहमत्री थे। इसमे एक-एक खीमे मे २० "मज़दूर" रहते थे—उन्हे "बन्दी" कहने पर एक आना जुर्माना देना पडता था—कुल सख्या ४२२८ थी। इन बन्दियो पर मज़दूरी मे सरकार का ३,३२,१३५ रुपया खर्च हुआ था। पर इन्होने बाँध के लिए मिट्टी खोदने का जो कार्य किया था वह ६७,४४, ३८२ क्यूबिक फुट था। बन्दी-मजदूरो को डेढ रुपया रोज से दो रुपये रोज तक की मजदूरी मिलती थी। उनका भोजन आदि का व्यय सरकार मजदूरी मे से काट लेती थी, जो सर्वथा उचित है। जब मजदूर कमाने लगे तो उसे अपना पेट भरना चाहिए तथा करदाता पर भार नही बनना चाहिए। इसलिए चन्द्रप्रभा बाँध पर ३,३२ लाख रुपये की मजदूरी मे से १,८८ लाख रुपया सरकार ने अपना खर्चे का ले लिया और १,४३,४३३ रुयया मजदूरो को मिला। इस प्रकार कैदियो को खुली हवा मे, खुले वातावरण मे, अपनी जीविका कमाकर इतना पैसा बचाने का अवसर मिला जिससे अपने छूटने के समय वे समाज मे निराधार तथा निरवलम्ब न रह जायँ। ४ अक्टूबर १९५३ को विघ्य पर्वतमाला के रमणीक अञ्चल मे, कर्मनाशा नदी के तट पर दूसरा बाँध बनाने के लिए नौगढ शिविर खुला। इसमे २९०५ "मजदूर" थे जिन्होने ५,७३,७२६ रुपये मजदूरी मे कमाये जिनमे से सरकारी खर्च काटकर १,७०,८५२ रुपया उनके पास बच गया।

हमने ऊपर खुली सस्था के लिए बन्दी के चुनाव का जिक्र किया है तथा बतलाया है कि हर देश में इसका अलग-अलग मापदड है। उत्तर प्रदेश मे किस प्रकार के वर्ग

तथा अपराध के बन्दी खुली सस्था में पाये जाते हैं, इसका पता नीचे दी गयी तालिका से लगेगा—

			नौगढ शिविर मे
१	एक वर्ष की कैद की मीयाद से नीचे	—	१६६
२	१ से ३ वर्ष ”	—	२२७८
३	३ से ५ वर्ष ”	—	६६९
४	५ से १० वर्ष ”	—	३३१
५	११ वर्ष से अधिक, आजन्म कारावास आदि	—	४६१
			३९०५

अपराध की दृष्टि से निम्नलिखित वर्गीकरण होगा—

१.	दूसरो को चोट पहुँचाना	—	१०८९
२	सम्पत्ति को हानि पहुँचाना	—	६८५
३	राज्य तथा सार्वजनिक शान्ति मे बाधा	—	९९१
४	हत्या सहित डकैती	—	११५
५	अफीम या अन्य आबकारी कानून मे	—	३८
६	बलात्कार तथा जहर देना छोडकर मानव शरीर के साथ अन्य अपराध	—	१२
७.	राज्य की सुरक्षा के लिए बन्दी	—	९७५
			३९०५

१९ जनवरी १९५५ को, पीलीभीत जिले मे शाहगढ से ५ मील दूर तीसरा सम्पूर्णानन्द शिविर खुला। १५ नवम्बर १९५६ तक यह शिविर चला। २,२०१ मजदूर थे जिन्हे कुल ६,७६,७२८ रुपया मजदूरी मिली, जिसमें से ३,२५,०३० सरकारी व्यय कटा और ३,५१,६९७ रुपया मजदूरों को बच गया।

सन् १९५६ में वाराणसी के निकट सारनाथ मे महाबोधि सोसायटी द्वारा भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के २५०० वर्ष पूरे होने का समारोह मनाया गया था। इस अवसर पर सारनाथ का मार्ग सुगम बनाने के लिए वरुणा नदी पर एक पुल

बनाया गया जो चार महीने में यानी फरवरी से जून १९५६ तक पूरा हो गया। इस पुल के निर्माण में सरैया मुहल्ले में, वरुणा के तट पर बन्दियों का चौथा "खुला शिविर" बना जिसमें ४०० "मज़दूर" स्वतंत्र मज़दूरों के साथ, जिनमें लगभग ३०० स्त्रियाँ भी थीं, काम करते थे। सरैया शिविर अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से इसलिए बड़ा महत्त्वपूर्ण है कि संसार में यह पहला प्रयोग था जिसमें बन्दी और स्वतंत्र मज़दूर, स्त्री तथा पुरुष एक साथ मिलकर, शहर की बस्ती में रहकर काम करें और एक भी दुर्घटना न हो, एक भी बन्दी भागे नहीं, वासना का एक भी अपराध न हो।

मिर्जापुर जिले में चुर्क में उ० प्र० सरकार की प्रसिद्ध सीमेन्ट फैक्टरी है। १५ मार्च १९५६ से ८०० मज़दूर (बन्दी) इसमें काम कर रहे हैं। इनका काम है मुख्यतः खदानों से बारूद द्वारा निकाले गये चूना, पत्थर उसका चूरा आदि को ट्रालियों पर लादकर यथास्थान पर पहुँचाना। औसतन ८ घंटा प्रति दिन काम करना पड़ता है। बोझ ढोने का काम वास्तव में ट्राली करती है। १५ मार्च १९५६ से ३० नवम्बर १९५८ तक इन मज़दूरों ने ११,२६,४४४ रुपया मज़दूरी कमायी जिसमें से व्यय काटकर ५,२२,९१८ रुपया इनकी जेब में गया। उधर शाहगढ़ शिविर के समाप्त होते ही नैनीताल जिले में पाँचवाँ सम्पूर्णानन्द शिविर खुला। १६ नवम्बर १९५६ से २३ अक्टूबर १९५८ तक यहाँ पर ४६०१ बन्दी थे, जिन्होंने ७,७६,३६६ रुपया मज़दूरी रूप में कमाया, जिसमें से ३,९६,६१० रुपया बन्दी मज़दूरों के पास रह गया। इस शिविर की विशेषता यह है कि इसकी दुग्धशाला है तथा मुर्गी पालने का भी केन्द्र है। इन शिविरों के अलावा मझौला आदि के उपशिविर भी हैं। उत्तर प्रदेश की समूची जेल-जनसंख्या का पन्द्रह प्रतिशत खुली संस्थाओं में रहता है। ऐसे बंधन-मुक्त जीवन में भागनेवालों का औसत हज़ार पीछे एक क़ैदी से भी कम है। इन शिविरों में शिक्षा पाये तथा धन से सम्पन्न मुक्त बन्दी फिर कारागार में नहीं आते। वे अपना स्थिर तथा सुव्यवस्थित जीवन बिताने लगते हैं। प्रदेश के इन शिविरों में समूचा प्रबंध बन्दी स्वयं करते हैं। उनकी शिक्षा, दीक्षा, मनोरञ्जन, खेल-कूद, नाटक, संगीत, पर्वोत्सव आदि का बड़ा व्यवस्थित प्रबंध है। इन संस्थाओं में रहने-वाले मनुष्य को अपनी मनुष्यता पुनः प्राप्त हो जाती है।

भारतवर्ष में खुली संस्था के मामले में उत्तर प्रदेश सबसे आगे है। इस दिशा में उसकी अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति है। और प्रदेशों में भी खुली संस्थाओं का प्रबंध हुआ है या हो रहा है पर उत्तर प्रदेश ऐसा वैज्ञानिक प्रबंध नहीं हो पाया है। बिहार में सन् १९५४ में क़ैदियों को सड़क बनाने का काम दिया गया। ३९४ क़ैदियों ने सन् १९५४ में ३ मील लम्बी सड़क बनायी और सन् १९५५ में २ मील लम्बी सड़क।

ये बन्दी आठ घटे रोज काम करते है। इनको १३,२७६ रुपया मजदूरी मिली[1] जो काफी कम है। इसके अलावा और किसी खुली सस्था या खुले कार्य की हमे सूचना नही है। यह जरूर है कि सोनपुर के मेले मे हर साल जेल की दूकान पर काम करने के लिए बन्दी भेजे जाते है। सन् १९५२ से १९५६ तक ५८६ बन्दी भेजे जा चुके थे और उन्होने हर साल लगभग २०,००० रुपये का जेल का बना माल बेचा।

बन्द और खुले जेल मे भेद

बन्द और खुले जेल मे बडा अतर है। सबसे बडा अतर यह है कि खुली सस्था मे बन्द जेलो के समान "अधिक से अधिक" हिफाजत से लेकर "कम से कम देखरेख" तक की तीन श्रेणियाँ नही होती। खुले ढग का कारागार कैसे शुरू हुआ, इसका इतिहास देना आवश्यक नही है। पहले कैदियो को जेल के काम से ही बाहर भेजते रहे होगे। जेल के खेतो पर उनको काम करने को भेजा जाता रहा होगा। काम समाप्त करके वे फिर बन्द जेलखानो को वापस आ जाते रहे होगे। इस प्रथा का विरोध भी हुआ होगा। यह आवाज उठायी गयी होगी कि मनुष्य के आत्म-सम्मान के विरुद्ध है कि उसे हथकडी बेडी मे जकडकर बाहर भेजा जाय और उसी तरह से वापस बुलाया जाय। बिना मजदूरी दिये इतना परिश्रम लेना क्रूरता सिद्ध की गयी होगी। जो हो, आत्म-सम्मान, आत्म-निर्भरता तथा कारागार से छूटने के जीवन के लिए तैयारी की प्रारम्भिक भावनाओ के विकास का इतिहास बडा रोचक होगा। यूनाइटेड किंगडम मे यह नियम था कि १०-२० बन्दियो की टुकड़ियाँ सार्वजनिक विभागो मे या गैर-सरकारी लोगो की नौकरी मे भेजी जाती थी। इनकी निगरानी के लिए एक जेल-कर्मचारी दे दिया जाता और काफी दूर देहातो मे या जगलो मे काम करने के लिए भेजे जाते थे। कुछ दिनो बाद सडक या जगलों के काम के लिए कैदियो के छोटे-छोटे शिविर खुलने लगे पर इनसे इतना काम लिया जाता था मानो आदमी काम के लिए बना है, न कि काम आदमी के लिए।[2] इस प्रकार धीरे-धीरे खुले जेल का विकास हुआ। खुली सस्था सिर्फ उसी को नही कहते जो दीवालो के बधन से रहित हो। किन्तु इसका प्रबन्ध ऐसा होना चाहिए कि इसमे रहनेवाला आत्म-सयम सीखे और जिस समुदाय मे

१. Probation—India—July, 1957—Page 37.

२ Sri Lionel Fox—"Open Institutions"—U. N. O.—Page 11

रहता है उसके प्रति अपनी जिम्मेदारी को महसूस करे तथा उसे जिस स्वच्छद जीवन की सुविधा मिली है, उसका दुरुपयोग न करे।[1]

भिन्न देशो की खुली सस्थाएँ

यहाँ पर इतना स्थान नही है कि हर देश की खुली सस्था के रूप-रग के विषय मे पूरी जानकारी करायी जा सके। हर जगह अलग ढग की सस्थाएँ है।

बाल अपराधियों के लिए

आस्ट्रेलिया मे विक्टोरिया के निकट ४३००० एकड़ भूमि मे एक खुली सस्था है जिसमे २१ वर्ष की उम्र से कम के २०० निवासी है। न्यूजीलैंड मे वेलिगटन से कुछ मील दूर पर ७५ लडकियो के लिए आरोहाता नामक खुली सस्था है। बेल्जियम में ९ महीने से २० वर्ष तक की सजा वाले १२० व्यक्तियो के लिए खुली सस्था है जिसमे २५ वर्ष से कम उम्र के लोग लिये जाते है पर ४० वर्ष तक के प्रथम अपराधी भी लिये जा सकते है। नीदरलैंड्स मे २४ वर्ष की उम्र तक के अपराधियो को ही खुली सस्था मे रखते है (उत्तर प्रदेश की खुली सस्थाओ मे बाल अपराधियो को नही लेते, वैसे उम्र की कोई कैद नही), सो भी एक से तीन वर्ष तक की सजा वालों को। इग्लैड मे १४ बोर्स्टल सस्था बाल-अपराधियो के सुधार के लिए है जिनमे से १० खुली संस्थाएँ है। लडके तथा लडकियो की खुली संस्था मे कतिपय व्यक्ति किसानो के यहाॅ खेतो पर काम करने के लिए भी जाते है। दूर पर काम करने के लिए जाने-वाले लडके साइकिलो से, बिना किसी गार्ड के, जाते है।[2] सभी सस्थाओ में धार्मिक तथा अन्य शिक्षा का पूरा प्रबध है।

वयस्कों के लिए

यूनाइटेड किगडम मे वयस्को के लिए ५ खुली सस्थाएँ है। दो मे अल्पकालीन बन्दी भेजे जाते है। इनकी सजा की मीयाद १८ महीने से ३ वर्ष तक की होती है। लम्बी मीयादवालो के लिए एक खुली सस्था है। महिलाओ के लिए दो है।[3]

१. वही, पृष्ठ १३
२. वही, पृष्ठ ३४ से ४६ तक
३. Askam Grange and Hill Hall

किन्तु इनमे एक भी सस्था मे इतनी स्वच्छन्दता तथा कार्यपटुता नही है जितनी उत्तर प्रदेश के खुले शिविरों मे।

सयुक्त राज्य अमेरिका की प्रथम तथा सबसे अधिक सगठित खुली सस्था चिनो, कैलिफोर्निया मे है। इसके सगठनकर्त्ता तथा खुली सस्था के विशेषज्ञ श्री स्कडर का हम जिक्र कर आये है। चिनो यदि उत्तर प्रदेश की खुली सस्थाओ की तुलना मे किसी दृष्टि से कमजोर है तो दो बातो मे—उसकी जनसख्या १५०० है। हमारे किसी भी शिविर मे २५०० से कम नही है। चिनो मे ७८ प्रतिशत "प्रथम अपराधी" हैं। हमारे शिविरो मे स्यात् इतने ही प्रतिशत दुबारा अपराधी विराराधी (अभ्यस्त अपराधी) होगे। कैलिफोर्निया प्रदेश, जिसमे चिनो है, "अनिश्चित काल के लिए दड देता है। जब भी अपराधी मे सुधार हो जाय, वह छोडा जा सकता है। इसलिए चिनो मे अच्छी से अच्छी शिक्षा, कार्य, सहकारिता आदि से काफी लाभ उठाया जा सकता है। सयुक्त राज्य मे इतना सुप्रबधित तथा नैतिकता की दृष्टि से ऊँचा सुधार-गृह और कोई नही है। सन् १९४५ से १९४८ के बीच मे इसके १५१४ निवासियो मे से केवल ४ भाग गये।[1]

महिलाओ के लिए लगभग आधी दर्जन सस्थाएँ है जिनमे १६-३० वर्ष की उम्र के बीच मे तीन वर्ष तक की सज़ा की महिलाएँ रखी जाती हैं। केन्द्रीय सरकार के ऐल्डरसन नामक सुधारगृह मे ४४० स्त्रियाँ हैं जिनके रहने के लिए छोटे-छोटे मकान अलग-अलग बने हुए हैं।

न्यूज़ीलैण्ड मे १०० तथा ८४ व्यक्तियो के लिए दो शिविर है। स्वीडन मे खुली संस्था पर बडा जोर है। उसके १९४५ के कानून के अनुसार खुली सस्थाओं को ही प्राधान्य दिया गया है। उस देश मे ५२ कारागार है जिनमे सन् १९५४ मे ३२०० बदी थे। इनमे से २७ खुली सस्थाएं है जिनमे ९२० पुरुष, स्त्री तथा नवयुवक अपराधी थे। जिन कैदियो को कठोर कारावास का दड मिलता है वे तीन माह तक सज़ा भोगने के बाद खुले जेलो मे भेजे जा सकते हैं। १०-५० बदियो की टुकडियो मे २१ से २५ वर्ष की उम्र के बीच के लोगो के लिए ११,००० एकड़ भूमि मे १०० बन्दियो के लिए मैकलिपाड ट्रेनिंग सेन्टर नाम से बडी अच्छी सस्था है। ६०० व्यक्तियो का एक दूसरा अच्छा शिविर चल रहा था। ३०–९–१९५४ को उसकी जनसख्या ८०० थी जिसमे से १५ भाग गये थे।

१. Federal Prisons Report, 1948.

फिनलैण्ड मे बन्दियो के लिए राज्य की ओर से "मजदूर बस्तियाँ" बसा या बना दी गयी है। इनकी सख्या १९५४ मे १७ थी। इनमे खेती आदि का काम होता है। किन्तु दो वर्ष तक की सज़ा के अपराधी ही रखे जाते है।[1] फिलप्पीन मे जेल के बाहर कैदियो से काम लेने का कार्य सन् १९०४ मे शुरू हुआ।[2] यह कार्य इवाहिग मे अपराधी उपनिवेश मे प्रारम्भ किया गया। आज इवाहिग एक आदर्श खुली सस्था बन गया है। दवाओं की खुली सस्था मे २,९०० बन्दी है। इन दोनो सस्थाओ मे शिक्षा, घरेलू व्यवसाय तथा [illegible] ढग से दी जाती है। किसी जेल [illegible] जा सकता है। सजा की मीयाद पूरी होने पर भी लोग उपनिवेश मे बस सकते है। हर बन्दी को दो वर्ष तक अपने लिए निर्धारित भूमि पर ठिकाने से खेती करने पर उस भूमि का स्वामित्व प्राप्त हो सकता है और वह उसी भूमि पर बस भी सकता है। अच्छा काम करनेवाले को सज़ा मे महीने मे दस दिन की छूट मिल जाती है।

जापान मे खुली सस्थाओ का अच्छा संगठन है। कुछ सस्थाएँ बाल-अपराधियो के लिए, कुछ महिलाओ के लिए भी है। किन्तु खुली सस्थाओ मे केवल प्रथम अपराधी ही रखे जाते हैं। जुलाई १९५४ में आमागी फार्म ऐसी ७० सस्थाएँ थीं जिनमे ५११३ व्यक्ति रहते थे। प्रति सात व्यक्ति पर एक जेल-कर्मचारी नियुक्त है, यानी प्रति सस्था मे ७८० कर्मचारी है।[3] इस प्रकार खुली संस्था का समूचा उद्देश्य ही नष्ट हो जाता है।

खुली संस्था का भ्रम

बहुत सी ऐसी सस्थाएँ है जो अपने को अनायास "खुली सस्था" कहती है। इनमे एक प्रसिद्ध संस्था विट्ज़विल है। इसे देखने के लिए हम १९५५ मे, अगस्त के अतिम सप्ताह मे बडे आदर सहित वहाँ ले जाये गये थे। इसे स्विट्जरलैण्ड का "आदर्श खुला जेल" कहते है। किन्तु वास्तव मे इसे खुला जेल नही कह सकते। इसमें कैदियो को सीख़चो के भीतर बन्द होना पड़ता है। उनसे ११ घण्टे रोज काम

१. Open Institutions in Finland—United Nations, Page 2.

२. Open Institutions in Philippines—United Nations—Page—1 to 9

३ Open Institutions in Japan, U. N. O. Page 1-3.

लिया जाता है। इतने काम की मजदूरी २५ सेंट यानी चार आना (पच्चीस नया पैसा) रोज है। इतने पैसे से कुछ खरीदा नही जा सकता। १० दिन के लिए ४० सिगरेट (तम्बाकू और कागज) मिलता है। फिल्म दिखाने का प्रबध है पर चार-पॉच महीने तक भी कोई खेल नही होता। यो कारोबार सिखाने का बडा अच्छा प्रबध है, पर यह खुली सस्था कदापि नही है।

अध्याय ३६

स्त्री तथा परिवार से वियोग

जेल के जीवन मे सबसे बडी पीडा होती है पत्नी तथा परिवार से वियोग की। ऐसे वियोग से बन्दी के मन पर इतना बोझ रहता है कि उसकी बुद्धि ठिकाने नही रहती। इसी लिए वह सज़ा से छूटने के बाद अपने पुनर्वास की तैयारी भी नही कर सकता। मनुष्य के जीवन मे विवाह एक बडी भारी कमी को पूरा करता है। जेल के जीवन मे विवाहित तथा अविवाहित दोनो का मन समान रूप से सहानुभूति का स्रोत पानेके लिए तरसा करता है। सयुक्त राष्ट्र-सघ इस बात पर काफी ज़ोर दे रहा है कि बदियो को बाहरी दुनिया से—जेल के बाहर की दुनिया से सम्पर्क स्थापित करने तथा बनाये रखने का पूरा अवसर देना चाहिए। उनको अपने घरवालो से मिलने की पूरी सुविधा देनी चाहिए।

यूरोप मे बदियों से मिलने के नियम

यूरोप के १९ देशो मे बदियो से मिलने के लिए नीचे लिखा नियम है—[१]

	एक महीने मे कितनी बार मिल सकते हैं						
घण्टो मे कितनी देर तक भेट कर सकते है	एक बार से कम	एक बार	दो	तीन	चार	चार से अधिक	कुल
आध घटे से कम		४	२				६
आध घटे से एक घटे तक		४	५		१	१	११
एक से दो घन्टे तक					१		१
कोई उत्तर नही मिला	१						१
			कुल				१९

१. Ruth Shonle Cavan and Eugene S. Zamans Marital Relationships of Prisoners in Twentyeight Countries. Reprinted from Journal of Criminal Law, July—Aug., 1958-Pages 133-134.

ये सभी देश पत्नी या प्रेयसी को कैद मे अपने पति या प्रेमी से मिलने की अनुमति देते है। संयुक्तराज्य अमेरिका मे महीने मे दो बार एक घटे तक भेट हो सकती है। तुर्किस्तान मे महीने मे दो बार केवल १० मिनट के लिए भेट हो सकती है, चाहे परिवार का कोई भी सदस्य हो। न्यूजीलैड मे प्रति सप्ताह मे एक घटे तक तथा फ्रान्स मे सप्ताह मे एक या दो बार भी डेढ घटे तक भेट हो सकती है। स्वीडन मे खुले जेलो मे प्रति रविवार को जितनी देर चाहे मिल सकते है। बन्द जेलो मे आध घटे प्रति रविवार को। डेनमार्क मे आधे घटे दो वार प्रति मास। यूगोस्लाविया मे महीने मे दो या तीन बार, पर कठोर दडवालो को महीने मे केवल एक ही बार।

संयुक्त राज्य अमेरिका मे

सयुक्त राज्य अमेरिका मे लगभग आधे पुरुष तथा स्त्री बन्दी विवाहित है। केन्द्रीय सरकार के जेलो मे पुरुष बदियो की उम्र औसतन २८ ७ वर्ष है। प्रादेशिक जेलो मे २७ ० वर्ष। महिला बंदियो के लिए क्रमश २८ २ तथा २८ ५ वर्ष उम्र है। इन कैदियो के अध्ययन से पता चलता है कि विवाह के तीसरे से छठे वर्ष के भीतर ज्यादातर तलाक होते है। सवाल यह उठता है कि क्या पति के जेल मे बन्द रहने पर भी पत्नी उसका साथ पकडे रहेगी ? भारत ऐसे देशो मे तो पति के मर जाने पर भी साथ पकडे रहती है, अतएव यहाँ वह सवाल प्राय नही उठता। पर संयुक्त राज्य मे यह प्रश्न अवश्य है। अमूमन केन्द्रीय कारागारो मे ११ महीने तक भीतर रहने का औसत होता है। प्रादेशिक कारागारो मे २१ महीने तक। अतएव तलाक़ का उतना डर नहीं रहता जितना इस बात का कि पति चूँकि अपने बाल-बच्चो का भरण-पोषण नही कर रहा है अतएव परिवार में उसकी प्रतिष्ठा समाप्त हो जाती है। इसलिए यह ज़रूरी है कि बन्दी बराबर अपने परिवार के लोगो से मिलकर अपने सम्बन्ध को बिखरने न दे, जब कि समूची सामाजिक परिस्थिति उसके विपरीत है। सयुक्त राज्य मे २३ प्रदेश ऐसे है जो पति-पत्नी को मिलने देते हैं और महीने मे चार मर्त्तबा आध घंटे से लेकर दिन भर मिलने का अवसर देते हैं।

बहुत से यूरोपीय जेलों मे कैदियों से मिलनेवालों को अपने सामने स्टूल पर बैठकर बाते करने का अवसर मिलता है। कही-कही पर बीच मे शीशे की दीवाल होती है और टेलीफोन रखा रहता है जिससे एक दूसरे से बाते करते हैं। कई देशों मे जमीन पर पल्ले बिछा दिये जाते है। एक पक्ति मे बन्दी बैठता है। सामने की पक्ति मे उससे मिलनेवाला, सौ-पचास बन्दी एक साथ बिठाये जाते हैं। परिणाम

यह होता है कि आमने सामने एक दूसरे का मुख देखते हुए गला फाडकर चिल्लाना पडता है। मिस्र, ईराक आदि मे बहुत कुछ यही नियम है। भारतवर्ष मे. अभी तक ऐसा ही था। अब धीरे-धीरे समाप्त हो रहा है। सयुक्तराज्य अमेरिका मे भिन्न-भिन्न नियम है। एक बन्दीगृह मे २०० बदियो को जेल के खेतो मे, बाग मे, आराम से पेडो के नीचे बैठकर बातचीत करने की सुविधा है। कैलिफोर्निया के एक जेल मे मिलने आनेवाला खाने-पीने का सामान ला सकता है और आराम से पिकनिक पार्टी हो सकती है। वैसे आमने-सामने बीच मे एक मेज रखकर मिलने का आम तरीका है।

कैदियो को घर जाने की छुट्टी

अमेरिका के जेलो मे कैदियो को घर जाने देने की अनुमति नही दी जाती—यानी इसके लिए छुट्टी नही मिलती। छ राज्यो को छोडकर शेष राज्यो मे यह नियम है कि कैदी के घर मे किसी अति आत्मीय की मृत्यु हो जाने पर या स्वय उसकी गहरी बीमारी पर छुट्टी दी जाय। इग्लैड और वेल्स मे सन् १९५१ मे कुछ वर्ग के क़ैदियो को परिवार से सम्बन्ध स्थापित करने तथा मुक्ति के बाद अपने जीवन को पुनः स्थापित करने की तैयारी के लिए पॉच दिन की छुट्टी मिल जाती है। उत्तरी आयरलैड मे दो वर्ष की सजावालो को बारह महीने की सजा पूरी करने पर बडे दिन तथा गर्मी मे छुट्टी मिल सकती है। स्विट्जरलैड मे घर जाने के लिए ८ से २४ घटे की छुट्टी मिलती है। डेनमार्क मे बाल या वयस्क अपराधियो को जेल की गारद के साथ कुछ घटे के लिए घर जाने की छुट्टी मिलती है। स्वीडन इस विषय मे सबसे उदार देश है। वहॉ पर जरूरत हो चाहे न हो, कैदियो को छुट्टी मिलती ही है। यात्रा मे जितना समय लगे उसे छोडकर कैदी ४८-७२ घटे तक की समय-समय पर छुट्टी ले सकता है। एक साल मे कई बार छुट्टी मिल जाती है। ऐसे छुट्टी पर गये लोगो मे पद्रह प्रतिशत ऐसे है जो या तो देर मे वापस आये या नशे की हालत मे लौटे, इत्यादि। सन् १९५२ मे स्वीडेन मे, २,५२७ को छुट्टी मिली। सन् १९५४ मे ३,०८५ को। स्त्रियो को छुट्टी प्राय किसी देश मे नही मिलती। बहुत से देशो मे, जैसे अर्जेटीन आदि मे यदि कैदी का चरित्र या जीवन ठीक रहा तो उसे महीने मे एक बार १२ से २४ घटे तक घर जाने की आज्ञा दी जा सकती है। भारतवर्ष में उत्तर प्रदेश मे लम्बी मीयाद के कैदी को तीन बरस की सजा भोगने के बाद एक महीने तक घर पर रहने की आज्ञा मिल जाती है। महिला बन्दियो को अपने बच्चो से मिलने की पूरी सुविधा दी जाती है। कैदी को फसल काटने के लिए घर जाने की

छुट्टी दी जा सकती है। जेल मे कोई अपराध करने पर उसकी "मुलाकात" नही काटी जा सकती।

कामवासना और भेंट

काफी समय से इस समस्या पर विचार हो रहा है कि जेलो मे हस्तक्रिया या सहसंभोग, अप्राकृतिक सभोग आदि वासना के अपराध कैसे बद किये जायँ। इस सम्बन्ध मे लोगो के भिन्न-भिन्न मत है। ससार मे केवल मेक्सिको ही ऐसा देश है जिसने इस बारे मे एकदम क्रातिकारी कदम उठाया है। बहुत से अपराधशास्त्रियो का मत है कि जेलो मे वासना के अपराध कम करने का सबसे उचित उपाय है कि निश्चित समय पर विवाहित बन्दी को अपनी पत्नी से एकान्त मे मिलने का अवसर दिया जाय। मेक्सिको के ओकसाका नगर के सान्ता कातारिना जेल मे २३० बन्दियो के ७० प्रतिशत को कागज की दीवाल की छोटी कोठरियो मे हर गुरुवार तथा शनिवार को कुछ घटो के लिए बदी पति तथा उसकी पत्नी को एक साथ कर देते है। पर बदी स्त्रियो को यह इजाजत नही है। मेक्सिको नगर के पुरुषो के एक जेल मे, जिसमे २,२४६ बन्दी है, ५५ बन्दियो को प्रति सप्ताह यही सुविधा देते है।

किन्तु अधिक अपराधशास्त्रियो का मत ऐसी सुविधा के विपरीत है। सन् १९५६ मे एक महिला ने कोलम्बिया जिले की अदालत में यह दावा किया कि सरकार ने उसके पति को जेल मे भेज दिया पर वह उसे वैवाहिक जीवन से वचित नही कर सकती। अतएव उसे अपने पति के साथ जेल मे रहने दिया जाय। उसकी प्रार्थना अस्वीकार कर दी गयी। अस्तु, इस विषय मे एक अनुभवी का मत है—

"कुछ लोगो का ऐसा खयाल है कि यदि जेलो मे ऐसा परस्पर सम्बन्ध होने दिया जाय तो अप्राकृतिक सभोग आदि के अपराध बहुत कम हो जायँ। हमारा यह अनुभव है कि जिस व्यक्ति का पारिवारिक जीवन अच्छा रहा है, जिसकी घर-गृहस्थी ठिकाने की है तथा पत्नी स्थिर बुद्धि की है, उनके लिए वासना की ऐसी कोई समस्या नही होती। असली समस्या तो अतृप्त कामवासना, अस्थिर, असयत, बार-बार विवाह करनेवाले व्यक्ति की है . ऐसे व्यक्ति को ऐसे परस्पर सम्बन्ध का अवसर देकर उसे सुधार लेने की बात सोचना मूर्खता है।"

१. वही, पृष्ठ १३७

२. Zamans and Cavan—Marital Relationship of Pri-

ऐसी मूर्खता तो नही है जितनी ऊपर कही गयी है, पर हमारा इस सम्बन्ध मे अभी तक निश्चित मत नही है, अत हम कोई राय नही जाहिर करना चाहते। ऊपर जितने भी विवेचन है सबका एक ही निचोड है। मनुष्य के साथ, चाहे वह अपराधी हो या साधारण मनुष्य, मनुष्यता का व्यवहार होना चाहिए। उसकी मानवोचित माँगे, महत्त्वाकाक्षाएँ तथा स्वस्थ कामनाएँ पूरी होनी चाहिए। उसे समाज मे स्वस्थ नागरिक बनाकर भेजना है। समाज ने उसकी स्वाधीनता को हर लिया, इसके लिए उसके साथ समुचित व्यवहार करना ही समाज का उचित प्रायश्चित्त होगा। अब यह भी कोई नही अस्वीकार करता कि अपराध करने पर कारागार की सजा बहुत सोच विचार कर देनी चाहिए। अपराधी को यथाशक्य कारागार से बाहर रखने की बुद्धिमत्तापूर्ण नीति[१] का पालन दृढता के साथ होना चाहिए। और जब किसी को जेल भेज ही दिया तो उसकी पूरी जिम्मेदारी को निभाना चाहिए।

soners, Reprinted from the Journal of Criminology—May-June, 1958 U. S. A Page 54

१. Mental Abnormality and Crime, Cambridge University—Page XXI.

अध्याय ३७

पुनर्वास की समस्या

कारागार मे रखने से अधिक कठिन है कारागार से छूटने के बाद बन्दी की उत्तर-रक्षा का भार सँभालना। जिस समय बदी छूटकर कारागार के बाहर पैर रखता है, उसके जीवन का बडा कठिन अवसर होता है। उसका बधन समाप्त हुआ। उसकी स्वाधीनता शुरू हुई। वह जीवन समाप्त हुआ जिसमे उसकी इच्छा का कोई महत्त्व नही था। उसके ऊपर कोई जिम्मेदारी नही थी। अब वह ऐसे कठिन ससार को लौट रहा है जिसमे हर एक वस्तु के लिए सघर्ष तथा प्रयत्न करना पडता है। मुक्त बन्दी का जीवन स्वत उसके चरित्र तथा कारागार के प्रबंध की कटु परीक्षा है। उत्तर-रक्षा के प्रबध मे कमी अथवा समाज द्वारा अपने बिछुड़े भाई को अपनाने मे ही कमी, ऐसा कोई न कोई कारण होगा यदि मुक्त बदी पुन' अपराध कर बैठे। कारागार की सजा से व्यक्ति समाज के सामने नगा आ जाता है। इसकी उसके मन पर गहरी चोट लगती है। इसी लिए ८० प्रतिशत प्रथम अपराधी फिर अपराध नही करते।[१] पर बहुत से ऐसे भी है जो अपराध करने के लिए विवश हो जाते है। यदि उन्हे समुचित साधन प्राप्त होता तो ऐसा न होता। साथ ही, यदि कारागार के प्रबंधको ने अपना कर्त्तव्य ठीक से निभाया होता तो बन्दी का चरित्र-निर्माण होता। कुछ बहुत ही असाध्य रोगी है, पर उनकी सख्या बहुत कम है। मुक्त बन्दी की रक्षा तथा सहायता के लिए यह आवश्यक है कि जेल-जीवन मे उसे मौलिक शिक्षा, कर्त्तव्य का ज्ञान प्राप्त हुआ हो। तभी उसके लिए कुछ हो सकता है। कारागार मे ही बन्दी के जीवन का सबसे नाज़ुक ज़माना बीतता है।

प्रयास सफल होकर रहेगा

एक प्रश्न यह होता है कि क्या बन्दी का पुनर्वास, उसे स्वस्थ जीवन में लगा

१. Hugh Clare in Observer, London, May, 1959.

देने का प्रयत्न सफल हुआ है। एक क्षण के लिए मान भी लिया जाय कि नहीं हुआ है, तो उसे सफल बनाना पडेगा। बिना इसके और कोई चारा भी नही है। सरकार तथा जनता कैदियो का बढता हुआ बोझ कहाँ तक उठायेगी। कानपुर नगर मे, उसकी ९ लाख की आबादी मे, ५ अगस्त १९५९ को ९९५ व्यक्ति जिला जेल मे बन्द थे। इनमे से ६११ विचाराधीन बदी थे जिनमे १२६ बच्चे थे। इनमे १२ से १४ वर्ष के बच्चो की सख्या १८ थी। क्या होगा इतने बच्चो का—इतने होनहार नौजवानो का ?

सयुक्त राज्य अमेरिका के [illegible] प्रदेश के दक्षिण भाग के विचारपति हैरी सी० वेस्टोवर ने अपने एक लेख मे कहा है कि वह जमाना चला गया जब बन्दी जेलो मे वक्त बरबाद किया करता था। आज हर एक स्वस्थ [illegible] मे लगा हुआ है, लगाया गया है। सन् १९३४ मे सयुक्त राज्य के कारागारो मे उद्योग-धधा चालू करने के लिए ७,५०,००० डालर (एक डालर का मूल्य पौने पाच रुपया हुआ) मजूर हुआ था। इस समय इन उद्योग-धंधो की पूँजी १,८०,००,००० डालर है तथा इनके उत्पादन से केन्द्रीय सरकार को ३,२५,००,००० डालर की प्राप्ति हो चुकी है।[१] जेल मे काम करनेवाले बन्दी को दुहरा लाभ है। वह अपनी सजा की मीयाद मे छूट भी प्राप्त कर सकता है और २५० रुपया माहवार तक कमा सकता है। जेलो के भीतर एकदम आदर्श वातावरण स्थापित करने मे समय लगेगा, पर उतना ही समय एक मरीज़ को अस्पताल मे छुट्टी पाने पर भी स्वास्थ्य सुधार मे लगेगा। पर जब चिकित्सा ठीक से हुई है तो रोगी का रोग रह नही सकता। यदि जेलो मे वर्तमान ढग की शिक्षा जारी रही तो अपराधी का पुनर्वास निश्चित है।

१. Harry C. Westover, Judge-Guide Post, Manila, 15th July, 1958.

अध्याय ३८

मनुष्य और धर्म

न तो मनुष्य बुरा है और न कोई युग या समय बुरा हुआ करता है। मानव-स्वभाव जैसा कल था, वैसा आज है। जहाँ भी कही मानव-प्रकृति का अध्ययन किया जायगा उसमे गुण भी मिलेगा और अवगुण भी।[1] समाज मे मौलिक विचार के लोग बहुत ही कम मिलेंगे।[2] रचनात्मक विचारो के जो थोडे से लोग है वे ही समय को चुनौती देते है। अन्यथा मानव-जाति की दयनीय कहानी को सुनिए जब तक इसे समझ तथा बुद्धि का कुछ अश भगवान् ने नही दे दिया।[3]

नैतिक ह्रास की शिकायत

कीफर की पुस्तक मे सेनेका (छोटे) के वाक्य उद्धृत है। वे लिखते है—

"हमारे बुजुर्गों को यही शिकायत थी, हमें यही शिकायत है और भविष्य की सतान को भी यही शिकायत रहेगी कि लोगो मे नैतिकता के बधन शिथिल हो रहे है। दुष्टता का बोलबाला है, मानव-जाति का बराबर ह्रास हो रहा है और हर एक पवित्र वस्तु से श्रद्धा हटती जा रही है।"[4]

आगे चलकर वे ही कहते हैं—[5]

"लूसिलियस, यदि तुम्हारा यह विचार है कि हमारे समय मे दुराचार, विलासिता तथा नैतिक मापदंड बहुत दुर्बल हो गया है, तो तुम भूल कर रहे हो। हर एक

१ Charles Frankel—The Case for Modern Man, 1957–Page 161.

२. वही, पृष्ठ १५३

३. वही, पृष्ठ १

४. Kiefer, Page 46

५. Seneca Junior in Epistulae Morales. वही, पृष्ठ ४७.

व्यक्ति अपने समय पर यही दोष लगाता है। ये सब मानव-जाति के दोष है। किसी युग के दोष नही। इतिहास मे पाप-रहित युग कोई रहा ही नही है।"

महाभारत मे कलियुग का लक्षण बतलाते हुए कहा गया है—

पुत्रः पितृवधं कृत्वा पिता पुत्रवधं तथा।[१]

किन्तु इतिहास मे ऐसा कौन सा समाज था जिसमे पिता-पुत्र एक दूसरे की हत्या करते न पाये गये हो। असल मे हर युग की अपनी-अपनी माँग होती है जिससे उस युग की समस्याएँ बनती और ढलती रहती है। आज भी सबसे कठिन समस्या कल की समस्या से भिन्न है।

आज की दो माँगे

प्रसिद्ध लेखक आरनल्ड टोयनबी ने हाल मे लिखा है कि आज दो सर्व-व्यापक तथा दृढ माँगे है। समाज की पुकार है कि हर एक नागरिक को समान अधिकार तथा पद-महत्त्व प्राप्त हो। दूसरी माँग है हर एक का जीवन-निर्वाह का स्तर और अधिक ऊँचा हो।[२] अब, इस समय इन्ही दोनो माँगो की पूर्ति के लिए समाज का हर एक सदस्य सघर्ष कर रहा है। कोई सीधे तथा न्यायसगत मार्ग से प्रयास करता है और कोई समाज के नियमो के विपरीत चलकर अपना पद-महत्त्व तथा अपने जीवनस्तर को ऊँचा करना चाहता है।

धर्मभावना की आवश्यकता

अपराध तथा धर्म के सम्बन्ध को, यानी अपराध-निरोध के लिए धर्म-भावना की आवश्यकता को सिद्ध करते हुए पादरी टॉमस मिचेल ने लिखा है कि समाज-कल्याण के लिए हानिकर वस्तु का नाम अपराध है। शारीरिक व्याधि से शारीरिक अव्यवस्था पैदा होती है। पर अपराध आत्मा का रोग है। इसके कारण सामाजिक अव्यवस्था पैदा होती है और इसान तथा उसके परमात्मा के बीच मे भी गाँठ पडने लगती है। डकैती क्या है—लोभ का तर्कबुद्धि को दबा देना। अपराध मानवी प्रकृति की अवज्ञा

१. महाभारत, अरण्य पर्व, मार्कण्डेयसमस्या पर्व, श्लो० २८. अ० १६२

२. Arnold Toynbee–Religion and the Modern Man, Observer, London, July, 1959.

है। स्वभाव के भीतर जो वासना है उसको नियन्त्रण के बाहर कर देना ही अपराध है। यदि मनुष्य श्रद्धा तथा आस्था से काम करे, यदि वह अपने, सबके ऊपर ईश्वर की सत्ता मान ले तो जीवन का हर एक काम नयी भावना से युक्त तथा नये मन्त्र से प्रेरित प्रतीत होगा। धर्म की बागडोर पकडकर मनुष्य प्रेम तथा ममता के सहारे ससार के बडे-बडे कार्य कर लेता है। आत्मा की सत्ता न मानने से ही मनुष्य अपने को आध्यात्मिक प्राणी के रूप मे नही देख सकता। सबमे एक आत्मा है। समाज हमारी आपकी आत्मा का प्रतिबिम्ब है। अपराधी हमसे परे या पृथक् कोई प्राणी नही है। कर्त्तव्यशास्त्र, न्यायशास्त्र तथा धर्मशास्त्र को एक दूसरे से पृथक् कर देने से ही समाज की स्वाभाविकता नष्ट कर दी गयी है।[१] समाज को ही दैवी वस्तु समझ लेने का परिणाम "ईश्वर" की धारणा है।[२] यदि हमारी दृष्टि मे समाज, उसके अनुशासन, उसके आदेशो के प्रति पवित्रता या आस्था की कोई बात न हो, यदि हमारा चित्त समाज की महत्ता को न स्वीकार करता हो तो हम ईश्वर की सत्ता को भी सही माने मे नही मान सकते। समाज ईश्वर का प्रतिबिम्ब है। प्रतीक है।

धर्म क्या है—इसका निर्णय केवल निजी विश्वासो के आधार पर नही होता। मानव का विश्वास तथा उसकी श्रद्धा शून्य पर आधारित नही है। उसका उपयोग मानव के कल्याण के कार्यों के उपयोग मे ही हो सकता है। विश्वास तथा श्रद्धा को न्याय का रूप देना चाहिए। उन्हे कार्य रूप मे परिणत करना चाहिए।

मानव के प्रति विश्वास, मानव के प्रति श्रद्धा, मानव के प्रति प्रेम; समाज का यही लक्ष्य, यही मन्त्र, यही उद्देश्य होना चाहिए। तभी मनुष्य मनुष्य को, हम स्वय अपने को, एक प्राणी दूसरे प्राणी को पहचान सकेगा। इस प्रकार की पहचान के लिए ही धर्म तथा कर्त्तव्य का सहारा लेना आवश्यक है।

सब्ब पापस्स अकरणं कुसलस्स उप सम्पदा।
सचित्त परियो दमनं एवं बुद्धानुसासनं॥

धम्मपद पचीसी, श्लोक २१

(सारे पापो का न करना, पुण्यो का संचय करना, अपने चित्त को परिशुद्ध करना, यह है बुद्धो की शिक्षा।)

१. Raymond Firth–"Human Types"–1957–Page 48.
२. वही, पृष्ठ १७१

सहायक पुस्तकों की सूची

BIBLIOGRAPHY

1. Arthur E. Morgan—The Community of the Future–1958.
2. Albert K Cohen—Delinquent Boys–1956.
3. Alexander, Statute and Zilboorg—"The Criminal, the Judge and the Public"–1957.
4. Arthur Homes—Conservation of the Child–1912.
5. A. V. Dicey—Law and Public Opinion in England–1952.
6. Benthem—Principles of Morals and Legislations.
7. Brantome—Gallant Ladies.
8. Bronislaw Malinowski—The Sexual Life of Savages.
9. B. S. Haikerwal—A Comparative Study of Penology.
10. C. Darwin—The Descent of Man.
11. Charles Frankel—The Case of Modern Man–1957.
12. Charles Goring—The English Convict and Statistical Study.
13. Charles Merz—Bigger & Better Murders–1928.
14. Charles Loring Brace—Gesta Christi–1882.
15. Cyril Burt—The Young Delinquent–1938.
16. C. Bernaldo de Qurros—The Modern Theories of Criminality–1912.
17. Dayers—A Short History of Women.
18. Dennis Wheatley—The Launching of Roger Brook (Novel)
19. Edward Westermarck—Origin and Development of Moral Ideas–1912.
20. Fung-Yu-Lan—The Spirit of Chinese Philosophy.
21. Flexner—Prostitution in Europe.

22. F. A. E. Craw—Animal Genetics–1925.
23. F.J. Shirley Murphy—The Incidence of Sudden Delinquency.
24. Francis Fenton—The Influence of Newspaper–Presentation upon the Growth of Crime–1911.
25. Flexner and Baldwin—Juvenile Courts and Probation–1916.
26. Frederick Howard Wines—Punishment and Reformation.
27. Gibbon—Decline and Fall of Roman Empire.
28. G. M. Calhoun and G. Delamere—"A Working Bibliography of Greek Land."
29. Getting Married—1956-British Medical Association.
30. Gustaw Jaggar—Discovery of the Soul–1884.
31. Gabrial Tarde—Penal Philosophy–1912
32. Harold Lasky—Introduction to Politics.
33. H. Cutner—A Short History of Sex Worship–1940.
34. Hans Licht—Sexual Life in Ancient Greece–1952.
35. H. R. L. Sheppard—Some of My Religion.
36. Harry Elmer Barnes and Negely K. Teeters—"New Horizons in Criminology"–1959.
37. Ivon Block—Sexual Life in England–1938.
38. Inman—Ancient Faith embodied in Ancient Names.
39. Isaac Roy—"A Treatise on Medical Jurisprudence of Insanity".
40. Jitendra Nath Bannerjee—The Development of Hindu-Iconography–1941.
41. James Legge–Texts of Confucianism.
42. Johann J. Meyer—Sexual Life in Ancient India–1952.
43. J. T. Cunningham—Sexual Dimorphism in the Animal Kingdom–1900.
44. J. Edwards—Mens Rea in Statutory Offences–1955.
45. Jane Addams—The Spirit of Youth and the City Streets–1909
46. James—The Varieties of Religious Experience–1912.

47. John Howard—The State of Prisons.
48. J. C. F. Hall—Boy Crime in Burma–1939.
49. Karl Marx—Critique of Hegel's Philosophy of Law.
50. Keyserling—The Book of Marriage.
51. Lacky—The History of European Morals.
52. L. R. Farnell—Cults of the Greek States.
53. L. E. Widen—Young Criminals in Nebraska State Penitentiary-1957.
54. Lion Fox—Open Institutions–1950.
55. Maine—Ancient Law.
56. Meennan—Primitive Marriage.
57. M. Veerting—The Character of Women in a Masculine State and the Character of Women in a Feminine State–1921.
58. Macneile Dixon—The Human Situation.
59. M. E. Harding—Women's Mysteries–1935.
60. Modern Methods of Penal Treatment—Pub. International–Penal and Penitentiary Foundation–1956.
61. Maria Montessorie—The Discovery of the Child–1948.
62. Morris Ploscove—Sex and the Law Prentice Hall, New York–1951.
63. H. Hamblin Smith—Psychology of the Criminal—1922
64. Methods of Social Welfare Administration, U. N. O.–1950.
65. Otto Keifer—Sexual Life in Ancient Rome–1951.
66. P. K. Sen—Penology Old & New–1943.
67. Paul Reiwald—Society and Its Criminals (William Heinemaun)–1949.
68. Plato—Republique.
69. Planch—Where is Science going ?
70. Prescot—History of the Conquest of Mexilos.
71. Pinel—Medical & Philosophical Treatise on Mental–Alienation–1801.

72 P. Nacke—Homo-Secuology and Psychosis-1911.
73. Paul Tappen—Juvenile Delinquency in North America.
74. Quetlet—Social Physics-1869
75. R E M Wheeler—Five Thousand Years of Pakistan-1950.
76 Richard F Burton—Arabian Nights.
77. Raymond Dodge and Eugene Kahn—The Craving for-Superiority-1937.
78. R. N Saksena—Social Economy of a Polyandrous People-1955.
79 Refaele Garofalo—Criminology-1884.
80. Raymond Furth—Human Types-1957.
81 Robinson—Penology in the United States—1923.
82 Richard Harrison—The World's Police-1954.
83. Richard L. Halcomb—The Police and the Public-1954.
84. Stekel—Sadism and Masochism.
85. Schardn—Pre-historic Antiquities of the Aryan Peoples.
86. Sexual Offences—Report of the Cambridge University.
87. Sidgwick—Methods of Ethics-1893.
88. Sayre—Public Welfare Offences-1933.
89. Sutherland—Criminology-1924.
90. Sheldon Glueck—Mental Illness and Criminal Responsibility-1956.
91. S. F. Nadel—The Theory of Social Structure-1956.
92. Study of 102 Sex Offences in Sing Sing Prison (report) 1950.
93. Sheldon Glueck—Mental Disorders and Criminal Law.
94. Sheldon Glueck & Cleanor Gluck-500 Criminal Careers.
95. Tarde—Penal Philosophy.
96. William Healy—The Individual Delinquent—1927.
97. W. W. Sanger—The History of Prostitution-1910.
98. William H. Forstern—Sexual Life in England-1938.

99. William Sargeant—Battle for Mind
100. W. Narwood East and Others—Mental Abnormalities and Crime–1949
101. W A Bonger—Criminology & Economic Conditions–1916.
102. Warden Lewis F. Lawes—Meet the Murderer–1940.
103. Walter Reckliss—The Crime Problem.

REPORTS

1. Administration Report of the Govt. of India and States.
2 English Digest.
3. Federal Bureau of Investigation Report, U S. A.
4. Film Enquiry Committee Report.
5 Guide Post—Manila, Phillippines.
6. International Child Welfare Review.
7. International Federation of Senior Police Officers' Reports.
8 International Police Review.
9 London—"Times".
10 New York Times.
11. Readers' Digest.
12. Report of the Society for Prevention of Pauperism.
13. Report of the Child Welfare Department, Australia.
14. Reports of the Christian Economic and Social-Research-Foundation.
15. U N O Reports and Publications—Nearly 40.
16. Uniform Crime Reports.
17. World Federation for Mental Health.
18. World Health Organisation Reports.

हिन्दी

१. कौटिलीय अर्थशास्त्र—१९२५
२. कौशीतकी उपनिषद्

३. संस्कृत साहित्येतिहास—विश्वनाथ शास्त्री भारद्वाज
४ श्वेताश्वतरोपनिषद्
५. मुण्डकोपनिषद्
६ विष्णु पुराण
७ मनुस्मृति—टीकाकार प० केशवप्रसाद द्विवेदी—१९४८
८ महाभारत—सम्पादक पी० पी० शास्त्री और रामस्वामी शास्त्रुलर
९ सौन्दरानन्द काव्य—अश्वघोष कृत—१९४८
१० कुट्टनीमतम्—दामोदर गुप्त—१९५४
११ कन्यादान—डा० सम्पूर्णानन्द—१९५४
१२. याज्ञवल्क्य स्मृति
१३ पराशर स्मृति
१४ नारद स्मृति
१५ वाल्मीकि रामायण
१६ वात्स्यायन-कामसूत्रम्
१७ अग्नि पुराण
१८ गरुड पुराण
१९. मार्कण्डेय पुराण
२० प्राणदण्ड—परिपूर्णानन्द

(अध्ययन के समय नोटबुक मे अंग्रेजी-हिन्दी के कुछ लेखको का पूरा नाम तथा उनकी पुस्तक के प्रकाशन का समय देना रह गया था। उपरिलिखित पुस्तको के अलावा रिपोर्ट, समाचार-पत्र, अनेक मासिक तथा विशिष्ट प्रकाशन आदि भी है जिनकी सूची हम नही दे रहे हैं। ऐसे कुछ विशिष्ट प्रकाशनो के नाम ऊपर दिये गये हैं।)

अनुक्रमणिका